MAED-09

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

शैक्षिक प्रबन्धन
(Educational Management)

MAED-09

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

शैक्षिक प्रबन्धन

(Educational Management)

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक / समन्वयक

संयोजक

डॉ. दामीना चौधरी

सहआचार्य

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

सदस्य

1. **प्रो. सोहन वीर सिंह चौधरी**
   इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
   नई दिल्ली
2. **प्रो. एस.पी. मल्होत्रा**
   कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,
   कुरुक्षेत्र
3. **प्रो. मंजूलिका श्रीवास्तव**
   दूरस्थ शिक्षा परिषद
   इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
   नई दिल्ली
4. **डॉ. अनिल शुक्ला**
   लखनऊ विश्वविद्यालय
   लखनऊ (उ.प्र.)
5. **प्रो. डी.आर. गोयल**
   एम.एस. विश्वविद्यालय
   बड़ौदा, गुजरात

सम्पादन एवं पाठ लेखन

सम्पादक

डॉ. दया दवे

विदयाभवन शिक्षक महाविद्यालय (सी.टी.ई.)

उदयपुर (राज.)

लेखक

डॉ. बी.एल. श्रीमाली
सहा. प्रोफेसर,लोकमान्य तिलक शिक्षक
महाविद्यालय (सी.टी.ई.) डबोक, उदयपुर (राज.)

डॉ. आर.पी. सनाढ्य
प्रोफेसर
लोकमान्य तिलक शिक्षक महाविद्यालय (सी.टी.ई.) डबोक, उदयपुर (राज.)

डॉ. ए.के. पालीवाल
सहा. प्रोफेसर
विदयाभवन शिक्षक महाविद्यालय (सी.टी.ई.) उदयपुर

डॉ. दीप्ति पण्ड्या
सहा. प्रोफेसर
आर.एम.वी. शिक्षक महाविद्यालय
उदयपुर (राज.)

डॉ. आदेश भटनागर
प्राचार्य
इन्डो अमेरिकन शिक्षक महाविद्यालय
उदयपुर (राज.)

डॉ. ए.के. जैन
रीडर
विदयाभवन शिक्षक महाविद्यालय (सी.टी.ई.) उदयपुर

डॉ. मंजु वर्मा
सहा. प्रोफेसर
लोकमान्य तिलक शिक्षक महाविद्यालय (सी.टी.ई.) डबोक, उदयपुर (राज.)

डॉ. वेदप्रकाश
प्राचार्य
शिक्षक महाविद्यालय, बड़ीसादड़ी
जिला चित्तौड़ (राज।)

डॉ. शीमा सरूपरिया
सहा. प्रोफेसर
विदयाभवन शिक्षक महाविद्यालय (सी.टी.ई.) उदयपुर

डॉ. कमलेश झा
सहा. प्रोफेसर विदयाभवन शिक्षक महाविद्यालय (सी.टी.ई.), उदयपुर(राज.)

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. नरेश दाधीच	**प्रो. एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

पुनः उत्पादन - जून 2010 ISBN No. : 13/978-81-8496-001-3

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विषय सूची

शैक्षिक प्रबन्धन

क्र. सं.	इकाई का नाम	पृ. सं.
1	शैक्षिक प्रबन्धन : अवधारणा, परिभाषा एवं सिद्धान्त	6
2	शैक्षिक प्रबन्धन के सिद्धान्त	28
3	शैक्षिक प्रबन्धन के उपागम	52
4	उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन (उद्वाप्र)	68
5	शिक्षा मे सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्ध	104
6	शैक्षिक योजना	126
7	संगठनात्मक पर्यावरण	142
8	शैक्षिक प्रबन्धन में नेतृत्व शैलियाँ	160
9	शैक्षिक पर्यवेक्षण	177
10	शैक्षिक प्रबन्धन में निर्णयन	208
11	शैक्षिक प्रबन्धन में समन्वय	231
12	शैक्षिक प्रबन्धन में दबाव व नियंत्रण	257
13	स्वोट	274
14	शैक्षिक प्रबन्धन में सम्प्रेषण	289
15	समय प्रबन्धन	317
16	परिवर्तन प्रबन्ध और नवाचार	331
17	शैक्षिक प्रबन्धन के संवैधानिक प्रावधान	346
18	विद्यालय प्रबन्ध	359
19	शिक्षा मे वित्तीय प्रबन्धन	384
20	भारत में शैक्षिक प्रबन्धन की प्रणाली एवं संरचना	401
21	शैक्षिक निरीक्षण एवं मोनिटरिंग	434

इकाई 1

शैक्षिक प्रबन्धन

Educational management

इकाई की संरचना

1.0 इकाई के उद्देश्य (objectives of the unit)

1.1 प्रस्तावना (introduction)

1.2 प्रबन्धन का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Management)

1.3 शैक्षिक प्रबंधन का अर्थ (Meaning of Educational Management)

1.4 शैक्षिक प्रबंधन की परिभाषाएँ (Definitions of Education Management)

1.5 शैक्षिक प्रबंधन के उद्देश्य (Objectives of Education Management)

1.6 शैक्षिक प्रबंधन की आवश्यकता एवं महत्त्व (Need and Importance of Education Management)

1.7 शैक्षिक प्रबंधन के कार्य (Function of Educational Management)

1.8 शैक्षिक प्रबंधन के सिद्धान्त (Principles of Educational Management)

1.9 सारांश (summary)

1.0 संदर्भ सूची (References)

इस इकाई को पढ़कर आप (Objectives of the unit)

1. प्रबन्ध का अर्थ एवं परिभाषा जान सकेंगे ।
2. शैक्षिक प्रबन्ध का अर्थ एवं परिभाषा जान सकेंगे ।
3. शैक्षिक प्रबन्ध के उद्देश्य जान सकेंगे ।
4. शैक्षिक प्रबन्ध की आवश्यकता एवं महत्त्व जान सकेंगे ।
5. शैक्षिक प्रबन्ध के कार्य जान सकेंगे ।
6. शैक्षिक प्रबन्ध के सिद्धान्त जान सकेंगे ।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव एक सामाजिक प्राणी है वह समाज में रहता है । समाज में रहते हुए मानव को अनेक कार्यों को सम्पादित करना होता है । इन अनेक कार्यों को करने में मानव को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है । इन समस्याओं का समाधान करने में मानव को कई बार कुछ वस्तुओं को जुटाना पड़ता है, समस्याओं के हल ढूँढने पड़ते हैं, समायोजन करने पड़ते हैं । वस्तुएँ जुटाना, समस्या के हल ढूँढने एवं समायोजन करने की इस प्रक्रिया को एक सटीक एवं संक्षिप्त शब्द में प्रबन्ध (Management) कहा जा सकता है ।

मानव को दैनिक जीवन में अनेक वस्तुओं की आवश्यकता होती है जैसे शरीर शुद्धि हेतु मंजन, साबुन इत्यादि । इसी प्रकार देश-विदेश की सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए समाचार पत्र,

रेडियो, दूरदर्शन, इण्टरनेट इत्यादि । इन सभी वस्तुओं की प्राप्ति में नियोजन की आवश्यकता होती है । इस नियोजन में नियोजनकर्ता के मस्तिष्क पटल पर इन वस्तुओं की गुणात्मकता का विचार प्राय: रहता है और नियोजनकर्ता सदैव या अधिकांशत: यह प्रयास करता है कि मुझे अमुक वस्तु अमुक कम्पनी की ही खरीदनी है । जैसे कोई व्यक्ति ।

बाजार में जाता है और वह दुकानदार से कहता है कि मुझे अमुक वस्तु अमुक कम्पनी की दीजिए। व्यक्ति इस प्रकार की भावनाओं से ग्रसित हो जाता है क्योंकि वह प्राय: उस वस्तु की गुणात्मकता **(Quality)** एवं उस कम्पनी के प्रबन्धन **(management)** से संतुष्ट रहता है।

शैक्षिक प्रबन्धन एवं प्रशासन में मुख्य रूप से तीन शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं - प्रबन्धन, प्रशासन एवं संगठन । प्राय: लोग प्रशासन, प्रबन्धन एवं संगठन को समानार्थक मानते हैं । परन्तु वास्तविकता में यह तीनों भिन्न हैं । इनकी कार्यविधि, दायित्व एवं नीतियों में अन्तर होता है । 'प्रशासन' वह क्षमता है जिसके द्वारा सामाजिक शक्तियों एवं विरोधी तत्त्वों को एकाकी अवयव **(Organism)** में समन्वित किया जाता है जिससे वे एकरूपता में संचालित हो सके । प्रशासन एक साधन है जो संगठन के उद्देश्यों, नीतियों तथा मार्गदर्शक सिद्धान्तों का निर्धारण करता है । प्रबन्धन वह कार्यकारी क्रियाकलाप है जिसके माध्यम से प्रशासक प्रशासनिक नीति को क्रियान्दित करता है । जबकि संगठन उन पवृत्तियों या तत्त्वों से सम्बन्धित है जिनके द्वारा वांछित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किसी ढांचे का निर्माण किया जाता है । किसी संगठन के संस्था के ढाँचे का संचालन प्रशासन द्वारा किया जाता है । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रशासन **(administration),** प्रबन्धन **(management)** एवं संगठन **(organization)** तीनों अन्तर्सम्बन्धित **(Intercorrelated)** हैं, परन्तु इन तीनों का पृथक-पृथक सम्प्रत्यय है ।

1.2 प्रबन्ध का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Management)

'प्रबन्ध' शब्द अपने आप में एक व्यापक शब्द है जिसको विभिन्न ' एवं क्षेत्रों में प्रयुक्त किया जा सकता है जैसे व्यवसाय, उद्योग तथा शिक्षा इत्यादि के क्षेत्रों में । अर्थ में यह व्यवसाय एवं उद्योग के क्षेत्र में निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयुक्त किया जाता रहा। है परन्तु समय की गति के साथ-साथ इसका उपयोग शिक्षा के क्षेत्रों में भी होने लगा है ।

मानव जीवन सम्पूर्ण रूप से प्रबन्ध से सम्बन्धित है । मानव को दैनिक जीवन में अनेक कार्य सम्पन्न करने होते हैं । इन अनेक कार्यों को क्रमबद्ध एवं नियोजित तरीके से निश्चित समय एवं निश्चित परिस्थितियों में सम्पन्न करना होता है । इन कार्यों को क्रमबद्ध, व्यवस्थित एवं नियोजित तरीके से प्रबन्ध द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकता है । प्रबन्ध मानव जीवन के साथ अटूट रूप से जुड़ा हुआ है । प्रबन्ध शब्द का उपयोग पहले कारखाना, दुकान, कम्पनी या प्रतिष्ठान के सन्दर्भ में ही किया जाता था परन्तु वास्तविकता में यह शब्द उपर्युक्त सन्दर्भों तक ही सीमित नहीं है अपितु घर-परिवार तक में इस शब्द का उपयोग किया

जाना उचित है क्योंकि घर, परिवार की भी सुव्यवस्था प्रबन्ध के कारण ही हो पाती है । जन-सुविधाएँ, यातायात एवं खान-पान सम्बन्धी अन्य दैनिक गतिविधियों के लिए भी प्रबन्ध शब्द का उपयोग किया जाता है।

'प्रबन्ध' शब्द को अलग-अलग समय में अलग-अलग सन्दर्भों एवं अर्थों में प्रयुक्त किया जाता रहा है । द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व प्रबन्ध को अनवरत रूप से वाणिज्यिक आवश्यकता (Commercial Need) एवं वित्तीय निवेश (Financial Investment) के संदर्भ में ही प्रयुक्त किया जाता रहा है । परन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् इस सम्प्रत्यय का लगातार विस्तार हुआ है जिसके परिणामस्वरूप यह शब्द मानव गतिविधियों एवं संगठनों के दूसरे क्षेत्रों तक भी पहुँच गया है । परन्तु कतिपय विकासशील शब्दों में आज भी प्रबन्ध को वाणिज्यिक एवं वित्तीय (Commercial and Financial) सन्दर्भों एवं क्षेत्रों मे ही प्रयुक्त किया जाता है । इन देशों में मानव को मशीन की भाँति संचालित कर लेना ही प्रबन्ध माना जाता है । परन्तु धीरे-धीरे इस विचारधारा में परिवर्तन आने लगा है फलस्वरूप प्रबन्ध शब्द को इससे अधिक व्यापक नजरिए से देखा जाने लगा है और अधिकतम उत्पादन बेहतरीन वातावरण में सम्पन्न करने के प्रयास किए जाने लगे हैं । वर्तमान में प्रबन्ध को एक स्वतंत्र विषय के रूप में स्वीकार किया जा चुका है और कई देशों के

विश्व-विद्यालयों में इसका अध्ययन-अध्यापन किया जाने लगा है । फलस्वरूप इस शब्द का कई संदर्भों में उपयोग एवं व्यवहार होने लगा है जैसे वाणिज्यिक प्रबन्ध (Commercial Management), मानव प्रबन्ध (Human management), शिक्षा/शैक्षिक प्रबन्ध (Education/Educational Management), समय प्रबन्ध (Time Management) इत्यादि ।

यहाँ पर आगामी पृष्ठों में शिक्षा/शैक्षिक प्रबन्ध (Education/Educational Management) का विवेचन किया जाएगा परन्तु उससे पूर्व प्रबन्ध की कुछ परिभाषाओं को समझना प्रसंगोचित रहेगा।

1.2.1 प्रबन्ध की परिभाषाएँ (Definitions of Management)

विभिन्न शिक्षाविदों एवं शिक्षा-शास्त्रियों ने प्रबन्ध शब्द को पृथक्-पृथक् सन्दर्भों में परिभाषित किया है । कुछ शिक्षाविदों एवं शिक्षा-शास्त्रियों की परिभाषाओं को यही संकलित किया जा रहा है।

1. **जेम्स एल.,लुंडी (James,L.lundy)** के अनुसार, "Management **is a Principally a task of Planning, Co-ordinating,Motivating and Controlling the efforts of other towards specific objective."**
   अर्थात "प्रबन्ध मुख्य रूप से विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दूसरे के प्रयत्नों को नियोजित समन्वित, प्रेरित तथा नियंत्रित करने का कार्य है।
2. **लारेन्स ए.एप्पले (Lawrance A.Appley)** के अनुसार, **"Management is the development of people and not the direction of things."**

अर्थात् "प्रबन्ध व्यक्तियों का विकास है न कि वस्तुओं का निर्देशन "इन्होंने अपनी परिभाषा में मानव तत्व को अधिक महत्त्व दिया है ।

3. **Johan F.Mee** के अनुसार, **"Management may be defined as the art of the securing maximum results with a minimum of efforts so as to secure maximum prosperity and happiness for both employer and employee and give the public the best possible service."**
4. **हेनरी फेयोल** के अनुसार, "प्रबन्धन करने का अर्थ पूर्वानुमान एवं योजना बनाना, संगठित करना, निर्देशन देना, समन्वय करना एवं नियंत्रण करना है ।"
5. **लूथर गुलिक** तथा **अर्विक** ने प्रबन्धन को 'पोस्डकोर्ब' (**POSDCORB**) स्वीकार किया जिसका अर्थ योजना निर्माण, संगठन करना, स्टाफ, नियुक्ति, निर्देशन, समन्वय करना, रिपोर्ट करना एवं वित्तीय प्रबन्ध करना है ।
6. **स्टेनले वेस** के अनुसार - "प्रबन्ध पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के स्पष्ट उद्देश्यों के लिए निर्णय लेने एवं मानवीय क्रियाओं पर नियंत्रण करने की प्रक्रिया है ।
7. **कुंट्ज़** के अनुसार - "प्रबन्ध औपचारिक रूप से संगठित समूह से कार्य करवाने और उसके साथ कार्य करने की कला है ।
8. **पीटरसर एवं ब्लाउमैन** के अनुसार - "प्रबंध एक तकनीक है जिसके द्वारा एक विशिष्ट मानव समूह के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का निर्धारण, स्पष्टीकरण और प्राप्ति की जा सकती है ।
9. **जोसेफ एल. मैसी** के अनुसार - "प्रबन्ध एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक सहकारी समूह सामान्य लक्ष्यों की ओर क्रियाओं को निर्देशित करता है ।
10. एफ. डब्ल्यू टेलर के अनुसार - "प्रबन्ध यह जानने की कला है कि क्या करना है एवं उसे करने का सर्वोत्तम तरीका क्या है ?
11. **ई. एफ . एल. बीच** के अनुसार - "प्रबन्ध एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत एक प्रतिष्ठान के उद्देश्यों को पूरा करने हेतु क्रियाओं के प्रभावी नियोजन एवं नियमन करने का उत्तरदायित्व सन्निहित है ।

इस प्रकार 'प्रबन्ध' (Management) की एक निश्चित एवं सर्वमान्य परिभाषा देना अत्यन्त कठिन है परन्तु यह कहा जा सकता है कि प्रबन्ध के अन्तर्गत कुछ पूर्व निर्धारित। विशिष्ट उद्देश्य होते हैं और इन उद्देश्यों को प्राप्त करना अपेक्षित होता है । इस हेतु मानव बल/ शक्ति (Manpower) की आवश्यकता होती है । यह पूर्व निर्धारित उद्देश्य व्यक्ति को क्या करना है 7 इसका मार्गदर्शन प्रदान करते हैं एवं इस कार्य को कैसे करना एवं कब करना है 7 यह प्रक्रिया मानव व्यक्ति निर्धारित करता है । मानव यह प्रक्रिया योजना, संगठन, समन्वयन, निर्देशन, सम्प्रेषण, नियंत्रण द्वारा निर्धारित करता है और इन सभी तत्त्वों के द्वारा 'प्रबन्धन' (Management) के माध्यम से पूर्व निर्धारित उद्देश्यों एवं लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

1.3 शैक्षिक प्रबन्ध का अर्थ (Meaning of Education Management)

शैक्षिक प्रबन्ध' यह सम्प्रत्यय दो शब्दों के योग से बना है - शैक्षिक और प्रबन्ध । इसमें शैक्षिक से तात्पर्य है शिक्षा से सम्बन्धित । इसमें शिक्षा से जुड़े हुए भौतिक एवं मानवीय सभी प्रकार के घटक आ जाते हैं एवं प्रबन्ध से सामान्यतया यह अर्थ लिया जाता है कि पूर्व निर्धारित उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए संस्था के कार्यकर्ताओं के वैयक्तिक एवं सामूहिक प्रयासों के नियोजन, संगठन , निर्देशन एवं नियंत्रण से संबंधित है । शैक्षिक प्रबन्ध से तात्पर्य शिक्षा से जुड़े हुए सभी पहलुओं की व्यवस्था या प्रबन्ध एवं कार्य करने की कला से है । शैक्षिक प्रबन्ध में योजना, संगठन, निर्देशन, ।नियंत्रण, समन्वय आदि प्रक्रियाओं को महत्वपूर्ण माना गया है । 'शैक्षिक प्रबन्ध' शिक्षा के क्षेत्र में वांछित शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए की जाने वाली प्रक्रिया है । शिक्षा व्यवसाय में प्रबन्ध का विशेष महत्त्व है । प्रबन्ध से तात्पर्य शिक्षा से जुड़े हुए सभी पहलुओं की व्यवस्था या प्रबन्ध से है । शैक्षिक प्रबन्ध के द्वारा शिक्षण एवं अधिगम के लिए न केवल मानवीय तथा भौतिक संसाधनों की व्यवस्था की जाती है अपितु उनमें इस प्रकार समन्वय किया जाता है जिससे शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति सहज हो सके । 'शैक्षिक प्रबन्ध' इस सम्प्रत्यय को कुछ शिक्षा-शास्त्रियों ने परिभाषित भी किया है जिसको समझना प्रसंगोचित रहेगा ।

1.4 शैक्षिक प्रबन्ध की परिभाषाएँ (Definitions of Educational Management)

'शैक्षिक प्रबन्ध' को विद्वानों ने निम्नानुसार परिभाषित किया है - '

1. **जे. बी. सीयर्स के अनुसार -** "शैक्षिक प्रबन्ध एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसका सम्बन्ध ऐसी व्यवस्था करने से है जिसमें सम्पूर्ण शैक्षिक कार्यक्रम सफलतापूर्वक व्यावहारिक रूप में सम्पन्न हो सके ।"

   ("Educational Management is the process which concerns with making arrangement so that the purpose of the entire Educational Programme may be achieved practically")

2. **विलियम शुल्टजे के अनुसार** - "शैक्षिक प्रबन्ध का तात्पर्य आवश्यक मानवीय साधनों, सामग्री तथा साज-सज्जा की अनेक वस्तुओं को इस प्रकार क्रमबद्ध तथा प्रभावशाली ढंग से जुटाना है जिससे वांछित उद्देश्यों की अधिकतम प्राप्ति हो सके ।"

   ("An Educational Management is a combination of the necessary human designs materials, tools, equipment, working, spaces and appliances bright together in systematic and effective co-ordination to accomplish some desired objects.")

3. **पिफनर के अनुसार -** "शैक्षिक प्रबन्ध का तात्पर्य व्यक्तियों तथा व्यक्तियों के बीच, वर्गों का वर्गों के बीच उन सम्बन्धों को आयोजित करना है जिससे श्रम का क्रमबद्ध विभाजन किया जाता है ।"

   ("Educational Management consisting of the relationship of individuals to individuals and of group, which are so related as to bring about and orderly division of labour.")

4. **वर्गीस टी. पाल के अनुसार** - "शैक्षिक प्रबन्ध का प्रमुख आधार उचित वर्गीकरण तथा श्रम का उचित विभाजन है । शिक्षक का कक्षा के साथ, कक्षा का कमरे के साथ, छात्रा का पाठ्यवस्तु के साथ तथा शिक्षण विधियों के साथ समायोजन होना और समय का उचित विभाजन - आदि ऐसी बातें हैं जो शैक्षिक प्रबन्ध के स्वरूप बनाने में सहायक हैं।"

5. **लूथर गुलिक के मतानुसार** - "शैक्षिक प्रबन्ध सत्ता का औपचारिक ढाँचा है जिसके अन्तर्गत निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभागीय कार्यो को क्रमबद्ध रूप में विभाजन करना, परिभाषित करना तथा समन्वित करना सम्मिलित होता है ।"

   ("Educational Management is the normal structure of authority through which work subdivision are arranged and coordinated for the defined objective.")

6. **जे.डी.मुने के अनुसार** - "सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रत्येक मानवीय संस्था को ही शैक्षिक प्रबन्ध कहा जा सकता है ।"

   ("Educational Management is in the form of every human association for the attainment of common purpose.")

7. **एल. एफ. उरविक्र के अनुसार** - "शैक्षिक प्रबन्ध का तात्पर्य किसी भी कार्य अथवा योजना के लिए आवश्यक क्रियाओं का निर्धारण करना तथा उन्हें क्रमबद्ध रूप में व्यवस्थित करके विभिन्न व्यक्तियों को सौंपना है ।

   ("Educational Management is the determining of what activities are necessary to any purpose and arranging them in groups which may be assigned to individuals.")

8. **जी. ई. मिलवर्ड के अनुसार** - "प्रबन्ध वह प्रक्रिया तथा एजेन्सी है जिसके माध्यम से नीतियों के क्रियान्वयन का आयोजन तथा पर्यवेक्षण किया जाता है ।"

   ("Management is the process and the agency through which the execution of policy is planned and supervised.")

उपर्युक्त परिभाषाओं के निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि शैक्षिक प्रबन्ध एक सोद्देश्य प्रक्रिया है और इन उद्देश्यों की प्राप्ति करने हेतु मानव दारा योजना निर्मित की जाती है । इस योजना को व्यवस्थित रूप से सम्पादित करने का प्रयास किया जाता है । शैक्षिक प्रबन्ध

में नियोजित एवं क्रमबद्ध रूप में कार्य किया जाता है । यह कला एवं विज्ञान दोनों है । यह एक ऐसी कला और सुव्यवस्थित वैज्ञानिक प्रक्रिया है जो किसी संस्था के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति में नेतृत्व, सहायता तथा मार्गदर्शन प्रदान करती है |

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

प्र.1 'प्रबन्ध' का अर्थ बताइए ।

प्र.2 'कूँट्ज' ने प्रबन्ध को किस प्रकार परिभाषित किया है ?

प्र.3 'शैक्षिक प्रबन्ध' का सम्प्रत्यय बताइए ।

प्र.4 'जे.सी. सीयर्स' ने शैक्षिक प्रबन्ध को किस प्रकार परिभाषित किया हे ।

1.5 शैक्षिक प्रबन्ध के उद्देश्य (Objective of Educational Management)

शिक्षा राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर है । यह मूल्यों एवं आदर्शों के संरक्षण का साधन भी है । शिक्षा के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के आधार पर ही शैक्षिक प्रबन्ध एवं संगठन के उद्देश्य निर्धारित किए जाने अपेक्षित होते हैं । शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति उपयुक्त एवं समुचित शाला प्रबन्ध से ही सम्भव है । शिक्षा का उद्देश्य छात्र की रुचि, योग्यता, क्षमता एवं भविष्य को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार शिक्षा देना है कि वह अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सके । विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास करने वाले समस्त भौतिक एवं मानवीय साधन विद्यालय में उपलब्ध होने चाहिए जिससे विद्यालय में सभी शैक्षिक कार्यक्रम एवं सहगामी।

क्रियाएँ प्रभावी ढंग से संचालित हो सके और बालक का सर्वांगीण विकास हो सके ।

प्रत्येक विद्यालय की स्थापना से पूर्व उस विद्यालय के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है । विद्यालय का प्रबन्धन करने वालों को विद्यालय के उद्देश्यों को अवश्य ध्यान में रखकर प्रबंधन करना चाहिए । विद्यालय प्रबन्धकों को यह अवश्य प्रयास करना चाहिए कि जो प्रबन्धन किया जा रहा है वह पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति में कहाँ तक सहायक हैं ? इस प्रश्न पर विचार करें कि विद्यालय प्रबन्ध के क्या उद्देश्य होने चाहिए ? विद्यालय प्रबन्धन के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित होने चाहिए -

(1) **विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्ति हेतु अनुकूल वातावरण उपलब्ध- करवाना** - किसी भी विद्यालय का प्रथम उदेश्य विद्यार्थियों को समुचित शिक्षा प्राप्त करने के लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध करवाना होना चाहिए । विद्यालय में शिक्षा पाठ्यक्रम के माध्यम से दी जाती है । पाठ्यक्रम के अन्तर्गत कक्षा शिक्षण-अधिगम के साथ ही अन्य अनेक आवश्यक पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन भी होता है । इस पाठ्य सहगामी क्रियाओं के सफल एवं पूर्ण संचालन हेतु विद्यालय में आवश्यक भौतिक एवं मानवीय संसाधन उपलब्ध होने चाहिए जिससे विद्यार्थियों को उत्कृष्ट श्रेणी की शिक्षा प्रदान की जा सके । विद्यालय मे योग्य एवं प्रशिक्षित शिक्षक, सुविधाजनक कक्षा-कक्ष, खेल के मैदान, पुरतकालय, प्रयोगशालाएँ, छात्रावास इत्यादि की

समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे विद्यार्थियों का शैक्षिक एवं सह शैक्षिक विकास सम्यक् रूप से हो सके ।

(2) **भौतिक एवं मानवीय संसाधनों में समन्वय** - विद्यालय में भौतिक एवं मानवीय संसाधनों की व्यवस्था हो जाने के पश्चात् इन साधनो का आपस में समन्वय स्थापित किया जाना चहिए । इसका तात्पर्य यह है कि यदि विद्यालय में खेल का मैदान उपलब्ध है तो छात्र खेल के मैदान में खेलते हुए दिखाई देने चाहिए । विद्यालय में यदि पुस्तकालय विद्यमान है तो विद्यार्थी पुस्तकालय में अध्ययन करते हुए दिखाई देने चाहिए । इसी प्रकार यदि प्रयोगशाला उपलब्ध है तो विद्यार्थी प्रयोगशाला में प्रयोग करते हुए दिखाई देने चाहिए । शिक्षकों की कक्षा में पर्याप्त मात्रा में छात्रों की संख्या उपलब्ध होनी चाहिए । इस प्रकार विद्यालय में भौतिक एवं मानवीय संसाधनों में समन्वय होना चाहिए ।

(3) **कर्मचारियों में प्रेम एवं सद्भभवना का विकास करना** - उच्च श्रेणी के विद्यालय प्रबन्धन में यह एक ? अहम् मुद्दा है कि विद्यालय में सेवारत विभिन्न श्रेणी के समस्त कर्मचारियों में प्रेम एवं सद्भभवना होनी चाहिए । वे आपस में प्रेम एवं विश्वास की भावना रखे । विद्यार्थी से स्वाभाविक रूप से स्नेह करें तथा प्रबन्धकों के प्रति उनमें विश्वास हो । वही विद्यालय अपने उद्देश्यों में सफल होगा, जहाँ सेवारत कर्मचारी एवं शिक्षक समर्पित भाव से कार्य करते हों । परन्तु यह समर्पण भाव कर्मचारियों में तभी जाग्रत होगा जब कर्मचारी वर्ग को यह विश्वास हो जाए कि प्रबन्धक हमारी समस्याओं के प्रति संवेदनशील है । अत: यह कहा जा सकता है कि सफल प्रबन्धन हेतु आवश्यक है कि प्रबन्धक मण्डल, कर्मचारीगण एवं विद्यार्थी में आपस में प्रेम एवं सद्भभवना होनी चाहिए ।

(4) **समय का सदुपयोग करना** - प्रबन्धक मण्डल को यह प्रयास करना चाहिए कि विद्यालय में कार्यरत कर्मचारी एवं शिक्षक अनावश्यक एवं अनुत्पादक कार्य में श्रम, समय एवं शक्ति नष्ट नहीं करे । कर्मचारी कार्य भी करें और उस कार्य में सफलता नहीं प्राप्त हो और कर्मचारी जटिलता से जूझता रहे । यह स्थिति विद्यालय में उत्पन्न नहीं हो यह देखना भी प्रबन्धन का प्रमुख कार्य एवं उद्देश्य है ।

(5) **मूल्यांकन करना** - प्रबन्धन को अपने कार्यों का समय-समय पर मूल्यांकन अवश्य किया जाना चाहिए । मूल्यांकन जहाँ अपनी उपलब्धियों को रेखांकित करता है वही अपनी सीमाओं एवं कमियों की ओर भी संकेत करता है । इससे आगे के कार्यक्रम एवं भावी योजनाओं में सहायता प्राप्त होती है । इस सम्बन्ध में यह भी विचार किया जा सकता है कि जो संसाधन विद्यालय में उपलब्ध कराए गए हैं वे विद्यार्थियों को विधाध्ययन के लिए किस सीमा तक अनुकूल एवं उपयुक्त वातावरण प्रदान करने मै सफल हो रहे हैं ।

(6) **शिक्षकों को व्यावसायिक वृद्धि हेतु अवसर उपलब्ध करवाना** - समय-समय पर शिक्षा में नवाचार होते रहते हैं । शिक्षक को इन नवाचारों से अवगत होना चाहिए । अत: प्रबन्धन को चाहिए कि जो शिक्षक विद्यालय में नियुक्त हैं उन्हें अपनी व्यावसायिक वृद्धि हेतु समुचित अवसर प्रदान करने चाहिए और अवसर आने पर उन्हें व्यावसायिक वृद्धि हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए । क्योंकि यदि शिक्षक नवाचारों से परिचित होंगे और व्यावसायिक दक्ष होंगे तो वे छात्रों का सर्वांगीण विकास करने में अधिक सक्षम होंगे ।

(7) **संसाधनो का अधिकतम उपयोग करना -** प्रबन्धन को हर समय प्रयासरत रहना चाहिए कि जो संसाधन' विद्यालय में उपलब्ध हैं उनका अधिकतम उपयोग किया जाए औ र यह उपयोग सही रूप में किया जाना चाहिए । सभी साधनों का सही रूप से उपयोग हो और साधनों का दुरुपयोग न हो तथा ऐसी स्थिति उत्पन्न न हो कि इनका उपयोग ही न होता हो तथा जुटाए गए सभी संसाधन निरर्थक प्रमाणित होते हों । यह नियंत्रण भी सफल प्रबंधक हेतु आवश्यक है । अत: प्रबन्धक को यह प्रयास करते रहना चाहिए कि विद्यालय में उपलब्ध सभी संसाधनों का अधिकतम उपयोग हो ।

(8) **छात्रों के व्यक्तिगत विकास पर ध्यान देना -** छात्रों को शिक्षा प्रदान करते समय उनकी व्यक्तिगत रुचियों, योग्यताओं, क्षमताओं एवं आवश्यकताओं पर ध्यान देते हुए उनका सर्वांगीण (बौद्धिक, शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, चारित्रिक, सामाजिक, नैतिक) विकास करना तथा सभी प्रकार के विद्यार्थियों (प्रतिभाशाली, सामान्य एवं मन्दबुद्धि) का समुचित विकास करना चाहिए ।

(9) **कार्यकर्ता को योग्यता. क्षमता एवं दक्षता के अनुसार कार्य देना -** प्रबन्धन को अपने विद्यालय / संस्थान में अनेक प्रकार के कार्य कार्यकर्ताओं के माध्यम से करवाने होते हैं अत: प्रबन्धन को यह पता लगा लेना चाहिए कि कौन सा कार्यकर्ता कौन से कार्य में योग्य, सक्षम एवं दक्ष है । इसके पश्चात् ही जो कार्यकर्ता जिस कार्य में योग्य, सक्षम एवं दक्ष है उसे ही वह कार्य प्रदान करना चाहिए जिससे वह कार्य अधिक गुणात्मक एवं कम समय में सम्पन्न हो सकेगा ।

(10) **छात्रों में सुनागरिकता के गुणों का विकास करना** - विद्यार्थियों में राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय एकता एवं अन्तर्राष्ट्रीय सद्भभवना, स्वाभिमान, परिश्रम के प्रति उचित दृष्टिकोण का विकास, सहयोगात्मक ढंग से कार्य करने की आदत, नेतृत्व भाव इत्यादि गुणों का विकास करना प्रबन्धन का उद्देश्य होना चाहिए जिससे विद्यार्थियों में सुनागरिकता के गुणों का विकास हो सकेगा ।

(11) **छात्र एवं समाज केन्द्रित शिक्षण एवं योजना** - विद्यालय एवं प्रबन्धन का मुख्य केन्द्र छात्र एवं समाज होता है । अत: प्रबन्धन को चाहिए कि विद्यालय में आयोजित की जाने वाली प्रत्येक गतिविधियों / योजना, पाठ्यक्रम निर्माण सभी छात्र एवं समाज की आवश्यकताओं के अनुसार ही सम्पादित किए जाने चाहिए । पाठ्यक्रम को शिक्षा का साधन मानना चाहिए । अत: पाठ्यक्रम छात्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लचीला बनाना चाहिए । विद्यालय को 'समुदाय केन्द्रित' (Community) बनाना तथा छात्रों में सामुदायिक भावना का विकास करना चाहिए ।

(12) **कार्यकर्ताओं की सन्तुष्टि -** प्रत्येक संस्था ? विद्यालय का विकास कार्यकर्ताओं के द्वारा ही सम्भव होता है । अत: प्रबन्धन द्वारा ऐसा वातावरण प्रदान करना चाहिए कि विद्यालय / संस्था में कार्यरत प्रत्येक कार्यकर्ता सन्तुष्ट हो सके । क्योंकि कार्यकर्ता की सन्तुष्टि के फलस्वरूप ही विद्यालय का समुचित विकास हो सकता है ।

इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जाना प्रसंगोचित रहेगा कि शैक्षिक प्रबन्धकों को शाला प्रबन्ध के उद्देश्य एवं उनको पूरा करने के सम्बन्ध में बहुत निश्चित एवं स्पष्ट होना आवश्यक है । इन उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए विद्यालय प्रबन्धकों को कुछ आवश्यक एवं अपेक्षित क्रियाएं की जानी चाहिए ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self-Evaluation Questions)

प्र1 शैक्षिक प्रबन्धन के कोई दो उद्देश्य बताइए ।

प्र2 प्रधानाध्यापक भौतिक एवं मानवीय संसाधनों में किरन प्रकार करता है ?

प्र3 प्रधानाध्यापक के रूप में आप अपने अधीन कार्य करने वाले शिक्षको को व्यावसायिक बुद्धि हेत अवसर कैसे उपलब्ध करवाएंगे ।

1.6 शैक्षिक प्रबन्ध की आवश्यकता एवं महत्व (Need and Important of Educational Management)

शिक्षण संस्थाओं तथा अन्य औधोगिक क्षेत्रों में हड़तालें एवं अनुशासनहीनता '-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है । शिक्षा के क्षेत्र में बढता हुआ विनियोजन सार्थक नजर नहीं आ रहा हे । निरन्तर बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार, अनैतिक प्रतियोगिता तथा अपव्यय जैसी समस्याएँ हमारे सामने हैं । समस्याओं से छुटकारा प्राप्त करना आवश्यक है और इन समस्याओं से छुटकारा प्राप्त करने हेतु -हमे कुशल प्रबन्धन की आवश्यकता होती है । भारत जैसे विकासशील देश में शिक्षा जगत के लिए कुशल प्रबन्ध अति महत्त्वपूर्ण है । क्योंकि **कोठारी शिक्षा आयोग** (1964-66) के अनुसार, "भारत का भविष्य कक्षाओं में निर्मित हो रहा है । उक्त शब्दों में गणतंत्र के लिए योग्य नागरिक तैयार करने में संस्थाओं के कुशल प्रबन्ध का महत्त्व स्वीकार किया गया है । जिसके द्वारा विद्यालयों में अनुकूल ' निर्मित कर "शैक्षिक उद्देश्यों की सम्प्राप्ति' करने में सहायता मिलती है । किसी विद्यालय की उसके 'प्रबन्धन' एवं 'व्यवस्था' पर निर्भर है अत: लाभकारी एवं प्रभावपूर्ण शिक्षा के लिए 'शैक्षिक प्रबन्ध ' या संगठन अत्यन्त आवश्यक है । शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शैक्षिक प्रबन्ध की अत्यन्त आवश्यकता है । विद्यालय की साज-सज्जा, पठन सामग्री एवं उपकरण की व्यापकता, समय विभाग चक्र के उचित संचालन, शिक्षकों के कार्य के नियंत्रण में शैक्षिक प्रबन्ध की आवश्यकता महसूस होती है।

पीटर एफ. ड्रकर (Peter F.Drucker) ने प्रबन्धन के-महत्त्व के संदर्भ ' कहा है कि- "प्रबन्ध प्रत्येक उपक्रम का गतिशील एवं जीवनदायक तत्त्व होता है ।" **(Management is the dynamic and life giving organ of the enterprisese's body)** इसके बिना साधन केवल साधन । ही रह जाते हैं और वे कभी उत्पादक नहीं बन पाते । प्रबन्धन शैक्षिक संगठन को बल प्रदान करता है,? उसे संचालित करता है, नियंत्रित करता है । प्रबन्धन के माध्यम से ही अव्यवस्थित साधनों को व्यवस्थित किया जा सकता है, कमजोर कडियों को मजबूत बनाया जा सकता है और नवीन तकनीकी तथा विधियों के माध्यम से उद्देश्यों को पूरा किया जा सकता है

। इन्हीं कारणों से शैक्षिक प्रबन्ध का महत्त्व उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है । शैक्षिक प्रबन्ध के महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है-।

(1) **मानवीय संसाधनों का विकास करने में सहायक -** शैक्षिक प्रबन्ध ?एक मानवीय क्रिया है । किसी न किसी रूप में प्रबन्ध की सभी क्रियाएँ मानव व्यवहार से ही सम्बन्धित होती है ?हैं । कुशल प्रबन्धक निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए योग्य व्यक्तियों का चयन करते हैं, उन्हें अपेक्षित प्रशिक्षण प्रदान करते हैं । उनकी व्यक्तिगत क्षमताओं को पहचान कर उन्हें कार्य का आवंटन करते है । उनकी समस्याओं का निराकरण करते हैं तथा उन्हें विकास के अवसर एवं प्रेरणा प्रदान करते हैं । इस प्रकार मानव संसाधनों के विकास में प्रबन्ध का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है ।

(2) **शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक -** प्रबन्धन शैक्षिक संगठन का अनिवार्य अंग है । कुशल प्रबन्धन के द्वारा ही शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है नेतृत्वकारी अपने नेतृत्वकारी कार्यों के द्वारा इकाई के समस्त साधनों, कर्मचारियों और क्रियाओं इस प्रकार सम्बन्धित एवं नियोजित करता है जिससे निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे सब एक साथ मिलकर प्रयत्नशील हो जाते हैं । ' फलस्वरूप पूर्व योजनानुसार लक्ष्य की प्राप्ति निर्धारित समय में सम्भव होती है ।

(3) **न्यूनतम साधनों से श्रेष्ठतम परिणामों की प्राप्ति में सहायक** - प्रबन्ध एक ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा कम समय, धन एवं श्रम का उपयोग करके अधिकतम उपलब्धियॉ प्राप्त की जा सकती हैं । साधनों के मितव्ययता पूर्ण उपयोग द्वारा वांछित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए यह और जरूरी है कि सीमित साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग हो ताकि इससे श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त हो सके ।

(4) **शैक्षिक समस्याओं का समाधान करने में सहायक -** किसी भी उपक्रम अथवा शैक्षिक संस्थान में अधिकारियों, कर्मचारियों तथा श्रमिकों अथवा विद्यार्थियों के रचनात्मक सहयोग के बिना किसी भी कार्य का संपादन करना कठिन होता है । एक अच्छा एवं कुशल शैक्षिक प्रबन्धक इस सहयोग को सरलता से प्राप्त कर लेता है । तत्पश्चात् दोनों ही एक-दूसरे के माध्यम से अपने-अपने हितों को पूरा करने की चेष्टा करते हैं । प्रबन्धक अपने कर्मचारियों की समस्याओं का समाधान करता है । यदि वह हल नहीं कर पाता है तो उस पर उचित कार्यवाही करके सन्तुष्टि प्रदान करता है ।

(5) **विभिन्न कारकों में समन्वय में सहायक** - किसी भी निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति में यदि एक से अधिक कारक सम्मिलित होते हैं तो उन सभी कारकों में परस्पर समन्वय आवश्यक होता है । शिक्षा एक ऐसा सामूहिक प्रयास है जो अनेकानेक कारकों से प्रभावित होता है । मानवीय कारकों में समन्यय न हो तो शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त होना असंभव है । प्रबन्ध इन सभी में समन्वय स्थापित करता है ।

(6) **वैज्ञानिक तथा तकनीकी आविष्कार का उपयोग करने में सहायक** - भारत देश में उत्तरोत्तर वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास होता दिखाई दे रहा है । भारत विकसित राष्ट्रों के समान स्थान प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है । इसी के अनुसार भारत की शिक्षा प्रणाली में

पाठ्यक्रम, उद्देश्य, शिक्षण प्रणालियों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन हुए । खुले विश्वविद्यालय, खुले विद्यालय (Open School), शैक्षिक अवसरों की समानता, सारे देश के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा दूरवर्ती शिक्षा कार्यक्रम आदि शैक्षिक आविष्कार का ही परिणाम है । शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावशाली ढंग से प्राप्त करने हेतु तकनीकी का प्रयोग शैक्षिक परिस्थितियों में किया जाना चाहिए । शिक्षण तकनीकी, सूचना तकनीकी एवं प्रणाली विश्लेषण आदि के उपयोग से शिक्षण प्रक्रिया को रोचक एवं आकर्षक बनाया जा सकता है । शैक्षिक प्रबन्ध का यह दायित्व है कि वह तकनीकी प्रयोग एवं दक्षता उत्पन्न करने का प्रयास, करें ।

(7) **उद्देश्यों तथा नीतियों के निर्धारण में सहायक** - प्रत्येक संस्था के जीवन में उद्देश्य का बड़ा महत्व होता है । लक्ष्य विहीन संस्था पथभ्रष्ट राही के समान निरर्थक प्रयास करती है । प्रबन्ध द्वारा संस्था की प्रत्येक इकाई का लक्ष्य निर्धारित किया जाता है । उसी के द्वारा इकाई की मूलभूत नीतियों का निर्माण किया जाता है ।

(8) **शैक्षिक उत्पादन की गुणवत्ता में सहायक** - नियोजित विकास के द्वारा ही शैक्षिक उत्पादन की गुणवत्ता में वृद्धि की जा सकती है तथा यह दायित्व शैक्षिक प्रबन्ध पर आता है कि वह उपलब्ध परिस्थितियों में, सुनियोजित तरीके अपनाकर शैक्षिक उत्पादन की गुणवत्ता बढाने का प्रयास करे ।

(9) **व्यक्तियों की योग्यता के विकास में सहायक** - विद्यालय की अधिकांश गतिविधियाँ मानवीय । व्यवहार से संबंधित होती है । प्रबन्ध व्यक्तियों की कार्यकुशलता एवं कार्यक्षमता में वृद्धि करता है और सर्वांगीण विकास करता है । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यक्तियों के विकास में प्रबन्ध का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

(10) **विभिन्न शैक्षिक क्रियाओं के समन्वय में सहायक** - शिक्षा के क्षेत्र में अव्यवस्था एवं अपव्यय को रोकने हेतु शैक्षिक क्रियाओं का समन्वय आवश्यक है। शैक्षिक प्रबन्धक एवं प्रशासक सरकार के नियम एवं कानून की क्रियान्विति में भेदभाव नहीं करते और कर्मचारियों के सभी कार्यों का समन्वय इस प्रकार करते हैं कि शैक्षिक कार्यक्रमों में बाधा नहीं आए । हमें अपने शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न शक्तियों को एकत्रित कर उनमें प्रभावी समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए जिसके व्यक्तियों की कार्यक्षमता में वृद्धि की जा सके । चहुंमुखी व्यक्तित्व के विकास के लिए विभिन्न।' शैक्षिक क्रियाओं का समन्वय बहुत आवश्यक है ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि शैक्षिक जगत में प्रबन्ध का महत्वपूर्ण योगदान होता है । प्रभावी शैक्षिक प्रबन्ध व्यवस्था के बिना आज कोई भी राष्ट्र व समाज प्रतियोगिता वर्तमान युग में सफल नहीं हो सकता है । शैक्षिक प्रबन्ध शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती ?

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

प्र. 1 कोठारी आयोग का गठन कब हुआ ?

प्र. 2 शैक्षिक प्रबन्ध की आवश्यकता संक्षेप में बताइए ।

प्र. 3 शैक्षिक प्रबन्ध के महत्त्व के कोई चार बिन्दु बताइए ।

प्र. 4 शैक्षिक प्रबन्ध वैज्ञानिक तथा तकनीकी आविष्कार का उपयोग करने। में किस प्रकार सहायक है ?

1.7 शैक्षिक प्रबन्ध के कार्य (Function of Educational Management)

शिक्षाविदों ने शैक्षिक प्रबन्ध के निम्नलिखित कार्य प्रतिपादित किए हैं -

(1) **नियोजन (Planning)** - निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कार्य विधि के विषय में पूर्व में निश्चय करना अपेक्षित होता है । इसके अन्तर्गत पहले से यह निर्णय लेना होता है कि क्या, कहीं, कब, कैसे तथा किन व्यक्तियों से कार्य करवाना है? इन सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रबन्धक इस सम्बन्ध में कार्यक्रम (Programme) बनाता है । इसके अन्तर्गत पूर्व में मानसिक चिन्तन किया जाता है । तत्पश्चात् कार्यक्रम बनाया जाता है तदनुसार कार्य को व्यवस्थित तरीके से सम्पन्न किया जाता है । प्रबन्धन प्रक्रिया के क्रम में सर्वप्रथम नियोजन की ही आवश्यकता होती है । शैक्षिक प्रबन्धन की आधुनिक अवधारणा के अनुसार नियोजन एक सहभागिता की प्रक्रिया है जिसमें भिन्न-भिन्न स्तरों के कार्यकर्ता सम्मिलित होते हैं ।

(2) **संगठन (organization)** - प्रत्येक संस्था की स्थापना के पीछे कुछ उद्देश्य निर्धारित होते हैं । पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति एवं नियोजन के सफल क्रियान्वयन हेतु एक ऐसे संगठन की आवश्यकता होती है जिससे संस्था के कार्यकर्ता अपने-अपने कार्यों को आपस में मेलजोल की भावना के आधार पर कर सकें । संगठन प्रक्रिया में सर्वप्रथम संस्था में किए जाने वाले कार्यों को निर्धारित किया जाता है । तत्पश्चात् उन कार्यों को छोटे-छोटे भागों में वर्गीकृत किया जाता है जिससे इन कार्यों को संगम के विभिन्न व्यक्तियों में विभाजित (बाँटा) जा सके । इन कार्यों के बाँटे जाने के पश्चात् विभिन्न व्यक्तियों के अधिकार एवं उत्तरदायित्व निर्धारित किए जाते हैं । तत्पश्चात् प्रबन्धक द्वारा संस्था में ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जाता है कि व्यक्तियों में पारस्परिक सम्बन्धों का विकास हो सके और वे संस्था के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मिल-जुलकर कार्य किया जा सके ।

(3) **निर्देशन (Direction) -** निर्देशन से तात्पर्य यह है कि विभिन्न कार्यों में नियुक्त कार्यकर्ताओं/अधिकारियों को यह बताना है कि उन्हें क्या करना है? और कैसे करना है? तथा यह देस ना कि वे व्यक्ति अपना कार्य उसी के अनुसार कर रहे हैं अथवा नहीं । निर्देशन प्रबन्धन का वह कार्यकारी कार्य (Executive Function) है जो निरन्तर सम्पन्न किया जाता है । निर्देशन उच्चाधिकारी द्वारा । अपने अधीनस्थ अधिकारी या कर्मचारी का किया जाता है । निर्देशन में मुख्य रूप से तीन क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं-

(1) आदेश या निर्देश देना ।

(2) अधीनस्थ कर्मचारियों को काम के सही तरीके बताना तथा उन्हें प्रशिक्षण प्रदान करना।

(3) कार्य का मूल्यांकन करना अर्थात् यह देखना कि उनका काम योजना के अनुसार चल रहा है अथवा नहीं ।

(4) **नियुक्ति करना (Staffing).** - संस्था की प्रगति, उसमें कार्य करने वाले कर्मचारियों की योग्यता, अनुभव एवं उनके कौशल पर निर्भर करती है । योग्य, कुशल एवं अनुभवी कार्यकर्ता संस्था के उपलब्ध साधनों का अधिकतम एवं मितव्ययतापूर्ण उपयोग करके संस्था के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति को सुविधाजनक बनाते हैं । इस दृष्टिकोण से प्रबन्ध का कर्मचारियों की नियुक्ति करने का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । प्रबन्धन अपने निर्धारित उद्देश्यानुसार योग्य, कुशल एवं अनुभवी कार्यकर्ताओं का चयन करता है । कार्यकर्ताओं की नियुक्ति, सद्भावना और ईमानदारी से की जानी चाहिए ताकि सही कार्य के लिए सही व्यक्ति नियुक्त किया जा सके । कार्यकर्ताओं की नियुक्ति सम्बन्धी क्रियाओं के अन्तर्गत, कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, वेतन, मूल्यांकन, पदोन्नति तथा सेवामुक्ति आदि को सम्मिलित किया जाता है ।

(5) **समन्यय (Co-ordination).** - समन्वय प्रबन्ध का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है । समन्वय का अर्थ है किसी भी संस्थान अथवा उपक्रम के विभिन्न कार्यो के बीच एकता स्थापित करना तथा विभिन्न प्रयासों के बीच नियमित व्यवस्था बनाये रखना । यदि इन कर्मचारियों तथा अधिकारियों के समस्त कार्यों में समन्वय स्थापित नहीं किया जाए तो उस संस्थान का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा । अत: किसी भी कार्य में सफलता तभी मिल सकती है जब ये सभी मिल-जुलकर एक साथ समन्वित प्रयास करें । समन्वय के माध्यम से संस्था में कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं के हित तथा लक्ष्य संस्था के हितों एवं लक्ष्यों में एकरूप हो जाते हैं । एक उपक्रम में बहुत से व्यक्ति कार्य करते हैं | उसके कार्य क्षेत्र, योग्यताएँ, कार्य करने के तरीके अलग-अलग होते हैं लेकिन सबका लक्ष्य उपक्रम के उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है । इनकी प्राप्ति तभी हो सकती है जबकि वे सभी मिलकर एक? साथ प्रयत्न करें ।

(6) **नियंत्रण (Control).** - नियंत्रण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से यह पता लगाया जाता है कि निर्धारित योजना के अनुसार कार्य हो रहा है अथवा नहीं । निर्धारित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति की दशा में अपेक्षित प्रगति हो रही है अथवा नहीं । यदि निर्धारित उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के अनुसार कार्य की प्रगति नहीं हो रही है तो उसको सुधारने के लिए आवश्यक कार्यवाही की जाती है । जिन संस्थाओं में बड़ी संख्या में कर्मचारी कार्य करते हैं वहाँ पर प्रभावपूर्ण नियंत्रण की आवश्यकता होती है । नियंत्रण के अन्तर्गत कार्यकर्ताओं के उत्तरदायित्वों का मापदण्ड निर्धारित किया जाता है । इस मापदण्ड के अनुसार कार्य की प्रगति का मूल्यांकन किया जाता है और यदि निर्धारित मापदण्ड के अनुसार कार्य नहीं हो पाया है तो उसकी सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है ।

(7) **अभिप्रेरणा (Motivation).** - प्रबन्ध के अन्तर्गत अभिप्रेरणा एक? महत्त्वपूर्ण तत्त्व है । इसके माध्यम से कार्यकर्ताओं में कार्य करने के प्रति रुचि उत्पन्न की जाती है, ऐसा वातावरण तैयार किया जाता है जो कार्यकर्ताओं में स्वेच्छा से कार्य की भावना पैदा करे । इससे उनमें कार्य के प्रति निष्ठा बढती है और उत्पादन को बढ़ावा मिलता है । करने वाले तत्त्व हैं - उचित पारिश्रमिक, पदोन्नति एवं विकास के अवसर, रोजगार की सुरक्षा, व्यवहार, कार्य करने

की उपयुक्त दशाएँ, कार्य की सराहना, सम्मान, कार्यकर्ताओं को उचित सुविधाएँ उपलब्ध करवाना प्रेरणाएँ इत्यादि । अभिप्रेरणा से मानवीय सम्बन्ध भी । स्थापित होते हैं जो उस संस्थान की सफलता में सहायक हैं ।

(8) **एकीकरण (Integration)** - प्रत्येक संस्था के अपने उद्देश्य, नीतियाँ, कार्य करने के तरीके होते हैं । कार्यकर्ताओं को संस्था की इन नीतियों, उद्देश्यों तथा योजनाओं से परिचित करवाना,' कार्यकर्ताओं की समस्याओं एवं सुझावों पर विचार करना, स्वेच्छा से कार्य करने की भावना जागृत करना, कार्य करने के लिए सहयोगपूर्ण, मैत्रीपूर्ण तथा अच्छे वातावरण का निर्माण करना तथा कार्यकर्ताओं को स्वयं जै विकास के लिए प्रोत्साहन देना आदि कार्य एकीकरण के अन्तर्गत आते हैं।

(9) **सम्प्रेषण (Communication).** - सम्प्रेषण का अर्थ है - दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य तथ्यों, विचारों, अनुमानों या संवेगों के परस्पर आदान-प्रदान से है । प्रबन्धन को भी अपने संस्थान में अपने कार्यकर्ताओं तथा प्रबन्धन स्वयं के बीच अनेक विषयों पर आधारित मौखिक एवं लिखित सम्प्रेषण करना पडता है । प्रबन्धकीय कार्य की कुशलता कुशल सम्प्रेषण पर निर्भर करती है । सम्प्रेषण प्रबन्ध को क्रियात्मक करने का एक साधन है संचार के माध्यम से ही एक प्रबन्धक अपने कर्मचारियों को अपनी योजनाएँ समझाता तथा बताता है तथा उस सम्बन्ध में हुई समस्याओं का हल बताता है ।

(10) **निर्णय लेना (Decision Making). -** प्रबन्ध के कार्यों में निर्णय लेना भी एक? प्रमुख कार्य है । निर्णय एक बौद्धिक प्रक्रिया है जो सर्वोत्तम विकल्प के चयन से सम्बन्धित है । इसके अंतर्गत अनेक विकल्पों के मध्य से किसी एक सही विकल्प का चयन किया जाता है । प्रत्येक उपक्रम चाहे उसका आकार छोटा हो या बड़ा, सभी में प्रबन्ध को निर्णय लेने होते हैं । उपक्रम की सफलता काफी मात्रा में प्रबन्ध के निर्णयों पर निर्भर करती है । अत: प्रबन्ध को बडी सावधानी से सोच-विचार कर निर्णय लेना चाहिए ।

(11) **नवाचार (Innovation) -** प्रबंधक को प्रगतिशील दृष्टिकोण रखना चाहिए । नवाचार प्रबन्धन का वह महत्त्वपूर्ण कार्य है जो केवल नवीन एवं सुधरे हुए उत्पादों या नई तकनीक के प्रयोग तक सीमित नहीं है वरन् इसके अन्तर्गत नवीन कार्य पद्धतियाँ भी सम्मिलित हैं । अत: प्रबन्धक विकास के लिए अपने उपक्रम के अन्तर्गत नवीन तरीके से उत्पादन का प्रायोगिक प्रयास करता है जिससे कम लागत में अधिक मात्रात्मक एवं गुणात्मक वस्तु का उत्पादन हो सके ।

(12) **मूल्यांकन (Evaluation).** - प्रबन्ध प्रक्रिया में मूल्यांकन एक आवश्यक कार्य है । किसी भी उपक्रम के वस्तु की मात्रात्मक एवं गुणात्मक उत्पादन से संबंधित हुए उद्देश्य निर्धारित होते हैं। निश्चित समय सीमा के पश्चात् प्रबन्धक यह जानने का प्रयास करता है कि अमुक वस्तु का उत्पादन कितनी मात्रा में एवं कितनी गुणात्मकता के साथ हुआ । प्रबन्ध द्वारा निर्धारित किए गए उद्देश्यों की पूर्ति की मात्रा का आकलन करने के लिए कार्य की विधिवतता जाँचने के लिए, कार्य की दिशा एवं गति के निर्धारण के लिए मूल्यांकन आवश्यक है । यदि उद्देश्यों को पूर्णरूप से प्राप्त नहीं किया जा सका है तो उसके लिए जिम्मेदार कारकों की

जानकारी होने पर संगठन को आगे बढ़ाया जाना संभव हो पाता है । कार्य करने के ढंग, विधियों, नीतियों में परिवर्तन किए जाने पर उत्पन्न होने वाली स्थिति के लिए पुन: मूल्यांकन किया जाता है । इस प्रकार उत्तम परिणामों के लिए निरन्तर मूल्यांकन की आवश्यकता होती है।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self - Evaluation Question)

प्र.1 शैक्षिक प्रबन्ध के अंतर्गत नियोजन (प्लानिंग) क्या हे ?

प्र.2 शैक्षिक प्रबन्ध मे 'अभिप्रेरणा' के भूमिका बताइए |

प्र.3 शैक्षिक प्रबन्ध के किन्ही पाँच कार्यो का नामोल्लेख |

1.8 शैक्षिक प्रबन्ध के सिद्धान्त (Principles of Educational Management)

सिद्धान्तों का ज्ञान प्रबन्धकों एवं प्रशासकों को बदलती परिस्थितियों से मुकाबला करने के लिए एवं समस्याओं के समाधान में सहायक होता है । प्रसिद्ध प्रबन्ध शास्त्री 'फ्रेडरिक विन्सलो टेलर' ने प्रबन्धकीय प्रक्रिया पर विचार व्यक्त किए हैं कि ' 'प्रशासन का मुख्य कार्य दक्षता प्राप्त कर इस प्रकार से कार्य करना है जिससे अधिकाधिक उत्पादन हो । उनके अनुसार किसी भी संगठन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि प्रशासक अपने कार्मिकों से कार्य किरन प्रभावपूर्ण ढंग से करवाए कि थोड़े समय एवं अल्प व्यय में अधिक उत्पादन प्राप्त हो सके । " इसका तात्पर्य न्यूनतम साधनों के अधिकतम उपयोग से है । इसके अन्तर्गत न्यूनतम साधनों के अधिकतम उपयोग द्वारा अधिकतम उत्पादन का प्रयास किया जाता है । इस हेतु प्रबंधक को मात्र अनुभव से नहीं वरन् नवीन सिद्धान्तों से परिचित होना आवश्यक है ताकि वह परिस्थिति के अनुसार सिद्धान्तों का प्रयोग कर सके । एक? कुशल प्रबंधक को प्रशिक्षण की अनिवार्यत: आवश्यकता होती है । एक प्रबन्धक को निम्नलिखित सिद्धान्तों का ज्ञान होना आवश्यक है-

(1) कार्य का विभाजन (Division of Work) - इसे विशिष्टीकरण का सिद्धान्त (Principle Of Specialization) या श्रम विभाजन का सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है । इस सिद्धान्त का आधार योग्यता एवं दक्षता के अनुसार व्यक्ति को कार्य सौंपने से है । इस सिद्धान्त के अनुसार प्रबन्धक सर्वप्रथम यह पता लगाता है कि कौनसा व्यक्ति किस कार्य में योग्य एवं दक्ष है । तत्पश्चात् जो व्यक्ति जिस कार्य में योग्य एवं दक्ष होता है उस व्यक्ति को प्रबंधक वही कार्य आवंटित करता है । कार्य के विभाजन के आधार पर उपयुक्त कार्य के लिए उपयुक्त व्यक्ति की नियुक्ति करके अधिक गुणात्मक एवं मात्रात्मक कार्य कराया जा सकता है क्योंकि कार्य विभाजन के द्वारा ही कार्य में कुशलता एवं विशिष्टता आती है और कर्मचारी अपने कार्य में अधिक कार्यकुशल होते हैं ।

(2) आदेश की एकता (Unity of Command) - आदेश की एकता से तात्पर्य है किसी कार्य विशेष को करने के लिए किसी एक समय में एक ही अधिकारी द्वारा आदेश प्रदान किया

जाए । इस सिद्धान्त के अनुसार कार्यकर्ता जब एक ही अधिकारी के नेतृत्व में कार्य करते हैं तभी आदेश की एकता सफल हो पाती है । यह सभी संगठनों के लिए आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक कार्यकर्ता एक ही अधिकारी से आदेश प्राप्त करे । एक ही व्यक्ति को यदि एक ही समय में एक से अधिक अधिकारी आदेश देंगे तो वह अपने सभी अधिकारियों द्वारा प्रदत्त आदेशों की पालना नहीं कर पाएगा । ऐसी स्थिति में संगठन में हर तरफ भ्रान्ति की स्थिति उत्पन्न होगी । परिणामस्वरूप कभी-कभी कर्मचारियों में अशान्ति, असन्तोष एवं अनुशासनहीनता की भावना भी पैदा हो जाती है । अत: प्रबन्धन को चाहिए कि आदेश की एकता रखे ।

(3) अधिकार एवं उत्तरदायित्व (Authority and Responsibility) - अधिकार एवं उत्तरदायित्व एक ही किया के दो पहलू हैं । अधिकार एवं उत्तरदायित्व सहगामी हैं । इस सिद्धान्त के अनुसार प्रबन्धन द्वारा यदि किसी व्यक्ति को किसी प्रदत्त कार्य के परिणामों के लिए उत्तरदायी बनाया जाता है तो उसे यह अधिकार भी प्रदान करना चाहिए कि उस कार्य की सफलता के लिए जो भी कदम आवश्यक हों वह उठा सके । अधिकार उत्तरदायित्व के अनुरूप हो और उत्तरदायित्व अधिकार के अनुरूप हों । अधिकार एवं उत्तरदायित्व सौंपने से कार्यकर्ताओं की कार्यकुशलता में प्रभावोत्पादकता आती है ।

(4) समय का अध्ययन (Study of Time) - प्रबन्धक द्वारा किसी भी कार्य को कार्यकर्ताओं के मध्य आवंटित करने से पूर्व अपने आप में यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि अमुक कार्य को पूर्ण करने में न्यूनतम कितना समय लगेगा । इस समय सीमा का ज्ञान होने के पश्चात् ही उस कार्य को कार्यकर्ताओं के मध्य आवंटित करना चाहिए तथा कार्यकर्ताओं के लिए इस कार्य को पूर्ण करने के लिए समय सीमा निर्धारित कर लेनी चाहिए । साथ ही प्रबंधक को कार्य की प्रगति के विषय में समय-समय पर कार्यकर्ताओं से जानकारी प्राप्त करते रहना चाहिए।

(5) अनुशासन का सिद्धान्त (Principle of Discipline) - शैक्षिक '_प्रबन्ध में यह सिद्धान्त महत्वपूर्ण है । फेयोल महोदय ने इस विषय में बताया है कि - "अनुशासनहीनता हक अपराध है जो अकुशल नेतृत्व का परिणाम है ।" (Bad discipline is an evil which usually comes from bed leadership) वर्तमान समय में शिक्षा जगत् में अनुशासनहीनता दिखाई दे रही है । उसका मुख्यतम कारण संस्था प्रधानों का सही नेतृत्व नहीं होना है । शिक्षकों एवं विधार्थियों में नियम पालन एवं कर्त्तव्यपरायणता की भावना में उत्तरोत्तर कमी दिखाई दे रही है । उसके पीछे मुख्य कारण अनुशासनहीनता ही है और इस अनुशासनहीनता के पीछे मुख्य कारण कर्तव्यपरायणता एवं नियम पालन में कमी आना है । अत: शैक्षिक प्रबन्धक को चाहिए कि वह अपनी संस्था में नियम पालन एवं कर्त्तव्य परायणता के द्वारा अनुशासन बनाए रखे ।

(6) उद्देश्यों का सिद्धान्त (Principle of Objectives) - किसी भी संस्था की स्थापना के पीछे कुछ उद्देश्य निहित होते हैं । इस संस्था / संगठन की प्रत्येक क्रिया इन की पूर्ति हेतु की जानी चाहिए । संगठन की प्रत्येक इकाई को उपक्रम संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में योगदान प्रदान करना चाहिए । परन्तु संगठन को भी अपने उद्देश्यों में अपने आपको स्पष्ट होना चाहिए । प्रबन्धक को अपने कार्यकर्ताओं को इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए कार्य करने हेतु मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए जिससे सभी उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके ।

(7) नियोजन का सिद्धान्त (Principle of Planning) - कोई भी कार्य जितना योजनाबद्ध तरीके से किया जाता है वह कार्य उतना ही सफल एवं-श्रेष्ठ परिणाम देने वाला होता है । श्रेष्ठ नियोजन श्रेष्ठ प्रबन्ध की पूर्व आवश्यकता है । इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक कार्य पूर्व निर्धारित नियोजन के अनुसार होना चाहिए । नियोजन करते समय उपलब्धियों, उपलब्ध साधनों एवं भावी परिस्थिति का पूरा ध्यान रखना चाहिए । सत्र प्रारम्भ होने से पूर्व ही विद्यालय में शैक्षिक कार्य, वित्त कार्य स्टाफ की व्यवस्था आदि की योजना बना लेनी चाहिए ताकि सत्रारम्भ के प्रथम दिवस से ही नियमित रूप से कार्य प्रारम्भ किया जा सके ।

(8) सामुदायिक हितों के लिए व्यक्तिगत हितों का समर्पण (Subordination of Individual Interest of Group Interest) - यद्यपि कुशल प्रबन्धकों को व्यक्तियों हितों एवं सामुदायिक हितों के मध्य समन्वय करते हुए प्रबन्धन करना चाहिए । परन्तु यदि कहीं ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए जिसमें 'किंकर्त्तव्यमूढ वाली स्थिति बनती हो वहाँ व्यक्तिगत हितों की अपेक्षा, हितों को प्राथमिकता देना चाहिए । यह सामाजिकता एवं त्याग की भावना से ही संभव हो सकता ।

(9) निर्देशन की एकता (Unity of Disoction) - प्रबन्धन के किसी एक घटक के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु क्रियाओं के एक समूह का संचालन एक ही व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए । इसके लिए कार्य योजना भी एक ही होनी चाहिए । आदेश की एकता कार्यकर्ताओं के निर्देशन से संबधित होती है । जबकि निर्देशन की एकता सम्पूर्ण संस्था के दिशा बोध से संबंधित होती है । इस सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण दिशा बोध एक ही व्यक्ति के हाथ में देना चाहिए जिससे निर्धारित उद्देश्यों की सही! ढंग से प्राप्ति हो सके ।

(10) समानता के व्यवहार का सिद्धान्त (Principle of Equity of Behaviour) - इस सिद्धान्त का तात्पर्य है प्रबन्धक को अपने अधीन कार्य करने वाले सभी कर्मचारियों के साथ समानता एवं निष्पक्ष भाव से व्यवहार करना चाहिए जिससे कार्यकर्ताओं के मध्य आपस में सहयोग एवं सद्भभवना बनी रहे । साथ ही कार्यकर्ताओं की प्रबन्धक के प्रति भी सहयोग एवं सद्भभवना बनी रहे । इसमे कार्यकर्ताओं का मनोबल बढ़ता है जिसके परिणामस्वरूप वे स्वेच्छा से अधिकाधिक कार्य करने के लिए प्रेरित हो उठते हैं ।

(11) पहल का सिद्धान्त (Principle of Initiative) - पहल का सिद्धांत से तात्पर्य है कार्यकर्ताओं तथा अधिकारियों को किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने प्रस्तावित करने और उसको क्रियान्वित करने की स्वतंत्रता देने से है । कार्यकर्ताओं को कार्य करने एवं क्रियान्वित करने ?? स्वतंत्रता देने से उनमें आत्मविश्वास, उत्साह तथा कार्यक्षमता में वृद्धि होती है । अत: को अपने कार्यकर्ताओं एवं अधिकारियों के लिए स्वतंत्रतापूर्वक कार्य निष्पादन करने का वातावरण प्रदान करना चाहिए ।

(12) पदाधिकारी सम्पर्क का सिद्धान्त (Principle of Sealer Chain) - पदाधिकारी सम्पर्क शृंखला से तात्पर्य संगठन के उच्चतम अधिकारियों से लेकर निम्नतम स्तर के अधिकारियों के मध्य संचार शृंखला से है । ऐयोल महोदय का इस सन्दर्भ में कहना है कि सभी

पदाधिकारियों के मध्य सीधा सम्पर्क हो ताकि इससे कार्य के दुहराव को रोका जा सकता है और कार्य के पूरा होने वाले विलम्ब को भी समाप्त किया जा सकता है । प्राय: एक फाईल नीचे के स्तर से उच्च अधिकारी तक पहुँचने तथा फिर उसी स्तर तक उस फाईल के आने में काफी समय व्यतीत हो जाता है । यदि संबधित अधिकारी सीधा उच्च अधिकारी से मिले तो इस कार्य को शीघ्र पूरा किया जा सकता है ।

(13) कर्मचारियों में स्थायित्व का होना (Stability of Tenure of Personnel) - किसी भी संस्थान में अस्थायी कर्मचारी ज्यादा लाभप्रद सिद्ध नहीं हो पाते हैं । शैक्षिक शोध के ऑकड़े बताते हैं कि स्थायी कर्मचारियों की संस्था के प्रति प्रतिबद्धता अस्थायी कर्मचारियों की तुलना में अधिक पाई जाती है । अस्थायी कर्मचारी स्थायित्व के बिना नौकरी समाप्त होने की शंका से भयभीत रहते हैं । इस भय के कारण वे संस्थान के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ होकर कार्य नहीं कर पाते हैं । अत: प्रबंधक को अपने संस्थान में योग्य एवं कुशल कार्यकर्ताओं को यथाशीघ्र स्थायित्व प्रदान कर देना चाहिए जिससे कार्यकर्ता मन लगाकर समर्पित भाव से कार्य कर सकेंगे जिसके फलस्वरूप संस्थान को फायदा होगा ।

(14) केन्द्रीकरण का सिद्धान्त (Principle of Centralization) - इस सिद्धान्त से तात्पर्य यह है कि प्रबंधक को प्रबन्ध से संबंधित कुछ अधिकारों एवं शक्तियों को अपने पास सुरक्षित रखना चाहिए । प्रबन्ध कार्यों (नियोजन, संगठन, निर्देशन, समन्वय और नियंत्रण) के अधिकार एवं शक्तियाँ संस्था प्रधान के हाथ में ही होने चाहिए । किन्तु यह उसी सीमा तक होनी चाहिए जिससे संस्था के विधार्थियों को वह अधिनायकवादी महसूस नहीं हो ।

(15) समन्वयन का सिद्धान्त (Principle of co-ordination) - संस्था के विकास में सभी कार्यकर्ताओं एवं श्रमिकों विधार्थियों में समन्वय (Co-ordination) बहुत आवश्यक है । इस संदर्भ में एच. फेयोल का कथन है कि, ' 'किसी संस्था के कार्य-संचालन को सुविधाजनक एवं सफल बनाने के लिए उसकी समस्त क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करना ही समन्वय है । 'संस्था प्रधान द्वारा शिक्षकों एवं विधार्थियों की समस्त गतिविधियों में समन्वय अर्थात् तालमेल एवं एकता बनाए रखना वांछनीय है जिससे शैक्षिक लक्ष्यों को स्पष्टता से प्राप्त किया जा सके।

(16) कर्मचारियों के पारिश्रमिक का सिद्धान्त (Principle of Remuneration of Personnel) - इस सिद्धान्त के अनुसार कार्यकर्ताओं को वेतन लाभांश के समानुपात में दिया जाना चाहिए । अर्थात् संगठन जितना अधिक लाभार्जन करे उसी अनुरूप कार्यकर्ताओं को वेतन मिलना चाहिए । इस प्रकार दिया जाने वाला पारिश्रमिक एवं भुगतान न्याययुक्त एवं संतोषजनक होना चाहिए । पारिश्रमिक नियोक्ता तथा कार्यकर्ताओं दोनों की दृष्टि से उचित होना चाहिए अन्यथा संस्था में तनाव की स्थिति उत्पन्न होने की संभावना रहती है । अत: प्रबन्धक को इस सिद्धान्त का पूरा पालन करना चाहिए ताकि कार्यकर्ता अपने कार्य को पूर्ण रुचि, क्षमता एवं लगन से कर सके । इस सिद्धान्त के पालन से कार्यकर्ताओं में कार्य करने के प्रति उत्साह बना रहता है ।

(17) व्यवस्था का सिद्धान्त (Principle of arrangement) - इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु के लिए अपना निश्चित स्थान होना चाहिए । कार्य को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए यह अति आवश्यक है । प्रत्येक संस्थान में उपयोग में आने वाली

वस्तुओं का स्थान निश्चित होता है यही नियम कार्यकर्ताओं पर भी लागू होता है । किसी भी कार्यकर्ता को उसके निश्चित स्थान होने के कारण पहचाना जाता है । इस सिद्धान्त के अनुसार न्यूनतम समय एवं वित्त व्यय के फलस्वरूप अधिक कार्य कराया जा सकता है ।

(18) सहयोग का सिद्धान्त (Principle of co-operation) - संगठन के सभी कार्यकर्ताओं को मिल-जुलकर टीम भावना से कार्य करना चाहिए । पारस्परिक सहयोग ही सिद्धि का मूल मंत्र है । किसी भी संगठन के कार्यकर्ताओं को संस्थान अथवा सर्वहित के लिए, अपने मतभेदों को भुलाकर सहयोग की भावना से मिल जुलकर कार्य करना चाहिए तभी वह संस्थान अपेक्षित प्रगति कर सकेगा । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि किसी भी संगठन / संस्था को करने हेतु प्रबन्धक एवं कार्यकर्ताओं को इन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप में अपनाना आवश्यक है । यद्यपि शैक्षिक प्रबन्ध के उपर्युक्त सिद्धान्तों के अतिरिक्त और भी सिद्धान्त हैं । शिक्षा का मुख्य उद्देश्न देश के लिए सुयोग्य नागरिक तैयार करना है अत: शैक्षिक प्रबन्धों के सिद्धान्त अन्य प्रबन्धों की तरह ही। लेकिन उनकी क्रियान्विति शैक्षिक स्थितियों / वातावरण के अनुसार सूझबूझ एवं दूरदर्शिता पूर्ण की जानी चाहिए ।

शैक्षिक प्रबन्ध का दायित्व है कि वह आदर्श नेतृत्व युक्त शैक्षिक वातावरण करे । साथ ही कार्यकर्ताओं में निष्ठापूर्वक एवं ईमानदारी की भावना से कार्य करने की आदतों का विकास करे, जिससे संगठन अपने निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त कर सके ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self-Evaluation Question)

प्र.1 शैक्षिक प्रबन्धन के कीन्ही तीन सिद्धांतों का नामोल्लेख ।

प्र.2 प्रबन्धन को कार्य विभाजन के समय किन-किन बाटो का ध्यान रखना चाहिए ?

प्र.3 शैक्षिक प्रबन्धन मे उद्देश्यों का सिद्धान्त" क्या हे ? स्पष्ट कीजिये ।

1.9 सारांश (Summary)

इस इकाई के अन्तर्गत प्रबन्ध एवं शैक्षिक प्रबन्ध का सम्प्रत्यय स्पष्ट किया गया है । शैक्षिक प्रबन्ध एक उद्देश्यों प्रक्रिया है । इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु मानव द्वारा योजना निर्मित की जाती है एवं इस योजना को व्यवस्थित रूप से सम्पादित करने का प्रयास किया जाता है । शैक्षिक प्रबंध में नियोजित एवं क्रमबद्ध रूप में कार्य किया जाता है । शैक्षिक प्रबंध वधार्थियों को शैक्षिक वातावरण उपलब्ध करवाता है । भौतिक एवं मानवीय संसाधनों में समन्वय, कार्यकर्ताओं में प्रेम एवं सहभावना उत्पन्न करना, समय का सदुपयोग करना, शिक्षकों को व्यावसायिक वृद्धि हेतु अवसर उपलब्ध करवाना, " का अधिकतम उपयोग करना, छात्रों के व्यक्तिगत विकास पर ध्यान देना, कार्यकर्ताओं को योग्यता कार्य प्रदान करना, छात्रों में सुनागरिकता के गुणों का विकास करना इत्यादि शैक्षिक प्रबन्ध के उद्देश्य । । इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु शैक्षिक प्रबन्ध की विशेष आवश्यकता अनुभव की जाती है । मानवीय संसाधनों के विकास करने, शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति करने, शैक्षिक समस्याओं के समाधान करने, समन्वय करने, उद्देश्यों तथा

नीति निर्धारण में, वैज्ञानिक एवं तकनीकी आविष्कार करने में शैक्षिक प्रबन्ध का विशेष महत्व अनुभव होता है ।

शैक्षिक प्रबन्ध के मुख्य कार्य नियोजन, संगठन, निर्देशन, ' समन्वय, नियंत्रण, अभिप्रेरणा, एकीकरण, सम्प्रेषण, नवाचार, मूल्यांकन इत्यादि है । शैक्षिक प्रबन्धन के ' के अंतर्गत कार्य विभाजन, आदेश की एकता, अधिकार एवं उत्तरदायित्व, समय का अध्ययन, का सिद्धान्त उद्देश्यों का सिद्धान्त, नियोजन का सिद्धान्त, निर्देशन की एकता, समानता का व्यवहार पहल, पदाधिकारी की श्रृंखला, केन्द्रीयकरण का सिद्धान्त, समन्वयन का सिद्धान्त, कर्मचारियों के पारिश्रमिक , का सिद्धान्त, व्यवस्था एवं सहयोग का सिद्धान्त प्रमुख हैं ।

इस प्रकार इस इकाई में प्रबन्ध एवं शैक्षिक प्रबन्ध का सम्प्रत्यय, प्रबन्ध के उद्देश्य, आवश्यकता, महत्व, कार्य एवं सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन किया गया है ।

अभ्यास प्रश्न (Exercise)

प्र.1 शैक्षिक प्रबन्धन के अर्थ, परिभाषाओं, उद्देश्य एवं आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए एक समालोचनात्मक निबन्ध लिखिए ।

प्र.2 शैक्षिक प्रबन्धन के कार्य एवं सिद्धान्तों को उदाहरण सहित स्पष्ट करिए ।

1.10 संदर्भ (References)

1. अग्रवाल, जे. सी. (2006), स्कूल प्रबंध, सूचना तथा सम्प्रेषण तकनीकी, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।
2. Ediger, Maslow & Rao, D, Bnaskara (2003). Improving School Administration, Discovery Publishing House, New Delhi.
3. Goel, S.L. (2001), Management Techniques : Principal and Practices. Deep & Deep Publications Pvt.Ltd., New Delhi.
4. John D.Millet (1954), Management in Public Service; McGraw Hill Company, New York.
5. 5.ओड, लक्ष्मी लाल (2005). शैक्षिक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
6. राजपूत, जे. एस. एवं देवल, ओंकार सिंह (2001) विद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में अनुभव. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली
7. शर्मा, देवदत्त (1991) शैक्षिक प्रबंध के मूल तत्व. विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
8. सिडाना अशोक एवं शर्मा, अंजलि (2005). शैक्षिक प्रबंधन एवं विद्यालय संगठन. शिक्षा प्रकाशन, जयपुर
9. सिंह, डी. पी. सभा, वाजपेयी एवं अन्य (2001) विद्यालय प्रबन्ध एवं शिक्षा कीं समस्याएँ रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर

10. सिंह, एच. पी. एवं रावत, आर. के. एवं अन्य (2007). शैक्षिक तकनीकी का, आवश्यकताएं प्रबन्ध क्रियात्मक अनुसंधान एवं स्वास्थ्य विभाग. राधा प्रकाशन मन्दिर, आगरा
11. S.K. Bhatia & Nirmal Singh (2000). Principles and Techniques of Personal Management/Human Resources Management. Deep & Publications, New Delhi.
12. सुखिया, एस. पी. (2005), विद्यालय प्रशासन एवं संगठन. विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
13. तरुण, हरिवंश (2005), विद्यालय प्रबंध एवं स्वास्थ्य शिक्षा. प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
14. त्यागी, ओ एस. एवं सिंह बिजेन्द्र (2006). शैक्षिक प्रबंध एवं विद्यालय संगठन. अरिहन्त शिक्षा प्रकाशन, जयपुर
15. वर्मा, जे. पी. एवं वर्मा, मंजू (2002), विद्यालय प्रबंधन. आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
16. शर्मा, जे. पी. (2002), शैक्षिक प्रबंधन. राजस्थान हिन्दी नथ अकादमी, जयपुर
17. वर्मा, जी.एस (2005), शैक्षिक प्रबंध. लायल बुक डिपो, मेरठ
18. Venktaish, S (2001) Management Education. Anmol Publication Pvt.Ltd,New Delhi.

इकाई 02

शैक्षिक प्रबन्धन के सिद्धान्त

(Theories Of Educational Management)

इकाई की संरचना

2.0 इकाई के उद्देश्य **(Objectives)**

2.1 प्रस्तावना **(Introduction)**

2.2 प्रबन्ध का अर्थ **(Meaning of Management)**

2.3 शैक्षिक प्रबन्ध का अर्थ **(Meaning of Educational Management)**

2.4 शैक्षिक प्रबन्ध की विशेषताएँ **(Characteristics of Educational Management)**

2.5 शैक्षिक प्रबन्ध के मूल तत्त्व **(Basic Elements of Educational Management)**

2.6 शैक्षिक प्रबन्धन सम्बन्धित प्रमुख सिद्धान्त **(Main Theories Related to Educational Management)**

2.7 मानव प्रकृति की धारणाओं पर आधारित शैक्षिक प्रबन्धन के सिद्धान्त**(Theories of Educational Management based on Human Nature)**

2.8 शिक्षण संस्थान और सामाजिक प्रणाली पर आधारित शिक्षा प्रबन्ध **(Theories of Educational Management based on Education Institutions and Social System)**

2.9 शिक्षा प्रबन्धन में भूमिका सिद्धान्त **(Role conflict Theory in Educational Management)**

2.10 गेटजल का संस्थागत प्रबन्धन प्रतिमान **(Gatzel's Institutional Management Model)**

2.11 शैक्षिक प्रबन्धन हेतु ग्रिफिथ्स का निर्णयवादी सिद्धान्त **(Grifiths Decision Making Theory for Educational Management)**

2.12 शैक्षिक प्रबन्धन हेतु निर्णय प्रक्रिया सिद्धान्त **(Decision Process Theory for Educational Management)**

2.13 संगठनात्मक दृष्टिकोण पर आधारित शैक्षिक प्रबन्धन के सिद्धान्त **(Theories of Educational Management based on Organizational consideration)**

2.14 सारांश **(Summary)**

2.15 संदर्भ सूची **(References)**

2.0 इकाई के उद्देश्य (Objective of the Unit)

इस इकाई के सम्प्राप्ति पर आप -

1. प्रबन्ध का अर्थ समझ सकेंगे ।
2. शैक्षिक प्रबन्ध में प्रबन्ध के अर्थ को सम्मिलित कर सकेंगे ।
3. शैक्षिक प्रबन्ध की विशेषताओं को उल्लेखित कर सकेंगे ।
4. शैक्षिक प्रबन्ध के मूलभूत तत्त्वों का चयन कर सकेंगे ।
5. शैक्षिक प्रबन्ध के आधारभूत तत्त्वों पर आधारित सिद्धान्तों को समझ ' ।
6. शिक्षण संस्थान में सामाजिक प्रणाली के समन्वय हेतु प्रबन्धन समझ सकेंगे ।
7. शिक्षण संस्थान में सामाजिक प्रणाली के समन्वय हेतु प्रबन्धन समझ सकेंगे ।
8. शैक्षिक प्रबन्धन हेतु भूमिका संघर्ष सिद्धान्त के माध्यम से भूमिका के साथ वातावरण के समन्वय को समझ सकेंगे ।
9. उत्तम शैक्षिक प्रबन्धन हेतु निर्णय प्रक्रिया को समझते हुए ग्रिफिथ्स निर्णयवादी सिद्धान्त का उपयोग कर सकेंगे ।
10. उत्तम शैक्षिक प्रबन्धन हेतु विभिन्न निर्णय प्रक्रिया, प्रतिमानों को समझ सकेंगे ।
11. संगठनात्मक दृष्टिकोण पर आधारित विभिन्न शैक्षिक प्रबन्धन के सिद्धान्तों को समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

आज ज्ञान और विज्ञान की निरन्तर अभिवृद्धि ने विद्यालयों के स्वरूप और सामाजिक अपेक्षाओं को बहुत बढा दिया है । विधार्थी संस्था में अभिवृद्धि, ज्ञान और ज्ञान के हस्तानान्तरण की तकनीकों के विस्तार ने शिक्षा के क्षेत्र में प्रबन्धन के महत्व को बढ़ा दिया है ।

यूनेस्को द्वारा प्रकाशित डेलर शिक्षा आयोग (1996) ने मात्र ज्ञान देना ही विद्यालय या विश्व विद्यालयों का काम नहीं माना है वरन् रिपोर्ट के अनुसार शिक्षा को चार आधारों के विकास को करना माना है । ये आधार हैं - (1) ज्ञान को सीखना (2) कार्य को सीखना (3) जीवन जीने को सीखना तथा (4) स्वयं को जानना ।

अत: आज के युग में शिक्षा प्रबन्धन का कार्य मात्र ज्ञान या सूचनाओं का प्रबन्ध मात्र नहीं है वरन् उसे भावी उपयोगी नागरिक निर्माण के लिए तैयार करना है । शिक्षा प्रबन्ध एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा अन्य लोगों के साथ मेल जोल का वातावरण निर्मित करते हुए शिक्षण संस्थान में निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विभिन्न शैक्षिक एवं सह-शैक्षिक कार्यक्रमों का संगठन एवं संचालन होता है क्योंकि प्रबन्धक अन्य शिक्षकों से कार्य निष्पादित करवाता है । शिक्षा प्रबन्धक शिक्षाकर्मियों तथा भौतिक साधनों को क्रियाशील संगठन की इकाइयों में लगाता है । सारांश रूप में शिक्षा प्रबन्धक योजना, नीतियों तथा उद्देश्यों का निर्धारण एवं सम्पूर्ति हेतु मानव, धन तथा सामग्री की व्यवस्था का प्रयत्न करता हो अत: शिक्षा प्रबन्ध को समझने से पूर्व हमें प्रबन्ध की वास्तविक अवधारणा को समझना होगा और उसकी विशेषताओं को जानना होगा ।

2.2 प्रबन्ध/व्यवस्था का अर्थ (Meaning of management)

मानव आदि काल से जीवन को अच्छा बनाने के लिये संघर्ष करता आया है, उसने अपनी कठिनाइयों को हल करने के लिये साधनों और स्रोतों का अधिकतम प्रयोग करने का प्रयास किया है । साधनों तथा स्रोतों को समुचित रूप में प्रयोग करने को 'व्यवस्था' कहते हैं । परम्परागत विचारधारा के अनुसार साधनों एवं स्रोतों को निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये प्रयोग करने के स्वरूप को 'व्यवस्था' कहते हैं । व्यवस्था के अन्तर्गत प्रमुख तीन युक्तियों का प्रयोग किया जाता है-

(1) प्रयासों तथा स्रोतों. में समन्वय स्थापित किया जाता है ।

(2) कार्य एवं क्रियाओं का विभाजन किया जाता है ।

(3) अधिकार एवं उत्तरदायित्व को उन्नत क्रम **(Hierarchy)** में निर्धारित किया जाता है ।

स्काट ने भी 'व्यवस्था' की व्याख्या की है । उनके अनुसार व्यवस्था का अंतिम उद्देश्य 'विवाद को कम करना' (**To minimize the Conflict)** है । व्यवस्था के द्वारा उस वस्तु तथा व्यक्ति के महत्त्व को कम किया जाता है जिससे नियोजन की सफलता में बाधा होती है । इस प्रकार व्यवस्था के द्वारा अनिश्चितता को कम करके निश्चितता तथा स्थायित्व में वृद्धि की जा सकती है । व्यवस्था के आधार पर वास्तविक उपलब्धियों के सम्बन्ध में पूर्व कथन दिया जाता है । उदाहरण के लिए पाठ्य-पुस्तकों, पाठ्य-योजनाओं तथा अभिक्रमित-अनुदेशन की व्यवस्था की जाती है जिससे सीखने के विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है, परन्तु इसके द्वारा पाठ्य-वस्तु के आन्तरिक स्वरूप तथा छात्रों के सीखने के व्यवहार स्वरूपों के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी होती है । शैक्षिक तकनीकी में इन्हीं स्वरूपों को समझने पर विशेष बल दिया जाता है ।

व्यवस्था के प्रत्यय में स्थायित्व, पूर्व-कथन तथा स्वरूपों को अधिक महत्व देने से उद्योग तथा प्रबन्ध अधिक प्रभावित हुए हैं । यह विचारधारा 'शैक्षिक तकनीकी' के अर्थ के लिये भी अधिक उपयोगी तथा सार्थक है । शैक्षिक उपलब्धियों के सम्बन्ध में पूर्व-कथन किया जाता है और सीखने स्वरूपों के लिये साधनों एवं युक्तियों को निर्धारित किया जाता है । इस प्रकार शैक्षिक- शिक्षा-व्यवस्था में स्थायित्व लाती है ।

8.2.1 प्रबन्ध की परिभाषाएँ (Definitions of Leadership)

शैक्षिक प्रबन्धन में प्रबन्ध की विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने शब्दों में परिभाषाएँ दी हैं ।

1. **जी. ई. मिंलवर्ड** के अनुसार, "प्रबन्ध प्रक्रिया और एजेन्सी है जिसके माध्यम से नीतियों का क्रियान्वयन, नियोजन और पर्यवेक्षण किया जाता है ।" इस प्रकार मिलवर्ड प्रबन्ध ' एक प्रक्रिया एवं एजेन्सी मानते हैं जिसके द्वारा नीतियों के क्रियान्वयन की योजना तैयार की जाती हे तथा समय-समय पर उसका पर्यवेक्षण किया जाता है ।

"Management is the process and the agency through which the execution of policy is planned and supervised.

2. **ई. एफ. एल. बेच** के अनुसार, "प्रबन्ध एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत किसी उपक्रम के निर्धारित उद्देश्य अथवा कार्य को पूरा करने हेतु क्रियाओं का प्रभावपूर्ण आयोजन एवं नियमन करने का उत्तरदायित्व सन्निहित है ।"

   "Management is a social process entailing social responsibility of effective planning and regulation of the operations of an enterprise, in fulfillment of a given purpose or task"

3. **जी. ई. मेकफारलैण्ड** के अनुसार, "प्रबन्ध वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रबन्धक उद्देश्यपूर्ण संगठनों का व्यवस्थित, सन्तुलित एवं सहकारितापूर्ण मानवीय प्रयासों के द्वारा सृजन करते हैं, निर्देशन करते हैं, बनाए रखते हैं तथा संचालन करते हैं ।"

   "Management is that process by which managers create, direct, maintain and operate purposive organizations through systematic, coordinated, cooperative human effort."

4. **विलसन** भी अन्य विद्वानों की भांति प्रबन्ध का आशय एक प्रक्रिया से लगाते हैं, जो निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मानवीय शक्तियों के प्रयोग एवं निर्देशन से प्रतिबन्ध रखती है ।"

5. **जॉर्ज आर. टैरी** ने प्रबन्ध को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "प्रबन्ध एक विशिष्ट प्रक्रिया है, जिसमें नियोजन, संगठन, उत्प्रेरण एवं नियंत्रण सम्मिलित है । इनमें से प्रत्येक में कला एवं विज्ञान दोनों का प्रयोग करते हुए पूर्व निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अनुवर्तन किया जाता है ।

   "Management is a distinct process consisting of planning, organizing, actuating and controlling, performed to determine and accomplish the objectives by the use of art and science both, "

2.3 शिक्षा प्रबन्ध का अर्थ (Meaning of Educational Management)

शैक्षिक प्रबन्धन दो शब्दों से मिलकर बना है - शिक्षा तथा प्रबन्ध । अत: शैक्षिक प्रबन्धन का अर्थ हुआ शिक्षा की प्रक्रिया की व्यवस्था करना । यह एक विशेष क्रिया है जिसमें विद्यालय के कर्मियों तथा विद्यालयी संस्थाओं के संचालन के लिए शैक्षिक प्रबन्ध का होना आवश्यक है । शैक्षिक प्रबन्ध शिक्षा के क्षेत्र में वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए की जाने वाली प्रक्रिया है, जिसका सम्बन्ध शिक्षा संस्थाओं से है जिनमें मानव (शिक्षक-छात्र), मशीन (विद्यालयी साधन, उपकरण) तथा माल (शैक्षिक प्रक्रिया) नियोजन तथा संगठन (प्रबन्धक, शाला प्रधान, अभिभावक) इन सबको गतिशील बनाए रखने का कार्य शैक्षिक प्रबन्ध करता ।

2.4 शैक्षिक प्रबन्ध की विशेषताएँ (Characteristics of Educational Management)

शिक्षा एवं प्रबन्धन की विभिन्न परिभाषाओं का अवलोकन एवं विश्लेषण करने से शैक्षिक प्रबन्धन की निम्नलिखित विशेषताएँ प्रमुख रूप से प्रकट होती हैं-

1. यह एक क्रिया है, एक व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह नहीं है ।
2. यह एक सामूहिक प्रयास है ।
3. यह एक विशुद्ध मानवीय क्रिया है ।
4. शैक्षिक प्रबन्धन संगठन के सभी स्तरों पर आवश्यक है ।
5. यह एक अधिशाषी नेतृत्वकारी (Executive Leadership) कार्य है ।
6. यह एक सामाजिक प्रक्रिया है ।
7. शैक्षिक प्रबन्ध मानव जीवन पर प्रभाव डालने वाला महत्त्वपूर्ण साधन है ।
8. शैक्षिक प्रबन्ध किसी पूर्व निर्धारित उद्देश्य के लिए किया जाता है ।

2.5 शैक्षिक प्रबन्ध के मूल तत्व (Basic Elements of Educational Management)

शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े हुए प्रबन्धकों को वही कार्य करने होते हैं जो अन्य व्यावसायिक संगठनों को करने होते हैं क्योंकि इसमें भी मानवीय सम्बन्ध और संचार आदि का उल्लेख भी आवश्यक है । इस हेतु निम्नलिखित कारक प्रमुख निभा सकते हैं-

1. निर्णय लेना (Decision Making)
2. समस्या समाधान (Problem Solving)
3. मानवीय सम्बन्ध (Human Relation)
4. संचार (Communication)

शैक्षिक प्रबन्ध के विभिन्न मूलभूत तत्त्वों को अलग-अलग सिद्धान्तों के अन्तर्गत व्यापक रूप से समझाया गया है ।

2.5.1. शिक्षा प्रबंधन का त्रिकोणीय सिद्धान्त -

इस विचार का विकास अमेरिका में हुआ है । इस विचार के अनुसार शिक्षा-प्रशासन का विश्लेषण कार्य-व्यक्ति तथा समाज की पृष्ठभूमि में होना चाहिए । व्यक्ति (प्रबंधक) के कार्यों का विश्लेषण उसकी क्षमता, व्यवहार तथा परिणाम के रूप में किया जाना चाहिए । यह सिद्धान्त शिक्षा प्रबंध के विश्लेषण की दृष्टि से उपयोगी है ।

शैक्षिक प्रबंधन एवं नेतृत्व - आज विद्यालय प्रबन्ध से लेकर जिला शिक्षा प्रबंध, राज्य शिक्षा प्रबंध, राष्ट्रीय शिक्षा प्रबंध के सफल संचालन के लिए कुशल नेतृत्व की आवश्यकता सदैव बनी रहती है जिसे इस सिद्धान्त के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है ।

2.5.2 शिक्षा प्रबंध का नेतृत्व दक्षता सिद्धान्त -

शैक्षिक प्रबंध के क्षेत्र में नेतृत्व पर बहुत कम काम हुआ है । सर्वप्रथम संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के जार्ज पी वोडी कॉलेज नशविले (Nashville) ने दक्षिणी राज्यों के सम्मिलित कार्यक्रम में एक नवीन संकल्पना 'दक्षता संकल्पना (Competency) के रूप में इसका विकास किया । इसके अनुसार शिक्षा-प्रबंधन में दक्षता तभी आती है जब प्रबंधक किसी प्रबंधकीय कार्य को पूर्णत: वांछित ढंग से पूरा करने का व्यवहार प्रदर्शित करता है । अत: इस सिद्धान्त में कार्य मूल्यों पर बल दिया गया, अर्थात् कार्य किस प्रकार श्रेष्ठ ढंग से किया जा सकता है ।

इस संकल्पना में तीन महत्त्वपूर्ण कारक आते हैं-

1. कार्य
2. कार्य करने का ढंग, उपकरण आदि
3. सिद्धान्त

निम्नलिखित रेखाचित्र इस सिद्धान्त को स्पष्ट करने में सहायक है -

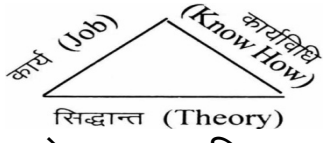

नेतृत्व दक्षता प्रतिमान

1. **कार्य (Job) -** शिक्षा प्रबंध / प्रशासन के कार्य को अनेक क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है । उदाहरणार्थ ओ.बी ग्राफ एवं का. कालिवन एम. स्ट्रीट ने शिक्षा प्रशासक के कार्य को 8 अधोलिखित क्षेत्रों में विभक्त किया है -
   1. जना निर्माण करना ।
   2. वित्तीय व्यवस्था करना ।
   3. विद्यालय प्रणाली का संचालन करना ।
   4. उद्देश्यक निश्चित करना एवं तदनुसार प्रशासन करना ।
   5. विद्यालय के स्टाफ का चयन, कार्य विभाजन एवं उनके विकास का करना ।
   6. पाठ्यक्रम एवं अनुदेशीय कार्यक्रमों का सफलतापूर्वक मार्गदर्शन करना ।
   7. विधार्थियों की समस्याओं, प्रवेश, वर्गीकरण, निर्देशन, विकास आदि का करना एवं
   8. विद्यालय भवन एवं उपकरणों का पर्यवेक्षण करना ।
2. **कार्य करने का-विधि** - इसके अन्तर्गत प्रबन्धक को समूह के संदर्भ में बातें जाननी चाहिए-
   1. काम करने का कौशल
   2. काम के प्रति अभिवृति
   3. कार्य सम्बन्धी ज्ञान एवं
   4. अवबोध
3. **सिद्धान्त** - केम्पबेल तथा ग्रेग के अनुसार प्रबंधकीय प्रक्रिया भी प्रभावी शैक्षिक ' में महत्वपूर्ण हो सकती है । इन्होंने प्रबंधन को सात क्षेत्रों में विभक्त किया है-
   1. अत: शिक्षा निर्णय लेना

2. नियोजन करना
3. व्यवस्था करना
4. सम्प्रेषण करना
5. प्रभावित
6. समन्वय करना एवं
7. मूल्यांकन करना ।

अत: शिक्षा प्रबंधक / प्रशासक को शिक्षा प्रबंधन के मुख्य सिद्धान्तों से परिचित होना चाहिए । फिर भी यह लेना आवश्यक है कि कोई भी सिद्धान्त अपने सांस्कृतिक पर्यावरण के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकता । अग्रलिखित भागों में कुछ प्रमुख सिद्धान्तों पर चर्चा की जा रही है ।

2.6 शिक्षा प्रबन्धन सम्बन्धित प्रमुख सिद्धान्त (Main Theories Related to Educational Management)

जहाँ भी मानवीय पक्ष के प्रबंधक की बात आती है यह कार्य अत्यन्त जटिल हो जाता है । नेतृत्व भी जहाँ एक परिस्थिति में एक मानवीय समूह को सफलता दे पाता है बदली परिस्थिति में वह सफल नहीं हो पाता । शिक्षा प्रबंधन के क्षेत्र में प्रबंधन की समस्याओं को सुलझाने के लिए आई शिक्षा प्रबंधन को व्यापक रूप से समझने के लिए अनेक सिद्धान्त विकसित हुए हैं उनमें कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन यहाँ किया जा रहा है ।

2.6.1 प्रबन्ध प्रक्रिया सिद्धान्त -

प्रबन्ध एक प्रक्रिया है, इस सिद्धान्त के मूल प्रक्रिया हेनरी फेयोल तथा जे. वी. सीयर्स (1950), आर्डव टीड (1995) रसेल ग्रेग (1957) आदि ने क्रमश: विकसित किया ।

लूथर गुलिक ने प्रबन्धन को एक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया । उसने प्रबन्धन प्रक्रिया के अन्तर्गत सात अंगों का प्रतिपादन किया । इन सात प्रबन्धन प्रक्रिया के अंगों के लिए एक सूत्र दिया जिसे पोस्टकोर्ब से जाना जाता है । पोस्टकोर्ब POSDCORB का प्रत्येक अक्षर प्रशासन / प्रबन्धन प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण अंग का द्योतक है, जो निम्नानुसार है-

1. योजना निर्माण करना ।
2. संगठन करना ।
3. स्टाफ नियुक्त करना ।
4. निर्देशन देना ।
5. समन्वय करना ।
6. प्रतिवेदन तैयार करना तथा
7. वित्त व्यवस्था करना ।

गुलिक की भाँति हेनरी फेयोल ने भी प्रबन्धन का एक सूत्र दिया जिसे ..(POCCC) कहा गया अर्थात् 1 योजना बना, 2. संगठन करना, 3. निर्देश देना, 4. समन्वय स्थापित करना तथा 5. नियंत्रण रखना । परन्तु साथ ही फेयोल ने इस सिद्धान्त का विस्तार करते हुए

14 सिद्धान्त दिए । ये सिद्धान्त हैं- 1 कार्य वितरण 2. अधिकृति, 3. अनुशासन 4. निर्देशों में एकरूपता 5. निर्देशन में एकता 6. सार्वजनिक हित में व्यक्तिगत हित का त्याग 7. वेतन 8. केन्द्रीकरण 9. अधिकृत पद सोपान 10. आदेश 11 समानता 12. सेवा का स्थायीपन 13. पहल 14. बंधुता का भाव ।

फेयोल तथा गुलिक के अलावा जे. वी. पी. सीवर्स ने भी प्रबन्धन को पांच अंगों 1. योजना बनाना 2. संगठन करना 3. निर्देशन करना 4. समन्वय करना तथा 5. मूल्यांकन के रूप में देखा । प्रबन्धन प्रक्रिया के रूप में सर्वमान्य सूत्र केम्पबेल तथा ग्रेग का माना जाता है जिसमें प्रक्रिया के सात अंग माने गए हैं -

1. निर्णय करना
2. आयोजन करना
3. संगठन करना
4. सम्प्रेषण करना '
5. प्रभाव डालना
6. समन्वय करना
7. मूल्यांकन करना ।

2.7 मानव प्रकृति की धारणाओं पर आधारित शैक्षिक प्रबन्धन के सिद्धान्त (Theories of Educational Management based on Human Nature)

कुछ समय पूर्व मार्च तथा साइमन (1958) ने औद्योगिक प्रबंध पर कार्य किया और प्रबन्धन के सिद्धान्तों का उल्लेख किया है जो वास्तव में मानव व्यवहार की धारणाओं पर आधारित है । मानव प्रकृति की इसी धारणा पर आधारित तीन सिद्धान्तों का उल्लेख किया है -

1. **प्रबन्धन / व्यवस्था का परम्परागत सिद्धान्त : कार्य केन्द्रित (Classical Theory of Management : Task Centred) :** इस सिद्धान्त की यह धारणा है कि व्यवस्था के सदस्यों में कार्य! करने की क्षमता होती है और निर्देशों को स्वीकार करके वे उनका अनुसरण कर सकते हैं, परन्तु उनमें कार्य के लिये स्वोपक्रम (Initiation) की क्षमता नहीं होती है, और न ही कार्य प्रणाली को किसी प्रकार प्रभावित करने की क्षमता होती है, सदस्य प्राथमिक रूप से मशीन के समान कार्य करते हैं । प्रभुत्ववादी शासन-व्यवस्था इसी सिद्धान्त पर आधारित है ।

इस सिद्धान्त ने शिक्षा प्रणाली को अधिक प्रभावित किया है । शिक्षक, छात्रों की समस्त क्रियाओं, प्रेरणा देना, नियंत्रण करना, छात्रों के मन में सुधार लाना तथा उद्देश्यों की प्राप्ति कराना आदि को नियंत्रित करता है । छात्र केवल एक स्रोत का कार्य करते हैं और शिक्षा निर्देशों का अनुसरण करते हैं । कक्षा में बोलने तथा लिखने पर ही अधिक बल दिया जाता है । शिक्षण-व्यवस्था कार्य-केन्द्रित तथा शिक्षक-नियंत्रित होती है । कक्षा शिक्षण में पाठ्य वस्तु के प्रस्तुतीकरण पर अधिक बल दिया जाता है ।

2. **प्रबन्धन / व्यवस्थाओं का मानवीय सम्बन्ध सिद्धान्त : सम्बन्ध केन्द्रित (Human Relation Theory of Management : Relationship Centred) -** आज की शिक्षा तथा प्रशिक्षण प्रणाली मानव-सम्बन्ध सिद्धान्त से अधिक प्रभावित है । परम्परागत शिक्षण तथा

प्रशिक्षण व्यवस्था के द्वारा छात्रों की मानसिक क्षमताओं का विकास समान स्तर पर ही किया जा सकता है, परन्तु इस सिद्धान्त के अनुसार शिक्षण तथा प्रशिक्षण व्यवस्था इस प्रकार की जाती है जो छात्रों की आयु, प्रवीणता, अभिरूचियों, अभिवृत्तियों तथा योग्यता के अनुरूप होती है जिससे छात्रों का विकास बहुमुखी होता है । इस प्रकार की व्यवस्था में शिक्षक का उत्तरदायित्व एक निर्देशक तथा परामर्शदाता के रूप में होता है । उसका कर्त्तव्य छात्रों को क्रियाशील रखने के लिये अवसर देना तथा प्रोत्साहित करना है । इस शिक्षण व्यवस्था के उपागम में ऐसी विधियों का प्रयोग किया जाता है जिसमें छात्रों को अधिक कार्य करना पड़ता है । सामूहिक शिक्षण तथा सीखने की सहायक सामग्री को अधिक प्रयोग करने के लिये बढ़ावा दिया जाता है । सीखने में व्यवहार-विज्ञान के सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है । सीखने की पाठ्यवस्तु की व्यवस्था इस प्रकार की जाती है जिससे सीखना रुचिकर हो, प्रेरणादायक हो तथा अन्ततः सफलता प्राप्त हो सके । इसमें रटने पर कम से कम बल दिया जाता है । सार्थक-अधिगम को अधिक महत्त्व दिया - है । अधिगम के सार्थक-कार्यों को ही प्रधानता दी जाती है । जैसे खेल-कूद, प्रोजेक्ट का कार्य, खोज आदि ।

शिक्षा वातावरण (Educational Environment)

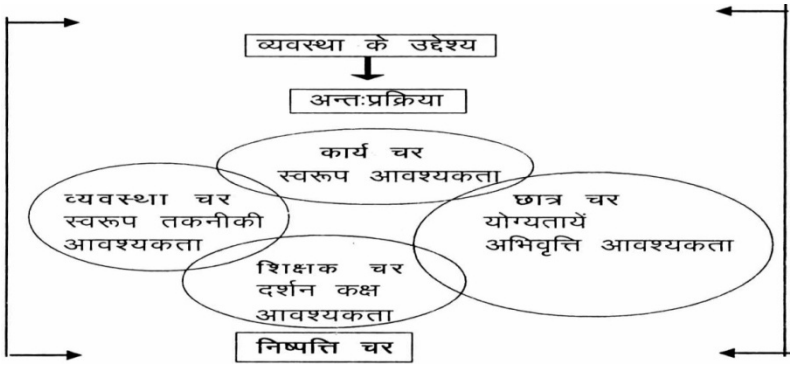

3. **आधुनिक व्यवस्था का सिद्धान्त : कार्य तथा सम्बन्ध केन्द्रित (Modern Theory of Management : Task and Relationship Centred) :** इस सिद्धान्त की यह धारणा है कि व्यवस्था के सदस्य समस्या का समाधान कर सकते हैं और निर्णय भी ले सकते हैं । व्यवस्था के व्यवहार की व्यवस्था प्रत्यक्षीकरण तथा चिन्तन प्रणाली के माध्यम से की जा सकती है ।

मानव व्यवहार की प्रकृति पर आधारित होने से इन तीनों सिद्धान्तों में कोई विरोधाभास नहीं है, परन्तु इन सिद्धान्तों में लक्ष्यों का अन्तर अवश्य है । इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन औद्योगिक प्रबन्ध की दृष्टि से किया गया है, परन्तु इन्हें शिक्षण व्यवस्था में भी प्रयुक्त किया जाता है ।

आधुनिक व्यवस्था उपागम (Modern Approach) में कार्य तथा मानव सम्बन्ध को भी सम्मिलित किया जाता है । वास्तव में शिक्षा व्यवस्था छात्र-केन्द्रित होती है । शिक्षण तथा प्रशिक्षण में कार्य की आवश्यकताओं तथा छात्र की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा जाता है

। शिक्षक छात्र, कार्य तथा व्यवस्था चरों में समन्वय स्थापित करता है जिसका परिणाम छात्रों की निष्पत्ति होती है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. शिक्षा प्रबन्ध का अर्थ समझाइये | यहाँ समान्य प्रबन्ध से किस प्रकार भिन्न है?
2. शैक्षिक प्रबन्ध के प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिये |
3. मानव प्रकृति की अवधारणाओं के प्रकार बताइये तथा उनके अनुरूप प्रबन्ध सिद्धांतों का वर्णन कीजिये |

2.8 शिक्षण संस्थान और सामाजिक प्रणाली पर आधारित शिक्षा प्रबन्ध सिद्धान्त

किसी भी शिक्षण संस्थान की स्थापना की पृष्ठभूमि में समुदाय होता है । उस संस्थान का अपना भी समुदाय होता है जिससे सदस्य प्रबन्ध मण्डल, शिक्षक और विधार्थी होते हैं अत: शिक्षा संस्थान भी एक सामाजिक प्रणाली है । प्रबन्ध, शिक्षक, विधार्थी, कार्यालय कर्मचारी, स्थानीय समुदाय के परस्पर व्यवहार का शिक्षा संस्थान की स्थिति पर प्रभाव पड़ता है ।

ग्रिफिथ्स (1964) ने इस सम्बन्ध में अति संक्षिप्त परिभाषा इस प्रकार की है- "System may be simply defined as complex of elements of mutual interaction"

परस्पर व्यवहार जन्य इस शैक्षिक संस्था प्रणाली को एक समिश्र माना जा सकता है, जिसके भाग (Sub-Systems) परस्पर क्रिया करते हैं ।

जॉन वांको (Nwankwo)) (1982) ने प्रणाली को परस्पर सम्बन्धित तथा परस्पर निर्भर भागों की मेखला के रूप में परिभाषित किया है तथा माना है कि किसी भी भाग (उप प्रणाली) प्रभाव समग्र प्रणाली पर पडता है ।

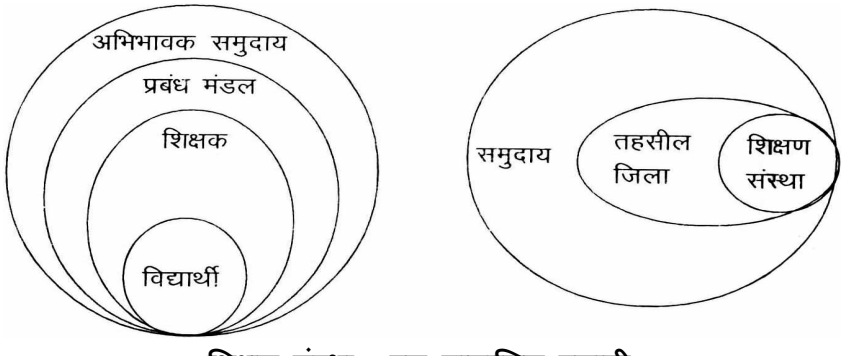

शिक्षण संस्था : एक सामाजिक प्रणाली

ग्रिफिथ्स ने प्रणाली को दो भागों में विभक्त किया है -

1. मुक्त प्रणाली (Open System) 2. बंद प्रणाली (Close System)

चित्र के अनुसार शिक्षा संस्थान प्रणाली के घटक विधार्थी, शिक्षक, प्रबंधन व अभिभावक व समुदाय परस्पर व्यवहार करते हैं, जिससे एक विशिष्ट व्यवहार का पर्यावरण शिक्षण संस्थान में बनता है ।

प्रणाली के प्रकार

ग्रिफिथ्स ने प्रणाली को दो भागों में विभक्त किया है, मुक्त प्रणाली ,(Open System) तथा बंद प्रणाली (Close) । शिक्षा संस्थान मुक्त प्रणाली में आता है । क्योकि वह अपने पर्यावरण से परस्पर क्रिया करता है तथा इसकी उप-प्रणालियों में भी परस्पर क्रिया होती है । यद्यपि ग्रिफिथ्स ने यह स्वीकार किया है कि प्रणाली की व्याख्या करना कठिन है परन्तु हम इसे इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं कि एक संगठन प्रणाली जो किसी पर्यावरण में कार्यरत है, में अनेक उप- प्रणाली होती हैं जिन्हें ग्रिफिथ्स ने अधोलिखित प्रकार से व्यक्त किया है -

शिक्षण संस्थान : प्रबन्ध एवं पर्यावरण

2.8.1 गेटजेल-गूवा प्रतिमान :

गेटजेल्स तथा थेलन के अनुसार शैक्षिक संगठन प्रणाली के दो प्रमुख पक्ष हैं. 1.

'बन्धन 2. संगठन में कार्य करने वाला व्यक्ति । संगठन के अपने कुछ लक्ष्य होते हैं । व्यक्ति अपनी आवश्यकता व उद्देश्यों को लेकर संगठन में कार्य करता है । संगठन में किस सीमा तक संगठन व वैयक्तिक आवश्यकताओं की परस्पर पूर्ति होती है, सम्बन्ध अच्छे रहते हैं तथा शिक्षण संस्थान का पर्यावरण तनाव मुक्त रहता है । इसके विपरीत स्थिति में जहाँ दोनों की अपेक्षाओं व कार्य निष्पत्ति में अंतराल होता है परस्पर सम्बन्धों की स्थिति भी असंतोषजनक रहती है । निम्न चित्र से स्पष्ट हो जाता है -

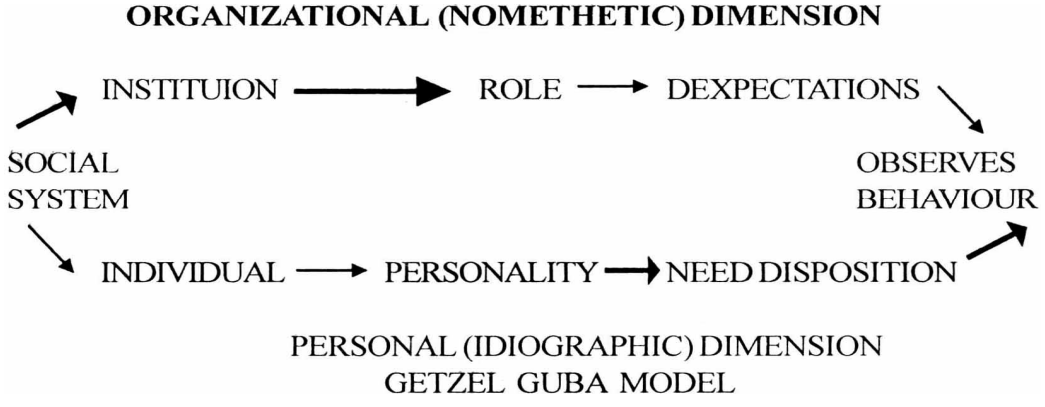

एंड्रयू डब्लू हाल्पिन क्राफ्ट (1963) ने प्रशासनिक व शिक्षक व्यवहार के इस आधार पर, संगठनात्मक पर्यावरण (Organisational Climate) पर व्यापक कार्य किया है । हॉल्पिन तथा क्राफ्ट ने शिक्षा संस्थान पर्यावरण को प्रभावित करने वाले दो कारकों 1. नेतृत्व तथा 2. शिक्षकों के व्यवहार को ही स्वीकार किया है । नेतृत्व या प्रशासनिक व्यवहार व शिक्षकों के परस्पर व्यवहार के परिणाम स्वरूप ही शिक्षण संस्थान प्रणाली में अनेक प्रकार के पर्यावरण जिनमें मुख्यत: मुक्त (Open) स्वायत्त (Autonomous), नियंत्रित (Controlled) परिचित (Familier), पितृवत (Paternal) तथा बंद (Closed) प्रकार के होते हैं । इनकी परस्पर विशेषताओं के मिलने से अनेक मध्यम प्रकार के पर्यावरण भी बन जाते हैं ।

2.8.2 संगठनात्मक संतुलन का सिद्धान्त -

आधुनिक युग में प्रत्येक शैक्षिक संस्थान को एक जटिल सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है । संगठनात्मक संतुलन सिद्धान्त की अवधारणा संगठन एवं वातावरण के मध्य अन्तःक्रिया की धारणा पर आधारित है । संगठनात्मक संतुलन के सिद्धान्त को जानने से प्रबन्धक को अपने कार्य निष्पादन में सहायता मिलती है ।

संगठनात्मक वातावरण : विभिन्न प्रकार के संगठनों को विभिन्न प्रकार के वातावरण से गुजरना पड़ता है और प्रत्येक वातावरण की अपनी जटिलता होती है और परिवर्तन की मात्रा तथा प्रकार अलग-अलग होते हैं । वातावरणजनित परिवर्तनों के अनेक आर्थिक, सामाजिक कारण होते हैं जैसे तकनीकी परिवर्तन, बाजार की मांग में बदलाव, सरकार द्वारा उठाया गया कोई कदम इत्यादि ।

संस्थागत शैक्षिक वातावरण अनेक प्रकार की शक्तियों से निर्मित होता है जिसके संगठन हेतु दो प्रकार की प्रणालियाँ प्रमुख भूमिका निभाती हैं जिनमें परस्पर समन्वय भी आवश्यक है ।

(1) खुली प्रणाली - इस प्रणाली में अन्तनिर्भरता के सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता है अर्थात् संगठन एवं वातावरण के मध्य अन्योन्याश्रितता होती है ।

(2) बन्द प्रणाली - बन्द प्रणाली में कोई संगठन अपने उत्पाद का वातावरण वितरण करता है जिसके अंतर्गत का अन्तर्वशन निर्गह के मध्य सम्बन्ध हेतु प्रतिपुष्टि की प्रमुख भूमिका है ।

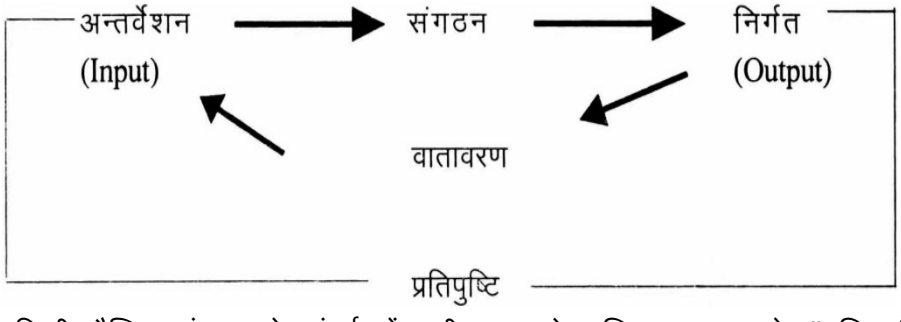

किसी शैक्षिक संगठन के संदर्भ में इसी बात को अधिक स्पष्टता के " निम्नलिखित चार्ट की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है - शैक्षिक संगठन

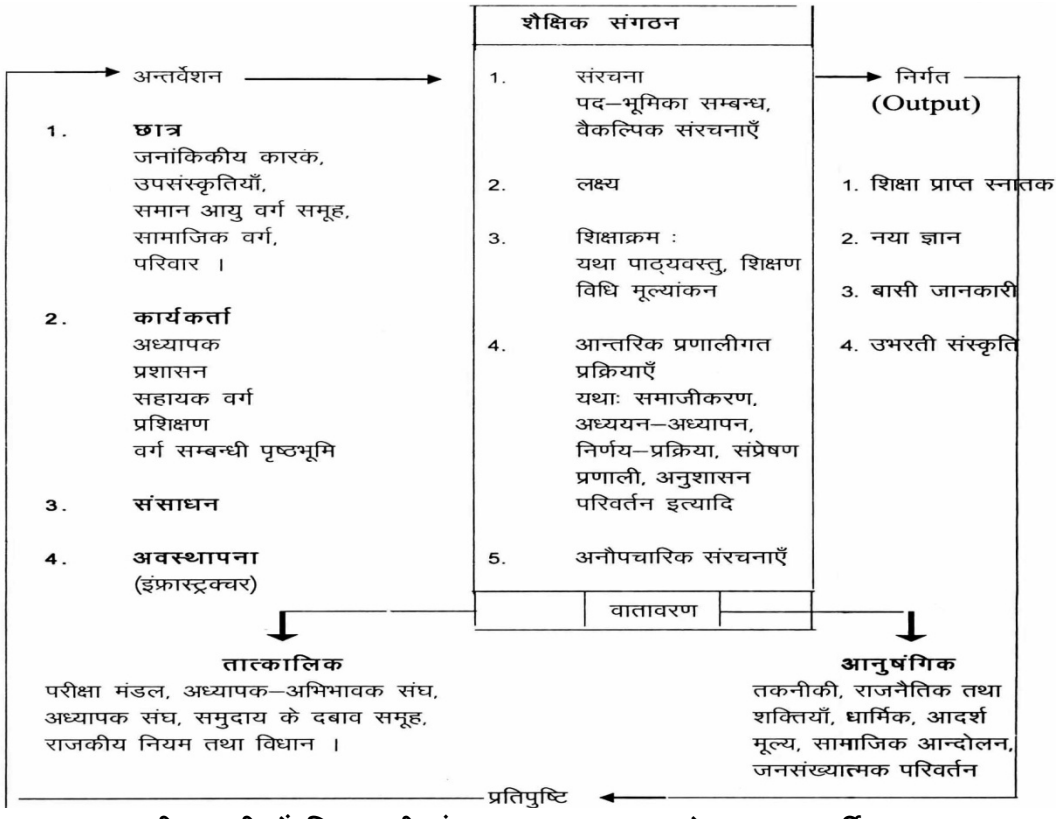

खुली प्रणाली में विद्यालयी संगठन तथा वातावरण के मध्य अन्तर्क्रिया ।

कोई भी संगठन तब तक सुचारू रूप से कार्य नहीं कर सकता जब तक उसके कार्यकलापों को व्यवस्थित तथा नियमित करने के लिए नियंत्रक नियमावली न हो । वस्तुत: कोई भी संगठन पूरी तरह खुला या पूरी तरह बन्द हो ही नहीं सकता । खुला या बन्द शब्दों का प्रयोग 'अधिक' या 'कम' के साथ ही किया जा सकता । इसी प्रकार कोई संगठन किसी एक पक्ष में अधिक खुला हो सकता है, जबकि दूसरे पक्ष में उसे कम खुला या अधिक बन्द कहना पड़ेगा । उदाहरण के लिए पाठ्यक्रमीय परिवर्तन हेतु जो विद्यालय अभिभावकों की राय का भी ख्याल रखता है, वह अधिक खुला है और जो उनकी राय की सर्वथा अवहेलना करता है वह बन्द संगठन की गणना में आएगा।

संगठनात्मक संतुलन -

संगठन अपना निर्गत वातावरण में भेजता है, तथा वातावरण बदले में संसाधन तथा छात्रों के रूप में अन्तर्वेशन प्रदान करता है । संगठन के अन्दर चलने वाले घटनाचक्र इस अन्तर्वेशन-निर्गत अनुपात को सतत् बनाए रखते हैं और इस प्रकार संतुलन बना रहता है । खुली प्रणाली स्वनियमित होती है । यदि घटना चक्र में कहीं कोई रुकावट आती है, तो उस विशिष्ट बिन्दु पर नए संसाधन लगा दिए जाते हैं और पुन: सन्तुलन स्थापित हो जाता है । यदि संतुलन पुन: स्थापित नहीं होता तो संगठनात्मक परिवर्तन आता है तथा नया सन्तुलन बैठाया जाता है ।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि किसी संगठन तथा उससे जुड़े हुए अन्य संगठनों को इतनी स्थायित्व शक्ति अर्जित कर लेनी चाहिए कि जिससे सन्तुलन को समुन्नत किया जा सके तथा भविष्य के लिए आश्वस्त होकर आयोजन किया जा सके । यदि सन्तुलन भी जड़ हो जाए तथा संगठन के बारे में प्रागूक्ति करना बहुत सहज हो जाए, तब भी उसमें सड़ांध आने लगती है तथा संगठन आगे प्रगति नहीं कर पाता । इस प्रकार की स्थितियाँ रुग्ण स्थिति की सूचक हैं तथा तूफानी भविष्य का संकेत देती हैं ।

2.9 शिक्षा प्रबन्धन में भूमिका संघर्ष सिद्धान्त

किसी भी संगठन के लक्ष्यों को प्रभावकारी ढँग से प्राप्त करने के लिए संगठन में कार्य करने वाले लोगों के सम्मिलित योग की आवश्यकता होती है जिसमें संगठन के उच्च अधिकारी से लेकर निम्न स्तर के कार्यकर्ताओं का योग शामिल है । प्रत्येक व्यक्ति अपनी भूमिका उसी प्रकार से निर्वाह करता है जैसा कि वह उस भूमिका के बारे में सोचता है । यद्यपि उसका यह सोचना आवश्यक नहीं है कि दूसरे व्यक्तियों की प्रत्याशाओं के अनुकूल हो । यह जितना अधिक होगा टकराव कम होगा । लेकिन ऐसा नहीं होने पर टकराव संभव हो सकता है जिसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं-

1. व्यक्ति व संस्था दोनों की अपेक्षाओं में अन्तर ।
2. सांस्कृतिक मूल्यों में भिन्नता ।
3. भूमिका के संदर्भ में स्वयं की धारणा तथा अन्य की भूमिका सम्बन्धी अपेक्षाओं में अन्तर ।

भूमिका संकट सिद्धान्त को समझने के लिए इसमें प्रयुक्त शब्दों की परिभाषाओं को समझना अत्यावश्यक है ।

भूमिका (Role) - किसी संगठन में उसके अनेक कार्यालयी पद या प्रस्थितियों से एक निश्चित प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा) होती है । सामान्यतया यही अपेक्षाएँ व्यक्ति की भूमिका को परिभाषित करती हैं, यद्यपि उस व्यक्ति के व्यवहार पर उसके व्यक्तित्व का भी प्रभाव होता है । यही नहीं, कुछ व्यवहार व्यक्ति विशेष के अपने सोचने के अनुरूप होते हैं ।

भूमिका वर्णन (Role description) - किसी व्यक्ति की भूमिका का वास्तविक व्यवहृत रूप या किसी व्यक्ति की उस स्थिति में चिंतन की अभिव्यक्ति भूमिका वर्णन कहलाती है ।

भूमिका निर्धारण (Role Prescription) - यह एक अस्पष्ट विस्तार है, जिसमें यह माना जाता है कि किसी विशिष्ट सांस्कृतिक परिवेश में कोई भूमिका सामान्यतया जिस प्रकार की होगी । उदाहरणार्थ किसी देश में एक शिक्षक से जिस प्रकार के व्यावसायिक व्यवहार की अपेक्षा की जाती है, उसे शिक्षकीय भूमिका निर्धारण कहा जाता है ।

भूमिका अपेक्षाएँ (Role Expectation)- इसका सम्बन्ध एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति द्वारा व्यवहार की अपेक्षा होती है । उदाहरणार्थ शिक्षक की प्रधानाध्यापक से व्यवहार की अपेक्षाएँ ।

भूमिका धारणा (Role preception) - किसी व्यक्ति की भूमिका के बारे में उससे संबद्ध लोगों के विचारों के बारे में भूमिका निर्वहन करने वाले व्यक्ति का अनुमान धारणा कहलाती है ।

भूमिका संघर्ष .(Role Conflict) - भूमिका संघर्ष वह स्थिति है जिसमें दो व्यक्ति संतोषजनक रूप से परस्पर अपेक्षित भूमिका निर्वाह नहीं कर पाते । यह असंतोषपूर्ण भूमिका अनेक कारणों से हो सकती है, जिसके परिणामस्वरूप परस्पर तनावपूर्ण जटिल व्यवहारों का जन्म होता है ।

भूमिका श्रेणी (Role Set) - किसी संगठन में विभिन्न व्यक्तियों की भूमिकाओं को समझने के लिए भूमिका श्रेणी को समझना आवश्यक है । यही भूमिकाएँ किसी संगठन को गति देती है ।

पद सोपानों की दृष्टि से अधोलिखित भूमिकाएँ देखी जाती हैं -

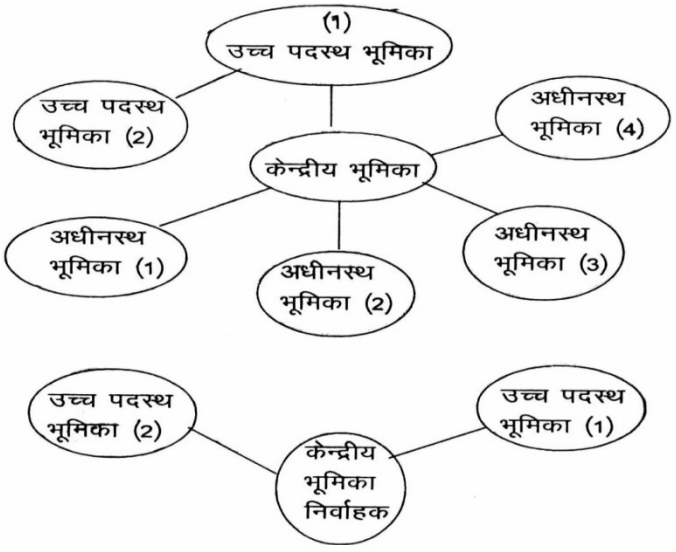

वारेन जी. (Warren) ने भूमिका समूह का चित्रण अधोलिखित प्रकार किया , है-

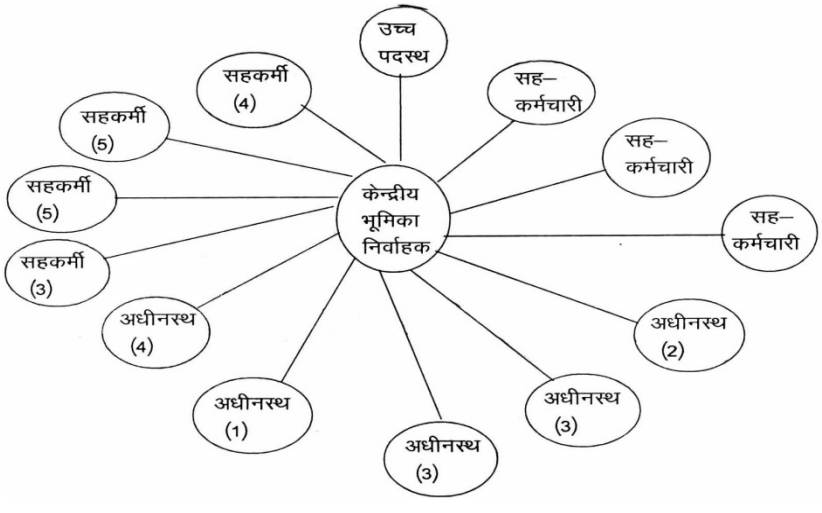

भूमिका प्रत्याशाओं के संदर्भ में 3 प्रकार की अन्य भूमिकाओं का लेखक बेन (Benne) द्वारा निम्नानुसार विवेचन किया गया है ।

समूह कार्य भूमिका (Group task role) - इसके अंतर्गत वे भूमिकाएँ आती हैं, जिनमें समूह द्वारा समस्या समाधान के लिए समस्या निर्धारण, परिभाषीकरण व समाधान खोजा जाता है ।

समूह निर्माण एवं यथास्थिति भूमिका (Group Building and maintenance) - ये भूमिकाएँ समूह के विकास को सुनिश्चित करती हैं तथा समय-समय पर यथास्थिति बनाए रखने का कार्य करती हे ?

वैयक्तिक भूमिकाएँ - ये इस प्रकार की भूमिकाएँ हैं, जिनमें व्यक्ति या समूह के सदस्य अपनी वैयक्तिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए भूमिकाएँ निर्वाह करते हैं ।

समूह कार्य भूमिकाओं की बैन ने और भी श्रेणियां बताई हैं, यथा -

1. अगुवाई करने वाला
2. जानकारी माँगने वाला
3. सम्मति माँगने वाला
4. जानकारी देने वाला
5. राय देने वाला
6. व्याख्या करने वाला
7. समन्वय करने वाला
8. अनुस्थापक
9. शक्ति प्रदायक
10. समीक्षक
11. रिकॉर्ड रखने वाला

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. शिक्षण संस्थान और सामाजिक प्रणाली पर आधारित शिक्षा प्रबन्ध सिद्धान्त का वर्णन कीजिए ।
2. शिक्षा प्रबन्धन में भूमिका संघर्ष सिद्धान्त की महत्ता स्पष्ट कीजिए ।

2.10 गेटजल का संस्थागत प्रबन्धन प्रतिमान (Gatzel's Institutional Management Model)

गेटजेल ने संस्थानों के सामाजिक प्रणाली के रूप में भूमिका प्रत्याशालों के संदर्भ में काफी कार्य किया है । शैक्षिक संस्थाएँ भी एक सामाजिक प्रणाली है । इस दृष्टि से उसकी भूमिकाओं का संस्थान में क्या अपेक्षाएँ होती हैं और संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में वह क्या करती है, उसको अग्रलिखित चित्र में स्पष्ट किया गया है - ।

शैक्षिक संस्था सामाजिक प्रणाली।

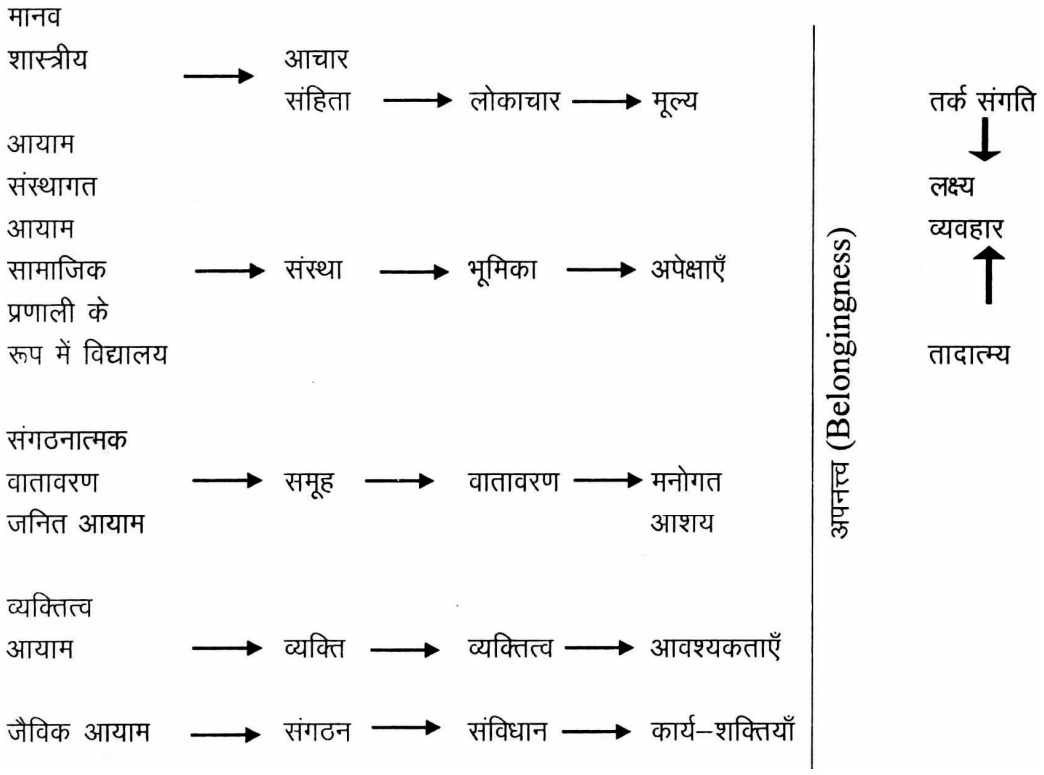

(जेकब डबल्यू गेटजल तथा हरबर्ट ए. थेलन से प्रतिगृहीत)

किसी भी संस्थान में कार्यरत व्यक्ति का अद्‌वितीय व्यक्तित्व होता है । व्यक्तित्व सम्बन्धी आवश्यकताएँ होती हैं और इस जटिल परिप्रेक्ष्य में वह संगठन में विभिन्न प्रकार भूमिकाएँ निभाता है । इस प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व का भी भूमिका पर असर पड़ता है ।

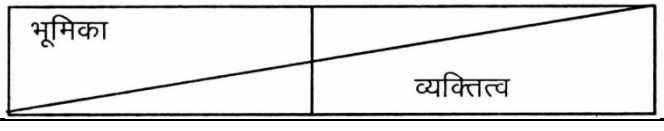

2.11 शैक्षिक प्रबन्धन हेतु ग्रिफिथ्स का निर्णयवादी सिद्धान्त (Grifiths Decision making Theory for Educational Management)

ग्रिफिथ्स ने निर्णय प्रक्रिया को प्रबन्धन का मूल आधार माना । उनका मानना है कि निर्णय संगठन तथा प्रबन्धन प्रक्रिया का हृदय है । इसी को आधार बनाकर उन्होंने अपने "निर्णय प्रक्रिया सिद्धान्त" में प्राकल्पनाओं का एक कुलक तैयार किया जिसके आधार पर तर्क संगत व्यवहार योग्य। नियमों का भी कुलक तैयार किया । ये परिकल्पनाएँ निम्नलिखित हैं -

(1) प्रबन्धक का व्यवहार एक सामान्य प्रकार का व्यवहार है जो सभी प्रकार के प्रबन्धकों में पाया जाता हे ।

(2) प्रबन्धन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य निर्णय प्रक्रिया को अत्यधिक प्रभावशाली ढंग से विकसित करना और नियमित करना है ।

(3) प्रबन्धन किसी भी सामाजिक संगठन में निर्देशन व नियंत्रण की प्रक्रिया है ।

(4) प्रबन्धक समूह के साथ या समूह से सम्बद्ध व्यक्तियों के साथ कार्य करता है, व्यक्तियों से नहीं ।

ग्रिफिथ्स ने इन सभी परिकल्पनाओं को स्पष्ट करने हेतु निम्नलिखित मुख्य अवधारणाओं की बात कही -

(1) निर्णय लेना (Decision making) (2) संगठन (Decision Making)

(3) सम्प्रेषण (Communcation) (4) शक्ति (Power) (5) अधिकृति (Authority)

अपने इस सिद्धान्त को स्पष्ट करने हेतु ग्रिफिथ्स ने सम्भाव्य घटना चक्र .(Probability Event Chain) दिया जो इस प्रकार है

सम्भाव्य घटना चक्र

Probability Event Chain

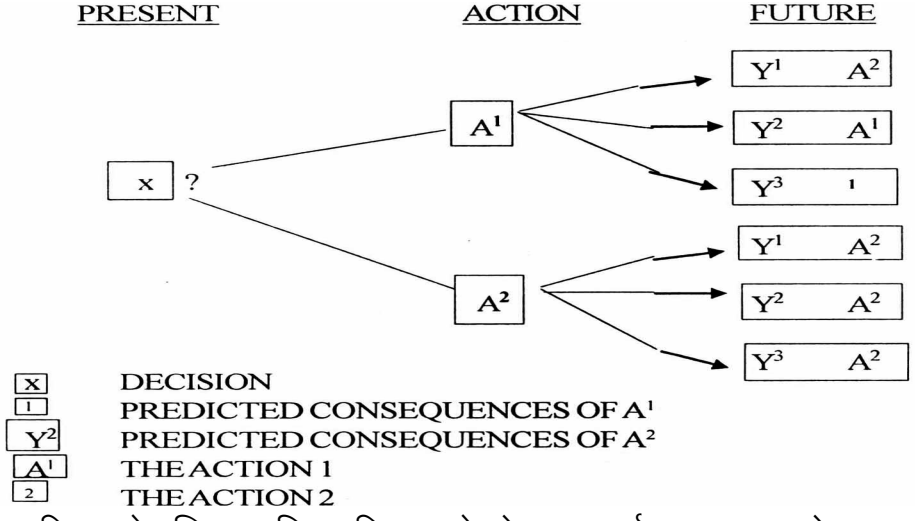

यदि इस रेखाचित्र पर विचार किया जाये तो इसका वर्णन इस प्रकार हो सकता है कि यदि कोई प्रशासक किसी समस्या के समाधान के लिए प्रथम कार्य प्रणाली (A1) को अपनाता है तो इसके परिणाम (Y1,A1, Y2/A1,Y3/A1) हो सकते हैं । यदि वह दूसरी कार्य प्रणाली A2 अपनाता है, तो इसका परिणाम (Y1/A1, Y2/A2) या (Y3/A2) हो सकते हैं ।

निर्णय प्रक्रिया इस सैद्धान्तिक व्याख्या में ग्रिफिथ्स ने पुन: 5 मुख्य प्रस्ताव (Proposals). जो परख जन्य (Testable) हैं, प्रस्तावित किये हैं -

(1) किसी संगठन का संरचना (Structure) निर्णय लेने की प्रक्रिया की प्रकृति के अनुरूप होनी चाहिए ।

(2) यदि औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन सर्वांगसम (Congruency) रूप से कार्य करें तो समग्र संगठन अधिकतम उपलब्धि प्राप्त कर सकता है ।

(3) यदि समग्र संगठन में अधिकतम उपलब्धि प्राप्त नहीं हो रही है तब यह ' है कि औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन मिलकर कार्य नहीं कर रहे हैं ।

(4) यदि प्रशासक अपना निर्णय सम्बन्धी व्यवहार, निर्णय प्रक्रिया के अनुरूप अपनाता है (बजाय अपूर्ण प्रक्रिया के) तब उसके अधीनस्थ व्यक्तियों में वह कहीं अधिक स्वीकार किया जाता है ।

(5) यदि प्रशासक स्वयं संगठन के निर्णय लेने के बजाय अपने को निर्णयों का नियंत्रित करने वाला मानता है तब निर्णय अधिक प्रभावी होंगे ।

2.12 शैक्षिक प्रबन्धन हेतु निर्णय प्रक्रिया सिद्धान्त (Decision Process Theory for Educational Management)

2.12.1 निर्णय की अवधारणा

सामान्यतया किसी शैक्षिक या प्रशासनिक समस्या के समाधान के लिए, गए निश्चय को निर्णय कहा जाता है । कुछ लोग इसे वैकल्पिक कार्य की विधियों और मूल्यांकन एवं की विधि के रूप में परिभाषित करते हैं । ग्रिफिथ्स ने इसे वर्तमान की परिस्थितियों में उपलब्ध ' के आधार पर भावी घटनाक्रम के रूप में देखा है ।

यों तो व्यक्ति निर्णय लेते हैं, परन्तु ये निर्णय कितने सार्थक एवं प्रभावशाली होते हैं, यह अनुभव, चिंतन, विचार-विमर्श तथा निर्णय प्रक्रिया पर निर्भर करता है ।

2.12.2 निर्णय प्रक्रिया के प्रकार

निर्णय के मुख्य रूप से चार प्रकार होते हैं -

(1) **दैनिक सामान्य निर्णय :** वे निर्णय जिन्हें प्रशासक नियमित प्रशासन संचालन के लिए लेता है तथा ये वे निर्णय हैं जो परम्परा, विभागीय नियमों तथा प्रदत्त अधिकारों के अन्तर्गत आते हैं । जैसे - स्टाफ के अवकाश, कार्य विभाजन, प्रवृत्ति सम्बन्धी निर्णय।

(2) **नीतिगत निर्णय** : एक नवीन परिस्थिति में निर्णय लेना जिनके संबंध में स्पष्ट प्रशासनिक निर्देश या परम्पराओं का अभाव होता है जैसे - कर्मचारी की अनुशासनहीनता, विधार्थियों की हड़ताल आदि ।

(3) **वैयक्तिक निर्णय** : वैयक्तिक निर्णय हर व्यक्ति अपने स्तर पर अपने अधिकार क्षेत्र में लेता है । प्रशासक ही नहीं शिक्षक भी विधार्थियों के संबंध में निर्णय लेते हैं । जैसे- कक्षा में कितना गृहकार्य दिया जाये, कक्षा को पिकनिक पर कही ले जाया जाये ।

(4) **साह निर्णय :** जब कोई सामूहिक समस्या हो तब सामूहिक निर्णय लिया जाता है जैसे- स्थानीय समुदाय में स्टाफ द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन आदि ।

2.12.3 निर्णय स्तर

शिक्षण संस्थाओं की परिस्थिति में प्राय: तीन स्तर पर निर्णय लिये। जाते हैं जैसे-

स्तर	निर्णय लेने वाले	क्षेत्र

उच्च	विभागीय स्तर	शिक्षा विभाग लक्ष्य, उद्देश्य
	1. राज्य सरकार	नीति आदि सम्बन्धी निर्णय लेना
	2. शिक्षा विभाग	
	3. शिक्षा परिषद	
मध्यम	शिक्षक संस्था प्रधान	संस्थान स्तर पर उद्देश्यों का विवेचन तदनुसार संस्था प्रधान और शिक्षकों द्वारा निर्णय लेना
निम्न	व्यक्तिगत रूप से निर्णय	कार्य सम्पादन के स्तर पर निर्णय
	लेना	लेना, प्रत्येक स्तर पर भूमिका निश्चित करना, नीतियों को लागू करना

2.12.4 निर्णय प्रक्रिया एवं प्रभावी निर्णय के सिद्धान्त

निर्णय प्रक्रिया से आशय, उद्देश्य प्राप्ति के लिए चिंतन के बाद निश्चित कदमों को उठाने से है । दूसरे शब्दों में उद्देश्य प्राप्ति के लिए उपलब्ध विकल्पों में से उपयुक्त विकल्प के चुनाव की विधि है । साइमन ने निर्णय से पूर्व निम्न बातों पर ध्यान देना परमावश्यक माना -

(1) संगठन के उद्देश्यों की ओर ध्यान दो ।
(2) समस्या के संबंध मे संबंधित तथ्यों एवं सूचनाओं का एकत्रीकरण करना ।
(3) समस्या के संबंध में अन्य लोगों की राय
(4) प्राप्त सूचनाओं और आकड़ों का विश्लेषण और समस्या समाधान के संभावित विकल्प ।
(5) प्रत्येक समस्या समाधान के संभावित विकल्प का मूल्यांकन ।
(6) सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प का समाधान के लिए चुनाव ।

हेरीसन ने निर्णय प्रक्रिया के 6 कदमों का उल्लेख किया -

(1) उद्देश्यों या समस्या का निर्धारण
(2) विकल्पों पर विचार करना ।
(3) प्रत्येक विकल्प के बारे में दूसरे विकल्पों की तुलना में श्रेष्ठता सम्बन्धी विचार ।
(4) सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प का चुनाव ।
(5) निर्णय को पूरा करना ।
(6) निर्णय की क्रियान्विति का अनुकरण करना ।

2.12.5 निर्णय प्रक्रिया के मॉडल

प्रबन्धक के लिए यह सम्भव नहीं होता है कि वह दैनिक रूप में अधिकाधिक निर्णय स्टाफ के सहयोग से ले सके । जब प्रबन्धक को स्वविवेक से निर्णय लेना हो तो अग्रलिखित पर

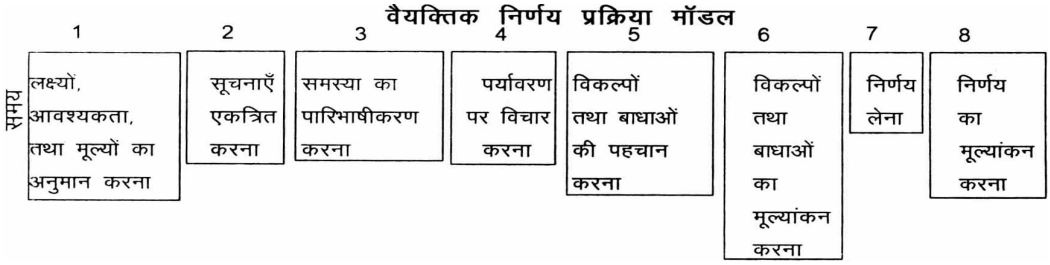

जब प्रबन्धक को नीतिगत सामूहिक निर्णय लेना हो तो अग्रलिखित निर्णय प्रक्रिया मॉडल को अपनाया जा सकता है ।

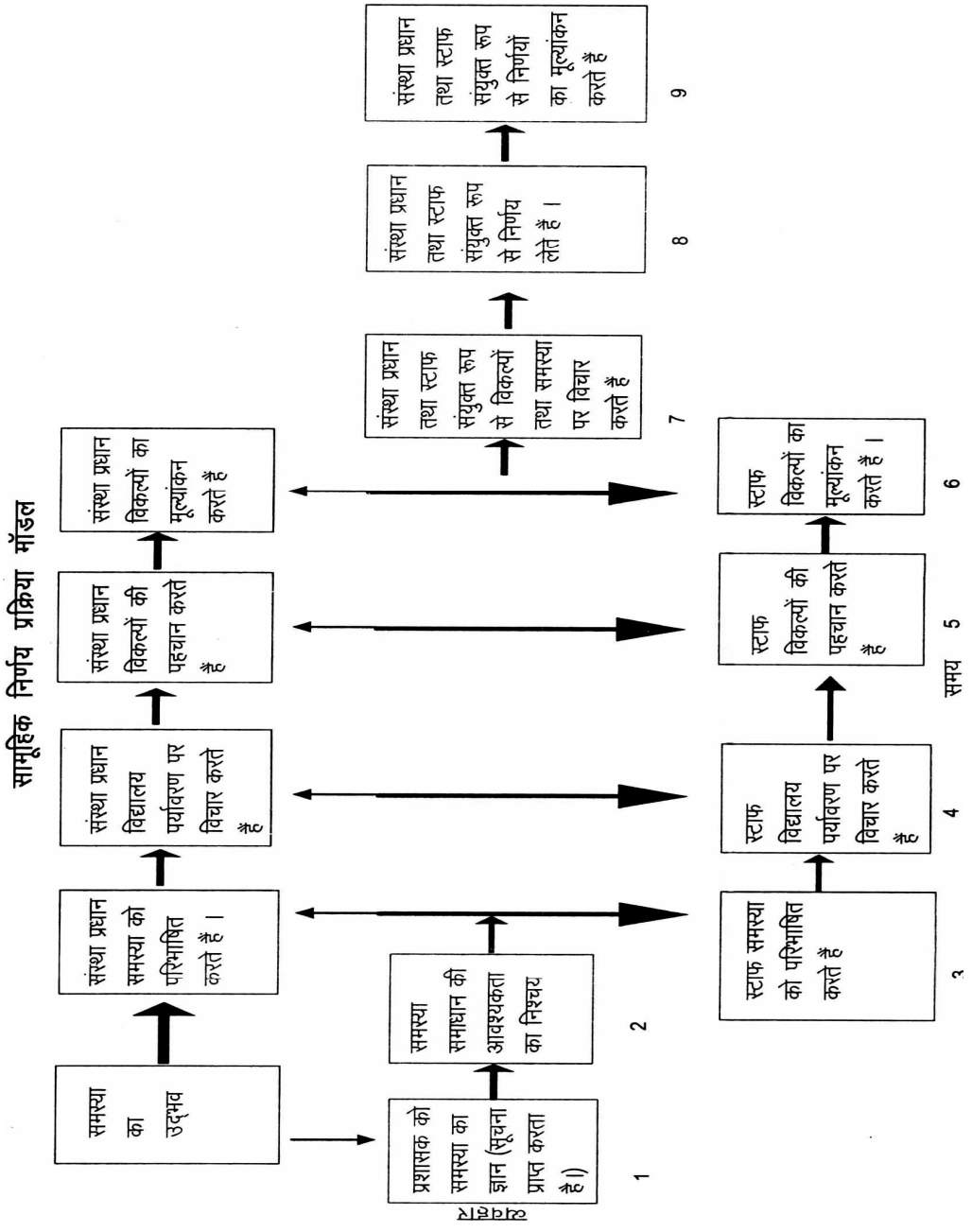

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. निर्णय प्रक्रिया का शैक्षिक प्रबन्धन में क्या स्थान है? निर्णय प्रक्रिया के प्रतिमानों द्वारा स्पष्ट कीजिए ।
2. शैक्षिक प्रबन्धन हेतु ग्रिफिथ्स के निर्णयवादी सिद्धान्त की सविस्तार व्याख्या कीजिए ।

2.13 संगठनात्मक दृष्टिकोण पर आधारित शैक्षिक प्रबन्धन के सिद्धान्त (Theories of Educational Management based on Organizational consideration)

शैक्षिक प्रबन्ध का सम्पूर्ण कार्य क्षेत्र विषयों पर आधारित रहता है । संगठनात्मक दृष्टिकोण से जिन सिद्धान्तों पर विचार किया जा रहा है । वास्तव में ये मूल रूप से "व्यापार प्रबन्ध" विषय से संबंधित है । ये सिद्धान्त निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किए जा सकते हैं ।

1. परम्परागत सिद्धान्त (Classical Theory) - उस सिद्धान्त को अलग-अलग नाम से भी जाना जाता है । "मार्च तथा साइमन" ने इस सिद्धान्त को शारीरिक विज्ञान सिद्धान्त कहा है । "कच" द्वारा इस सिद्धान्त को मशीन सिद्धान्त के नाम से पुकारा गया है । 'टेलर' ने इस सिद्धान्त को वैज्ञानिक प्रबन्ध के नाम से पुकारा है । इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य को मशीन के समान ही स्वीकार किया जाता है, मशीन को चलाने में कुछ क्रिया करनी पड़ती है और उसे नियंत्रित भी रखना पड़ता है । इसी प्रकार शैक्षिक प्रशासन में व्यक्ति को भी प्रशिक्षण देना पड़ता है । कार्य ठीक प्रकार से संचालन के लिये इस सिद्धान्त के अन्तर्गत कुछ नियमों का भी पालन करना पडता है ।

2. मानवीय संबंध उपागम (Human Relations Theory) - यह सिद्धान्त "शास्त्रीय सिद्धान्त" की प्रतिक्रिया के रूप में विकसित हुआ । यह सिद्धान्त मनुष्य को मशीन के रूप में स्वीकार करने के विचार का विरोध करता है । इसके अन्तर्गत प्रबन्धन को यह विचारने के लिये विवश किया जाता है कि औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन व्यक्तियों को ओर उनकी भावनाओं को समझने का प्रयास करें । किसी भी समूह के वातावरण का ठीक अध्ययन करके ही प्रशासन को उत्तमता पूर्वक किया जा सकता है ।

3. (संरचनात्मक सिद्धान्त (Constructive Theory) - यह सिद्धान्त वैबर के "नौकरशाही प्रतिमान" से संबंधित है । तत्पश्चात् अन्य विद्वानों ने इस सिद्धान्त को और भी अधिक विकसित किया है । इस सिद्धान्त के अन्तर्गत अनेक नियमों को सम्मिलित किया जाता है, जिनमें से "विशिष्ट क्रिया का नियम" 'कर्मचारियों के अधिकार एवं कर्त्तव्य नियम" आदि प्रमुख

हैं । वास्तव में इन नियमों का सार भी यही है कि यदि प्रबन्धन में विशिष्ट सेवा करने वाले तथा तकनीकी विशेषज्ञों के साथ ईमानदारी तथा निष्पक्षता से व्यवहार किया जाये तो उनकी क्षमताओं का भरपूर लाभ उठाया जा सकता है और प्रबन्धन का कार्य भी ठीक प्रकार से चल सकता है ।

4. सामाजिक एवं तकनीकों प्रणाली का सिद्धान्त (Social Technique Theory) - इस सिद्धान्त के अन्तर्गत तकनीकी तथा सामाजिक सम्बन्ध पर साथ-साथ आकर्षित किया जा सकता है । वस्तुत: किसी संगठन के अन्तर्गत कार्य करने वालों का सामाजिक सम्बन्ध उस कार्य से घनिष्ट रूप में सम्बन्धित होता है । इसका स्पष्ट अर्थ यही हो सकता है कि यदि किसी संगठन में कोई व्यक्ति तकनीकी का प्रयोग करने में अत्यन्त कुशल है तो व्यक्ति अपने सामाजिक सम्बन्धों में भी उत्तम होना चाहिए और संगठन के प्रबन्धकों द्वारा उसे प्रतिष्ठा जनक व्यवहार दिया जाना चाहिए ।

बहुधा यह देखने में भी आता है कि बड़े-बड़े कारखानों, मिलों और कारखानों में तकनीकी विशेषज्ञ व्यक्ति स्वयं ही ऊँचा सम्मान प्राप्त करता है । उनकी ऊर्ध्वमुखी गतिशीलता को कोई चुनौती नहीं दे पाता और ये विशेषज्ञ संगठन के उत्पादन में भी पूर्ण रूप से सहायता भी करते हैं । एक कोयले की खान का ।

अनुभव ग्रहण करते हुए इस सम्बन्ध में 'ट्रिस्ट तथा बेमफोर्थ' (1951) ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है - "So close is the relationship between the various aspects that the and psychological phenomenon can be understood only in terms of the engineering facts and of the way the technological system as a whole behavior the environment of the underground situation."

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. शैक्षिक प्रबन्धन सम्बन्धित निम्नलिखित सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए ।
   (अ) गेटजल का संस्थागत प्रबन्धन प्रतिमान
   (ब) संगठनात्मक दृष्टिकोण पर आधारित शैक्षिक प्रबन्धन सिद्धान्त

2.14 सारांश (Summary)

ज्ञान के अपार विस्तार के साथ शैक्षिक संस्थाओं का बढ़ना स्वाभाविक है और प्रोद्योगिकी के इस युग में तकनीकी दृष्टि से इनके प्रबन्धन हेतु सिद्धान्तों का ज्ञान आवश्यक है । सिद्धान्तों का प्रयोग व्यक्ति को भविष्य में कार्य करने के लिए उचित मार्गदर्शन करता है । प्रबन्धन के गुण और दोषी की व्याख्या करने में भी सिद्धान्तों से मदद मिलती है । प्रस्तुत अध्याय इस विचारधारा को आधार बनाकर प्रस्तुत किया गया है जिसमें कई प्रमुख शिक्षाविदों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है जो पाठक में शैक्षिक प्रबन्धन के प्रति एक गहरी समझ विकसित कर सकेगा ।

अभ्यास प्रश्न (Exercises)

1. शिक्षा प्रबन्ध का अर्थ समझाइये । यह सामान्य प्रबन्ध से किस प्रकार भिन्न है ?
2. शिक्षण संस्थान और सामाजिक प्रणाली पर आधारित शिक्षा प्रबन्ध सिद्धान्त वर्णन कीजिए ।
3. निर्णय प्रक्रिया का शैक्षिक प्रबन्धन में क्या स्थान है? निर्णय प्रक्रिया के प्रतिमानों द्वारा स्पष्ट कीजिए ।
4. शैक्षिक प्रबन्धन सम्बन्धित सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए ।

2.15 संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

1. Deniel, E. Griffiths. “Administrative Theory and Change in Organization in Mathew B. Miles Ed. Innovations in Education” New York : Teachers College Press 1994, P. 428
2. H.A Simon, “Decision Making and Administrative,Organization”,Public Administration Reviews.
3. John I.Nwankwo, “Education Administration. Theory and Practices”Vikas Publishing House, 1982, P29
4. Makherji, S.N. “Administration of Education, Planning and Finance, Acharya Book Depot, Baroda, 1970, P.41

इकाई 03

शैक्षिक प्रबन्धन के उपागम

(Approaches to Educational Management)

इकाई की संरचना

3.1 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

3.2 प्रस्तावना (Scientific Management Approach)

3.3 मानवीय संबंध उपागम (Human Relation Approach)

3.4 व्यवहारवादी उपागम (Behavioral Approach)

3.5 प्रणाली उपागम (System Approach)

3.6 आकस्मिकता उपागम (Contingency Approach)

3.7 कार्यक्रम मूल्यांकन समीक्षा तकनीक उपागम-पर्ट (Programme Evaluation and Review Technique Approach (P.E.R.T.)

3.8 प्रबन्धकीय भूमिका उपागम (Managerial Role Approach)

3.9 सारांश (Summary)

3.10 संदर्भ सूची (Reference)

3.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई में आप शैक्षिक प्रबन्धन के विभिन्न उपागम के बारे में पढ़ेंगे । ये उपागम शैक्षिक प्रबन्धन का संचालन करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है ।

इस इकाई के पड़ने के बाद -

1. वैज्ञानिक प्रबन्ध उपागम की अवधारणा, विशेषताएँ तथा कमियों के बारे में जान सकेंगे।
2. मानवीय संबंध उपागम की अवधारणा, विशेषताएँ तथा कमियां समझ जायेंगे ।
3. व्यवहारवादी उपागम प्रबन्धन के महत्व को जान लेंगे ।
4. प्रणाली उपागम की विशेषताओं के बारे में समझ जायेंगे ।
5. आकस्मिकता उपागम की विशेषताओं के बारे में जान लेंगे ।
6. कार्यक्रम मूल्यांकन समीक्षा तकनीकी उपागम (पर्ट) के पद, विशेषताएँ तथा कमियों के बारे में जान लेंगे ।
7. प्रबन्धकीय भूमिका उपागम अवधारणा के बारे में समझ सकेंगे ।

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रबन्ध एक ऐसा नेतृत्व कार्य है जिसमें लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मानवीय प्रयासों का नियोजन, संगठन, निर्देशन एवं नियंत्रण किया जाता है । यह भौतिक एवं मानवीय संसाधनों के

कुशलतम उपयोग द्वारा उचित निर्णयन एवं निर्देशन के माध्यम से दूसरों से कार्य लेने की कला है ।

प्रबन्ध के सिद्धान्तों या उपागम की प्रकृति मूलत: अस्थायी, विकासशील, लचीली तथा अल्पकालिक है । प्रबन्ध सहित अधिसंख्या सामाजिक विज्ञान के उपागमों या सिद्धान्तों की प्रकृति उतनी विश्वसनीय, स्थायी, सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक नहीं जितनी प्राकृतिक विज्ञान की है । राज्य के बदलते स्वरूप तथा कार्यक्षेत्र ने प्रबन्ध सिद्धान्तों को भी परिवर्तित किया है ।

प्रबन्ध की विचारधारा उतनी ही पुरानी है जितनी की मानव सभ्यता, को जो स्वरूप आज विद्यमान है उसके पीछे अनेक मतों, विचारधाराओं, दृष्टिकोण, उपागम की रही है । पिछली एक सदी ने प्रबन्ध को अनेक मत, मतान्तरों से समझने का प्रयास किया गया है । प्रबन्ध विभिन्न मत उपागम भ्रमित करने की स्थिति पैदा कर दी है । इसलिए प्रबन्धकों को इन उपागम, विचारधाराओं को समझने का प्रयास करना पड़ता है ।

3.2 वैज्ञानिक प्रबन्ध उपागम (Scientific Management Approach)

विज्ञान एवं प्रौधोगिकी के क्षेत्र में हुई आशातीत प्रगति से उद्योग सहित जीवन न्यूनाधिक मात्रा में प्रभावित हुआ है । इससे ज्ञान और समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं । उसमे से एक प्रबन्ध का क्षेत्र प्रबन्ध के क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाने वाले एफ. डब्ल्यू. टेलर 'वैज्ञानिक प्रबन्ध' के जन्मदाता कहलाते हैं । चूँकि प्रबन्ध का मुख्य लक्ष्य अधिकतम कार्य कुशलता तथा सम्पन्नता का स्तर प्राप्त करना होता है । अत: वैज्ञानिक विधियों, उपकरणों तथा सिद्धान्तों को अपनाना चाहिए जो, लक्ष्यों की प्राप्ति में प्रभावी योगदान कर सके ।

पीटर ड्रकर के अनुसार, "वैज्ञानिक उपागम का अर्थ कार्य का संगठित अध्ययन, कार्य का सरलतम भागों में विश्लेषण तथा प्रत्येक भाग व्यक्तियों द्वारा निष्पादन करने हेतु व्यवस्थित सुधार करने से है । "

मार्शल के शब्दों में, "वैज्ञानिक प्रबन्ध उपागम मुख्य रूप से व्यक्तियों की व्यवस्था की विधि से है जिसका उद्देश्य व्यक्तियों के दायित्वों की सीमा घटाकर, उनकी कार्यकुशलता बढ़ाना है तथा साधारण शारीरिक क्रियाओं के संबंध में दिए गए आदेशों का विवेकपूर्ण अध्ययन करना है । "

टेलर की दृष्टि में वैज्ञानिक प्रबन्धवाद एक मानसिक क्रान्ति है जो लाभ के साथ-साथ व्यक्तियों की सम्पन्नता भी सुनिश्चित करती है । वैज्ञानिक नियमों, सिद्धान्तों, ओं तथा सुस्थापित परिणाम पर आधारित वैज्ञानिक प्रबन्ध की विचारधारा मूलत: न्यूनतम कार्य पर अधिकतम लाभ प्राप्त करने पर बल देती है ।

विशेषताएँ -

1. प्रबन्ध प्रक्रिया एक विज्ञान है, प्रबन्ध में तथ्यों तथा सिद्धान्तों पर आधारित वैज्ञानिक विधियों तथा कार्य प्रक्रिया पर बल दिया जाता है । यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने मे भी बल देता है ।
2. यह उपागम मानता है कि प्रत्येक कार्य नियोजित ढंग से किया जा सकता है तथा नियोजन की व्यवस्था करनी भी चाहिये ।
3. उद्देश्य पूर्व से निर्धारण हो तथा उसकी प्राप्ति हेतु सम्पूर्ण शक्ति तथा कोशल का प्रयोग करना चाहिए ।
4. यह उपागम मानव के हितों के प्रति उदार है तथा संगठन के अन्दर मानवीय विकास को महत्त्वपूर्ण मानता है ।
5. संसाधनों का समुचित उपयोग होना चाहिए ।
6. निर्णयों को वैज्ञानिक तथ्यों तथा उनके विश्लेषण पर आधारित होना ।
7. यह उपागम संघर्ष के स्थान पर सहकारिता पर बल देता है ।
8. यह व्यक्तियों को अधिक मेहनत कराने के लिये प्रोत्साहन देता है ।
9. यह उपागम अधिकार तथा उत्तरदायित्वों की सीमा स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है ।
10. प्रत्येक कार्य को करने के लिये एक सर्वश्रेष्ठ विधि (One best way) खोजने पर बल देता हे ।
11. यह कार्य में रुढ़ियों, अनुमान, 'भूल एवं सुधार' विधियों के स्थान पर खोजने पर बल देता हे ।

कमियाँ (Weaknesses)

(1) यह उत्पादकता प्रधान विचारधारा है जो केवल अधिकतम उत्पादन पर ही बल देती है । यह व्यक्तियों के जीवन यांत्रिकता में बल देती है ।

(2) यह मानवीय तत्त्व की उपेक्षा करती है जबकि यथार्थता यह है कि किसी भी उपक्रम को मानव की सहायता के बिना चलाया जाना संभव नहीं है ।

(3) व्यक्ति से अधिक मेहनत के कार्य कराने के लिए कठोर नियंत्रण की आवश्यकता को वर्तमान समय में सही नहीं मानते हैं ।

(4) कार्य की एक श्रेष्ठ विधि की मान्यता को वर्तमान समय में स्वीकार नहीं किया जाता ।

(5) यह एक यांत्रिक उपागम है जिसमें सामाजिक संतुष्टि की उपेक्षा की जाती है ।

(6) कुछ आलोचकों के अनुसार यह निरंकुश प्रबन्ध को बढ़ावा देती है ।

(7) इस उपागम को लागू करना कठिन व खर्चीला है ।

3.3 मानवीय सम्बन्ध उपागम (Human Relations Approach)

मानवीय सम्बन्ध उपागम को अनौपचारिक संगठन उपागम भी कहा जाता है । इसे नवशास्त्रीय उपागम (Neoclassical.Approach) या सामाजिक आर्थिक उपागम भी कहा जा सकता है । एलन मेयो ने इसे डाक्टरी विधि या दृष्टिकोण (Clinical Methods Approach) भी कहा है ।

मानवीय संबंध उपागम का केन्द्रीय बिन्दु मानव व्यवहार है । मानवीय संबंधों का प्रशासनिक कुशलता तथा संगठनात्मक गतिशीलता पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है । मानवीय सम्बन्ध, मनुष्यों को कार्यदशाओं के इस प्रकार का एकीकरण है जिसमें उन्हें आर्थिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक संतोष सहित उत्पादकता एवं सहयोगात्मक रूप से कार्य करने की प्रेरणा मिलती है ।

इस उपागम के प्रमुख समर्थक हावर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर को मेरी पार्कट फोलेट 1940, एल्टन मेसो (1993-1944) तथा फिटज रोथिलिसबर्जर 1939 है । इन प्रोफेसर मानवीय सम्बन्धों पर प्रयोग कर निष्कर्ष निकाला कि संगठन के विकास के लिए संगठन में कार्य करने वाले प्रत्येक कार्यकर्ता को यह आभास होना चाहिये कि उसके कार्य की ओर ध्यान दिया जा रहा है और अच्छे कार्य को स्वीकृत एवं प्रशंसित किया जा रहा है । अभिप्राय यह है कि प्रत्येक कार्यकर्ता को उसके अच्छे कार्य के प्रति संतोष एवं तुष्टि की अनुभूति कराई जानी आवश्यक है ।

विशेषताएँ

(1) यह उपागम यह मानता है कि प्रत्येक मनुष्य मशीन नहीं है बल्कि यह संजीव, संवेदनशील तथा अपने-अपने विचारों से युक्त इकाई है जो समूह के नियमों से प्रभावित होता है ।

(2) यह उपागम व्यक्तियों का कार्यों के साथ ऐसा एकीकरण है जो उन्हें आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक संतुष्टि प्रदान करता है ।।

(3) यह गतिशील दृष्टिकोण है जिसमें मानवीय तत्व सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है ।

(4) मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जो समूह के द्वारा निर्धारित मापदण्डों तथा प्रतिमानों से प्रभावित होता है तथा स्वयं की समस्याओं के कारण संगठन के कार्यक्रम को प्रभावित करता है ।

(5) संगठन मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक तंत्र है इसलिये उत्पादकता पर तत्त्वों की तुलना में सामाजिक एवं वैज्ञानिक तत्त्वों का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक पडता है ।

(6) व्यक्तियों के मध्य संबंध हमेशा कानूनों तथा नियमों से निर्धारित तथा संचालित नहीं होते हैं बल्कि यह संबंध नैतिक तथा मनोवैज्ञानिक तत्वों से संबंधित होते हैं ।

(7) यह उपागम व्यक्तियों को अभिप्रेरणा प्रदान करने पर बल देता है जिससे ' के समस्त साधनों का सदुपयोग हो सके । ।

(8) यह उपागम मानव समूहों को अव्यवस्थित, स्वार्थी तथा निरुद्देश्य मानने के बजाय सकारात्मक दृष्टिकोण से विश्लेषण करता है ।

(9) संगठन में कार्य करने वालों के व्यक्तिगत हितों तथा संगठनात्मक उद्देश्यों के मध्य समन्वय स्थापित करने पर बल देता है ।

(10) स्वायत्तता प्रदान किये जाने से कार्यरत व्यक्तियों में पहल शक्ति का विकाश होता है।

उपर्युक्त बिन्दुओं के आधार पर अच्छे मानव संबंध विकसित कर सकते हैं । इन्हीं के द्वारा संगठन में कुशलता आ सकती है और संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है ' मानव संसाधनों की प्राप्ति के लिए शिक्षण प्रशिक्षण, कुशल नेतृत्व, नवाचार निष्पक्ष व्यवहार, सत्यनिष्ठा,, अपनत्व, दृढ़ इच्छा शक्ति, शिकायत निवारण, व्यक्तिगत विकास के अवसरों का प्रयास किया जा, सकता है ।

कमियाँ

(1) यह उपागम प्रबन्ध में व्यक्तियों को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ज्ञान देता है व्यवहार में संगठन में दूसरे संसाधन भी महत्वपूर्ण होते हैं ।

(2) मानव व्यवहार की क्षणिकता की प्रवृत्ति को देखते हुए मानव संबंधों के निर्माण को लेकर जितना श्रम और धन व्यय किया जाता है वह किसी भी क्षण निरर्थक सिद्ध हो सकती है । यह कोई गारण्टी नहीं मानव सम्बन्ध स्थायी रह सकते हैं ।

(3) यह मानव व्यवहार ही प्रबन्ध में सब कुछ नहीं है ।

(4) मानव संबंध उपागम में आर्थिक पक्ष छोड़ दिया गया है । इसमें सारा व्यक्तिगत सम्बन्धों पर लगाया गया है, न कि कार्य की प्रकृति पर ।

(5) यह उपागम व्यक्तियों की संतुष्टि पर अधिक बल देता है जबकि यह क्षणिक है ।

(6) प्रबन्ध के कार्यों को महत्त्व नहीं देती है ।

(7) यह आवश्यक नहीं कि अच्छे मानवीय संबंधों से मनोबल सदैव ऊँचा रहे तथा उत्पादन उच्च हो ।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि जिस तरह केवल अधिक दक्षता पर बल देकर संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करना सम्भव नहीं है ठीक उसी प्रकार केवल मानव हितों चिन्ता करके संगठन के लक्ष्यों को तिलांजलि देना भी उचित नहीं है ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. वैज्ञानिक प्रबन्ध उपागम की अवधारणा क्या है?
2. वैज्ञानिक प्रबन्ध उपागम की चार विशेषताओं का वर्णन कीजिये ।
3. वैज्ञानिक प्रबन्ध की कमियां स्पष्ट कीजिए ।
4. मानवीय संबंध उपागम की अवधारणा क्या है?,
5. वैज्ञानिक प्रबन्ध उपागम तथा मानवीय संबंध उपागम में अन्तर बताईए

3.4 व्यवहारवादी उपागम (Behavioural Approach)

मानवीय संबंध उपागम में सुधार के रूप में व्यवहार विज्ञान उपागम का प्रारम्भ हुआ । सामान्यत:, मानव संबंध उपागम तथा व्यवहारवादी उपागम एक समान प्रतीत होते हैं । क्योंकि दोनों का संबंध संगठन से जुड़े व्यक्तियों से है । व्यवहारवादी के लम्बे अध्ययन तथा विश्लेषणों के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि प्रबन्ध की अधिकांश समस्याओं का निदान व्यवहार के समझने में निहित है तथा मानव व्यवहार ही कार्यों. का केन्द्र बिन्दु है । मानव संबंध उपागम व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर बल देता है जबकि व्यवहारवादी उपागम मानव तथा संगठन दोनों की आवश्यकताओं पर बल देता है अर्थात् मानव तथा संगठन दोनों एक दूसरे को सहयोग करे । व्यवहारवादी उपागम व्यक्ति के अन्तर्मन को समझने पर बल देता है ।

व्यवहारवाद का प्रारम्भ 1930 में हुआ । इसके पश्चात् चेस्टर बनार्ड तथा हरबर्ट साइमन ने लोक प्रशासन में प्रयुक्त किया । डेविड ईस्टर, ब्लाऊ मर्टन, सायर्स, फेटेल हैडी डागलस मेक्ग्रेगर मैस्लों, हर्जबर्ग, रेन्सिस लिकर्ट, कुर्त लेविल, जे. एल. मोटेनो आदि व्यवहारवादी उपागम विकसित करने में योगदान दिया । व्यवहारवाद एक वैज्ञानिक पद्धति है क्योंकि इसमें अनुभव व्यवहार तथा मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणाओं, सामाजिक तथा मनोशास्त्रीय सिद्धान्तों का प्रयोग होता है । साइसन (1945) ने अपने पुस्तक ' 'प्रशासनिक व्यवहार' ' में भी इस विषय को वैज्ञानिक स्वरूप देने पर बल दिया ।

डेविड ईस्टन ने नियमितताएँ सत्यापन, तकनीकें, परमाणीकरण मूल्य निरपेक्षता, क्रमबद्धता, विशुद्ध विज्ञान, एकीकरण का व्यवहारवादी उपागम की मूल मान्यताएँ बताई हैं । इस प्रकार ईस्टन का मानना है कि व्यवहारवाद संस्थाओं की नियमित प्रक्रियाओं के सत्यापन को महत्त्व देता है ।

विशेषताएँ

1. व्यवहारवाद किसी संगठन के विभिन्न अंगों, कार्यों, तंत्र को स्थूल (macro) रूप समझने के स्थान पर सूक्ष्म (micro) रूप अध्ययन करने पर बल देता है । संगठन की पर्यवेक्षण प्रणाली, वित्त, समन्वय, नेतृत्व, आयोजन प्रक्रिया आदि पक्षों को एक साथ अध्ययन करने के स्थान पर एक-एक पक्ष का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाना चाहिये ।
2. इसमें अध्ययन में ली गई प्रविधि विश्वसनीय, प्रामाणिक तथा प्रभावी होती है ।
3. यह उपागम मानव व्यवहार तथा तकनीकी वातावरण का एक अच्छा समागम है ।
4. यह उपागम प्रबन्धकीय समस्याएँ हल करने में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाता है ।
5. कर्मचारियों की योग्यताओं, आवश्यकताओं, भावनाओं, मूल्यों आदि में भिन्नता पाया जाना स्वाभाविक है । यह विचारधारा मतभेदों को हमेशा खराब नहीं मानता है उनके सकारात्मक प्रभाव को मान्यत प्रदान करता है ।
6. यह उपागम मानता है कि मानव व्यवहार को वातावरण के प्रभावों से अलग करके विचार नहीं किया जा सकता ।

7. इसमें मनोविज्ञान, समाजशास्त्र एवं मानव विज्ञान के तत्त्वों का संयोजन है ।

कमियाँ

1. मानव व्यवहार का अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाना आसान नहीं है त न ही विज्ञान जैसे प्रमाप मानव व्यवहार हेतु निर्धारित किए जा सकते हैं ।
2. यह प्रबन्ध के क्षेत्र को सीमित करता है ।
3. यह उपागम इतिहास को स्वीकारने तथा समझने में रुचि नहीं लेता है वर्तमान तो भूतकाल पर ही आधारित होता है । ।
4. यह सूक्ष्म अध्ययन पर बल देता है जबकि वृहद् स्तरीय अध्ययन एवं उपेक्षित रह जाता है । यह उपागम संकीर्णता से ग्रस्त है ।
5. व्यवहारवादी उपागम सैद्धान्तिक व्याख्या विश्लेषण करता है ।

3.5 प्रणाली उपागम (System Approach)

पिछले कुछ वर्षों में प्रबन्धन के क्षेत्र में प्रणाली उपागम को काफी महत्त्व मिला है । यह एक ऐसा उपागम है जो समस्त क्रियाओं को अलग-अलग विचार न करके सम्पूर्णता में देखता है । किसी प्रक्रिया के विभिन्न अन्तनिर्भर एवं अन्तर सम्बन्धित भागों के जटिल संयोजन को तंत्र का नाम दिया । प्रणाली की व्याख्या करते हुए हेन्डरसन (1936), पारसन्ज एवं शिल्स (1951) हयुज तथा बौडिच (1977) ने कहा कि प्रणाली अन्तःसम्बन्धित तथा आत्मनिर्भर भागों की एक ऐसी श्रृंखला है जिनके किसी एक भाग की अन्तक्रिया सम्पूर्ण प्रणाली को प्रभावित करती है । डेनियल ग्रिफिथ्स (1964) ने भी प्रणाली को पारस्परिक अन्तःक्रियाओं में रत तत्त्वों का मिश्रण बताया ।

यदि इन्हें आधार विद्यालय प्रणाली के संदर्भ में देखें तो विद्यालय भी एक प्रणाली है जिसमें प्रशासक, शिक्षक, विधार्थी, अभिभावक, समुदाय आदि उप प्रणाली है तथा यह सभी परस्पर एक दूसरे को निरन्तर प्रभावित करते रहते हैं ।

प्रणाली दो प्रकार की हो सकती है - (1) बन्द **(Close)** (2) मुक्त **(Open)** । बन्द प्रणाली में जहाँ बाह्य पर्यावरण, प्रणाली के साथ परस्पर क्रिया नहीं करता है, वहाँ मुक्त प्रणाली में बाह्य पर्यावरण संबंधित प्रणाली से परस्पर प्रभावित होता है तथा प्रभावित भी करता है । इस आधार पर । विद्यालय निश्चित रूप से मुक्त प्रणाली में आता है क्योंकि यह अपने निकटस्थ पर्यावरण क्षेत्रीय, जनसख्या, समुदाय के मूल्य परम्पराएँ, भाषा, उद्देश्य सभी प्रभावित होते हैं तथा इन्हें प्रभावित करता है ।

बाको ने विद्यालय प्रणाली को और भी अधिक स्पष्ट किया है जिसके अनुसार विद्यालय प्रणाली विभिन्न प्रमुख प्रणाली राजनैतिक प्रणाली, सांस्कृतिक प्रणाली, आर्थिक प्रणाली, " प्रणाली से प्रभावित होती है । विद्यालय प्रणाली केवल इससे प्रभावित होती है अपितु इनको प्रभावित भी करती है ।

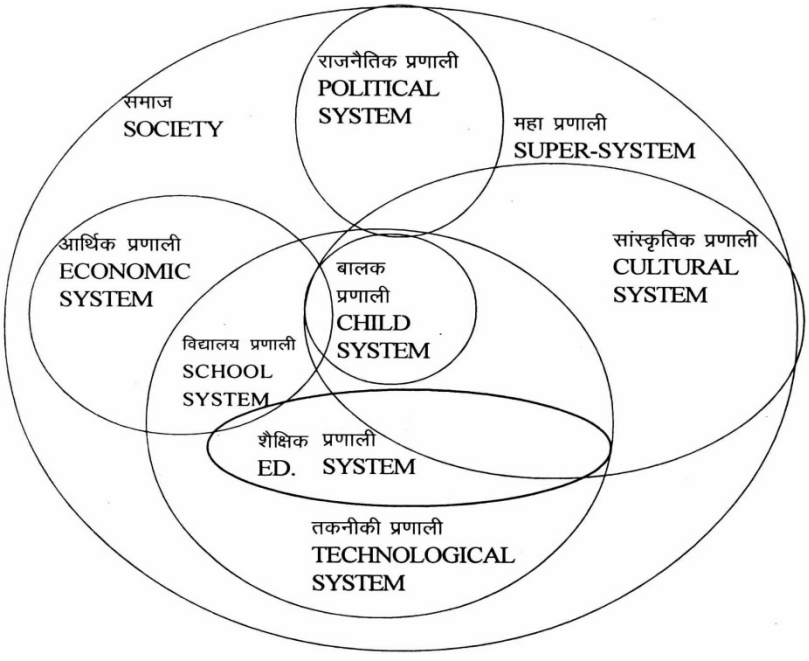

सामाजिक महा प्रणाली, बालक एवं विद्यालय

विद्यालय (बाको द्वारा प्रतिपादित माडल के आधार पर) शैक्षिक प्रणाली का उप भाग या उप प्रणाली है जिस पर महासामाजिक प्रणाली राजनैतिक, आर्थिक तकनीकी व सांस्कृतिक प्रभाव पड़ रहे हैं । विद्यालय प्रणाली शिक्षा प्रणाली को प्रभावित कर रहे हैं । इनके अतिरिक्त और भी अन्य उप प्रणालियाँ यथा धार्मिक, दबाव समूह आदि हैं जो शिक्षा व विद्यालय प्रणाली को प्रभावित करते हैं जिसके केन्द्र बिन्दु बालक है ।

प्रणाली उपागम की विशेषताएँ

(1) शैक्षिक प्रबन्धन समाज के द्वारा सृजित किए गए वातावरण में कार्य करता है इसलिए इसे सामाजिक तंत्र (Social System) कहा जाता है ।

(2) प्रणाली उपागम के आधार पर प्रशासक सहज अनुमान लगा लेते हैं । विद्यालय प्रणाली की उप प्रणाली में कहीं क्या कमी है, वह कैसे दूर किया जा सकता है ।

(3) प्रबन्धन एक गतिशील एवं अनुकूलशीन तंत्र (Dynamic and Adaptive System) है क्योंकि विद्यालय उपक्रम के अति जीवन एवं विकास के लिए अपनी प्रक्रियाओं, सिद्धान्तों एवं अवधारणाओं में परिवर्तनशील वातावरण के साथ संतुलन बिठाना होता है।

(4) इस उपागम से शैक्षिक प्रबन्धन समस्या या विद्यालय पर डालने वाले प्रभावों यथा संस्थागत, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक का विश्लेषण कर पाता है ।

(5) इसमें प्रशासक एक समग्र प्रणाली के साथ कार्य करता है ।

(6) यह अन्य मान्यताओं के विपरीत, विद्यालय संगठन को एक गतिमान, परस्पर क्रियापूर्ण तर्कसंगत व्यापक प्रणाली मानकर चलता है ।

(7) इसके आधार पर शैक्षिक समस्याओं की पहचान निदान तथा उनका समाधान निकाला जा सकता हे

(8) यह उपागम एक अन्तर विषयक उपागम (Interdisciplinary Approach) है ।

उपर्युक्त विशेषताओं से स्पष्ट है कि यह उपागम प्रबन्धन में ऐसा । है जो समाज द्वारा सृजित वातावरण में कार्य करता है एवं वातावरण सम्बन्धी सभी घटकों के साथ पारस्परिक क्रिया कर उपक्रम (विद्यालय) को व्यवस्था प्रदान करता है ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. व्यवहारवादी उपागम से आप क्या समझते हैं 7
2. व्यवहारवादी उपागम की विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।
3. व्यवहारवादी उपागम तथा मानवीय संबंध उपागम में अन्तर ।
4. प्रणाली उपागम की अवधारणा तथा विशेषताओं का वर्णन ।

3.6 आकस्मिकता उपागम (Contingency)

इस उपागम को हिन्दी में संभाव्यता, परिस्थितिगत, सांयोगिक, प्रासंगिक, स्थित्यात्मक आदि नामों से पुकारा जाता है । इस उपागम की मान्यता यह है कि "प्रबन्ध करने की कोई श्रेष्ठ विधि नहीं है" 'There is no best way to Manage' सब कुछ परिस्थिति पर निर्भर करता है प्रचलित परिस्थितियों के अनुरूप ही उचित विचार या विचारधाराओं के उचित सम्मिश्रण को अपनाना चाहिये । अत: प्रधानाध्यापक को वही उपागम, विचार अपनाना होता है जो वर्तमान परिस्थिति में प्रासंगिक होता है । इस प्रकार प्रधानाध्यापक के निर्णय, कार्य परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं । इस उपागम के अनुसार प्रधानाध्यापक सदैव परिस्थितियों के प्रति सजग रहते हैं उनमें ऐसी विचारधाराओं को अपनाता जिसमें कि सुगमतापूर्वक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके । इस प्रकार इस विचारधारा के अनुसार किसी एक विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता रखने की अपेक्षा परिस्थितियों के अनुरूप व्यवहार कना ही बुद्धिमता है ।

विशेषताएँ

1. यह उपागम प्रबन्ध कार्य को परिस्थितिजन्य (Situational) अथवा (Contingent) मानती है । प्रधानाध्यापकों का प्रत्येक निर्णय व कार्य परिस्थिति पर निर्भर है ।
2. यह उपागम प्रबन्धन विधि एवं निर्णयों को जोड़ने पर बल देती है ।
3. यह उपागम निर्णयों व कार्यों को करने से पूर्व उनके प्रभावों से उत्पन्न होने वाले परिणामों पर भी ध्यान देती है ।
4. यह प्रबन्धकीय निर्णयों को परिस्थितियों के संदर्भ में समायोजित पर जोर देती है ।
5. इसके अनुसार प्रधानाध्यापक वही व्यवहार करे जो परिस्थिति की मॉग के अनुकूल होते हैं ।
6. प्रत्येक परिस्थिति के लिये प्रबन्धकीय सिद्धान्त तत्कालिक (Readymade) नहीं है । सिद्धान्त को अपनाते समय तत्कालीन परिस्थितियों, प्रसंगों, सांयोगिक घटनाओं आदि को ध्यान में रखना होता है ।

7. प्रत्येक विद्यालय अनोखा है और उनकी समस्या भी अनोखी है अत: निर्णय भिन्न भिन्न समस्याओं का भिन्न-भिन्न होगा ।
8. यह उपागम स्थिति की वास्तविकताओं के अनुकूल कार्य' करता है । पूर्व निर्धारित सिद्धान्तों, दृष्टान्तों, तथ्यों की सर्वव्यापकता को स्वीकार नहीं करता है ।
9. यह उपागम एक व्यावहारिक दृष्टिकोण रखता है । यह सिद्धान्त एवं व्यवहार की खाई को कम करता है तथा स्थिति का वास्तविक आकलन करता है ।
10. यह प्रधानाध्यापकों तथा प्रशासकों को निर्णय लेने की अधिक स्वायत्तता प्रदान करता है जिसमें इस उपागम के आधार पर परिस्थितियों की मांग तथा व्यक्तियों के आवश्यकता के अनुरूप निर्णय लिया जा सकें ।
11. यह प्रधानाध्यापकों को परिस्थिति की जटिलताओं के प्रति सचेत बनाता है ।
12. इस उपागम के आधार पर ठोस निर्णय लिये जा सकते हैं ।
13. यह परिस्थिति की जोखिमों, अनिश्चितताओं तथा दुष्प्रभावों से संगठन की रक्षा करता है ।
14. यह परिवर्तनों का प्रबन्ध करने में सहायक है ।
15. यह विभिन्न प्रबन्धकीय समस्याओं का समाधान व्यावहारिक रूप से प्रस्तुत करता है ।

कमियाँ

1. इस उपागम में वैज्ञानिक वैधता का अभाव है । इसको प्रयोग करके देखना कठिन है ।
2. कुछ विचारक इसे जटिल उपागम मानते हैं क्योंकि परिस्थितियों का अध्ययन व विश्लेषण करना, समय की माँग तथा व्यक्तियों की आवश्यकता को पहचानना बहुत कठिन है ।
3. यह उपागम साधारण योग्यता वाले प्रधानाध्यापकों के लिये उपयोगी नहीं है क्योंकि उच्च स्तर की योग्यता रखने वाले प्रधानाध्यापक ही परिवर्तनों के साथ संतुलन बना सकते हैं ।

कुछ विद्वान इसे अलग से उपागम नहीं मानते, क्योंकि प्रभावशाली प्रबन्धन के लिये प्रत्येक प्रधानाध्यापक प्राप्त ज्ञान का उपयोग परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ही करता है इसलिए इसे अलग से उपागम नहीं माना जा सकता है । इन सभी सीमाओं के पश्चात् भी इसे प्रधानाध्यापकों की सफलता के लिए उपयोगी कहा जा सकता है ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. आकस्मिकता उपागम की अवधारणा क्या हे ?
2. आकस्मिकता उपागम की विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।
3. आकस्मिकता की कमियाँ बताइए ।
4. आकस्मिकता प्रणाली उपागम से किस प्रकार भिन्न हे ? वर्णन कीजिए ।

2.7 कार्यक्रम मूल्यांकन तथा समीक्षा तकनीक उपागम - पर्ट (Programme Evaluation and Review Technique Approach) (PERT)

कार्यक्रम मूल्यांकन तथा समीक्षा तकनीक अर्थात् पर्ट का विकास सर्वप्रथम अमेरिका के नेवीज स्पेशल प्रोजेक्ट ऑफिस तथा लाकहीड एथर क्राफ्ट निगम द्वारा सन् 1958 में, किया गया था । जब पोलोरिस बैलस्टिक मिसाइल बनाई जा रही थी । इस परियोजना में सम्मिलित ब्रूज, ऐलन तथा हेमिल्टन नामक विद्वानों ने पर्ट वैज्ञानिक विधि से प्रयोग किया । पर्ट तकनीक के द्वारा किसी के लिए नियोजन करते समय एवं साधनों के आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाता है । कार्य के पश्चात् उसकी समीक्षा करके क्रियान्वयन संबंधित आवश्यक संशोधन किए जाते हैं । इस प्रकार पर्ट ' परियोजना को विभिन्न आत्म निर्भर गतिविधियों में विभाजित करके उनके तर्कसंगत अनुक्रम का किया जाता है । आवश्यक सम्बन्धों को प्रदर्शित करने के लिए आलेख प्रदर्शन किया जाता है ।

पर्ट के पद

1. उद्देश्यों का निर्धारण (formation of Objectives) -

उद्देश्यों का निर्धारण करना पर्ट उपागम का प्रथम तथा महत्त्वपूर्ण पद । इसमें उद्देश्यों का अत्यधिक स्पष्ट तथा वस्तुनिष्ठ शब्दों में परिभाषित किया जाता है । इन उद्देश्यों के पर ही क्रियाएँ एवं पदों का निर्धारण किया जाता है । इन उद्देश्यों को निर्धारित कर संबंधित कर्मचारी सम्प्रेषित कर दी जाती है ।

2. कार्य विभाग संरचना तैयार करना (Preparing a Work break down structure)

पूरे कार्य को उप क्रियाओं तथा उप अंगों के संदर्भ में विस्तृत रूप से विश्लेषित कर दिया जाता है । यह एक प्रकार का कार्य विश्लेषण है जिसमें प्रत्येक कार्य को तब तक उपविभाजित किया जाता है जब तक कि वांछित स्तर पर नहीं पहुँच जाते हैं । विभाग संरचना एक के रूप में होती है जिसको शिखर पूर्ण कार्य प्रथम स्तर पर इसके मुख्य अंग होते हैं तथा दूसरे स्तर पर प्रत्येक अंग के कार्य होते ।

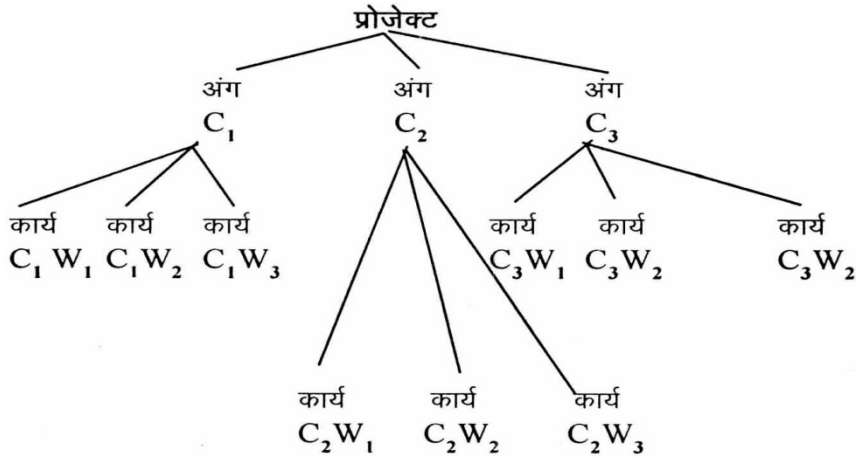

3. तंत्र आकल्प (Network Design)

पर्ट के तंत्र आकल्प में यह दिखाया जाता है कि किस प्रकार विभिन्न अंग एवं कार्य पारस्परिक रूप से सम्बन्धित एवं निर्भर हैं तथा पहले कार्य कौनसा है तथा अन्य कार्य किस क्रम में आते हैं। कार्यों व अंगों की सभी वरीयतायें उनके पारस्परिक सम्बन्धों एवं निर्भरताओं के साथ नेट वर्क संरचना मे प्रदर्शित की जाती है । नेटवर्क के आधारभूत तत्त्व घटनाएँ, क्रियाएँ तथा बाधाएँ हैं, घटनाएँ किसी क्रिया के आरम्भ अन्त का प्रतिनिधित्व करती है । इन घटनाओं को वृत, त्रिभुजों, आयतों के रूप में प्रदर्शित किया जाता है । इनको तीर के निशानों से जो क्रियाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, से एक दूसरे से जोड़ दिया जाता है । इसमें कार्मिकों, संसाधनों एवं समयका प्रयोग नहीं किया जाता है । ये केवल एक घटना व दूसरी घटना की निर्भरता प्रदर्शित करती है । इस प्रकार रूपांकन में क्रियाओं के द्वारा जुडी अनेक घटनायें आ जाती हैं ।

4. समय अनुमान का निर्धारण (Making Time Estimate)

गतिविधियों को पूरा होने में लगने वाला समय अनिश्चित होता है । अत: किसी भी गतिविधि के संबंध में तीन प्रकार के समयानुपात लगाए जाते हैं -

(1) आशावादी न्यूनतम अनुपात (Optimistic Time Estimate)- यह न्यूनतम अनुमानित समय है जो किसी गतिविधि को पूरा करने में लगेगा । यह सभी परिस्थितियां अनुकूल हैं ।

(2) निराशावादी समय अनुमान (pessimistic Time Estimate) - यह वह अनुमानित समय है जिसमें समस्त परिस्थितियों के प्रतिकूल होने के बावजूद कोई गतिविधि अवश्य पूरी हो जायेगी ।

(3) अधिकतम प्रायिक समय अनुमान (Most Likely Time Estimate) - यह किसी भी गतिविधि के पूर्ण होने के संबंध में लगाया गया ऐसा समयानुमान है जो सामान्य अवस्था में किसी भी गतिविधि के पूर्ण होने में लगता है । किसी भी गतिविधि के इस समयानुपात के पूरा होने की सम्भाव्यता का प्राथमिकता सर्वाधिक रहती है ।

अनुमानित समय तथा निष्पादन की तुलना करते हुए सतत् समीक्षा की जाती है ।

पर्ट से लाभ

1. इससे उपागम नियोजन कार्य सरल हो जाता है ।
2. इससे सम्पूर्ण परियोजना को पूरा करने में लगने वाला समय तथा लागत का अनुमान हो जाता है।
3. समय एवं लागत के संदर्भ में मूल्यांकन तथा संशोधन सरल हो जाता है ।
4. निर्णय करना सरल हो जाता है ।

5. प्रत्येक गतिविधि एवं पद निश्चित होने से भूलने की समस्या ही समाप्त हो जाती है ।
6. इसमें संसाधनों का अधिकतम एवं कुशलतम उपयोग संभव हो जाता है ।
7. सही पूर्वानुमान लगा लेने से खतरों से मुक्ति मिल जाती है ।
8. पर्ट तकनीक की सहायता से अनावश्यक या अधिक लागत गतिविधियों पर नियंत्रण पाया जा सकता है ।
9. इस तकनीक के द्वारा परियोजना पर नियंत्रण तथा अन्य सम्बद्ध पक्षों के साथ समन्वय आसान हो जाता है । अत: मितव्ययता तथा सफलता की दर बढ़ती है ।

पर्ट की कमियां

1. यह व्यय के बारे में कोई सूचना प्रदान नहीं करती है जिसकी कभी-कभी अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है । व्यय संबंधी सूचना के अभाव में प्रबन्धकों के लिए विकल्पों का समझना एवं उनमें से किसी एक को चुनना कठिन हो जाता है ।
2. इसे समय अनुमानों का प्रतिबिम्ब कहा जाता हेर क्योंकि तीन प्रकार समय लेकर उनका विश्लेषण करना कई दृष्टियों से उपयोगी नहीं रहता है ।
3. परियोजना की सभी गतिविधियों, घटनाओं या क्रियाओं का पता - समय अनुमान लगाना तथा एकीकरण करना सरल नहीं है ।
4. इस उपागम में प्रबन्धन का कार्य विशेषज्ञों के हाथों नियंत्रित होने लग जाता है ।
5. समय तथा लागत का अनुमान एक कठिन कार्य है तथा बहुत सी घटनाओं तथा समस्याओं का अनुमान वास्तविक संचालन से पूर्व लगाना लगभग असम्भव रहता है जो कार्य परिवर्तनशील प्रकृति का होता है । उसमें पर्ट का प्रयोग अव्यावहारिक प्रतीत होता है।

समस्त प्रकार की कमियों तथा सीमाओं के उपरान्त यह सत्य है कि पर्ट उपागम का समय, लागत तथा निर्णयन एवं नियोजन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि के युग में कम समय तथा कुल लागत में अधिक कार्य करना ही तो मुख्य प्रयास है ।

पर्ट का शैक्षिक प्रशासन शोध के क्षेत्र में निश्चित रूप से सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है । इसका प्रयोग नया विद्यालय खोलने, विद्यालय भवन निर्माण, प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम, शोध प्रोजेक्ट कार्यक्रम के विकास में किया जा सकता है । प्रधानाध्यापक अपने विद्यालय योजना को लागू करने में भी कर सकता है

3.8 प्रबन्धकीय भूमिका उपागम (Managerial Role Approach)

प्रबन्धकीय भूमिका उपागम एक नवीन उपागम है । इसका विकसित करने का श्रेय मैक्गिल विश्वविद्यालय के प्रो. हैनरी मिन्जबर्ग को दिया जाता है । इन्होंने शोध के बाद निष्कर्ष निकाला कि प्रबन्धक परम्परागत प्रबन्धन प्रक्रिया नियोजन, संगठन, निर्देशन तथा निर्देशन के आधार पर प्रबन्धकीय कार्यों का निष्पादन नहीं करते हैं ।

उनके अनुसार प्रबन्धन में प्रबन्धक के द्वारा सम्पन्न किए जाने वाले कार्यों का संयुक्तीकरण है । उनके अनुसार प्रबन्धकों का निम्न दस प्रकार की भूमिका का निर्वाह करनी पड़ती है -

1. अनार वैयक्तिक भूमिकाएँ (Interpersonal Head)

(1) अलकारिक भूमिका (Figure head)
(2) नेतृत्व भूमिका (Leadership)
(3) सम्पर्क भूमिका (Liaison)

2. सूचनात्मक भूमिकाएँ (Informational roles)

(1) सूचनाएँ प्राप्त करना (Desseminate)
(2) सूचनाएँ अधीनस्थों को देना (Reciprient)
(3) सूचनाएँ बाहरी व्यक्तियों को देना (Disseminate)

3. निर्णयन भूमिकाएँ (Spokesman)

(1) साहसी भूमिका (Enterprenenrur)
(2) समस्या निवारक की भूमिका (Problem Solver)
(3) साधन विभाजन की भूमिका (Resource Allocater)
(4) समझौता भूमिका (Negotiater)

कुछ विचारकों का मत है कि यह विचार नवीन नहीं है क्योंकि नियोजन, संगठन, उत्प्रेरण, समन्वय तथा नियंत्रण की भूमिका को पहले से प्रबन्धकों की भूमिका में सम्मिलित कर रहे हैं । शैक्षिक प्रबन्धन में प्रबन्धन का यह उपागम उपयोग करके विद्यालय स्तर प्रधानाध्यापक अपनी भूमिका को समझ कर विद्यालय विकास में आसानी से कार्य कर सकता है । विद्यालय में वही भूमिका का प्रधानाध्यापक को उपयोग करना होता है ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation question)

1. पर्ट (पी.ई.आर.टी) का पूरा नाम लिखिए ।
2. पर्ट के विभिन्न पदो का वर्णन कीजिए ।
3. पर्ट की विशेषताएँ तथा कमियों स्पष्ट कीजिए ।

3.9 सारांश (summary)

इस इकाई में प्रबन्ध के उपागम वैज्ञानिक प्रबन्ध उपागम, मानवीय संबंध उपागम, व्यवहारवादी उपागम, प्रणाली उपागम, आकस्मिकता उपागम, कार्य मूल्यांकन समीक्षा तकनीक उपागम (पर्ट) प्रबन्धकीय भूमिका उपागम के बारे में चर्चा की गई है । आपने इनके बारे में निम्नलिखित विषयवस्तु की जानकारी प्राप्त की है -

1. प्रबन्ध के उपागम सार्वभौमिक तथा सर्वकालिक नहीं है, समय के अनुसार परिवर्तनशील है ।
2. वैज्ञानिक प्रबन्ध उपागम - प्रबन्ध में वैज्ञानिक सिद्धान्तों के उपयोग करने पर बल देता है ।
3. मानवीय संबंध उपागम का केन्द्र बिन्दु मानवीय व्यवहार है ।
4. मानवीय संबंध उपागम के सिद्धान्तों का उपयोग करके संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकती ।
5. व्यवहारवादी उपागम में यह माना जाता है कि प्रबन्ध की अधिकांश समस्या मानव व्यवहार के समझने में निहित है ।
6. प्रणाली उपागम संगठन की समस्त क्रियाओं को अलग-अलग विचार न कर सम्पूर्णता को देखता है ।
7. आकस्मिकता उपागम प्रबन्ध कार्य को परिस्थितिजन्य मानता तथा उसी अनुसार निर्णय लेने पर बल देता है ।
8. कार्यक्रम मूल्यांकन तथा समीक्षा तकनीक उपागम को पर्ट भी कहा जाता है ।
9. पर्ट उपागम में परियोजना का नियोजन करते समय तथा साधनों के आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाता है ।
10. उद्देश्यों का निर्धारण, कार्य विभाग संरचना तैयार करना, तंत्र आकल्प, अनुमान का निर्धारण पर्ट के विभिन्न पद हैं ।
11. प्रबन्धकीय भूमिका उपागम में प्रबन्धक की अलंकारिक भूमिका, नेतृत्व भूमिका, सम्पर्क भूमिका, सूचनाएँ प्राप्त करना, सूचनाएँ देना, साहसी भूमिका, समस्या निवारक की भूमिका, साधन विभाजक की भूमिका, समझौता भूमिका निश्चित की है ।

अभ्यास प्रश्न (Exercise)

1. वैज्ञानिक प्रबन्ध उपागम की अवधारणा क्या है?
2. आकस्मिकता उपागम प्रणाली उपागम से किस प्रकार भिन्न है ?
3. पर्ट की विशेषताएँ तथा कमियों को स्पष्ट कीजिए ।
4. शैक्षिक प्रबन्धन के उपागम पर एक समालोचनात्मक निबन्ध लिखिए ।

3.10 संदर्भ (References)

1. कटारिया, सुरेन्द्र (2006) : प्रशासनिक चिन्तक, जयपुर मलिक एण्ड कम्पनी, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस
2. Mukherji S.N. Administrational of Education,Planning,Theory and Finance, Baroda Acharya Book Depot.
3. Nawanko John (1970) Educational Administration, Theory and Practice New Delhi, Vikas Publishing House Pvt.Ltd.

4. ओड एल. के. (1991) : शैक्षिक प्रशासन, जयपुर राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
5. Owens (1970) Organizational Behavior in School, New Jersey, Prentice Hall, Hallinc Englewood Elif.
6. सिंघल, जे. पी. प्रबन्ध (2003) जयपुर अजमेरा बुक कम्पनी ।
7. सुधा जी. एस. (1998) प्रबन्ध चिन्तन का इतिहास, जयपुर आर.बी.एस.ए पब्लिशर्स
8. Torsten H. and T. Neville (eds)(1985)International Encyclopedia of Education, New York Pergramon Press
9. वर्मा जे. पी. (2002) विद्यालय प्रबन्धन मेरठ आर. लाल बुक डिपो

इकाई 4

उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन (उद्धाप्र)

(Educational Management By Objectives (MBO)

इकाई की संरचना

4.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

4.2 उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्ध की विचारधारा (The Concept of Management by Objectives)

4.3 उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्ध का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning & Definitions of MBO)

4.4 उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्ध की प्रकृति अथवा लक्षण (Nature or Characteristics of MBO)

4.5 उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्ध की पृष्ठभूमि एवं विकास (The Background & Development of MBO)

1. मूल्यांकन दृष्टिकोण (Appraisal Approach to MBO)
2. अभिप्रेरणा दृष्टिकोण (Motivation Approach to MBO)
3. उद्देश्यानुसार प्रबन्ध के प्रति प्रणाली दृष्टिकोण (The System Approach to MBO)

4.6 उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन तंत्र के आधारभूत तत्व (Fundamental Elements of Educational Management by Objectives System)

4.7 उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन की प्रक्रिया /चक्र /तंत्र के क्रियान्विति पद (Educational MBO Process/Cycle/Execution steps of a System)

4.8 उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन के लाभ या गुण (Advantages or Merits of MBO)

4.9 उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन के दोष /सीमाएं / कमियाँ (Defects/Limits/ Weaknesses/Criticism)

4.10 उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन की प्रभाविता बढ़ाने के लिए कुछ सुझाव (Some Suggestions for Improving the Effectiveness of Management by Objectives of MBO)

4.11 सारांश (Summary)

4.12 संदर्भ (References)

4.0 उद्देश्यों (Objectives)

इस इकाई की समाप्ति पर आप -

(1) उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबंधन का अर्थ और प्रकृति को बता सकेंगे ।

(2) उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन के आधारभूत तत्त्वों को स्पष्ट कर सकेंगे ।

(3) उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन प्रक्रिया/चक्र/पदों की व्याख्या कर सकेंगे ।

(4) उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन की अवधारणाएँ बता सकेंगे ।

(5) उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन के सफलतापूर्वक संचालन के कारकों की विवेचना कर सकेंगे ।

(6) उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन के लाभ और दोष बता सकेंगे ।

(7) उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन की प्रभाविता बढ़ाने के लिए सुझाव दे सकेंगे ।

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

शैक्षिक संस्थानों में पारम्परिक रूप से उद्देश्यों का निर्धारण उच्च श्रेणी के प्रबन्धकों द्वारा किया जाता है और वह संगठन के विभिन्न स्तरों में विभक्त हो जाता है । पारम्परिक प्रबन्धक ऐसा मानते थे कि 'उच्च प्रबन्धक ही केवल सर्वश्रेष्ठ जानते हैं क्योंकि वह ही केवल 'भविष्य की बड़ी तस्वीर' को देख सकते हैं । " अत: जो निर्धारित उद्देश्य होते हैं वह संगठन के प्रत्येक क्रम के स्तर में दिशा और निर्देशन प्रदान करते हैं । यही तक कि कार्यकर्ता के कार्य करने के व्यवहार को भी दिशा देते हैं । इसको निम्नलिखित चित्र की सहायता से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है -

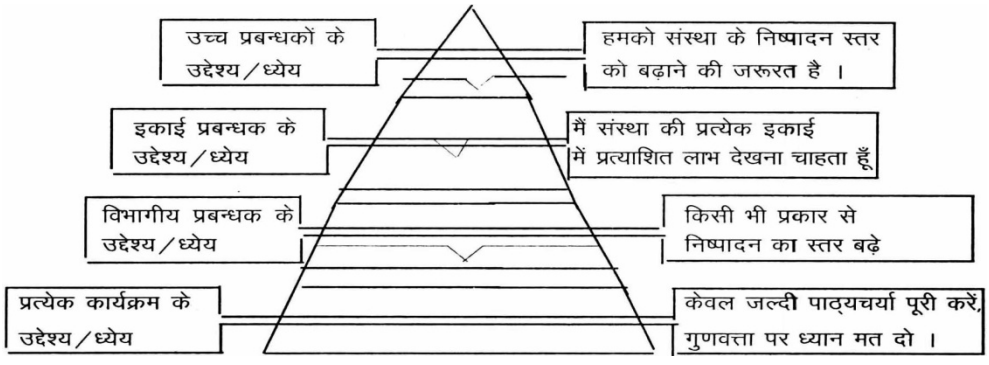

चित्र. परम्परागत उद्देश्यों का निर्धारण - ' -

शीर्ष पर निर्धारित उद्देश्य अक्रियात्मक (non-operational) होते हैं, यदि उच्च श्रेणी के प्रबन्धक संगठन के उद्देश्यों को विस्तार से प्रत्येक निम्न स्तर पर स्पष्ट करते हैं । गुणात्मक स्तर उच्च हो, शत-प्रतिशत निष्पत्ति प्राप्त हो, लाभ हो यह व्यापक उद्देश्य है इन उद्देश्यों को क्रियात्मक रूप प्रदान किया जा सकता है और उद्देश्य भी विशिष्ट या प्रात्य हो जाते हैं जिनको प्राप्त किया जा सकता है परन्तु वास्तविकता यह है कि नीचे के स्तर तक आते-आते उद्देश्य अस्पष्ट हो जाते हैं जैसे शिक्षक केवल पाठ्यचर्या (System) पूरी करने में लगे होते हैं चाहें कैसे भी हों वह गुणवता पर ध्यान नहीं देते हैं ऐसे में उच्च श्रेणी में निर्धारित उद्देश्य

(गुणात्मक स्तर उच्च हो) पूर्ण रूप नहीं दे पाते हैं । अत: प्रबन्धन में नवीन उपागम जो एक दर्शन और प्रबन्धन की प्रक्रिया भी है, का प्रादुर्भाव हुआ जिसे उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन कहते हैं । इसके द्वारा कार्यक्रियाओं में जवाबदेही / उत्तरदायित्व को भी बढ़ाया जा सकता है । उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन कोर्पोरेट जगत् में सर्वप्रथम आरम्भ हुआ और अब शैक्षिक जगत में भी इसका उपयोग किया जाने लगा है ।

उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन नवीन सम्प्रत्यय नहीं है आज से चालीस साल पूर्व यह सम्प्रत्यय प्रचलित था जिसमें सम्पूर्ण उद्देश्यों को संगठन की विभिन्न इकाई के और प्रत्येक कार्यकर्ता के प्राप्त उद्देश्यों में परिवर्तित करने पर बल दिया गया । इसमें उद्देश्यों को क्रियात्मक / व्यावहारिक रूप प्रदान किया जा सके । यह कार्य उच्च स्तर के प्रबन्धन से नीचे क्रम के स्तर पर सभी उद्देश्यों को विशिष्ट उद्देश्यों में अनुदानित (Translated) किया जाता है । इसको निम्नलिखित चित्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है -

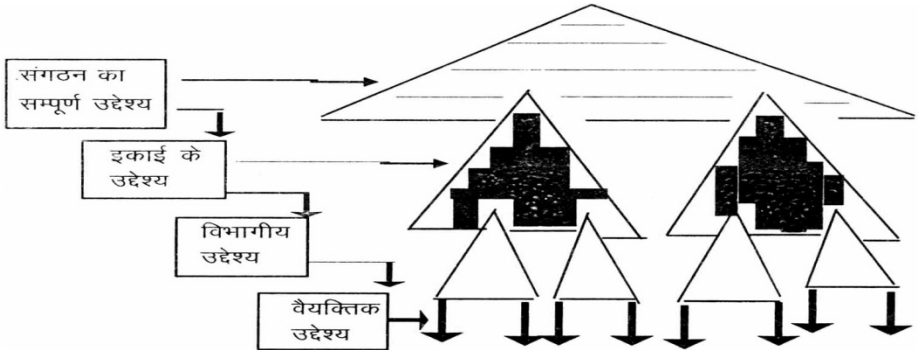

चित्र : उद्देश्यों का 'वारिप्रवाह

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन में उद्देश्य 'ऊपर से नीचे की ओर' (top down) और 'नीचे से ऊपर की ओर' (bottom up) कार्य करते हैं । इसमें एक स्तर के उद्देश्य दूसरे सार के उद्देश्यों के साथ जुड़ जाते हैं । इस क्रम में उद्देश्य हर स्तर पर जुडते जाते हैं और प्रत्येक कार्यकर्ता या संगठन के प्रत्येक सदस्य को उसके विशिष्ट उद्देश्य स्पष्ट होते हैं । इस प्रकार इकाई या विभाग के सभी सदस्यों को अपने विभाग में विशिष्ट योगदान उनके विशिष्ट निष्पादन के फलस्वरूप रहता है । यदि सभी व्यक्ति अपने-अपने ध्येय प्राप्त कर लेते हैं तो उनकी इकाई / विभाग के ध्येय प्राप्त हो जाते हैं और इस प्रकार संगठन के सम्पूर्ण उद्देश्य वास्तविक रूप में प्राप्त हो जाते हैं । इसको उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन कहते हैं ।

पीटर ड्रकर ने इस बात पर बहुत बल दिया कि "व्यवसाय के निष्पादन के लिए प्रत्येक कार्य का निर्देशन, सम्पूर्ण व्यवसाय के उद्देश्यों के अनुरूप होने आवश्यक है ।"

"Business performance requires that each job be directed towards the objective of the whole business."-

उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन का क्षेत्र नवीन है और इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है । अमेरिका में स्कूल प्रशासन में यह सम्प्रत्यय बहुत अधिक प्रचलित है । स्कूल की कार्यशैली क्षमता को बढ़ाने के लिए इसका उपयोग किया जाता है ।

इस सम्प्रत्यय को ओडीओरन ने इस प्रकार परिभाषित किया है:- "यह एक प्रक्रिया है जिसमें संगठन के प्रबन्धक और अधीनस्थ दोनों मिलकर एक ध्येय को पहचानते हैं, प्रत्येक व्यक्ति को उसके मुख्य कार्यक्षेत्र की जिम्मेदारियों को अपेक्षित परिणामों के रूप में परिभाषित करते हैं और इसके इकाई के कार्यों का मूल्यांकन प्रत्येक कार्यकर्ता के कार्यो के योगदान द्वारा किया जाता है।"

"A process whereby the superior and subordinate managers of an organization jointly identify its common goals' define each individual's major areas of responsibility in terms of results expected of him and use there measures as guides for operating the unit and assessing the contribution of each of etc. members."

अत: हम कह सकते हैं कि उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन एक प्रक्रिया है जिसमें प्रधानाचार्य (उच्च प्रबन्धनक) और शिक्षक (अधीनस्थ प्रबन्धक) मिलकर संस्था के लिए उन ध्येयों / उद्देश्यों के लिए कार्य करते हैं जो उन्होंने मिलकर निर्धारित किये हैं । इन निर्धारित ध्येय को प्राप्त करने के लिए मिलकर योजनाएँ बनाते हैं जिनकी सहायता से संगठन के ध्येय को प्राप्त किया जा सकता है । संगठन के उद्देश्य और व्यक्ति के उद्देश्य में अनुरूपता होती है ।

उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन को परिणाम या निष्पादन या ध्येय प्रबन्धन के संदर्भ में भी देखा जा सकता है । यह इस अवधारणा पर आधारित है कि इसके द्वारा प्रबन्धन करने से कार्यकर्ता में वचनबद्धता बढ़ जाती है । यदि किसी कार्यकर्ता का निष्पादन निर्धारित मूल्यांकन प्रमाप (Standard) के अनुरूप कार्य करता है तब उसको और अच्छा कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है और इस प्रकार वह संगठनात्मक उद्देश्यों को सीधे प्राप्त कर सकता है ।

जॉन हम्बल इस नवीन और चुनौतीपूर्ण सम्प्रत्यय के प्रति अत्यधिक उत्साहित हे और उन्होंने उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन को निम्नानुसार परिभाषित किया - "यह एक गत्यात्मक तंत्र। (dynamic system) है जो प्रबन्धक की आवश्यकता, योगदान, स्वयं के विकास को संस्था की आवश्यकता और इसके ध्येय को लाभ (profile) और विकास (growth) के साथ समेकित (integrated) करता है । यह संस्था की आवश्यकता है और प्रोत्साहन-प्रबन्धन का तरीका है ।

उपरोक्त परिभाषा के अनुसार उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन उद्देश्य केन्द्रित या उद्देश्य आधारित होता है, कार्य केन्द्रित-प्रक्रिया नहीं है । कोई भी कार्य करना या उसमें लगे रहना महत्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण यह है कि वह प्रभावी ढंग से निष्पत्ति को प्राप्त करने की ओर अग्रसर हो । उद्देश्यों। द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन योजना निर्माण करने में और कार्यकर्ताओं को प्रेरित करने में सहायक है । इसके सही ढंग के उपयोग करने से योजना निर्माण में कुछ त्रुटियों (error) को कम किया जा सकता है या हटाया जा सकता है ।

उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन एक व्यापक तंत्र है जो निश्चित किए गए उद्देश्यों. पर आधारित है जिन पर सभी कार्यकर्ता क्रियाशील रहते हैं । प्रत्येक सम्भागी के लिए यह सामान्य उद्देश्य होते हैं और प्रत्येक सम्भागी को निश्चित उपलब्धि पर पुरस्कार देना निश्चित होता है

और इस प्रकार स्पष्ट मूल्यांकन तंत्र का विकास होता है साथ ही उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन के माध्यम से उच्च अधिकारी अधीनस्थों के मध्य आमने-सामने सम्प्रेषण करने का अवसर मिलता है, जिससे सम्प्रेषण के जाल को सुधारा जा सकता है ।

4.2 उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्ध की विचारधारा (The Concept of Management by Objectives)

20 वी शताब्दी में प्रबन्ध जगत में अनेक प्रबन्ध दृष्टिकोणों का विकास हुआ है जिनमें 'क्रिया द्वारा प्रबन्ध' (management by Action), उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध (MBO), अपवाद द्वारा प्रबन्ध (Management by Exception), परिणामों द्वारा प्रबन्ध (Management by Results), अभिप्रेरणा द्वारा प्रबन्ध (MBM) आदि प्रमुखता से सम्मिलित किया जा सकता है । उपरोक्त सभी दृष्टिकोणों में से 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध तथा 'अपवाद द्वारा प्रबन्ध' ने सर्वाधिक लोकप्रियता अर्जित की है । उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध करना आज आधुनिकता का मानदण्ड बन गया है ।

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध तकनीकी एवं दर्शन है । पीटर एफ. ड्रकर को इस दृष्टिकोण के प्रणेता होने का श्रेय दिया जाता है । ड्रकर से पूर्व भी हेनरी फेयोल, एफ. उर्विक, चोस्टर आई बनाड आदि अनेक विद्वानों ने उद्देश्यों के महत्त्व पर पर्याप्त प्रकाश डाला है, किन्तु ड्रकर ने सर्वप्रथम सन् 1954 में अपनी पुस्तक "दी प्रैक्टिस ऑफ मैनेजमेन्ट" में "उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध" पर विस्तृत विचार व्यक्त किये थे । उसके बाद से "उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध" की विचारधारा बलवती होती गई और एक आन्दोलन के रूप में फैल गई । आज ' 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध" प्रबन्ध की एक तकनीक, सिद्धान्त अथवा अवधारणा मात्र नहीं है, अपितु वह प्रबन्ध की एक "सम्पूर्ण प्रणाली" और एक 'दर्शन' के रूप में सुस्थापित हो चुका है ।

कोई भी व्यक्ति अस्पष्ट लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता है । व्यक्तियों को यह पता होना चाहिये कि उनके उद्देश्य क्या हैं, उनकी प्राप्ति के लिए क्या प्रयास किये जाने हैं तथा उन्हें कब तक प्राप्त कर लिया जाना चाहिये । 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध" की अवधारणा इसी दर्शन पर आधारित है ।

4.3 उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definitions)

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध का शाब्दिक अर्थ जितना सरल है, उसका दार्शनिक अर्थ उतना ही गहन है । शाब्दिक अर्थ के अनुसार "उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध" से आशय उद्देश्यों का निर्धारण करके उनके आधार पर प्रबन्ध कार्य करने से है, किन्तु दर्शन के रूप में "उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध" उद्देश्यों के संदर्भ में निम्नलिखित प्रश्नों के समाधान खोजने से सम्बन्धित एक दृष्टिकोण है -

(1) संगठन में एक व्यक्ति कार्य क्यों कर रहा है अर्थात् उसके कार्य करने के उद्देश्य, लक्ष्य अथवा प्रयोजन क्या है?

(2) वह अपना कार्य कैसे कर रहा है अर्थात् क्या वह उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में कार्य कर रहा है?

(3) संगठन में उस व्यक्ति के कार्य की क्या भूमिका है अर्थात् संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति में उसके द्वारा प्राप्त किये गये उद्देश्यों का क्या योगदान है?

(4) अधिकारियों एवं कर्मचारियों को परिचालनात्मक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किस प्रकार प्रेरित किया जा सकता है अर्थात् क्या उद्देश्यों के ज्ञान एवं निर्धारण में सहभागीदारी द्वारा उनको स्व-प्रेरित करना सम्भव है?

(5) कर्मचारियों के कार्य निष्पादन का मूल्यांकन करने के लिए क्या मापदण्ड काम में लिए जा सकते हैं अर्थात् क्या कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन-उद्देश्यों की प्राप्ति से करना सम्भव है?

उपरोक्त प्रश्नों के प्रकाश में उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध के अर्थ को भली-भाँति समझा जा सकता है। जब संगठन के प्रत्येक स्तर पर कार्यरत समस्त कार्यकर्ताओं एवं अधिकारियों को अपने-अपने वैयक्तिक उद्देश्यों के साथ-साथ संगठनात्मक उद्देश्यों और वैयक्तिक एवं संगठनात्मक उद्देश्यों के पारस्परिक सम्बन्धों की पूर्ण जानकारी होती है, जिस ओर चलकर वे अपने-अपने उद्देश्यों के साथ संगठनात्मक उद्देश्यों को भी प्राप्त कर सकते हैं और वे इस महत्त्वपूर्ण तथ्य से भी भली-भाँति परिचित होते हैं कि उनके कार्य निष्पादन के मूल्यांकन का आधार उनके वैयक्तिक गुण न होकर उनके द्वारा प्राप्त परिणाम अर्थात् उनके द्वारा अपने-अपने उद्देश्यों की प्राप्ति है तो वे उद्देश्यों के प्रति उदासीन एवं तटस्थ नहीं रह पाते । इसके विपरीत ऐसे उद्देश्यों के निर्धारण एवं क्रियान्वयन में वे पूर्ण व्यक्तिगत रुचि एवं सक्रियता से भाग लेते हैं । प्रबन्ध की यह उद्देश्योन्मुखी प्रवृत्ति ही वह दर्शन है, जिसे प्रबन्ध जगत में उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध या 'उद्दाप्र (MBO) के नाम से जाना जाता है ।

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन में शीर्ष प्रबन्धक और अधीनस्थ दोनों मिलकर संगठन के लिए क्रियात्मक उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं । इसमें उद्देश्य ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर की ओर दोनों दिशाओं में कार्य करते हैं । इसमें प्रत्येक व्यक्ति को उसके मुख्य कार्यक्षेत्र की जिम्मेदारियों को अपेक्षित परिणामों के रूप में परिभाषित करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति के कार्य के योगदान के द्वारा ' किया जाता है । उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन एक प्रक्रिया है जिसमें प्रधानाचार्य और शिक्षक मिलकर संस्था के लिए उन ध्येयों के लिए -कार्य करते हैं जो उन्होंने मिलकर निर्धारित किये थे । इस में संगठन के उद्देश्य और व्यक्ति के उद्देश्य में अनुरूपता होती है ।

उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन को निष्पादन / परिणाम / ध्येय प्रबन्धन के में भी देखा जा सकता हे । यह -इस अवधारणा पर आधारित है कि इसके द्वारा प्रबन्धन करने से में वचनबद्धता बढ़ जाती है । परिणामस्वरूप संस्था का विकास होता है । अत: उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक कार्य केन्द्रित न होकर उद्देश्य आधारित होता है ।

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन की महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं -??

1. **श्री जार्ज एस. ओडिओर्न :** 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की प्रणाली एक है, जिसके द्वारा संगठन के अधिकारी एवं अधीनस्थ प्रबन्धक संयुक्त रूप से संगठन के सामान्य लक्ष्यों पहचान करते हैं, प्रत्येक व्यक्ति के उससे अपेक्षित परिणामों के रूप में उत्तरदायित्व के बड़े क्षेत्रों को परिभाषित करते हैं और इकाई के परिचालन तथा उसके प्रत्येक सदस्य के योगदान का मूल्यांकन करने में उन मापो का प्रयोग करते हैं । "

2. **आरिन उरिस के अनुसार :** 'मूलत: उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध एक सरल अवधारणा है । यह वांछित परिणामों से निर्देशित अथवा पथ-प्रदर्शित कार्य निष्पादन एवं उपलब्धि है ।

3. **हिक्स एवं गुलेट के अनुसार :** 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध अभिप्रेरणा समस्या का एक हल है । यह कर्मचारी और उसके अधिकारी को कर्मचारी के भावी निष्पादन के लक्ष्य निर्धारण की स्वीकृति देता है । समय के साथ प्राय: अधिक स्वतंत्रता एवं चुनौती सम्भव होती है । यह कर्मचारी के निष्पादन, उसकी अत्यधिक उत्तरदायित्व स्वीकार करने की इच्छा और कार्य विस्तार की सम्भावना पर निर्भर करता है । "

4. **कास्ट एवं रोसेन्जवीग के अनुसार :** "वैयक्तिक एवं समूह लक्ष्यों को व्यापक संगठनात्मक लक्ष्यों के साथ एकीकृत करने के अनेक दृष्टिकोणों में से उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध एक सर्वाधिक विस्तृत दृष्टिकोण है । उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध लक्ष्य निर्धारण प्रक्रिया में प्रबन्ध के सभी स्तरों को सम्मिलित करके इस संबंध की संरचना का प्रयास करता है । इन कार्यक्रमों में प्रत्येक प्रबन्धक लक्ष्य स्थापित करने तथा उनकी प्राप्ति हेतु विशिष्ट कार्य योजनाएँ तैयार करने में अपने अधीनस्थों के साथ कार्य करता है । "

5. **मैसी एवं डगलस के अनुसार :** "उद्देश्यों की व्यवस्थित सौपानिकता ' उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध (उद्दाप) कहलाती है.... उद्देश्यों की सौपानिकता वह ढाँचा उपलब्ध कराती है जिसके द्वारा समूह प्रयास का प्रत्येक वैयक्तिक अंश अपने स्वयं के उत्पादन को कुल उत्पादन से अंतर्सम्बन्धित करने और अधिक व्यापक तथा अधिक दीर्घकालीन लक्ष्यों में प्रत्येक योगदान को स्पष्ट करने पर ध्यान केन्द्रित कह सकता है । इस विचार को व्यवहार में बदल देने वाली प्रक्रिया उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध है ।"

6. **हैण्डरसन एवं सुओजानिंक के अनुसार :** "उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध का दर्शन' ' तथा प्रबन्धन का उपकरण दोनों है । प्रबन्ध-दर्शन के रूप में, यह ऐसी लक्ष्य निर्धारण क्रिया को प्रोत्साहित करता है जिसमें प्रबन्धक और अधीनस्थ दोनों अधीनस्थों के लक्ष्यों का निर्धारण एवं पुनर्विचार में भाग लेते हैं । इस सम्पूर्ण क्रियाविधि में अधीनस्थ की आवाज का महत्त्व होता है ।... प्रबन्ध उपकरण के रूप मैं उद्वाप्र (MBO) की उतनी परिभाषाएँ हैं जितने इसके प्रयोग करने वाले संगठन हैं । सामान्यतया यह वह प्रबन्धकीय व्यवहार है: जो विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति पर बल देता है ।

7. **पीटर ड्रकर के अनुसार :** "उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध एक प्रणाली है जिसमें प्रबन्धक एक सम्पूर्ण प्रतिष्ठान दोनो की कार्यकुशलता में सुधार के लिए विभाग तथा प्रत्येक व्यक्तिगत प्रबन्धक के स्तर पर उद्देश्यों का निर्धारण करता है । "

8. **तोसी एवं करोल के अनुसार** : "उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें प्रबन्धक तथा अधीनस्थ उन क्रियाओं, लक्ष्यों, तिथियों एवं उद्देश्यों के समूह के सम्बन्ध में एकमत होते हैं जो भविष्य में अधीनस्थों की कार्य-निष्पत्ति एवं मूल्यांकन हेतु आधार-स्वरूप प्रयुक्त किये जायेंगे । "

9. **डेल एस. मैककोनी के अनुसार :** "परिणामों द्वारा प्रबन्ध, प्रबन्ध-नियोजन तथा मूल्यांकन के प्रति एक दृष्टिकोण है जिसमें प्रत्येक प्रबन्धक के लिए सम्पूर्ण वर्ष अथवा कुछ समय के लिए लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं । यदि कम्पनी या संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करना है तो प्रत्येक प्रबन्धक को अपने-अपने लक्ष्यों को प्राप्त करना होगा । निर्धारित अवधि के पश्चात् वास्तविक रूप में प्राप्त परिणामों का माप निर्धारित लक्ष्यों के संदर्भ में किया जाता है।"

10. **प्रो. एस. के. चक्रवर्ती के अनुसार :** "उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध एक परिणाम केन्द्रित, अविशेषज्ञ भागीदारिता पर आधारित ऐसी परिचालन प्रबन्ध प्रक्रिया है, जिसका प्रयोग सभी संसाधनों के प्रभावकारी उपयोग के लिए किया जाता है, जिससे कि व्यक्ति का संगठन के साथ और संगठन का पर्यावरण के साथ एकीकरण तथा वैयक्तिक एवं संगठनात्मक प्रभाविता में वृद्धि करना होता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि ' 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' ' एक ऐसी प्रक्रिया एवं प्रणाली है जिसमें सभी श्रेणी के प्रबन्धक तथा अधीनस्थ मिलकर संयुक्त रूप से संस्थागत, विभागीय एवं वैयक्तिक उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं और फिर उनकी प्राप्ति हेतु प्रबन्धकीय क्रियाओं का संचालन करते हैं जिससे संसाधनों का प्रभावी उपयोग किया जा सके और व्यक्ति, संगठन एवं पर्यावरण में एकीकरण स्थापित किया जा सके ।

4.4 उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' की प्रकृति अथवा लक्षण (Nature or Characteristics of MBO)

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की प्रकृति को निम्नलिखित विशेषताओं द्वारा समझा जा सकता है -

(1) यह एक कार्यात्मक अवधारणा है जो कि उद्देश्य निर्धारण की प्रक्रिया को महत्त्व देती है।

(2) यह अवधारणा उद्देश्यों के निर्धारण की प्रक्रिया पर जोर देती है, न कि उनके क्रियान्वयन के साधनों पर ।

(3) यह अवधारणा संगठनात्मक लक्ष्यों की पूर्ति के साथ-साथ लोगों के व्यक्तिगत उद्देश्यों की पूर्ति के अवसर भी प्रदान करती है ।

(4) यह अवधारणा 'वाई' विचारधारा' पर आधारित है । यह मानव प्रकृति के बारे में सकारात्मक दृष्टिकोण रखती है । यह मानती है कि 'व्यक्ति कार्य' करना चाहते हैं तथा दायित्व सौंपने से वे उत्प्रेरित होते हैं ।

(5) यह अवधारणा 'प्रबन्धन का दर्शन' है । यह प्रबन्ध कार्यों को व्यवहार में लाने की एक पद्धति है । यह प्रबन्ध करने का एक ढंग है । यह प्रबन्धक के कार्य का कोई भाग अथवा उनमें जोड़ा जाने वाला कोई कार्य नहीं स्वयं ही प्रबन्ध है ।

(6) यह विचारधारा सहभागिता के विचार पर आधारित है जो यह मानती है कि लोग स्वयं के द्वारा निर्धारित उद्देश्यों के प्रति अधिक प्रतिबद्ध होते हैं ।

(7) हेरोल्ड कूंज के अनुसार यह अवधारणा आधारभूत सामान्य बोध (Basic Common Sense) से संबंधित होती है क्योंकि यह स्वयं प्रबन्ध के उद्देश्य को ही दर्शाती है ।

(8) यह अवधारणा परिणामोन्मुखी विचारधारा पर आधारित है अर्थात् यह 'परिणामों' पर जोर देती है, वैयक्तिक गुणों पर नहीं ।

(9) यह अवधारणा वातावरण की अपेक्षाओं की सन्तुष्टि में योगदान देती है ।

(10) उद्देश्यानुसार प्रबन्ध विभिन्न प्रबन्ध तकनीकों का एक समूह भी है । यह नियोजन एवं नियंत्रण, अभिप्रेरणा, निष्पादन मूल्यांकन, संगठन विकास एवं परिवर्तन आदि की तकनीक है । लेकिन यह इन तकनीकों से बहुत कुछ अधिक भी है । यह अवधारणा नियोजन, संगठन, निर्देशन एवं नियंत्रण के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को शामिल करती है ।

(11) इसकी मुख्य दृष्टि समस्या समाधान पर होती है, व्यक्तित्व सुधार पर नहीं ।

(12) यह प्रबन्धकीय नेतत्व की एक प्रणाली है । यह प्रबन्ध की एक व्यापक समग्र प्रणाली है ।

(13) प्रबन्धकीय निर्णयों में ' उद्देश्यों पर जोर दिया जाता है, साधनों पर नहीं, परिणामों पर जोर दिया जाता है, संगठनात्मक नियमों व नीतियों पर नहीं ।

(14) यह संगठनात्मक भागों तथा वैयक्तिक आवश्यकताओं के मध्य एकीकरण है ।

(15) यह विचारधारा 'उद्देश्यों की सौपनिकता' का वह ढांचा उपलब्ध कराती है जिसके द्वारा समूह प्रयास का प्रत्येक वैयक्तिक अंश अपने स्वयं के उत्पादन को कुल उत्पादन से करने तथा दीर्घकालीन लक्ष्यों में प्रत्येक योगदान को स्पष्ट करने पर ध्यान केन्द्रित कर सकता है ।

(16) इसमें दोर्घकालीन लक्ष्यों पर ध्यान केन्द्रित कर सकता है ।

(17) यह कार्य-क्रियाओं में व्यस्त होने के बजाय परिणाम उत्पन्न करने पर जोर देती है । अत: इसमें 'प्रयास लक्ष्य निर्देशित होते हैं,' कार्य केन्द्रित' नहीं । जोर्ज भोरिसे के अनुसार ''यह क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं द्वारा प्रबन्ध के पूर्णत: विपरीत विचारधारा है।''

(18) यह विचारधारा प्रबन्ध में दबाव, बल अथवा संकटावस्था जैसी प्रबन्ध विधियां को पूर्णत: अस्वीकार करती है । पीटर ड्रकर के अनुसार यह प्रेरक द्वारा प्रबन्ध (Management By drive) की नीति के पूर्णत: विपरीत है ।

(19) उद्देश्यानुसार प्रबन्ध सम्पूर्ण संगठन के स्तर पर चलाया जाने वाला कार्यक्रम होता है।

(20) यह उपलब्ध साधनों के अधिकतम उपयोग से उद्देश्यों के निर्धारण पर जोर देती है ।

4.5 उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' की पृष्ठभूमि एवं विकास (The Background and Development of MBO)

प्रबन्ध में उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की तकनीक का प्रयोग किसी न किसी रूप में पहले से ही होता रहा है किन्तु तब इसका स्वरूप अव्यवस्थित, संकीर्ण तथा सांयोगिक था । प्रबन्धक योजनाबद्ध ढंग से इस विचार को नहीं अपनाते थे । उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की विचारधारा को एक प्रणालीगत स्वरूप प्रदान करने का श्रेय पीटर ड्रकर को दिया जाता है । उन्होंने इस शब्दावली का प्रयोग सर्वप्रथम 1954 में प्रबन्ध की इस तकनीक को एक केन्द्रीय महत्त्व दिया । वे इस अवधारणा को 'उत्प्रेरक घटक मानते हैं । उनका मत था कि "उद्देश्यों की उस प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यकता होती है, जहाँ व्यवसाय के अस्तित्व एवं प्रगति को कार्य निष्पादन एवं परिणाम प्रत्यक्ष तथ्य महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं ।" प्रबन्धक' से अपेक्षित निष्पादन व्यवसाय के निष्पादन लक्ष्यों पर ही आधारित होना चाहिए तथा उसके परिणामों का मूल्यांकन उपक्रम की सफलता के लिए किये जाने वाले योगदान के द्वारा किया जाना चाहिए ।"

1. मूल्यांकन दृष्टिकोण (Appraisal Approach to MBO)

1957 में डगलस मैकग्रेगर के अपने प्रसिद्ध निबन्ध में इस बात की आलोचना, की थी कि 'प्रबन्धक अधीनस्थों की वैयक्तिक क्षमता व गुणों के आधार पर उनका मूल्यांकन करते थे इनका मत था कि निष्पादन का आधार पूर्व-निर्धारित उद्देश्य होना चाहिए ।" इससे अधीनस्थों का न केवल विकास होगा, बल्कि 'उद्देश्य' उनके लिए अभिप्रेरणा का भी साधन बन सकेंगे ।

एडवर्ड स्लेह (Edward Schleh) ने भी अपनी पुस्तक "Management by Results" में मापन योग्य उद्देश्यों को मूल्यांकन का आधार बनाने पर बल दिया था । उनका मत था कि प्रबन्ध के लक्ष्य प्रत्येक व्यक्ति से एक निर्धारित समय में अपेक्षित परिणामों को बतलाते हैं । इससे सम्पूर्ण प्रबन्ध समूह का कार्य एक निश्चित समय से जुड़ जाता है । उन्होंने कार्य का प्रत्यायोजन भी अपेक्षित परिणामों के आधार पर ही करने के लिए जोर दिया था । इसके अतिरिक्त हेनरी फेयोल, लिन्डाल उर्विक, चेस्टर बर्नार्ड आदि विद्वानों ने भी उद्देश्यों की प्राप्ति को कार्य का प्रमुख मापदण्ड बताया था । इस प्रकार प्रबन्धकों के मूल्यांकन की निष्पक्ष एवं निष्पादन-अभिमुखी प्रणाली में उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की अवधारणा को आगे बढ़ाया ।

2. अभिप्रेरणा दृष्टिकोण (Motivation Approach to MBO)

विद्वानों, विचारकों एवं प्रबन्धकों ने शीघ्र ही यह अनुभव करना शुरू किया कि "उद्देश्यानुसार प्रबन्ध संगठनात्मक मांगों तथा वैयक्तिक आवश्यकताओं में एकीकरण करने का एक उचित साधन है ।" इस प्रकार कर्मचारियों ने प्रबन्ध-प्रक्रिया में भाग लेने के प्रति अपनी रुचि दिखाई । इसके अतिरिक्त, यह पहलू भी सामने आया कि उद्देश्यानुसार प्रबन्ध का सम्बन्ध केवल संगठनात्मक लक्ष्यों से ही नहीं है वरन् वैयक्तिक विकास के लक्ष्यों पर भी बल देता है ।

यह कर्मचारियों द्वारा प्रबन्ध में सहभागी होने तथा स्व-नियंत्रण एवं स्वतंत्रता को महत्त्व देता है ।

मूल्यांकन तथा अभिप्रेरणात्मक दृष्टिकोण अल्पकालीन उद्देश्यों पर जोर देते हैं । किन्तु इससे उपक्रम के दीर्घकालीन उद्देश्यों से ध्यान हट जाता है । अत: बाद में कई लेखकों ने उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की विचारधारा में दीर्घकालीन रणनीति नियोजन को भी सम्मिलित किया ।

3. उद्देश्यानुसार प्रबन्ध के प्रति प्रणाली दृष्टिकोण (Systems Approach to MBO)

'उद्देश्यानुसार प्रबन्ध' निष्पादन मूल्यांकन तकनीक, अभिप्रेरण उपकरण तथा रणनीति नियोजन के रूप में स्थापित होने के पश्चात् अब 'प्रबन्ध की एक प्रणाली' के रूप में स्वीकार किये जाने लगा है । इस दृष्टिकोण के प्रमुख प्रतिपादक जॉर्ज ऑर्डिओन, एन्थनी पी. रामा, डेल मैककॉनके आदि हैं। ये विचारक उद्देश्यानुसार प्रबन्ध को प्रबन्ध की एक व्यापक प्रणाली मानते हैं जिसमें प्रबन्ध की कई मुख्य क्रियाएँ शामिल हो जाती हैं ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन मे उद्देश्यों ऊपर से.....की ओर .....से.....की ओर कार्य करते हैं ।
2. उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन एक.....हे । जिसके .....ओर.....दोनों .....मिलकर.....निर्धारित करते हे ।
3. उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन मे.....की बचनबद्धता बढ जाती हे ।
4. उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन एक व्यापक .....हे जो निश्चित किए गए उद्देश्यों पर .....हे जिन पर सभी कार्यकर्ता .....रहते हे ।

4.6 उद्देश्यों चारा शैक्षिक प्रबन्धन तंत्र के आधारभूत तत्व (Fundamental Elements of Educational Management by Objective system)

(1) केन्द्रीय ध्येय निर्धारण (Central goal setting)

(2) प्रबन्धक - अधीनस्थ सम्बद्ध एवं अभिप्रेरणा Manager Subordinate involvement and Motivation)

(3) ध्येय के अनुरूप संसाधन तय करना (Matching Goals with with Resources)

(4) लागू करने की स्वतंत्रता (Freedom of Implementation)

(5) निष्पादन की समीक्षा और मूल्यांकन (Review and Appraisal of Performance)

(6) भारार्पण (Delegation)

(7) समय (Time)

(8) उपलब्धि अर्थात् सफलता प्रचार (Achievement or Publicizing Success)

उद्देश्यों दारा शैक्षिक प्रबन्धन तंत्र के आधारभूत तत्वों की व्याख्या

उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन तंत्र के कुछ आधारभूत तत्त्वों की निम्नानुसार व्याख्या की जा सकती है -

1. केन्द्रीय ध्येय निर्धारण (Central Goal Setting)

उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन प्रक्रिया का आधारभूत तत्त्व या प्रथम अवयव है संगठनात्मक उद्देश्यों (Organizational Objectives) को परिभाषित व स्पष्टीकरण करना । इन उद्देश्यों का निर्धारण केन्द्रीय प्रबन्धक (प्रधानाचार्य) अन्य प्रबन्धकों (अन्य प्रभारियों) से विचार-विमर्श के तारा करते हैं । ये उद्देश्य विशिष्ट और प्राप्त करने योग्य होने आवश्यक हैं । इस प्रक्रिया में उच्च प्रबन्धक और समूह प्रबन्धक दोनों साथ-साथ मिलकर कार्य करते हैं । अत: जब भी केन्द्रीय ध्येय का निर्धारण हो जाए वैसे ही संगठन के प्रत्येक सदस्य को इसकी स्पष्ट जानकारी होना आवश्यक है । उद्देश्यानुसार प्रबन्ध कार्यक्रम में संगठन के प्रत्येक स्तर पर उद्देश्यों का निर्धारण करके 'उद्देश्यों की सौपानिकता का विकस किया जाता है । ये संगठन को ऊपर से नीचे तक भेधते (Permeate) है । प्रत्येक स्तर के उद्देश्य परस्पर सहयोगी होते हैं । प्रत्येक विशिष्ट उद्देश्य अपने से व्यापक उद्देश्य की ओर तथा सब मिलकर संगठनामक ध्येय की प्राप्ति में योगदान करते हैं । प्रत्येक प्रबन्धक एवं अधीनस्थ कर्मचारी के उत्तरदायित्वों एवं ल को स्पष्ट परिभाषित कर दिया जाता है, ऐसा करने से निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति में सुविधा हो जाती ।

2. प्रबन्धक - अर्धीनस्थ सम्बद्ध एवं अभिप्रेरणा (Manager Subordinate Involvement and Motivation)

केन्द्रीय ध्येय निर्धारण के पश्चात् अधीनस्थ प्रबन्धक अपने उच्च प्रबन्धकों के साथ कार्य करते हुए व्यक्तिगत ध्येयों का निर्धारण करता है । आपस में परामर्श के द्वारा निर्धारित ध्येय के द्वारा व्यक्ति अधिक प्रेरित होकर स्वयं द्वारा निश्चित उद्देश्यों के द्वारा आरम्भ करता है । कार्यकर्ता या अधीनस्थ प्रबन्धक के ध्येय विशिष्ट और अल्पावधि के होते हैं अर्थात् कम समय में प्राप्त किए जा सकते हैं अत: इनके ध्येय विशिष्ट समय-काल (Time Period) में प्राप्त किए जाते हैं । अत: प्रबन्धकों को ध्येय का निर्धारण अधीनस्थों के परामर्श द्वारा ही करना चाहिए जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी इकाई के ध्येय को स्थापित करने में अपना सहयोग प्रदान करता है। अत: उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की प्रणाली लक्ष्य निर्धारण, विशिष्ट दायित्व व भूमिकाओं की व्याख्या, कार्य योजनाओं के निर्माण, कार्य प्रगति के मूल्यांकन आदि कार्यों में सहभागिता के सिद्धान्त को स्वीकार करती है । अधीनस्थ कर्मचारियों का अभिप्रेरणात्मक पहलू भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इसकी प्रक्रिया एवं तकनीकी से अधीनस्थों से पूर्ण कार्य की संतुष्टि प्राप्त होती है।

3. ध्येय के अनुरूप संसाधन तय करना (Select Resource Matching with goals)

केवल ध्येय / उद्देश्य कुछ भी नहीं है जब तक कि उनके लिए संसाधन न हो । अत: उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए साधन होने चाहिए । इसलिए प्रबन्धकों को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि उनके नीचे कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं को आवश्यक-सामग्री और उपकरण उस विशिष्ट ध्येय को प्राप्त करने के लिए उपलब्ध है । यदि ध्येय उचित रीति से निर्धारित किए जाते हैं तो संसाधन की आवश्यकता का मापन उचित रीति से किया जा सकता है और.इस प्रकार संसाधनों के बँटवारे में भी आसानी होगी । जिस प्रकार ध्येयों का निर्धारण अधीनस्थ प्रबन्धकों की सहायता से किया जाता है उसी प्रकार संसाधनों की उपलब्धता की सुनिश्चितता अधीनस्थ प्रबन्धकों की सलाह द्वारा होनी चाहिए ।

4. लागू करने की स्वतंत्रता (Freedom of Implementation)

उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन के अंतर्गत चतुर्थ तत्त्व है लागू करने की स्वतंत्रता अर्थात् संगठन के सभी सदस्यों (प्रबन्धकों और अधीनस्थों) को उपलब्ध संसाधनों के सम्बन्ध में निर्णय लेने में निश्चित स्वतंत्रता हो । उनको यह स्वतंत्रता हो कि किस साधन की सहायता से कौन से उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है । यह संसाधन जितने अधिक व्यापक संगठनात्मक नीतियों के जाल में होते हैं उतनी ही कम अधिकारीगणों की दखलअन्दाजी रहती है ।

5. निष्पादन की समीक्षा और मूल्यांकन (Review and Appraisal of performance)

अधिकारियों और अधीनस्थों के मध्य समय-समय पर प्रगति की समीक्षा की जानी चाहिए । ये समीक्षा निश्चित करती हैं कि व्यक्ति विशेष संतोषजनक प्रगति कर रहा है । वह उन समस्याओं से भी अवगत रहता है जिन पर पूर्व में विचार नहीं किया गया । इस प्रकार अधीनस्थ उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन की प्रक्रिया को अच्छी तरह समझ पाता है । इसके द्वारा अधीनस्थों का मनोबल भी बढ़ता है क्योंकि अधिकारीगण अधीनस्थों के कार्यों और उनकी प्रगति में सक्रिय रुचि लेते हैं । मध्यस्थ निष्पादन मूल्यांकन स्पष्ट और मापन योग्य-प्रमापों के द्वारा की जानी चाहिए। यह समीक्षा अधिकारियों और अधीनस्थों को उद्देश्यों के संशोधन या विधियों के संशोधन जो भी आवश्यक हो उस ओर इंगित करती है । इसके द्वारा ध्येय प्राप्त करने में सफलता मिलती है ।

6. भारार्पण (Delegation)

इसके अन्तर्गत अधिकारी अपने अधीनस्थों को कार्य, दायित्व एवं सत्ता सौंपता है । परिभाषित कार्यक्षेत्र में निर्णयन की स्वतंत्रता प्रदान करता है । अधिकारी समझौते तथा पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति में अधीनस्थ कर्मचारियों की सहायता करता है । लेकिन पूर्व सहमत परिणामों को प्राप्त करने के लिए अधीनस्थ कर्मचारी कोई भी कदम उठाने या पहल करने के लिए स्वतंत्र होते हैं ।

7. समय (Time)

उद्देश्यानुसार प्रबन्ध कार्यक्रमों में समय तत्त्व का बहुत महत्त्व होता है । इन कार्यक्रमों में विभिन्न स्तर पर दायित्वों व उद्देश्यों को पूरा कर लेने का समय निश्चित होता है । समय का निर्धारण मामलों की दशाओं पर निर्भर करता है । समय निर्धारित होने से कर्मचारियों एवं शिक्षकों को अपने-अपने लक्ष्य प्राप्त कर लेने की प्रेरणा मिलती है ।

8. उपलब्धि अर्थात् सफलता प्रचार (Achievements or Publicizing Success)

इस तत्त्व से आशय यह है कि कर्मचारियों तथा विभागों द्वारा अपने निर्धारित लक्ष्य प्राप्त कर लेने की दशा में उनको समुचित मान्यता दी जानी चाहिए । अपने लक्ष्यों में सफल कर्मचारियों-शिक्षकों को वेतन वृद्धि, प्रशंसा, सम्मान, पुरस्कार आदि प्रदान करके प्रोत्साहित किया जाना चाहिए । ऐसा करने से कार्यकर्ता गौरवान्वित अनुभव करते हैं तथा स्वप्रेरित होते हैं ।

4.7 उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन की प्रक्रिया / चक्र / तंत्र के क्रियान्विति के पद (Educational MBO Process/Cycle/Execution steps of a system)

उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन एक व्यवस्थित एवं नियोजित कार्यक्रम है । इसको अनायास ही लागू नहीं किया जा सकता है । इसके क्रियान्वयन में कई स्तरों पर व्यापक तैयारी करनी होती है। इसकी प्रक्रिया को निम्नलिखित चरणों में विभाजित किया जा सकता है ।

(1) उच्च प्रबन्ध का सहयोग एवं प्रतिबद्धता ।

(2) दीर्घकालीन उद्देश्यों एवं रणनीतिक योजनाओं का निर्माण ।

(3) संगठन का विकास

(4) कार्य निष्पादन उद्देश्यों का निर्धारण

(5) कार्य योजनाओं का निर्माण

(6) सामयिक प्रगति पर विचार

(7) परिणामों का मूल्यांकन

(8) मान्यता, प्रचार एवं पुनर्बलन

1. उच्च प्रबन्ध का सहयोग एवं वचनबद्धता (Top Management-Support and Commitment)

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध प्रणाली का प्रथम चरण इस कार्यक्रम के प्रति उच्च प्रबन्धकों में सहयोग, निष्ठा एवं प्रतिबद्धता की भावना का संचार करना । उच्च प्रबन्धकों में ही जब, प्रेरणा, पहलपन एवं सृजनात्मक दृष्टि का अभाव होता है तो ऐसे कार्यक्रम असफल हो जाते हैं । उच्च प्रबन्धक अपने अधीनस्थ प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों को उचित मार्गदर्शन, अभिप्रेरणा एवं प्रतिबल (Thrust) प्रदान करके उद्देश्यानुसार प्रबन्ध कार्यक्रम को गति एवं ऊर्जा प्रदान कर सकते हैं ।

2. दीर्घकालीन उद्देश्यों एवं रणनीतिक योजनाओं का निर्माण (Establishing Long-Term Goals and Strategic Plans)

उद्देश्यानुसार प्रबन्ध के इस चरण में समग्र संगठन के व्यापक एवं दीर्घकालीन उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है । इसके लिए उच्च प्रबन्धक मूल परिणाम क्षेत्रों की पहचान कर लेते हैं । ये उद्देश्य समग्र संगठन के निष्पादन को प्रभावित करते हैं । ये उद्देश्य सामान्यत: संस्था की स्थापना के समय निर्धारित उद्देश्यों की सीमाओं को ध्यान में रखकर निश्चित किये जाते हैं । इनका निर्माण प्राय: उच्च प्रबन्धकों के द्वारा ही किया जाता है । इन उद्देश्यों में उपक्रम तथा उच्च प्रबन्धकों के दृष्टिकोण मूलभूत दर्शन की स्पष्ट छाप होती है । ये दीर्घकालीन उद्देश्य पांच वर्ष तक की अवधि के होते हैं । इनके आधार पर उपक्रम के भावी कार्यक्रमों को निर्धारित करना सरल हो जाता है । इन्हीं के आधार पर अल्पकालीन उद्देश्य भी निर्धारित किये जाते हैं । दीर्घकालीन उद्देश्य आधारभूत होते है तथा संस्था के दीर्घकालीन अस्तित्व को प्रभावित करते हैं । इनके निर्धारण में संस्था के ध्येय को ध्यान में रखा जाना चाहिए । इनके निर्धारण के पूर्व उच्च प्रबन्ध को निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दे देने चाहिए -

1. संगठन का मूलभूत ध्येय क्या है ?
2. हम किस प्रकार के व्यवसाय में हैं और क्यों ?
3. हमें किस प्रकार के व्यवसाय में होना चाहिए ।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही रणनीतिक योजनाएँ तैयार कर ली जानी ' चाहिए । सामान्यत: ये उद्देश्य एवं योजनाएँ उच्च प्रबन्धकों द्वारा ही तैयार की जाती हैं, किन्तु कुछ अधीनस्थों से भी दीर्घकालीन उद्देश्यों के निर्धारण में परामर्श लिया जा सकता है । शैक्षिक संदर्भ में संस्था के निम्नलिखित क्षेत्रों में अपने दीर्घकालीन सामान्य लक्ष्य निर्धारित कर सकते हैं -

1. संस्था का स्वरूप
2. संस्था में सुधार (गुणवत्ता)
3. निष्पादन स्तर में सुधार
4. परिचालन की कार्यक्षमता (Efficiency of Operations)
5. प्रबन्ध में सुधार
6. समुदाय के लिए योगदान
7. लाभदेयता (Profitability)

3. उद्देश्यानुसार प्रबन्ध के लिए संगठन का विकास (Development of Organization for MBO)

उद्देश्यानुसार प्रबन्ध को प्रभावी बनाने के लिए इस चरण में संगठन को इस प्रकार के प्रबन्ध दर्शन एवं पद्धति के लिए तैयार किया जाता है । उद्देश्यानुसार प्रबन्ध को केवल आदेश देकर लागू नहीं किया जा सकता है । इसके लिए यह आवश्यक है कि संगठन के प्रत्येक कार्यकर्ता को उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की आवश्यकता एवं महत्व से अवगत कराया जाए । उच्च स्तरीय तथा निम्न स्तरीय अधीनस्थों को इस प्रकार के प्रबन्ध की उपयोगिता स्पष्ट की जानी

चाहिए । यह चरण सम्पूर्ण संगठन में एक उचित वातावरण एवं समझ उत्पन्न करने से संबंधित है ताकि इस कार्यक्रम को सफल बनाया जा सके ।

संगठन विकास के लिए अनेक विधियों का प्रयोग किया जा सकता है जैसे ग्रिड प्रशिक्षण, संवेदनशीलता प्रशिक्षण, सर्वेक्षण पुन निर्देशन (Survey feedback), प्रक्रम परामर्श आदि । इनमें से कुछ विधियों का प्रयोग करके उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की पद्धति के प्रति जागरूकता उत्पन्न की जा सकती है । इस कार्यक्रम के बारे में सूचनाएँ, ज्ञान, प्रशिक्षण, निर्देश आदि के माध्यम से एक उत्साह एवं सकारात्मक दृष्टि उत्पन्न की जा सकती है । संस्था के सभी कार्यकर्ताओं के लिए ' 'उद्देश्यानुसार प्रबन्ध प्रशिक्षण कार्यक्रम' ' का आयोजन किया जाना चाहिए, क्योंकि यह कार्यक्रम एक रात में ही क्रियान्वित नहीं किया जा सकता है । इस प्रशिक्षण कार्यक्रम में निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाता है -

(1) कार्यक्रम के लक्ष्य बताना ।

(2) भाग लेने वाले विभागों व इकाइयों के नाम बताना ।

(3) विभिन्न विभागों के मध्य सम्बन्धों का स्पष्टीकरण करना जो कि उद्देश्यानुसार प्रबन्ध से प्रभावित होंगे ।

(4) प्रत्येक स्तर पर इस कार्यक्रम के लिए उत्तरदायित्व निश्चित करना तथा कार्य विवरणों को स्पष्ट करना ।

(5) कार्यक्रम के प्रत्येक स्तर के लिए समय-सीमाओं को निश्चित करना तथा यह देखना कि ये पूरी हो रही हैं ।

4. कार्य निष्पादन उद्देश्यों का निर्धारण (Establishing Performance Objectives)

संस्था के दीर्घकालीन उद्देश्यों का निर्धारण हो जाने के पश्चात् अल्पकालीन निष्पादन लक्ष्यों को निर्धारित करने की कार्यवाही की जाती है । ये उद्देश्य दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, तिमाही, छः माही आदि अवधियों के लिए निर्धारित किए जाते हैं । निष्पादन उद्देश्य सामान्यतः दो स्तरों पर निर्धारित किए जाते हैं ।

(i) विभागीय या इकाई स्तर पर तथा

(ii) वैयक्तिक स्तर पर ।

(i) विभागीय या इकाई स्तर के उद्देश्य (Departmental or Unit Level Objectives) -

संस्था के दीर्घकालीन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही प्रत्येक विभाग या प्रत्येक इकाई के अल्पकालीन उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है । इन उद्देश्यों के निश्चित हो जाने से प्रत्येक विभाग तथा इकाई को यह ज्ञान रहता है कि उसे किन अपेक्षाओं को पूरा करना है तथा किन परिणामों की प्राप्ति के लिए प्रयास करना है । इन उद्देश्यों के आधार पर प्रत्येक विभाग अपने दैनिक, साप्ताहिक, मासिक अवधियों के कार्यों, दायित्वों व योजनाओं को निर्धारित कर सकता है। इकाइयों तथा समय संगठन के उद्देश्यों के मध्य किसी प्रकार का विरोधाभास नहीं होना चाहिए ।

(ii) **वैयक्तिक उद्देश्य (Individual Objectives)-** ये उद्देश्य प्रत्येक मध्यवर्ती प्रबन्धक, पर्यवेक्षकीय प्रबन्धक तथा कर्मचारियों के लिए निर्धारित किए जाते हैं । वैयक्तिक उद्देश्यों का

निर्धारण वरिष्ठ तथा अधीनस्थ कर्मचारियों के पारस्परिक सहयोग से किया जाना चाहिए । उद्देश्य निर्धारित के लिए पहल स्वयं अधीनस्थ कर्मचारी करते हैं । वरिष्ठ अधिकारी कर्मचारियों को मार्गदर्शन प्रदान करते हैं तथा कर्मचारियों के वैयक्तिक लक्ष्यों एवं इकाई के उद्देश्यों के मध्य समन्वय बनाये रखते हैं ।

वैयक्तिक लक्ष्यों के निर्धारण के पूर्व अन्य इकाइयों में समान स्तरीय व्यक्तियों के उद्देश्यों की जानकारी भी इन व्यक्तियों को दे दी जाती है । ये लक्ष्य परिमाणात्मक रूप में व्यक्त किए जाते हैं । इन लक्ष्यों की पूर्ति करना कर्मचारियों का व्यक्तिगत दायित्व होता है । एक निश्चित अन्तराल के बाद इन उद्देश्यों की वास्तविक कार्य परिणामों से तुलना की जाती है तथा विचलन पाये जाने पर उच्च प्रबन्धक द्वारा आवश्यक कार्यवाही की जाती है ।

विभागीय तथा वैयक्तिक उद्देश्यों का निर्धारण करते समय सामान्यत: निम्नलिखित प्रक्रिया अपनायी जानी चाहिए -

(1) उच्च प्रबन्धकों को सर्वप्रथम स्वयं को संस्था के साथ अपने उद्देश्यों का ज्ञान कर लेना चाहिए । उन्हें अपने समूह के उद्देश्यों तथा अपने निकटतम उच्चाधिकारियों के उद्देश्य से भी परिचित हो जाना चाहिए ।

(2) तत्पश्चात उन्हें अपने अधीनस्थों को अपने उद्देश्यों की जानकारी देनी चाहिए ।

(3) उद्देश्यों का ज्ञान करवाने के पश्चात् अधीनस्थों के मन में उत्पन्न शंकाओं, प्रश्नों, समस्याओं आदि का समाधान किया जाना चाहिए । उद्देश्य निर्धारण का वातावरण भी बनाया जाना चाहिए ।

(4) उच्चाधिकारियों के उद्देश्यों तथा अपेक्षाओं को जान लेने के पश्चात अधीनस्थ अधिकारियों को भी अपने कर्मचारियों एवं सदस्यों को उनके लिए निर्धारित उद्देश्यों की जानकारी उपलब्ध करवानी चाहिए । इसके पश्चात उनकी समस्याओं, प्रश्नों व संदेहों को दूर किया जाना चाहिए ।

(5) इसके बाद अधीनस्थ प्रबन्धकों को पुन: अपने उच्च प्रबन्धकों से मिलकर उन्हें वास्तविक स्थिति से अवगत करवाना चाहिये । उनके उद्देश्यों की पूर्ति में आने वाली सम्भावित कठिनाइयों एवं बाधाओं को भी बता दिया जाना चाहिए ।

(6) अन्त में उच्च प्रबन्धकों तथा अधीनस्थों को मिलकर संयुक्त रूप से विभागीय वैयक्तिक उद्देश्यों को अन्तिम रूप प्रदान करना चाहिए ।

दोनों स्तरों पर उद्देश्यों के निर्धारण में निम्नलिखित पहलुओं को पूर्ण ध्यान रखा जाना चाहिए-

(1) उद्देश्य स्पष्ट, विशिष्ट एवं निश्चित होने चाहिए ।

(2) उद्देश्य वास्तविक अर्थात प्राप्त करने योग्य होने चाहिए ।

(3) उद्देश्य रुचिपूर्ण, अभिप्रेरक तथा चुनौतीपूर्ण होने चाहिए ।

(4) उद्देश्य संगठनात्मक नीतियों, कार्य पद्धतियों तथा योजनाओं के अनुरूप होने चाहिए ।

(5) उद्देश्य संगठन की अपेक्षाओं के शुद्ध परिचायक होने चाहिए ।

(6) उद्देश्य दल अभिमुखी (Term-oriental) होने चाहिए ।

(7) उद्देश्य एक ही इकाई / विभाग के कार्यकर्ताओं के बीच प्रतिस्पर्धी नहीं होने चाहिए ।

(8) उद्देश्य मापन योग्य होने चाहिए ।

(9) उद्देश्य सौपनिक क्रम में अर्थात् जलप्रपात (Cascade) की भाँति (ऊपर से नीचे की ओर) निर्धारित किये जाने चाहिए ।

(10) प्रत्येक स्तर पर समस्त उद्देश्यों को पूरा न किये जाने की दशा में प्राथमिकता क्रम अति महत्त्वपूर्ण, आवश्यक, वांछनीय निश्चित कर दिया जाना चाहिए ।

अत: उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन प्रक्रिया में महत्वपूर्ण बिन्दु उद्देश्यों का निर्धारण करना होता है, जो सभी के लिए एक आधार प्रस्तुत करता है । उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन में उद्देश्य पिरामिड के शीर्ष से आरम्भ होते हैं और एक समय में प्रबन्धन के एक स्तर पर छन-छन कर जाते हैं । उद्देश्यों का निर्धारण करने में सभी अधीनस्थों की सम्पूर्ण भागीदारी होती है । यही पर कोई भी प्रबन्धक ऐसा नहीं होता है जो यह कहे कि ' 'मैंने निम्नलिखित उद्देश्यों का निर्धारण किया है । ' अत: उद्देश्यों का निर्धारण अधिकारी और अधीनस्थों के द्वारा मिलकर किया जाता है । उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन 'देन और लेन' (Give and Take) का सौदा अधिकारी और अधीनस्थ के मध्य होता है ।

5. कार्य योजनाओं का निर्माण (Developing Action Plans)

निर्धारित उद्देश्यों को क्रियान्वित या निष्पादित उद्देश्यों में परिवर्तित करना ही उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की नियोजन अवस्था पूर्ण नहीं होती है वरन् उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक कार्य-योजनाओं का निर्माण किया जाता है । कार्य योजनाएं इस बात का उत्तर होती हैं कि उद्देश्यों की पूर्ति के लिए क्या किया जाना चाहिए, किस प्रकार और किसे करना है, किन साधनों से करना है, किन कार्यकलापों एवं प्रणालियों को अपनाना है तथा प्रयास कब और कहाँ किये जाने हैं ? इस प्रकार इन कार्य योजनाओं से सभी प्रबन्धकों, अधीनस्थों तथा कर्मचारियों को मार्गदर्शन मिलता है तथा संस्था में पूर्ण समन्वय एवं एकरूपता बनी रहती है । कार्य योजनाओं से संबंधित व्यक्ति को उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक साधन तरीके एवं सामान उपलब्ध हो जाता है ।

कार्य योजनाओं का निर्माण भी उच्च प्रबन्धकों के मार्गदर्शन में अधीनस्थ प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों द्वारा मिलकर किया जाता है । कार्य योजनाएँ उद्देश्यों की प्राप्ति में दैनिक समस्याओं के समाधान का मार्ग उपलब्ध करवा देती है । राया (Raia) के शब्दों में, ''जहाँ सुस्पष्ट उद्देश्यों का समूह प्रबन्धकीय. निष्पादन के 'लक्ष्य' (Ends) को दर्शाता है, वहीं दूसरी ओर सुविचारित कार्य योजनाएँ लक्ष्यों की प्राप्ति का 'साधन' (Means) बन जाती है । '' कार्य योजना में उद्देश्यानुसार प्रबन्ध का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है । ये उद्देश्यों' तथा उनके 'क्रियान्वयन' के बीच एक कड़ी तथा व्यावहारिक मार्ग होती है ।

कार्य-योजनाओं के निर्माण करने से निम्नलिखित लाभ होते हैं -

1. उद्देश्यों की प्राप्ति की व्यावहारिकता एवं सम्भावना का ज्ञान होना ।
2. संभावित समस्या क्षेत्रों तथा अविचारित परिणामों का पता चलना ।

3. उद्देश्यों की प्राप्ति के श्रेष्ठ एवं कुशल तरीकों की खोज सम्भव होना ।
4. लागत अनुमानों, बजटों, समय अनुसूचियों, संसाधनों आदि का ढाँचा स्पष्ट होना ।
5. वांछित कार्य-सम्बन्धों तथा सहयोग का निर्धारण होना ।
6. उद्देश्यों की पूर्ति में रूकने वाली सम्भाव्य घटनाओं (Contingencies) का पूर्व-निर्धारण करना ।

कार्य योजनाओं के निर्माण के निम्नलिखित सोपान होते हैं -

(1) उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मुख्य कार्यों एवं क्रियाओं का निर्धारण करना- उदाहरण के लिए गुणवत्ता सुधार कार्यक्रम तथा 'मानव संसाधन कार्यक्रम' के क्रियाकलाप तय करना।

(2) प्रमुख क्रियाओं के मध्य महत्वपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना । इसके लिए क्रियाओं की समग्र परिप्रेक्ष्य में जाँच करते हुए उनके निष्पादन की एक क्रम सूजी तैयार करना ।

(3) भूमिकाओं एवं सम्बन्धों का स्पष्टीकरण करना तथा प्रत्येक कार्य के लिए सत्ता सौंपना।

(4) प्रत्येक प्रमुख क्रिया एवं उप-क्रिया के लिए समय अवधि का अनुमान करना ।

(5) प्रत्येक प्रमुख क्रिया के लिए संसाधनों का निर्धारण करना ताकि लागत एवं बजट के अनुमान तैयार हो सकें ।

(6) समय सीमाओं की पुन: जाँच करना तथा कार्य योजना में आवश्यक सुधार करना ।

(7) समस्त आवश्यक कार्यों एवं क्रियाओं को विभिन्न चरणों में विभाजित कर दिया जाना चाहिए ।

(8) इन चरणों के आपसी सम्बन्ध को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

(9) प्रत्येक चरण के लिए उत्तरदायित्व निश्चित कर दिया जाना चाहिए ।

6. सामयिक प्रगति पर विचार (Review of the Periodic Progress)

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उच्च प्रबन्धकों, मध्यवर्ती प्रबन्धकों तथा अधीनस्थों को समय-समय पर अभिगोष्ठियों का आयोजन करके सामयिक प्रगति पर विचार करना चाहिए । इन सभाओं में उद्देश्यों की प्राप्ति में आने वाली कठिनाइयों एवं समस्याओं पर विचार किया जाता है । इन सभाओं के द्वारा विभिन्न विभागों, अधिकारियों तथा कर्मचारियों के कार्यों में भी समन्वय किया जा सकता है ।

इन समीक्षा सभाओं का एक उद्देश्य यह जाँच करना भी है कि' क्या वर्तमान परिस्थिति में पूर्व-निर्धारित उद्देश्य वैध है । यदि व्यवसाय के वातावरण में ऐसा कोई परिवर्तन हो जाता है जिस पर संगठन का कोई नियंत्रण नहीं है तो बदली हुई दशाओं के अनुरूप उद्देश्यों में भी आवश्यक सुधार किया जा सकता है । इन गोष्ठियों के माध्यम से वरिष्ठ अधिकारियों को अधीनस्थों की समस्याओं का भी आभास हो जाता है । यह जानकारी न केवल भविष्य में उद्देश्य निर्धारण में सहायक होती है, वरन् निष्पादन के मूल्यांकन में भी वरिष्ठ प्रबन्धकों को एक व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रदान करती हे । ये सभायें या बैठकें एक निश्चित समयावधि के बाद आयोजित की जाती है ।

अत: योजनाएँ क्रियान्विति की ओर अग्रसर हो तब उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध प्रक्रिया की छठी अवस्था सामयिक प्रगति पर ध्यान देना आवश्यक है । उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन के प्रवर्तक उच्च अधिकारियों और अधीनस्थों के मध्य आमने-सामने बैठकें करने की सलाह देते हैं जो तीन, छ: और नौ महीनों के अन्तराल पर होनी चाहिए । यहाँ पर जो निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो पा रही है उसको वापस से लिया जाता है और वैद्यता तक उस उद्देश्य का आकलन किया जाता है । सामयिक आकलन अधिकारियों को श्रेष्ठ अवसर प्रदान करती है, जिसमें वह अधीनस्थों को आवश्यकतानुसार (प्रशंसा करके) प्रतिपुष्टि प्रदान करते है ।

7. निष्पादन / परिणामों का आकलन या मूल्यांकन (Performance Appraisal or Evaluation of Results)

उद्देश्य अपेक्षित परिणाम' होते हैं यै पूर्व-निश्चित प्राप्तियों के विवरण हैं । अत: एक निश्चित अवधि जैसे छ: माह, एक वर्ष या दो वर्ष बाद कार्य की प्रगति का मूल्यांकन करके यह पता किया जाता है कि विभिन्न विभागों, अधिकारियों तथा कर्मचारियों ने अपने निर्धारित लक्ष्य प्राप्त किये अथवा नहीं । वास्तविक कार्य - परिणामों तथा उद्देश्यों की तुलना करके उनमें विचलन या अन्तर को ज्ञात किया जाता है ।

उद्देश्यानुसार प्रबन्ध में वरिष्ठ अधिकारी कर्मचारियों की त्रुटियों को ढूँढने का दृष्टिकोण नहीं रखते है वरन् कर्मचारियों को अपनी गलतियों का अनुभव करके स्वत : नियंत्रण एवं मूल्यांकन का अवसर प्रदान किया जाता है । कभी-कभी परिस्थितियों में भारी परिवर्तन के कारण अथवा अत्यन्त गत्यात्मक वातावरण के कारण उद्देश्यों को प्राप्त करना कठिन या असम्भव हो जाता है। ऐसी दशा में उद्देश्यों में अनावश्यक संशोधन कर लिये जाते हैं ।

इस संदर्भ में न्यूमेन, समर तथा वारेन (Newman, Summer and Warren) का कथन है, "प्रत्येक प्रबन्धक को यदा-कदा अपने विभिन्न उद्देश्यों के महत्व पर पुन : विचार करना चाहिए । उसका यह कार्य एक बड़े जहाज के कप्तान के समान ही है जो निरन्तर अपनी वर्तमान स्थिति, लहरों, हवाओं तथा अन्य परिस्थितियों के अनुरूप अपनी गति एवं दिशा को बदलता रहता है ।

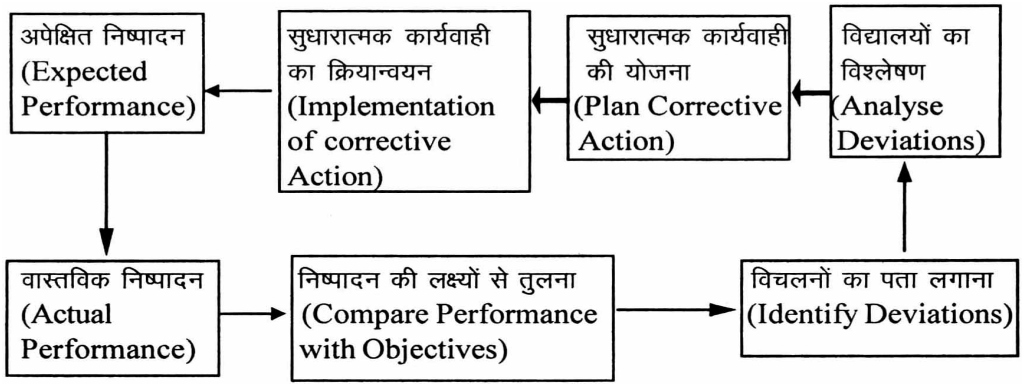

चित्र निष्पादन समीक्षा (Performance Review in MBO)

अत: उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन (MBO) का एक चक्र एक वर्ष में पूर्ण होने पर निर्धारित उद्देश्यों से मिलान करके निष्पादन का आकलन किया जाता है । अधिकारी और अधीनस्थ दोनों एक वर्ष बाद आमने-सामने बैठकर प्राप्त उद्देश्यों पर चर्चा करके निष्पादन का आकलन करते हैं । उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन परिणामों पर बल देता है ना कि व्यक्तियों और सभाओं को । नियंत्रण का चक्र यही पर जब पूर्ण हो जाता है तब सफलता प्राप्त होती है और पुरस्कार या प्रोन्नति इत्यादि दी जाती है या जब क्रियान्विति ठीक नहीं होती है तो भविष्य में क्रियाओं में सुधार / संशोधन किया जाता है । जब पद 3 ओर पद 4 में प्रबन्धक निष्पादन का आकलन करते हैं तब निम्नलिखित व्यावहारिक सिद्धान्तों को अपने मस्तिष्क में रखते हैं -

1. **भागीदारी का सिद्धांत (Principle of Participation) -** अभिप्रेरणा के द्वारा निर्णयन और उद्देश्यों के निर्धारण में भागीदारी को बढ़ाया जा सकता है ।
2. **प्रतिपुष्टि का सिद्धान्त (Principle of Reciprocated Interest)** - पुरस्कार के द्वारा प्रतिपुष्टि प्रदान करने पर कार्यकर्ता को यह पता लग जाता है कि उनकी स्थिति क्या है।
3. **अदल-बदल कर रुचि का सिद्धांत (Principle of Reciprocated Interest)-** अभिप्रेरणा के द्वारा संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने की प्रक्रिया बढ़ती है जब व्यक्तिगत उद्देश्यों को प्राप्त करने की रुचि भी साथ में रहती है ।
4. **पहचानने का सिद्धांत (Principle of Recognition)-** संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अभिप्रेरणा द्वारा उसकी प्राप्ति की गति को बढ़ाया जा सकता है पर जब कार्यकर्ता के योगदान को पहचाना जाता है तब कार्य की गति में और अधिक गति आती है।

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन का एक चक्र पूर्ण होने पर स्वयं पुन: चक्र आरम्भ हो जाता है । उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन में सामान्य चलन है कि यह आरम्भ शीर्ष से होता है और प्रबन्धन में एक नवीन स्तर बनाता है । मध्यम दर्जे की संस्था को पांच वर्ष और उससे अधिक समय लगता है पूर्ण रूप से इस प्रक्रिया को अपनाने में जिसमें नियोजन, नियंत्रण, निष्पादन आकलन और पुरस्कार के क्षेत्र व्यवस्थित होकर साथ-साथ चलते हैं । उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन के मानने वालों का विश्वास है कि प्रभावी नेतृत्व और अभिप्रेरणा के द्वारा अत्यधिक प्रभावी नियंत्रण और स्वयं नियंत्रण प्राकृतिक रूप से इस तंत्र से विकसित होते हैं ।

8. मान्यता. प्रचार एवं पुनर्बलन (Recognition, Publicity and Reinforcement)

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की श्रृंखला का अन्तिम चरण अधीनस्थों की सफलताओं एवं उपलब्दियों को मान्यता प्रदान करने, उनका व्यापक आन्तरिक प्रचार करने तथा इच्छित व्यवहार को अभिप्रेरित करने से संबंधित है । जब अधीनस्थ अथवा विभाग या अनुभाव अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल हो जाता है तो सम्पूर्ण संगठन में उसकी पर्याप्त जानकारी दी जाती है ताकि अन्य कर्मचारियों व विभागों को भी प्रेरणा मिल सके । सफल व्यक्तियों को पुरस्कृत किया जा सकता है । ताकि उनका यह व्यवहार एवं प्रयास सुदृढ़ हो सके । कर्मचारियों की असफलता पर उन्हें आवश्यक दण्ड, चेतावनी व निर्देश दिए जा सकते हैं । इस संदर्भ में अर्ल. पी. स्ट्रांग (Earl P. Strong) का कथन महत्त्वपूर्ण है कि ' संस्था या उपक्रम के लक्ष्यों को दीर्घकालीन स्तर से अल्पकालीन स्तर पर उपक्रम स्तर से व्यक्तिगत स्तर पर एवं कार्य

निष्पादन से पूर्व से कार्य निष्पादन के पश्चात् दृष्टिगत रखने तथा असफलता को दण्डित करने तथा सफलता को पारितोषिक देने पर ही उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध को प्रभावी बनाया जा सकता है।"

उपरोक्त विवरण से विदित होता है कि उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन में नियोजन और नियंत्रण सम्मिलित होता है । अत: उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन प्रक्रिया में नियोजन और नियंत्रण चक्र की रूपरेखा नीचे दिए गए चित्रों द्वारा स्पष्ट की जाती है जिसमें प्रथम पद और द्वितीय पद नियोजन की अवस्था से संबंधित है और तृतीय और चतुर्थ पद नियंत्रण अवस्था से संबंधित है ।

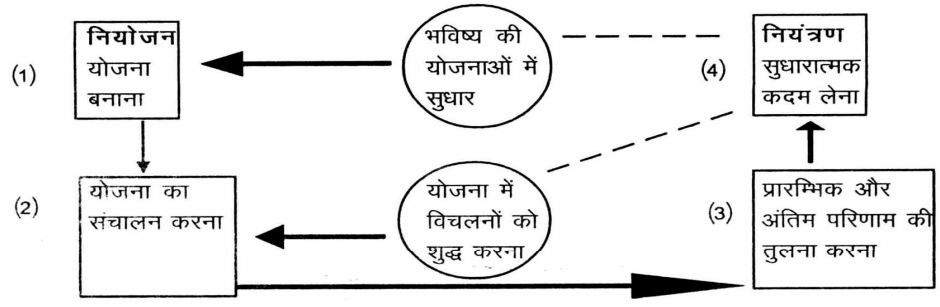

चित्र 1 : बुनियादी योजना/नियंत्रण चक्र

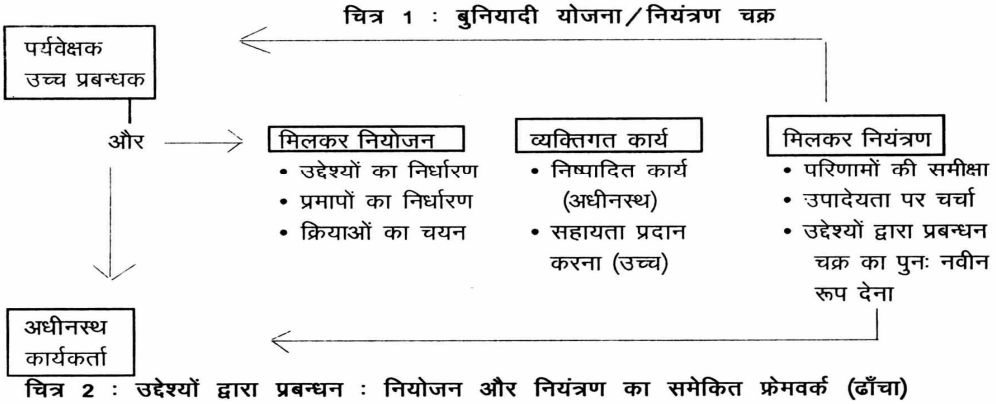

चित्र 2 : उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन : नियोजन और नियंत्रण का समेकित फ्रेमवर्क (ढाँचा)

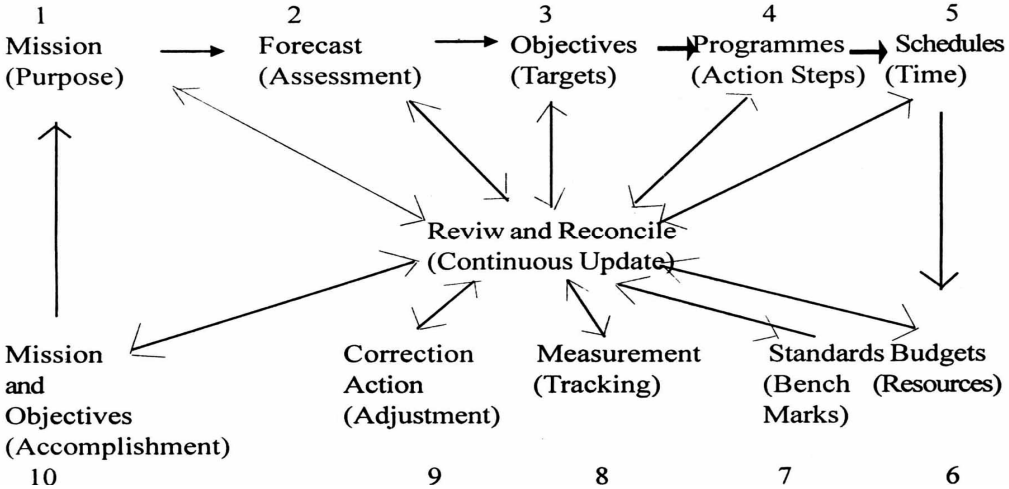

उपर्युक्त चित्र से उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन प्रक्रिया के मुख्य चरणों को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है ।

चित्र 3. उद्देश्यानुसार प्रबन्ध प्रक्रिया (The MBO Process)

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन के आधारभूत तत्त्व बताईए ।
2. उद्देश्यों पर शैक्षिक प्रबन्धन प्रक्रिया / तंत्र /चक्र के पदो के नाम बताईए ।

4.8 उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्ध के लाभ या गुण (Advantages or Merits of MBO)

उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्ध प्रणाली के अनेक लाभ हैं । हेनरी टोसी और स्टीफन कैरोल ने इसके लाभ और हानि के क्षेत्र पर व्यापक रूप से कार्य किया है । इनमें सम्पूर्ण संस्था, उच्च प्रबन्धक तथा अधीनस्थ कर्मचारी लाभान्वित होते हैं । इससे प्राप्त होने वाले लाभ निम्नानुसार! है-

1. श्रेष्ठ को लाभ (Benefits for the Enterprise)

1. **श्रेष्ठ प्रबन्धन (Better Management)-** उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की प्रणाली से प्रबन्धकीय कौशल एवं निष्पादन में सुधार होता है । इस प्रणाली को अपनाने से प्रबन्धक अपने संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त कर लेते हैं ।

2. **श्रेष्ठ नियोजन (Improved Planning)-** उद्देश्यों के स्पष्ट निर्धारण, कार्य योजनाओं के निर्माण तथा उत्तरदायित्वों के निर्धारण से प्रभावी नियोजन सम्भव हो पाता है ।

3. **संगठन को स्पष्टता (Clarified Organization)-** उद्देश्य द्वारा प्रबंध संगठन की भी स्पष्ट व्याख्या करता है । संगठन में आधारभूत परिणाम क्षेत्रों को परिचालनात्मक ' और उनको पूरा करने हेतु विभिन्न उत्तरदायी परिस्थितियों में परिवर्तित किया जाता है । कार्यभार अर्थात अधिकार सत्ता का भारार्पण एवं विकेन्द्रीकरण किया जाता है । इस प्रकार उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध प्रभावी संगठन को जन्म देता है ।

4. **भागीदारी की भावना (Sense of Participation)-** संगठन के कर्मचारियों द्वारा उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध में अपने उद्देश्यों का निर्धारण अपने अधिकारियों के साथ मिलकर किया जाता है । इससे उनमें संगठन एवं प्रबन्ध में भागीदारी की भावना का विकास होता है जिससे निष्पादन समुन्नत बनता है ।

5. **स्पष्ट परिणाम (Clarified Results) -** उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध परिणामोन्मुखी होता है । प्रत्येक कर्मचारी एवं प्रबन्धक को उसके द्वारा प्राप्त किये जाने वाले परिणामों का स्पष्ट ज्ञान होता है । प्राप्त परिणामों के आधार पर ही उनके निष्पादन का मूल्यांकन किया जाता है । फलत: वे अधिक निष्ठा भाव से कार्य करते हैं ।

6. **6. वैयक्तिक पहलपन में वृद्धि (Increased Personal Initiation)-** उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध में चूँकि कर्मचारियों को निर्धारित सीमाओं में समस्याओं को स्वयं हल करने तथा आवश्यक निर्णय लेने की स्वतंत्रता प्रदान की जाती है, अत: उनकी वैयक्तिक पहल शक्ति बढ़ जाती है । यह पहल शक्ति कर्मचारियों के निष्पादन और उनकी रचनात्मक प्रकृति को समुन्नत करने में सहायक होती है ।

7. अधिक-स्वप्रेरणा (More Self-Motivation) - उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध में उद्देश्यों के निर्धारण में कार्यकर्ताओं की भागीदारी, निर्णयन की स्वतंत्रता और प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्पादन के मूल्यांकन के कारण कार्यकर्ता सर्वाधिक रूप से स्व-प्रेरित होते हैं और अधिकाधिक कार्य करते हैं ।

8. **वचनबद्ध निष्पादन (Committed Performance) -** उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध में चूँकि उद्देश्यों का निर्धारण कर्मचारियों द्वारा अपने अधिकारियों के साथ मिलकर किया जाता है और उनको निर्णयन की भी पर्याप्त स्वतंत्रता होती है । अत: कार्यकर्तागण उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु वचनबद्ध होकर कार्य करते हैं । इसमें निर्धारित समयावधि में उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव होती है ।

9. **नेराश्य का अभाव (Lack of Frustration) -** उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध में प्रत्येक कर्मचारी एवं प्रबन्धक को उससे अपेक्षित परिणामों का पूर्ण ज्ञान होता है, फलत: वह उसी को प्राप्त करने हेतु प्रयास करता है । अपेक्षित परिणामों का निर्धारण भी वह स्वयं करता है । अत: कार्यकर्ताओं में निष्पादन से कार्य संतुष्टि की भावना का विकाश होता है और नैराश्य भावना समाप्त होती है ।

10. **श्रेष्ठत्तर नियंत्रण (Better Control)** - स्पष्ट रूप से परिभाषित, वास्तविक एवं सत्यापनीय लक्ष्य नियंत्रण के प्रमापों का कार्य करने के साथ-साथ प्रभावी नियंत्रण व्यवस्था को भी जन्म देते हैं ।

11. **क्षतिपूर्ति का श्रेष्ठतर मापदण्ड (Better Yardstick of Compensation) -** उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन कार्यकर्ताओं को उनके द्वारा किये गये कार्यों के प्रतिफल के रूप में क्षतिपूर्ति अर्थात् पारिश्रमिक चुकाने का अधिक न्यायोचित एवं तर्कसंगत आधार है । इसमें प्राप्त परिणामों

अर्थात् उद्देश्यों की मात्रा के अनुसार क्षतिपूर्ति की जाती है । जो कर्मचारी नियमित रूप से पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त कर लेते हैं, उनको अधिक ऊँची दर में पारिश्रमिक दिया जाता है ।

12. **साहचर्य प्रभाव (Synergetic Effect) -** साहचर्य प्रभाव से तात्पर्य किसी समूह की शक्ति अथवा ऊर्जा के कुल योग (Sum total of the energy which a group can command) से है । उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध पारस्परिक रूप से सहमत उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अधिकारियों एवं कर्मचारियों में 'संयुक्त प्रयास' की भावना को विकसित करता है । इस प्रकार उसके द्वारा संस्था या उपक्रम में साहचर्य प्रभाव उत्पन्न किया जाता है । इससे कुल परिणाम कई गुना अधिक होते हैं ।

13. अन्य लाभ (Other Benefits) -

(1) भारार्पण एवं विकेन्द्रीकरण का मार्ग प्रशस्त होता है ।

(2) बाह्य नियंत्रण के स्थान पर स्वनियंत्रण को प्रोत्साहन मिलता है ।

(3) समन्वय स्वेच्छा एवं स्व-अभिप्रेरणा से उत्पन्न हो जाता है ।

(4) संस्था में स्व-नियंत्रण एवं स्व-अभिप्रेरणा के कारण अनुशासन मे वृद्धि होती है ।

(5) संस्था में समूह भावना (Team Spirit) उत्पन्न होती है ।

(6) उद्देश्यों की सफलता की सम्भावना अधिक हो जाती है ।

(7) संस्था में सक्षम व दक्ष व्यक्तियों को खोजकर उनकी योग्यता का लाभ उठाया जा सकता है।

(8) संस्था में परिवर्तनों को लागू करना सरल हो जाता है ।

(9) प्रशिक्षण की आवश्यकता को आसानी से निर्धारित किया जा है ।

(10) विभिन्न विभागों व कर्मचारियों में सूचनाओं का आदान-प्रदान सरल हो जाता है।

(11) अधिकारी एवं अधीनस्थों के सम्बन्धों में सुधार होता है ।

(12) उद्देश्यों व संसाधनों की प्राथमिकताओं, प्रमापों, मापदण्डों का निर्धारण सरल हो जाता है ।

(13) पदोन्नति के योग्य प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों का निर्धारण आसान हो जाता है ।

(14) संस्था की वातावरण के साथ बदलने तथा समायोजन करने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है ।

(2) उच्च प्रबन्धकों को लाभ (Benefits for Top Managers)

उद्देश्यानुसार प्रबन्ध में उच्च प्रबन्धकों को भी लाभ प्राप्त होता है, वे हैं-

1. अधीनस्थों का मार्गदर्शन करने में आसानी होती है ।
2. अधीनस्थों के कार्यों का मूल्यांकन का उचित आधार मिल जाता है ।
3. अधीनस्थों को आसानी से प्रेरित किया जा सकता है ।
4. विभागों एवं कर्मचारियों के मध्य समन्वय सरल हो जाता है ।

(3) अधीनस्थों को लाभ (Benefits for Subordinates)

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध से अधीनस्थों को निम्नलिखित लाभ मिलते हैं -

1. कर्मचारियों को अपने लक्ष्य का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है, अत: उसकी प्राप्ति सरल हो जाती है।
2. संतुष्टि में वृद्धि होती है तथा निराशा समाप्त हो जाती है ।
3. अधीनस्थ अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित होते हैं ।
4. वे अपने अधिकारियों की अपेक्षाओं को भली प्रकार समझ सकते हैं ।
5. वरिष्ठ प्रबन्धकों से निरन्तर सम्पर्क बना रहने के कारण भ्रान्तियाँ उत्पन्न नहीं होती है।
6. वैयक्तिक पहलपन (Initiation) में वृद्धि होती है ।

4.9 उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध के दोष / सीमाएँ / कमियाँ / आलोचनाएँ (Defects / Limits / Weaknesses / Criticism of MBO)

अन्य प्रबन्ध तकनीकों की भाँति उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की प्रणाली भी दोषमुक्त नहीं है । कई विद्वानों ने इसकी आलोचना की है तथा कमियां बताई हैं, इसमें प्रमुख नाम हेनरी टोसी और स्टीफन कैरोल का नाम आता है । इस प्रणाली के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं -

(1) उद्देश्य निर्धारण में कठिनाई (Difficulty in Objective setting) - उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध का आधार तत्त्व 'उद्देश्य' होते हैं, किन्तु यथार्थपूर्ण एवं सत्यापनीय उद्देश्यों के निर्धारण में बहुत कठिनाइयाँ आती हैं । भावी अनिश्चितता, पूर्वानुमानों की कठिनाई, गतिशील वातावरण, सरकारी नीतियां, उद्देश्यों का अन्तर्गठबन्धन आदि घटकों के कारण ' उद्देश्य निर्धारण का कार्य सरल नहीं है ।

(2) संतुलन की समस्या (Problem of Balancing) - अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उद्देश्यों में सामंजस्य एवं संतुलन स्थापित करना भी उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है । अल्पकालीन उद्देश्य चूंकि वर्तमान तथा निकट भविष्य से संबंधित होते हैं, अत: उन पर सामान्यत: अधिक बल दिया जाता है । इस प्रक्रिया में संस्था के दीर्घकालीन उद्देश्यों की बलि चढ़ जाने का भय बना रहता है । दीर्घकालीन उद्देश्य भी महत्त्वपूर्ण होते हैं और अल्पकालीन उद्देश्य वस्तुत: दीर्घकालीन उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होने आवश्यक हैं । इस दृष्टि से अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उद्देश्यों में सामंजस्य एवं संतुलन स्थापित करना भी उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध को एक जटिल प्रक्रिया बना देता है ।

(3) चुनौती रहित उद्देश्य निर्धारण का भय (Fear of Determination of Non-Challengeable Objectives) - उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध में चूंकि कर्मचारी एवं प्रबन्धक मिलकर संयुक्त रूप से कर्मचारियों के लक्ष्यों का निर्धारण करते हैं और चूंकि उनके कार्य निष्पादन का मूल्यांकन भी प्राप्त परिणामों की मात्रा के आधार पर किया जाता है, अत: इस बात की पूर्ण सम्भावना होती है कि कर्मचारी तथा प्रबन्धक दोनों आपस में मिल जायें और आसानी से प्राप्य चुनौती रहित उद्देश्यों का निर्धारण कर लें ।

(4) बेलोचता की कठिनाई (Inflexibility Problem) - उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की एक और समस्या उद्देश्यों में परिवर्तन न कर पाने की व्यावहारिक कठिनाई है । अनेक बार परिस्थितियों, नीतियों, आवश्यकताओं, प्राथमिकताओं आदि में तेजी से परिवर्तन हो जाते हैं, किन्तु उनके अनुरूप उद्देश्यों को शीघ्र परिवर्तित करना सम्भव नहीं हो पाता है । फलस्वरूप कर्मचारी एवं प्रबन्धक अर्थहीन एवं अवास्तविक पूर्ण उद्देश्यों का ही अनुसरण करते रहते हैं । ऐसे उद्देश्यों की कोई आर्थिक उपयोगिता नहीं होती है । यदि उद्देश्यों को बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप जल्दी-जल्दी एवं बार-बार बदला भी जाता है तो उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध केवल उद्देश्यों के निर्धारण की प्रक्रिया में उलझकर वहीं तक सीमित रह जाता है और उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा मे प्रभावी कदम उठाने के लिए समय ही नहीं मिल पाता ।

(5) प्रतिवाद (Protest) - जब किसी संस्था में उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध को लागू किया जाता है तो उसके संगठन में आवश्यक परिवर्तन करने अनिवार्य हो जाते हैं । अधिकारियों को अपनी अधिकार सत्ता का भारार्पण करना पडता है; । कर्मचारियों को निर्णयन एवं पहल की अधिक स्वतंत्रता देनी पड़ती है, इस कारण वर्तमान व्यवस्था जिसके अधिकारी एवं कर्मचारी दोनों अभ्यस्त एवं आदि हो चुकते हैं, में किसी भी प्रकार का परिवर्तन का उनके द्वारा प्रतिवाद किया जाता है । अधिकारी एवं प्रबन्धक सिद्धान्त: तो भारार्पण एवं निर्णयन में भागीदारी की बात को स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु व्यवहार में वे उसके वास्तविक अर्थ में लागू नहीं करते । फलत: उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध एक स्वप्न बनकर रह जाता है जो कभी साकार नहीं हो पाता ।

(6) सत्यापनीयता की समस्या (Problem of Verifiability) - उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की अन्य कठिनाई उद्देश्यों के सत्यापन रमे संबंधित हे । उद्देश्यों को सत्यापनीय बनाने हेतु उनको परिमाणात्मक अथवा गुणात्मक रूप में अभिव्यक्त किया जाता है । चूंकि परिमाणात्मक अभिव्यक्ति का कार्य किये जाने का भय होता है, जहाँ मात्रा में उद्देश्यों का निर्धारण सम्भव ही नहीं होता । इसी प्रकार यह सम्भावना भी रहती है कि गुणात्मक उद्देश्यों को कम महत्त्वपूर्ण मानकर उनकी बलि चढ़ा दी जाए ।

(7) उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध-दर्शन के शिक्षण की असफलता (Failure of Teaching MBO Philosophy) - बहुधा उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध दर्शन का संस्था में कार्यरत कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों को समुचित ज्ञान नहीं होने के कारण भी इसकी उपयोगिता शून्य हो जाती है । कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों को इसके दर्शन का विधिवत शिक्षण दिया जाना अनिवार्य है । समस्त कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों को इस दर्शन की विस्तृत व्याख्या की जानी चाहिए, उनको स्पष्ट किया जाना चाहिए कि उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध क्या है? इनकी क्या आवश्यकता है? यह कैसे कार्य करता है? कार्य-निष्पादन के मूल्यांकन में इसकी क्या भूमिका रहती है ? कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों को इससे प्राप्त लाभ क्या है? जब तक समस्त कर्मचारीगण एवं प्रबन्धकगण उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध को, भली-भांति समझकर हृदयंगम नहीं कर पाते और दिल से उसको स्वीकार कर लागू नहीं कर पाते, तब तक उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध का पूरा लाभ नहीं मिल सकता, इसके लिए धैर्य के साथ उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध के दर्शन के शिक्षण की आवश्यकता होती है ।

(8) कमजोर सूचना प्रणाली (Weak Information System) - सुदृढ़ सूचना प्रणाली उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है किन्तु सामयिक निष्पादन समीक्षा एवं वार्षिक मूल्यांकन के पश्चात् कर्मचारियों को प्रतिपुष्टि सूचनाएँ नहीं मिल पाती हैं, फलत: इससे कार्यक्रम में बाधा पड़ती है ।

(9) परिणामों पर अत्यधिक बल (Overemphasis on Results) - उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध परिणाम प्राप्त करने वाली क्रियाओं के स्थान पर परिणामों को अधिक महत्त्वपूर्ण मानता है, किन्तु लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किये गये कार्यों, कार्य कुशलता आदि की उपेक्षा नहीं की जा सकती है, अन्यथा इससे संगठनात्मक निष्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

(10) अधिक कागजी कार्यवाही (Increased Paperwork) - इस उपागम में कागजी कार्य बहुत बढ़ जाता है । यदि उचित नियंत्रण नहीं रखा जाता है तो संगठन एक 'कागज मिल' (Paper Mill) में बदल जाता है ।

(11) विचारधारा को विकृति (Distortion of Philosophy) - कई संगठनों में 'उद्देश्यानुसार प्रबन्ध का दर्शन ही विकृत हो जाता है । प्रबन्धक इसे अधीनस्थों पर अपना नियंत्रण बढ़ाने का चाबुक' (Whip) मानते है ।

(12) वांछित कौशल का अभाव (Lack of Desired Skills) - प्रबन्धकों में उद्देश्य निर्धारण, नियोजन, सम्प्रेषण, परामर्श, अन्तवैयक्तिक अन्तर्व्यवहार, नियंत्रण आदि का प्रबन्धकीय कौशल न होने पर भी उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध प्रभावहीन हो जाता है ।

(13) एकीकरण की कमी (Poor Integration) - अन्य प्रणालियों के साथ कमजोर एकीकरण के कारण भी उद्देश्यानुसार प्रबन्ध शिथिल हो जाता है । उद्देश्य निर्धारण तथा प्रगति समीक्षा की अवस्थाओं में इस कार्यक्रम का पूर्वानुमान, बजटिंग तथा अन्य प्रक्रियाओं के साथ समन्वय नहीं किया जाता है ।

(14) अनुपयुक्त परिवर्तन व्यूह रचना (Inappropriate Change Strategies) - उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की अभिकल्पना (Design) क्रियान्वयन, व्यूहरचना आदि उचित ढंग से तैयार नहीं की जाती है । इस कार्यक्रम को कब और कैसे लागू किया जायेगा, कौन इसमें भाग लेंगे, विशेषज्ञ कौन होंगे आदि कुछ भी पूर्व नियोजित नहीं होता है ।

(15) अन्य दोष (Other Defects)

1. उच्च प्रबन्धकों की सहभागिता एवं सहयोग का अभाव ।
2. अधीनस्थों पर अत्यधिक समय का दबाव बढ़ जाना । प्राथमिकताएँ तय न होना ।
3. अधीनस्थों को उचित रूप से अभिप्रेरित न किया जाना । उचित पुरस्कार एवं मान्यता का अभाव होना
4. वरिष्ठ प्रबन्धकों तथा अधीनस्थों में व्यक्तिगत संघर्ष का पाया जाना ।
5. प्रबन्धकों में कार्यक्रम के प्रति सच्ची निष्ठा का अभाव पाया जाता है । परिणामस्वरूप उद्देश्यानुसार प्रबन्ध केवल एक अभिनय या स्वांग बन जाता है तथा अधीनस्थ इसे अपने साथ चाल-चलना मानने लगता है ।

6. उद्देश्यानुसार प्रबन्ध के संदर्भ में उचित मान्यता, प्रचार, पुनर्बलन, अभिनव प्रशिक्षण आदि का अभाव रहता है, फलस्वरूप इसके सुदृढ़ीकरण में बाधा आती हे ।
7. कुछ विद्वानों के अनुसार उद्देश्यानुसार प्रबन्ध में अत्यधिक समय खर्च होता है ।
8. उद्देश्यों के द्वारा प्रबन्ध का मुख्य जोर 'परिणामों' पर है । अत: इसके संबंध में 'लक्ष्य साधनों का औचित्य सिद्ध कर सकते हैं' वाली कहावत लागू हो जाती है । फलत: परिणाम प्राप्ति के लिए कर्मचारी गलत साधनों को भी अपनाने लगते हैं ।
9. यह दीर्घकालीन नियोजन की उपेक्षा कर अल्पकालीन लक्ष्यों पर अधिक बल देता है ।
10. कुछ आलोचकों के अनुसार इसमें कई गम्भीर कार्य पद्धति संबंधी समस्यायें भी हैं ।
11. इसमें मनमाने लक्ष्यों (Arbitary goals), असंगत लक्ष्यों (Inconsistent Goals), गुणात्मक लक्ष्यों तथा अव्यवहार प्रमापों (Inapplicable Standards) के कारण भी कई समस्याएँ उत्पन्न हो जाती ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन में उद्देश्य ऊपर से ..... की ओर ..... से..... की ओर कार्य करते हैं ।
2. उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन एक ..... है । जिसमें ..... और .....दोनों मिलकर ..... निर्धारित करते हैं ।
3. उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन में ..... की वचनबद्धता बढ़ जाती है ।
4. उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन एक व्यापक ..... है जो निश्चित किए गए उद्देश्यों पर ..... है जिन पर सभी कार्यकर्ता ..... रहते हैं ।

4.10 उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन की प्रभाविता बढ़ाने के लिए कुछ सुझाव (Some suggestions for improving the effectiveness of Management by Objectives)

(1) उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन उपागम में यह सबसे आवश्यक है कि प्रबन्धकों का सहयोग और वचनबद्धता मिले । बिना वचनबद्धता (commitment) के उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन को वास्तव में सफलता हासिल नहीं होती है इसलिए उच्च प्रबन्धकों और अधीनस्थों सभी को एक खेल के दल (team) के सदस्य मानना चाहिए जो विजय होने के लिए हर प्रकार से प्रयासरत रहते हैं । इस प्रकार उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन की प्रभाविता को बढ़ाया जा

सकता है जिसमें प्रबन्धक और अधीनस्थ दोनों मिलकर कुछ मसलों पर अपने-अपने अधिकारों का मिलकर उपयोग करते हैं ।

(2) उद्देश्यों द्वारा निर्धारण वास्तविक व प्राप्त करने योग्य व स्पष्ट होने आवश्यक है । उदाहरण के लिए यदि शोध एवं विकास विभाग में संगठन के लिए 20 शोध प्रतिवर्ष करने का ध्येय निश्चित किया जाता है तो वह जब ठीक नहीं होगा, जब ध्येयों के निर्धारण में अधीनस्थों की भागीदारी नहीं होगी । यह भागीदारी इसलिए कम होगी क्योंकि सभी अधीनस्थों को ध्येय का सम्प्रेषण स्पष्ट रूप से नहीं होता है । अत: उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन जब प्रभावी होगा जब ध्येय सभी सदस्यों को सहमत होंगे ।

(3) उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन सम्पूर्ण प्रबन्धन संगठन का दर्शन होना चाहिए ना कि किसी प्रबन्धन की एक खण्ड की प्रक्रिया या निष्पादन का मूल्यांकन करने की तकनीकी का । उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन उपागम को पुराने प्रबन्धन तरीके में एक अंश की तरह जुडना चाहिए । फिलिक्स एम. लोपेक्स ने भी कहा है कि "जब भी कोई संगठन का प्रबन्धन उद्देश्यों द्वारा होता है तो वह केन्द्रित हो जाता है । वह संगठन वृद्धि करता है, उसका विकास होता है और वह समाज के लिए हो जाता है । "

(4) आवश्यक परिवर्तित परिस्थितियों में ध्येयों की लगातार समीक्षा करके संशोधितरहना आवश्यक है । समीक्षा तकनीकी इस प्रकार की होनी चाहिए कि जो भी बदलाव वह जल्दी ही अपना कर संशोधित किये जाये ।

(5) कार्यक्रम में भाग लेने वाले सभी सदस्यों को पूर्व में औपचारिक प्रशिक्षण और आधारभूत विषयवस्तु को स्पष्ट करना आवश्यक है । ध्येय स्थापित कैसे करें, व विधियां जिनकी से उनको प्राप्त किया जा सकता है, को भी कार्यक्रम में सम्मिलित करना चाहिए । साथ ही समीक्षा की विधियां, निष्पादन के मूल्यांकन की तकनीकी, प्रतिपुष्टि देने की तकनीकी सभी सम्मिलित करना है ताकि उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन को और प्रभावी बनाया जा सके।

(6) अन्त में उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन तथा मुख्य रूप से संगठनात्मक और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित होता है, इसलिए इसको प्रबन्धन का एक सम्पूर्ण तरीका कहेंगे । ये संगठनात्मक वातावरण में पूर्णरूपेण घुला मिला (संश्लेषित) होना चाहिए । सभी कार्य करने वाले सदस्यों को अपनी भूमिका स्पष्ट हो यह अति आवश्यक है । साथ ही उनकी आकांक्षाएँ भी । संगठन के सी सदस्यों के द्वारा प्रबन्धन का यह तरीका / उपागम मान्य होना आवश्यक है तभी इसकी प्रभाविता को बढ़ाया जा सकता है ।

4.11 सारांश (Summary)

प्रबन्धन की परम्परागत उपागमों में शीर्ष-प्रबन्धक उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं और वह नीचे के स्तर तक आते-आते अस्पष्ट हो जाते हैं । अत: शैक्षिक प्रबन्धन में नवीन उपागम उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन का प्रादुर्भाव हुआ ।

(अ) उद्देश्यों दारा शैक्षिक प्रबन्धन की विचारधारा

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन में शीर्ष प्रबन्धक और अधीनस्थ दोनों मिलकर संगठन के लिए क्रियात्मक उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं । इसमें उद्देश्य ऊपर से नीचे की ओर, नीचे से ऊपर की ओर दोनों दिशाओं में कार्य करते हैं । इसमें प्रत्येक व्यक्ति को उसके मुख्य कार्य क्षेत्र की जिम्मेदारियों को अपेक्षित परिणामों के रूप में परिभाषित करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति के कार्य के योगदान के मूल्यांकन किया जाता है ।

उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन एक प्रक्रिया है जिसमें प्रधानाचार्य एवं शिक्षक मिलकर संस्था के लिए उन ध्येयों के लिए कार्य करते हैं जो उन्होंने मिलकर निर्धारित किए थे । उपागम में संगठन के उद्देश्य और व्यक्ति के उद्देश्य में अनुरुपता होती है । कोई भी व्यक्ति अस्पष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल होते हैं अत: संस्था के प्रत्येक सदस्यों (प्रबन्धक, अधिकारी, कर्मचारी) को यह स्पष्ट होना आवश्यक है कि उनके उद्देश्य क्या हैं, उनकी प्राप्ति के लिए क्या प्रयास किये जाने हैं तथा उन्हें कब तक प्राप्त कर लिया जाना है । 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' की अवधारणा इसी विचारधारा पर ' है ।

(ब) उद्देश्यों दारा शैक्षिक प्रबन्धन का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning & Definitions of Educational MBO)

शाब्दिक अर्थ के अनुसार 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' से आशय उद्देश्यों का निर्धारण करके उनके आधार पर प्रबन्ध कार्य करने से है । दूसरे शब्दों में, जब संस्था या संगठन के प्रत्येक स्तर पर कार्यरत समस्त कार्यकर्ताओं और अधिकारियों को अपने-अपने वैयक्तिक उद्देश्यों के साथ-साथ संगठनात्मक उद्देश्यों और वैयक्तिक एवं संगठनात्मक उद्देश्यों के पारस्परिक सम्बन्धों की पूर्ण जानकारी होती है जिस ओर कार्य करके वह स्वयं के उद्देश्यों के साथ, संगठनात्मक उद्देश्यों को भी प्राप्त कर सकते हैं और उन्हें यह भी स्पष्ट होता है कि उनके कार्य निष्पादन के मूल्यांकन का आधार उनके वैयक्तिक गुण न होकर उनके द्वारा प्राप्त परिणाम हैं तो वह उद्देश्यों के प्रति उदासीन एवं तटस्थ नहीं रह पाते हैं । प्रबन्ध की यह उद्देश्योन्मुखी प्रवृत्ति ही वह दर्शन है जिसे प्रबन्ध जगत में उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध या 'उद्वाप्र (MBO) के नाम से जाना जाता है ।

उद्देश्यों चारा प्रबन्धन की महत्वपूर्ण परिभाषाएँ

1. **श्री जार्ज एस. ओडिओर्न** : "उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की प्रणाली एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा संगठन के अधिकारी एवं अधीनस्थ प्रबन्धक संयुक्त रूप से संगठन के सामान्य लक्ष्यों की पहचान करते हैं, प्रत्येक व्यक्ति के उससे अपेक्षित परिणामों के रूप में उत्तरदायित्वों के बडे क्षेत्रों को परिभाषित करते हैं और इकाई के परिचालन तथा उसके प्रत्येक सदस्य के योगदान का मूल्यांकन करने में उन मापों का प्रयोग करते हैं ।

2. **आरिन उरिस** के अनुसार : "मूलत: उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध एक सरल अवधारणा है । यह वांछित परिणामों से निर्देशित अथवा पथ-प्रदर्शित कार्य निष्पादन एवं उपलब्धि है । "

3. **पीटर ड्रकर** के अनुसार, "उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध एक प्रणाली है जिसमें प्रबन्धक एक सम्पूर्ण प्रतिष्ठान दोनों की कार्यकुशलता में सुधार के लिए विभाग तथा प्रत्येक व्यक्तिगत प्रबन्धक के स्तर पर उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है । "

(स) उद्देश्यों चारा प्रबन्ध की प्रकृति अथवा लक्षण

उद्देश्यों द्वारा प्रबंध को निम्नलिखित विशेषताओं से समझा जा सकता है-

यह एक कार्यात्मक, 'वाई विचारधारा', प्रबन्धन दर्शन, सहभागिता, परिणामोन्मुखी विचारधारा, वातावरण की अपेक्षाओं में संतुष्टि, संगठनात्मक लक्ष्यों के साथ-साथ कार्यकर्ताओं के व्यक्तिगत उद्देश्यों की पूर्ति के अवसर देने आदि अवधारणाओं पर आधारित है । '

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध विभिन्न तकनीकों का भी एक समूह है । यह नियोजन एवं नियंत्रण, अभिप्रेरणा, निष्पादन, मूल्यांकन, संगठन विकास एवं परिवर्तन आदि की तकनीक है ।

यह दीर्घकालीन लक्ष्यों पर बल देती है तथा संगठनात्मक मांगों और वैयक्तिक आवश्यकताओं में एक एकीकरण है । इसके अतिरिक्त उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध एक प्रबन्धकीय नेतृत्व की एक प्रणाली है जिसमें 'उद्देश्यों' पर बल दिया जाता है ।

यह विचारधारा 'समस्या-समाधान' पर जोर देती हैं साथ ही दबाव, बल अथवा संकटावस्था जैसी प्रबन्ध विधियों को पूर्णरूप से अस्वीकार करती है । उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध ' 'उपलब्ध साधनों से अधिकतम उपयोग' ' से उद्देश्यों के निर्धारण पर जोर देता है तथा उद्देश्यानुसार प्रबन्ध सम्पूर्ण संगठन के स्तर पर चलाया जाने वाला कार्यक्रम है ।

(द) उद्देश्यों दारा प्रबन्ध की पृष्ठभूमि एवं विकास (The Background & Development MBO)

प्रबन्ध में उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की तकनीक का प्रयोग किसी न किसी रूप में बहुत पहले से होता आया है परन्तु पहले इसका स्वरूप अव्यवस्थित, संकीर्ण तथा सांयोगिक था । प्रबन्धक योजनाबद्ध तरीके से इस विचार को भी अपनाते थे । पीटर ड्रकर ने इसको प्रणालीगत रूप प्रदान किया । उनके अनुसार उद्देश्यों की उस प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यकता होती है जहाँ व्यवसाय (शिक्षा) के अस्तित्व एवं प्रगति को कार्य निष्पादन एवं परिणाम प्रत्यक्ष तथा महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं । प्रबन्धक से अपेक्षित निष्पादन व्यवसाय के निष्पादन लक्ष्यों पर ही आधारित होना चाहिए तथा उसके परिणामों का मूल्यांकन उपक्रम या संस्था की सफलता के लिए किये जाने वाले योगदान के द्वारा किया जाना चाहिए ।''

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की पृष्ठभूमि एवं विकास में मुख्य तीन दृष्टिकोण उभर कर सामने आए हैं वे हैं

(1) मूल्यांकन दृष्टिकोण (Appraisal Approach to MBO)

(2) प्रणाली दृष्टिकोण (System Approach to MBO)

(3) अभिप्रेरणा दृष्टिकोण (Motivation Approach to MBO)

(य) उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन तंत्र के आधारभूत तत्व (Fundamental Elements of Educational MBO)

उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रवजन तंत्र के निम्नलिखित आठ आधारभूत तत्व होते हैं -

1. केन्द्रीय ध्येय निर्धारण (Central Goal Setting)
2. प्रबन्धन - अधीनस्थ सम्बद्ध एवं अभिप्रेरणा (Manager Subordinate involvement and Motivation)
3. ध्येय के अनुरूप संसाधन तय करना (Matching Goals with resources)
4. लागू करने की स्वतंत्रता (Freedom of Implementation)
5. निष्पादन की समीक्षा और मूल्यांकन (Review and Appraised of Performances)
6. भारार्पण (Delegation)
7. समय (Time)
8. उपलब्धि अर्थात् सफलता प्रचार (Achievement or Publicizing success)

(र) उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन की प्रक्रिया / चक्र / क्रियान्विति पद (Educational MBO Proceed/Cycles/Execution Step)

यह प्रबन्धन उपागम एक व्यवस्थित एवं नियोजित कार्यक्रम है । अत: इसको अनायास ही लागू नहीं किया जा सकता है । इसके क्रियान्वयन में कई स्तरों पर व्यापक रूप से तैयार करनी होती है । इसकी को निम्नलिखित पदों में विभाजित किया जा सकता है -

1. उच्च प्रबन्ध का सहयोग एवं प्रतिबद्धता
2. दीर्घकालीन उद्देश्यों एवं रणनीतिक योजनाओं का निर्माण
3. संगठन का विकास
4. कार्य निष्पादन उद्देश्यों का निर्धारण
5. सामयिक प्रगति पर विचार
6. परिणामों का मूल्यांकन
7. मान्यता, प्रचार एवं पुनवर्जन

(ल) उद्देश्यों चारा शैक्षिक प्रबन्ध के लाभ या गुण (Advantages or Merits of MBO)

1. संख्या को लाभ (Benefits for the Enterprise)

(1) श्रेष्ठ प्रबन्धन (Better Management)
(2) श्रेष्ठ नियोजन (Improved Planning)
(3) संगठन की स्पष्टता (Clarified Organization)
(4) भागीदारी की माध्यम (Sense of Participation)
(5) स्पष्ट परिणाम (Clarified Results)

(6) वैयक्तिक पहलपन मे वृद्धि (Increased Personal Intiation)

(7) अधिक स्व-प्रेरणा (More Self Motivation)

(8) वचनबद्ध निष्पादन (Committed Performance)

(9) नैराशय का अभाव (Lack of Frustration)

(10) श्रेष्ठतर नियंत्रण (Better Control)

(11) क्षतिपूर्ति का श्रेष्ठतर मापदण्ड (Better Yardstock of Compensation)

(12) साहचर्य प्रभाव (Synergetic Effect)

(13) अन्य लाभ (Other Benefits) जैसे -

भारार्पण एवं विकेन्द्रीकरण एवं नियंत्रण, रच-अभिप्रेरणा, समूह भावना, परिवर्तन को लागू करना,मानवीय संबंधों में सुधार, उद्देश्यों व संसाधनों की प्राथमिकताओं, प्रभावों, मापदण्डों का निर्धारण करना, व्यक्तियों की पदोन्नति निर्धारण आसान, संस्था के वातावरण के साथ बदलने तथा समायोजन करने की क्षमता में वृद्धि होना ।

2. उच्च प्रबन्धकों को लाभ (Benefits for Top Managers)

अधीनस्थों के मार्गदर्शन, कार्यों का मूल्यांकन एवं समन्वय को सरल तथा प्रेरित करने के लिए आधार मिल जाता है ।

3. अधीनस्थों को लाभ (Benefits for Subordinates)

कर्मचारियों को अपने लक्ष्यों का स्पष्ट ज्ञान प्राप्ति सरल हो जाती है । कार्य संतुष्टि में वृद्धि होती है । साथ ही अधीनस्थ अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित होता है । वरिष्ठ प्रबन्धकों से निरन्तर सम्पर्क होने के कारण भ्रान्तियां उत्पन्न नहीं होती हैं साथ ही वैयक्तिक पहलपन में वृद्धि होती है।

(व) उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध के दोष / सीमाएँ / कमियाँ /आलोचनाएँ (Defects/Limits/Weaknesses Criticism of MBO)

1. उद्देश्य निर्धारण में कठिनाई (Difficulty in Objective Setting)
2. संतुलन की समस्या (Problem of Balancing)
3. चुनौती रहित उद्देश्य निर्धारण का भय (Fear of determination of Non-challengeable objectives)
4. बेलोचता की कठिनाई (Inflexibility Problem)
5. प्रतिवाद (Protest)
6. सत्यापनीयता की समस्या (Problem of Verifiability)
7. उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध दर्शन के शिक्षण की असफलता (Failure of Teaching MBO Philosophy)
8. कमजोर सूचना प्रणाली (Weak Information System)

9. परिणामों पर अत्यधिक बल (Overemphasis on Results)
10. अधिक कागजी कार्यवाही (Increased Paperwork)
11. विचारधारा की विकृति (Distortion of Philosophy)
12. वांछित कौशल का अभाव (Lack of Desired Skills)
13. एकीकरण की कमी (Poor Integration)
14. अनुपयुक्त परिवर्तन व्यूह रचना (Inappropriate Change strategies)
15. अन्य दोष (Other defects)

(त) उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन की प्रभाविता बढ़ाने के लिए कुछ सुझाव (Some suggestions for improving the effectiveness of MBO)

1. प्रबन्धकों का सहयोग एवं वचनबद्धता मिलना ।
2. उद्देश्यों का निर्धारण वास्तविक प्राप्त करने योग्य स्पष्ट हो ।
3. यह सम्पूर्ण प्रबन्धन संगठन का दर्शन होना चाहिए ।
4. परिवर्तित परिस्थितियों में ध्येयों की लगातार समीक्षा करके संशोधित करते रहना आवश्यक है ।
5. कार्यक्रम में भाग लेने वाले सभी सदस्यों को पूर्व में औपचारिक प्रशिक्षण और आधारभूत विषयवस्तु को स्पष्ट करना आवश्यक है ।
6. यह मुख्य रूप से संगठनात्मक और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित होता है, इसलिए इसे प्रबन्धन का सम्पूर्ण तरीका कहेंगे । इसमें कार्य करने वाले प्रत्येक को अपनी भूमिका स्पष्ट हो यह अति आवश्यक है । यह उपागम मान्य होना आवश्यक है तभी इसकी प्रभावित को बढ़ाया जा सकता है ।

अभ्यास प्रश्न (Exercises)

1. उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन के सम्प्रत्यय को स्पष्ट कीजिए ।
2. उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन के आधारभूत तत्त्व बताइए ।
3. उद्देश्यों पर शैक्षिक प्रबन्धन प्रक्रिया / तंत्र / चक्र के पदों को सहित स्पष्ट करिए ।
4. उद्देश्यों द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन एवं उपयोगिता पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए ।

4.12 संदर्भ (Exercises)

1. Chandan J.S., Management : Theory and Practices, Vikas Publishing House Pvt.Ltd. New Delhi, 2004-2005
2. Kreitner Robert-Management V Edition, Houghton Miffin Company, USA, 1990

3. Bhatnagar, R.P.,Agarwal Vidya : Educational Administration : Supervision Planning and Financing, R.Lall Book Depot, Meerut, 2004
4. Snyder J.Karodyn, Anderson H. Robert : Managing Productive Schools Towards an Ecology. Academic Press Florida 1986
5. Schermerhon John : 'Management' VII Ed. John Wiley and Sons Inc. USA. 2002
6. Stoner Freeman, Gilbert, Management Prentice hall.
7. Hodge B.J. and Anthony P.William : Organization Theory USA, 1984,pp.293
8. सुधा. जी. एस. (2003)ऐ प्रबन्धन (अवधारणा, चिन्तन एवं व्यवहार) जयपुर : रमेश बुक डिपो

इकाई 5

शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन

(Total Quality Management in Education (TQM)

इकाई की संरचना

5.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

5.2 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background of TQM)

5.3 गुणात्मकता अर्थ एवं परिभाषा (Quality : Meaning and Definition)

5.4 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन का अर्थ एवं अवधारणा (Meaning and Concept of TQM)

5.5 शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन (TQM in Education)

5.6 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के सिद्धान्त (Principles of TQM)

5.7 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के उद्देश्य (Objectives of TQM)

5.8 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन हेतु अपेक्षित प्रवृत्तियाँ (Expected Trends for TQM)

5.9 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के आवश्यक तत्त्व (Essential Elements for TQM)

510 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन की विधि (Method of TQM)

5.11 सम्पूर्ण गुणात्मक और सामान्य शिक्षा संस्थानों में अन्तर (Difference between Total Quality and General Educational Institutions)

5.12 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्ध के मापन की नई विधि : सिक्स सिग्मा (The Six Sigma : A New Method of Measurement of TQM)

5.13 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के लाभ (Advantages of TQM)

5.14 सारांश (Summary)

515 संदर्भ (References)

5.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई को पढ़कर आप यह समझ सकेंगे कि -

1. शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन का आरम्भ कैसे हुआ -
2. सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या है ?
3. गुणात्मकता से क्या तात्पर्य है ?
4. सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन का अर्थ एवं अवधारणा क्या है ?
5. सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के सिद्धान्त क्या हैं ?
6. सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन में किन उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है ?

7. सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन से संबंधित तत्त्व क्या हैं ?
8. सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन का आकलन कैसे किया जाता है ?
9. सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन से संगठनों / संस्थाओं को क्या लाभ होता है ?

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव-जीवन का क्रमबद्ध उत्कर्ष जीवन मूल्यों के सुचारू प्रबन्धन का ही द्योतक है और इसी वजह से मानव अपने कार्यों में उत्तरोत्तर गुणात्मकता विकसित करते हुए विश्व-विजेता बनता चला गया । आज व्यक्ति देश-काल सीमाओं को लांघकर वैश्विक मानव बन गया है । यद्यपि इस स्तर पर पहुँचने में. उसे कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा किन्तु चुनौतियों व समस्याओं से संघर्षोपरान्त सफलता के साथ-साथ उसके कार्यों में गुणात्मकता की सम्भावनाओं के नवीनतम क्षितिज खुलते गए । आज वैश्विक परिदृश्य में ' प्रत्येक क्षेत्र में उलकृष्टता और गुणात्मकता का सन्दर्भ सर्वोपरि हो गया है । शिक्षा जगत् भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका । चूंकि शिक्षा भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य है, जो सीधे सजीव तत्त्व से जुडा हुआ है,

अत: तत्सम्बन्धी निर्माण का प्रबन्ध भी अत्यन्त सजगता और उत्कृष्टता के साथ करना शैक्षिक प्रबन्धकों का दायित्व है । इस अध्याय में आप शैक्षिक प्रबन्धन के विभिन्न आयामों के बारे " जानेंगे, जिनमें गुणात्मकता का अर्थ, सम्पूर्ण गुणात्मकता से तात्पर्य, शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मक, प्रबन्धन,, सिद्धान्त, प्रवृत्तियाँ, तत्त्व, विधि एवं इसके लाभ के प्रति अपनी समझ विकसित कर सकेंगे । इसके साथ ही विश्व की समसामयिक विभिन्न प्रबन्धकीय प्रक्रियाओं में सम्पूर्ण गुणात्मकता के संदर्भ में निरन्तर बढती। हुई सोच एवं मांग से प्रभावित । शैक्षिक प्रबन्धन में भी इसकी अनिवार्यता के पहलुओं को समझ सकेंगे ।

5.2 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background of TQM)

उदारीकरण, निजीकरण और ग्लोबलाइजेशन से जैसे ही दुनिया के बाजार तेजी से खुलने लगे, व्यावसायिक और औद्योगिक संगठनों के सामने नई चुनौतियाँ उभरकर आने लगीं । इनका सामना करने के लिए नई दिशा, नई दृष्टि व नए संकल्प की खोज में सबका ध्यान डेमिंग जूंरान, क्रॉसबी और मैक किन्से, जो अमेरिका में तथा तियाची ओहनो शेगियो शिनगो अपर कांवरु इशिखावा, जो जापान में क्वालिटी मैनेजमेन्ट पर गम्भीरता से प्रयास कर रहे थे, की ओर आकृष्ट हुआ । उनकी इस विधि में इन दिशाहीन व्यावसायिक और औद्योगिक संगठनों को अपने कल्याण का स्पष्ट मार्ग दिखाई दिया और बस सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन (Total Quality Management) एक विश्वव्यापी अभियान बन गया । आज प्रत्येक . व्यवसायी चाहे वह उद्योगपति हो या शिक्षा-प्रबन्धक सभी सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्ध (TQM) की विधा अपनाने के लिए कृत संकल्प होना चाहते हैं क्योंकि बिना क्वालिटी पर' ध्यान दिए तुलनात्मक लाभ (Comparative Advantage) प्राप्त करना सम्भव नहीं है । इसलिए अब गुणात्मक नियंत्रण पर

नहीं अपितु गुणात्मक प्रबन्धन की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी है । इसमें समुचित गुणात्मकता का ध्यान रखा जाता है । गुणात्मक प्रबन्धन में संगठन की सम्पूर्ण कार्य प्रणाली, मानवीय व्यवहार आदि की गुणात्मकता महत्त्वपूर्ण मानी जाती है ।

5.3 गुणात्मकता : अर्थ एवं परिभाषा (Quality: Meaning and Definitions)

जूरान के शब्दों में, 'उपयोग के लिए माल की उपयुक्तता ही गुणात्मकता (Quality) है ।' फेनगेनबॉन क्रॉसवी के मतानुसार - "गुणात्मकता वह है जो ग्राहक कहें । " आई.एस.ओ. 9000 की परिभाषा इस प्रकार है कि - "वस्तु या सेवा के लक्षणों और विशेषताओं का वह सफल स्वरूप, जिसमें ग्राहकों की अपेक्षित और व्यक्त आवश्यकताओं का समाधान करने की क्षमता होती है यह क्वालिटी कहलाती है । "

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर गुणात्मकता में निम्नांकित बातें सम्मिलित होती हैं-

1. वस्तु या सेवा के विशिष्ट गुण और लक्षण ।
2. स्वाभाविक वस्तुनिष्ठ या सेवानिष्ठ गुण ।
3. निश्चित अंशों में उत्तमता / श्रेष्ठता ।
4. ग्राहकों का सन्तोष ।
5. ग्राहकों की व्यक्त एवं अपेक्षित आवश्यकताओं की पूर्ति ।

इस प्रकार यदि किसी वस्तु या व्यक्ति में वे सारे गुण हों, जिनसे ग्राहकों या सम्बन्धित निकाय पूर्णत: सन्तुष्ट रहें तो उसे गुणात्मक वस्तु या व्यक्ति माना जा सकता है । यद्यपि इस स्पष्टीकरण में उत्कृष्टता का स्तर महत्त्वपूर्ण नहीं दिखाई देता किन्तु शिक्षा में उत्कृष्टता को गुणात्मकता की परिधि में ही नहीं रखा जाता अपितु उसे सर्वोपरि भी माना जाता है । चूंकि शिक्षा संस्थानों की गुणवता एवं उत्कृष्टता के आधार पर विद्यार्थियों द्वारा उनमें प्रवेश लिया जाता है तथा उत्तीर्ण विद्यार्थियों द्वारा उतकृष्ट निष्पादन के कारण ही विभिन्न एजेन्सियों, कम्पनियों व संस्थानों में उनका चयन किया जाता है । इसके साथ ही समाज व राष्ट्र की आवश्यकता के अनुरूप ही संस्थानों को योग्यतम व्यक्ति तैयार करने पड़ते हैं । 'क्रॉसबी' द्वारा गुणात्मकता के संदर्भ में निम्नांकित बातें कही गई हैं -

1. गुणात्मकता आवश्यकता के अनुरूप होती हैं ।
2. नियंत्रण से गुणात्मकता बनती है ।
3. दोष-शून्य निष्पादन से गुणात्मकता आती है ।
4. गुणात्मकता का कोई अर्थशास्त्र नहीं होता ।

लक्ष्य एवं उद्देश्यों के अनुरूप ही शिक्षा कार्य करना गुणवत्ता है । आवश्यकता एवं उपयोगिता के आधार पर ही विषयवस्तु तय की जानी चाहिए । गुणवत्ता को निरपेक्ष रूप से आंकना कठिन कार्य है, इसे तुलनात्मक रूप में ही समझा जा सकता है । न्यून गुणवत्ता वाली शिक्षा व्यवस्था से उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा व्यवस्था को प्राप्त करने का प्रयास ही

गुणात्मकता का मार्ग तय करता है । शिक्षा में गुणात्मकता कई बातों पर निर्भर करती हैं, जिनमें प्रबन्धक, शिक्षक, शिक्षार्थी, अभिभावक, समाज, संसाधन, इच्छाशक्ति, कार्यकुशलता, सूझ-बूझ, परिस्थितियाँ आदि सम्मिलित होती हैं ।

इस प्रकार समस्त समाज, देश व विश्व के व्यक्तियों के जीवन में उत्तरोत्तर गुणात्मकता का विकास होना एक आवश्यक प्रक्रिया बन गई है । यह गुणात्मकता किस स्तर पर कैसी हो, इस परिप्रेक्ष्य में पाश्चात्य प्रबन्धकों व शिक्षाविदों ने विशेष ध्यान आकर्षित किया है । इसके अन्तर्गत गुणात्मकता प्रतिबद्धता, गुणात्मक नियंत्रण, गुणात्मक वर्ग, गुणात्मक प्रबन्ध तथा सम्पूर्णता के संदर्भ में गुणात्मक प्रबन्धन के कारकों पर गहन चिन्तन व विचार-विमर्श किया गया ।

सम्पूर्ण या समग्र गुणात्मक प्रबन्धन (TQM) मूल रूप से इण्डस्ट्री के उत्कृष्ट उत्पाद एवं ग्राहकों की सन्तुष्टि को ध्यान में रखकर आरम्भ किया गया । शिक्षा में भी इस विचारधारा को लाने का उद्देश्य, शिक्षा में उत्कृष्टता लाने व उससे लाभान्वित एवं सन्तुष्ट होने वाले श्रेष्ठ एवं योग्य विद्यार्थियों को तैयार करना स्वीकार किया गया है । शिक्षा जगत में इस सिद्धान्त के संदर्भ में ग्राहक किसे समझा जाए, यह एक विवादास्पद बात उभरकर आई, क्योंकि शिक्षा में गुणात्मकता के संदर्भ में विद्यार्थी, अभिभावक, प्रशासक, नियोक्ता, अध्यापक अथवा सम्भवत: सभी की सन्तुष्टि जुड़ी हुई है । समाज ही शिक्षा को उपलब्ध कराने वाला अभिकरण होता है तथा शिक्षा की गुणात्मकता का मूल्यांकन भी विद्यार्थी की आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही नहीं अपितु अभिभावक, समाज, प्रशासक तथा अन्य अभिकरणों से भी सम्बद्ध रहता है । अत: शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन में विभिन्न निकायों से अन्तर्सम्बन्ध, प्रभाव एवं योगदान का भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है । अब सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन को समझने के लिए पहले हम इसके अर्थ और अवधारणा को समझेंगे ।

5.4 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन का अर्थ एवं अवधारणा (Meaning and Concept of TQM)

सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन को विस्तृत एवं परिष्कृत रूप से परिभाषित करने का श्रेय प्रबन्ध विशेषज्ञों में डेमिंग (Deming) जूरन (Juran) तथा क्रोसबी (Chrosby) को प्राप्त है, किन्तु सारगर्भित रूप से संक्षेप में इसे समझाने का श्रेय सैलर (Saylor) को दिया जा सकता है।

सैलर (Saylor 1992) ने सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन की अवधारणा को निम्नांकित परिभाषा में स्पष्ट करने का प्रयास करते हुए लिखा है कि -

"The total quality Management philosophy provides over all concept that fosters continuous improvement in an organization. This philosophy stresses a systematic integrated, consistent organization with wide perspectives involving everyone and everything. Its primary emphasis is on total satisfaction for both internal and external outcomes, within a management environment that seeks continuous improvement of

all processes and system. The TQM philosophy emphasizes the use of people, usually in multifunctional team, to bring about improvement from within the organization."

सैलर की परिभाषा का अर्थ है कि - **"सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्ध दर्शन" किसी संस्थान में निरन्तर प्रगति को दर्शाने वाला होता है । यह दर्शन एक व्यवस्थित, समग्रित और एकरूप संगठनात्मक प्रबन्ध के संदर्भों पर बल देता है, जिसमें प्रत्येक वस्तु व व्यक्ति को सहभागिता निहित होती है । जो संगठन प्रबन्धकीय वातावरण में प्रत्येक प्रक्रिया एवं प्रणाली का सतत् विकास चाहता है. उसमें यह विचारधारा आन्तरिक एवं बाह्म ग्राहकों की सम्पूर्ण सन्तुष्टि पर प्राथमिक रूप से बल देती है। यह दर्शन संगठन के अन्दर ही कार्यरत व्यक्तियों का बहु कार्यकारी दल के रूप में उपयोग करते हुए ही संगठन की गुणात्मक उन्नति पर विश्वास करता है । "**

सैलर **(Saylor).,** हिल **(Hills),** टैलर (Taylor), यूडोफ **(Yodof)** और बुश-विश्नैक **(Bush-Vishnac)** आदि द्वारा दी गई परिभाषाओं का सारतत्त्व है कि सम्पूर्ण प्रबन्धन में निम्नस्थ बातें ध्यान में रखी जाती हैं-

1. सामूहिक लक्ष्य (Corporate Goals)
2. निरन्तर उन्नयन (Continuous Improvement)
3. प्रयोजन का सुसंगतता (Consistency of Purpose)
4. समस्या समाधान (Problem Solving)
5. प्रत्येक की सहभागिता (Involving Everyone)
6. संगठन की प्रत्येक वस्तु का सम्मिलित होना (Involving Everything in the organization)
7. ग्राहक सन्तुष्टि (Customer Satisfaction)
8. बहुकार्यात्मक दल (Multi-functional Team)

5.5 शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन (TQM in Education)

शिक्षा में गुणात्मकता का अर्थ है उद्देश्य के लिए सक्षमता और शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मकता से तात्पर्य है- विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षा-दर्शन, जो निरन्तर प्रगति एवं विकास प्रदान कर सके, जीवन पर्यन्त श्रेष्ठ इंसान एवं सुयोग्य नागरिक बना सके ।

शिक्षाविद् दार्शनिक रस्किन के अनुसार - 'गुणात्मकता नहीं होती अपितु यह बुद्धिमतापूर्ण किए गए प्रयासों का परिणाम होती है । जिस प्रकार इण्डस्ट्रीज ' श्रेष्ठ उत्पाद एवं उत्कृष्ट सृजन के लिए एक तड़प, एक संकल्प और सतत् प्रयास की आवश्यकता होती है, ठीक इसी प्रकार शिक्षा में भी इन बातों का होना आवश्यक है । इसके अतिरिक्त शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मकता एक चुनौतीपूर्ण कार्य. है, क्योंकि इसमें किसी उद्योग के समान एक उपभोक्ता की संतुष्टि मात्र ही नहीं होती अपितु शिक्षा का लक्ष्य मानव-निर्माण (Making a man) होता है जिसमें सम्पूर्ण मानव का निर्माण किया जाता है जिसमें केवल उसके चरित्र, स्वास्थ्य, प्रवृत्तियाँ

एवं व्यक्तित्व का ही नहीं अपितु उसके जीवन-दर्शन का निर्माण भी सम्मिलित रहता है । वस्तुत: न तो शिक्षा उद्योग है और न ही विद्यार्थी उपभोक्ता / शिक्षा में तो सजीव द्वारा अन्य सजीव को एक सम्प्रेषण, एक प्रक्षेपण और एक प्रतिस्थापन का प्रयास होता है जो समस्त मानव जाति को, समग्र परिवेश को प्रभावित करता है तथा यह प्रभाव ही शिक्षा की सम्पूर्ण गुणात्मकता की प्रणाली को प्रभावित करता है ।

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर शिक्षा में TQM के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि-

1. सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन (TQM) एक प्रबन्ध दर्शन तथा एक प्रणाली है जो अपने ग्राहकों को उत्पाद प्रदान करती है और निरन्तर अपनी सेवाओं में प्रगति करती है ।
2. यह प्रणाली अपने विद्यालय तथा महाविद्यालय के प्रथम ग्राहक-विद्यार्थी और नियोक्ता को उत्कृष्ट सेवाएँ प्रदान करती हैं ।
3. सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन एक आधारभूत मार्ग है जो सतत् उन्नति पर ही ध्यान केन्द्रित करता है तथा शिक्षा की पुन: संरचना के लिए जवाबदारी व आवश्यकताओं की पूर्ति करता है ।
4. यह प्रणाली विद्यार्थियों और शिक्षकों को प्रोत्साहित करती है तथा चुनौतियों से परिचित कराती है, जिससे सीखने का वातावरण निरन्तर व उत्तरोत्तर सुधरता एवं उन्नत होता है ।

सभी कार्यों में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन एक चुनौतीपूर्ण कार्य होता है । प्रो. मरमर मुखोपाध्याय ने भारत में प्राचीनकाल की गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण कहा है । गुरुकुल यानि गुरु का परिवार । गुरुकुल प्रणाली में विद्यार्थी अपनी शिक्षा पूर्ण होने तक पूरे समय गुरु एवं उसके परिवार के साथ रहता था । वह एक प्रकार का स्थानबद्ध प्रशिक्षण काल होता था । जहाँ पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के संदर्भ में संस्था की प्रतिष्ठा के साथ व्यक्तित्व उन्नयन की क्षमता को ध्यान में रखकर ही छात्र चयन की प्रक्रिया की जाती थी तथा शिक्षा व्यवस्था निम्नानुसार होती थी-

1. छात्र का चयन उसकी अधिगम क्षमता के आधार पर किया जाता था, न कि गोत्र के आधार पर (जाति के आधार पर नहीं)
2. छात्र की व्यक्तिगत प्रतिभा, रुचि तथा योग्यता के आधार पर गुरु द्वारा उसके लिए पाठ्यक्रम एवं विषयों का निर्धारण किया जाता ।
3. मूल्यों की शिक्षा के लिए गुरु का जीवन एक खुली किताब के समान होता था ।
4. गुरु के परिवार के साथ रहते हुए विद्यार्थी गृहकर्म तथा जीवन कौशल को समग्रता (Totality) के साथ सीख लेता था । वहाँ शिक्षा, जीवन की तैयारी के लिए नहीं वरन् वह जीवन का स्वत: एक हिस्सा होती थी ।
5. गुरु द्वारा छात्र के पूर्ण शिक्षित होने पर ही उसे जाने की अनुमति दी जाती । उसे न तो कोई ग्रेड दी जाती न ही स्तर । केवल सीखने की निपुणता पर बल दिया जाता था ।

6. गुरु द्वारा शिष्यों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता था । उदाहरण स्वरूप है कि - देवपुत्र 'कच' को दानव गुरु शुक्राचार्य द्वारा संजीवन विद्या प्रदान की गई थी ।
7. छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार शिक्षा की गुणात्मकता के उच्चतम स्वरूप को जानने हेतु 'परा विद्या की अनुशंसा की जाती थी ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की प्राचीन गुरुकुल पद्धति का विश्वास सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन **(TQM)** में रहा है जिसने अपने उत्पाद (विद्यार्थी) को गुणात्मक बनाने का प्रयास किया है । इसे समझकर सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन की अवधारणा को समझा जा सकता है ।

वर्तमान में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्ध की अवधारणा को आरम्भ एवं विकसित करने का श्रेय अमेरिका के 'डब्ल्यू एडवर्ड्स डेमिंग **(W.Edwards Deming)** को दिया जाता है । द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् कम्पनियों व कारखानों के उत्पादन और कार्यप्रणाली के गुणात्मक सुधार हेतु यह सम्प्रत्यय **(TQM)** प्रयुक्त किया जाने लगा । फैक्ट्री से उत्पादित मॉडल उस समय वैश्विक बाजार में पुराने व अनुपयोगी साबित हो। से उत्पादन और प्रणाली में सुधार व परिवर्तन की दिशा में गुणात्मक प्रबन्ध पर ध्यान दिया जाने लगा परिणामस्वरूप फैक्ट्रियों पर यह सिद्धान्त प्रभावी रहा, जिसने पूरे विश्व का ध्यान आकर्षित किया जिससे प्रत्येक संगठन को सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन **(TQM)** को आवश्यकता प्रतीत होने लगी ।

कुछ शिक्षाविद् व शैक्षिक प्रबन्धक यह मानते हैं कि डेमिंग **(Deming)** का यह सिद्धान्त शिक्षा में अत्यन्त आवश्यक है तथा इसीलिए शिक्षा की पुनर्संरचना करने का शिक्षाविदों विचार, गुणात्मकता को शिक्षा के सम्पूर्ण स्वरूप पर लागू करने से रहा है । यदि हम वास्तव में डेमिंग के अनुसार शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन लाना चाहते हैं, तो पहले इस विचारधारा के सिद्धान्तों को समझना होगा ।

शीर **(Sherr)** और लोजियर **Lozier** (1991) ने सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन को त्रिआयामी प्रारूप के समान माना है जिसमें डिजाईन, प्रदा **(Output)** और प्रक्रिया सम्मिलित है । सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के सिद्धान्त को शिक्षा पर लागू करने के लिए दोनों विशेषज्ञों ने मुख्य रूप से पांच क्षेत्रों पर बल दिया है, जो निम्नानुसार हैं -

1. विद्यार्थी और लक्ष्य पर बल (Mission and Customer Focus)
2. कार्यारम्भ हेतु एक व्यवस्थित विधि (Systematic approach to operation)
3. मानव संसाधनों का प्रबल विकास (Vigorous development of Human resources)
4. दीर्घकालिक चिन्तन (Long-term thinking)
5. प्रतिबद्धता (Commitment)

5.6 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के सिद्धान्त (The Principles of TQM)

डेमिंग ने सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के चार सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जो निम्नानुसार है - डेमिंग के अनुसार सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के सिद्धान्त

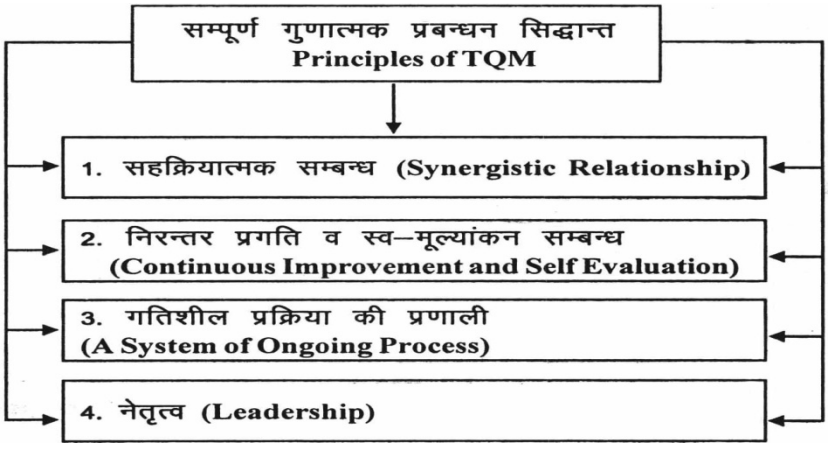

(1) सह-क्रियात्मक सम्बन्ध (Synergistic Relationship) सिद्धान्त के अन्तर्गत निम्नांकित कारक माने गए हैं -

1. सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के संगठन में प्रत्येक व्यक्ति ग्राहक और आपूर्ति (Supply) करने वाला, दोनों होता है ।
2. इस सिद्धान्त में परस्पर सहयोग करते हुए दल प्रणाली से कार्य किया जाता है, जबकि पारम्परिक शिक्षा पद्धति, व्यक्तिवादी एवं विभागीयता पर निर्भर होती है ।
3. इसमें शिक्षा की व्यवस्था में शिक्षकों व छात्रों के मध्य सह-क्रियात्मक सम्बन्ध बनाने पर बल दिया जाता है ।
4. एक कक्षा में अध्यापक और छात्र समूह किसी इण्डस्ट्री के अग्रकार्यकर्ताओं के समान ही होते हैं ।
5. एक विद्यार्थी अध्यापक का ग्राहक होता है तथा अध्यापक विद्यार्थी की उन्नति व प्रगति के लिए शैक्षिक सेवाएँ उपलब्ध कराने वाला होता है ।
6. शिक्षक व छात्र के एक साथ मिलकर कार्य करने रो विद्यार्थियों के चरित्र, रुचियों और क्षमताओं का विकास सफलतापूर्वक होता है ।
7. प्रत्येक व्यक्ति के अनुभव और प्रतिभा को सामने लाकर शिक्षण प्रक्रिया में उनका उपयोग करते हुए उत्कृष्ट विद्यार्थी तैयार किए जाते हैं ।
8. सह-क्रियात्मक सिद्धान्त में विद्यालय पर इस बात की जिम्मेदारी रहती है कि वह यह ध्यान रखे कि दीर्घकालीन शैक्षिक कल्याण के लिए छात्र उच्च गुणात्मक कार्यों को कैसे सीखें और कैसे प्रदर्शन करें । साथ ही स्वयं के तथा दूसरों के कार्यों की गुणात्मकता कैसे बढ़ाएँ ।
9. इस सिद्धान्त में विद्यार्थी भी वस्तुत: एक कार्यकर्ता ही होता है, जिसे निरन्तर अपने सुधार एवं व्यक्तिगत उन्नयन हेतु कुछ करना आवश्यक होता है ।

(2) निरन्तर प्रगति एवं स्व-मूल्यांकन (Continuous improvement and Self Evaluation) सिद्धान्त निम्नांकित नियमों का वर्णन करता है -

1. इस सिद्धान्त के अनुसार सामूहिक एवं व्यक्तिगत रूप से निरन्तर सुधार हेतु पूर्णत: समर्पित भाव से प्रयत्नशीलता आवश्यक होती है ।

2. प्रशासक अपने कार्यकर्ताओं के साथ सहयोग पूर्ण कार्य करता है ।
3. इरा सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक कार्यकर्ता को लाभ प्राप्त होता है ।
4. यह सिद्धान्त स्व-मूल्यांकन पर बल देता है । इसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति का मूल्यांकन नहीं करना चाहिए ।
5. यह सिद्धान्त विद्यार्थियों की क्षमता, उनके व्यक्तिगत अधिगम के तरीकों तथा विभिन्न प्रकार की प्रतिभाओं पर प्रकाश डालता है ।

(3) गतिशील प्रक्रिया की प्रणाली (A System of Ongoing Process) - इस सिद्धान्त के अनुसार अग्रलिखित विशेषताओं का वर्णन किया गया है -

1. यह सिद्धान्त शिक्षक या विद्यार्थी को अपनी असफलता का कारण व्यवस्था पर न थोपकर, स्वयं के बारे में सोचने पर बल देता है ।
2. कार्य प्रणाली में गुणात्मकता लाने उसमें निहित, उन दोषपूर्व प्रक्रियाओं, जिनके द्वारा अध्यापक और छात्रों के कार्य प्रभावित होते हैं, परीक्षण करके पता लगाया जाता है तथा उन्हें दूर किया जाता है ।
3. अधिगम व शिक्षण के नवीन परिदृश्य में शिक्षण व परीक्षा का सिद्धान्त पुराना हो चुका है, अत: इसके स्थान पर अधिगम प्रक्रिया के निरन्तर सुधार एवं सतत् प्रगतिशीलता पर ध्यान दिया जाता है ।

(4) नेतृत्व (Leadership) - के सिद्धान्त मे अधोलिखित तत्वों को सम्मिलित किया गया है -

1. नेतत्व सिद्धान्त में शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्ध की जिम्मेदारी उच्च प्रबन्धकों की होती है ।
2. अधिगम प्रक्रियाओं में लगातार प्रगति के लिए आवश्यक उपकरण, नेतृत्व, सिद्धान्त केन्द्रण, शिक्षण, साक्षरता तथा विषयवस्तु के क्षेत्र महत्वपूर्ण होते हैं ।
3. विद्यालयों में अध्यापक व छात्रों द्वारा किसी संस्थिति व सन्दर्भ में साथ-साथ कार्य करने के परिणामस्वरूप अपनी क्षमता के साथ निरन्तर गुणात्मक विकास करते उच्चतम उपलब्धि प्राप्त की जाती है ।
4. TMQ के लिए नेतृत्व का सिद्धान्त विद्यालयों को निम्नस्थ क्षेत्रों में, प्रदान कर सकता है-

   विद्यालयों के उत्तरदायित्व, उद्देश्य तथा भूमिका को पुनर्भाषित करने में ।
   जीवन जीने के तरीकों के रूप में विद्यालयों को उन्नतशील में ।
   सभी स्तर के प्रशिक्षकों के लिए व्यापक नेतृत्व प्रशिक्षण की योजना तैयार करने में।
   विद्यालय स्टाफ की अभिवृत्ति और विश्वास तथा उनके विकाश हेतु सम्मानित करने में ।
   नीतियां और उनके प्रयोग के मार्गदर्शन हेतु शोध एवं प्रयोग सूचनाओं के उपयोग करने में ।
   विद्यार्थियों के व्यापक एवं बहु-आयामी विकास हेतु रूपरेखा तैयार करने में ।

विभिन्न संस्थाओं और अभिकरणों को सम्मिलित कर उनका योगदान लेते हुए विद्यार्थियों के व्यापक व बहु-आयामी विकास हेतु प्रारूप तैयार करने में ।

संस्था के सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन हेतु उससे जुड़े प्रत्येक व्यक्ति को इन सभी सिद्धान्तों को समझना चाहिए तथा इनमें विश्वास करना चाहिए । जो व्यक्तिगत रूप से इन सिद्धान्तों के प्रति संकल्पबद्ध होते हैं, वे सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के साथ सफलतापूर्वक निर्वाह कर सकते हैं । नेतृत्व मे उनकी दृष्टि और कौशल प्रबन्धन, अन्तर व्यक्तिगत सम्प्रेषण, समस्या समाधान, दक्षता तथा रचनात्मक सहयोग आदि तत्त्व सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्ध के सफलतापूर्वक क्रियान्दयन के बहुत ही महत्त्वपूर्ण पक्ष होते हैं । सिद्धान्तों के बाद अब हम सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबंधन के उद्देश्यों को जानेगे ।

5.7 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के उद्देश्य (The Aims of TQM)

किसी संस्थान की गुणात्मकता उन्नयन हेतु सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के लिए प्रबन्ध विशेषज्ञों ने कई उद्देश्यों का उल्लेख किया है, किन्तु उन सभी उद्देश्यों के निष्कर्ष के रूप में 'चेफ' और 'टिएरन' (Chaffe and Tiern 1988) द्वारा बताए गए उद्देश्यों का उल्लेख किया जा सकता है जो इस प्रकार है -

TQM के उद्देश्य

1. संस्था की आन्तरिक, परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों को संशोधित करते हुए उन्हे उत्कृष्ट बनाना
2. व्यक्तियों में प्रतिस्पर्धात्मक जागरूकता विकसित करना ।
3. अपनी संस्था की पहचान स्पष्ट करना ।
4. सम्प्रेषण दक्षता का विकास करना ।
5. बहुआयामी परिवर्तित क्षेत्रों पर ध्यान देना तथा उन पर कार्य करना ।
6. प्रत्येक समस्या पर बहुविकल्पीय समाधानों के साथ विचार-विमर्श करना तथा उपयुक्त समाधान खोजना ।
7. द्रुतगामी समाधान का चयन करना ।
8. अप्रत्याशित स्थलों व स्थितियों में परिणाम ढूंढना ।
9. जो मूलभूत मूल्यों को नकारते हैं, या किसी की भावनाओं को आहत करते हैं ऐसे निर्णयों के प्रति सचेत रहना ।

5.8 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्ध हेतु अपेक्षित प्रवृत्तियों (Expected Trends for TQM)

सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन को संस्थान के विभिन्न विभागों तथा समस्त गतिविधियों पर लागू करने के लिए एक प्रभावी प्रणाली स्थापित करना आवश्यक होता है । इसमें संगठन की रचना, उत्तरदायित्व, विधियाँ, साधन-सामग्री आदि को गुणात्मकता के परिप्रेक्ष्य में निश्चित

करने की आवश्यकता होती है किन्तु इस व्यवस्था को क्रियान्वित करने के लिए संस्थान के कार्यकर्ताओं में निम्नांकित अपेक्षित प्रवृत्तियाँ विकसित करनी पड़ती हैं -

TQM की प्रवृत्तियाँ

1. संगठन या संस्थान के प्रत्येक स्तर पर यह संकल्प लिया जाए कि हमारे विद्यार्थी, अध्यापक, अभिभावक एवं अन्य संबंधित व्यक्ति अधिक सन्तोष प्राप्त करें ।
2. संगठन के कार्यकर्ताओं में बौद्धिक परिवर्तन लाया जाए जिससे वे खुलकर अपनी प्रतिभा का लाभ संगठन को पहुँचा सके ।
3. व्यक्ति के स्थान पर व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया पर ध्यान दें ।
4. कार्यकर्ताओं व कर्मचारियों को चाहिए कि रुचिहीन कार्यों में भी गुणात्मकता पर ध्यान दें ।
5. समस्त कार्यों एवं प्रक्रियाओं के मुख्य परिणामों का मूल्यांकन करें ।
6. शैक्षिक प्रौद्योगिकी का सक्षम उपयोग करें ।
7. निरन्तर सीखने और कार्य सुधारने की प्रवृति विकसित करें ।
8. शिक्षक, कार्मिक कर्मचारी एवं अन्य समस्त कार्यकर्ता स्वयं को नियमित करें ।
9. निर्णय एवं नीतिगत योजना निर्माण में विद्यार्थियों एवं प्रतिस्पर्धियों को सदैव ध्यान में रखें।
10. सदैव विविध व्यक्तियों, विभिन्न विभागों के दक्ष अधिकारियों एवं उच्च शैक्षिक निकायों के व्यक्तियों से विचार-विनिमय करें और अपनी संस्था की गुणात्मकता में प्रगति के लिए सुझाव प्राप्त करें ।
11. सच्चाई और विश्वास से व्यवहार करें ।
12. समस्त कर्मचारियों को विश्वास में लेकर गुणात्मकता के कार्यक्रम संचालित करें ।
13. श्रेष्ठ और उत्कृष्ट संस्थानों के कार्यों का अनुकरण / नकल (Banch Marking) करें ।
14. संगठन की संस्कृति के दोषों को पहचान कर उन्हें समाप्त करने का प्रयास करें ।

उपर्युक्त प्रवृत्तियों के पालन करने से संस्थान में एक समृद्ध वातावरण का निर्माण होता है तथा गुणात्मक विद्यार्थियों के निर्माण की सम्भावनाएँ बढ जाती हैं । इसी संदर्भ में 'जूरान' का मानना है कि यदि संगठन या संस्थान के शीर्षस्थ प्रबन्धकों में गुणात्मकता की भावना कूट-कूट कर भरी हो तो उत्पाद निश्चय ही गुणात्मकता लिए होता है । शैक्षिक संगठन में यह भावना नितान्त आवश्यक होती है तथापि इसके लिए कुछ आवश्यक तत्त्वों का निर्धारण किया गया है ।

5.9 शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के आवश्यक तत्व (The Essentials Elements of TQM in Education)

सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के सिद्धान्तों और उद्देश्यों को ध्यान में रखकर जब हम शिक्षा में उनके प्रयोग की बात करते हैं, तो सर्वप्रथम प्रश्न उठता है कि प्रयोग किस स्तर से आरम्भ करें, उनमें क्या करें और किनमें प्रयोग करें? इन प्रश्नों के समाधान में प्रबन्धकों ने कई क्षेत्र सुझाए हैं । यहाँ हम 2004 में रॉन फिटजर्ल्ड द्वारा बताए गए तत्त्वों का उल्लेख कर

रहें, क्योंकि उनमें प्राय: वे सभी तत्त्व समाविष्ट हो जाते हैं जो अन्य शैक्षिक प्रबन्धकों द्वारा सुझाए गए हैं । विद्यालयों व महाविद्यालयों में निम्नांकित तत्त्वों से सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन करके उन्हें सुदृढ़ व विकसित किया जा सकता है ।

सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के आवश्यक तत्व ।

(The Essential Elements of TQM)

1. प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रतिबद्धता एवं जागरूकता
   (Awareness and Commitment for Everyone)
2. स्पष्ट कार्यलक्ष्य
   (A Clear Mission)
3. प्रणालियों की योजना पद्धति
   (A Systems Planning Approach)
4. पदानुक्रम के स्थान पर दल पद्धति
   (Teaming in Place of Hierarchy)
5. भय के स्थान पर सशक्तिकरण व योग्यता
   (Competence and Empowerment in place of Fear)
6. आधिकारिक अधिगम पर ध्यान केन्द्रण
   (Focus on Mastery Learning)
7. मापन आधारित प्रबन्धन
   (Management by Measurement)
8. विद्यार्थियों के सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्ध कौशलों का विकास
   (Development of Students'TQM Skills)
9. अधिगम परिस्थितियों में मानवीय एवं बौद्धिक अनुरूपता पर बल
   (Focus on Humanistic and mental compability in the Learning Environment)
10. रूपान्तरण योजना
    (Transformation Plan)

(1) प्रत्येक के लिए प्रतिबद्धता एवं जागरुकता (Awareness and Commitment for veryone)

अध्यापकों द्वारा विद्यार्थी के लिए उसके सभी क्षेत्रों में गुणात्मक विकास की प्रतिबद्धता व जागरूकता होना आवश्यक है । एक विद्यार्थी का भाषायी, गणितीय, दृश्य आदि प्रत्येक स्तर पर ज्ञान बढ़ाना, सबमें गुणात्मकता प्रदान करना तथा प्रत्येक विद्यार्थी के प्रति संकल्प बद्ध वजागरूक रहना अपेक्षित होता है।

- अभिभावक, अध्यापक एवं बोर्ड सदस्यों की समन्वयात्मक बैठक करके तथा एक साथ निर्णय लेकर विद्यार्थियों के विकास पर चर्चा की जाती है ।
- शिक्षा में चूंकि गुणात्मकता के प्रभाव तुरन्त दिखाई नहीं देते तथा इसमें सबकी बराबरी की सहभागिता से ही कार्य पूर्ण होते हैं अत: सबका प्रतिबद्ध होना आवश्यक है ताकि परिणाम यथा समय परिलक्षित हो सके ।
- विद्यालय प्रशासन व प्राचार्य / संस्था प्रधान द्वारा गुणात्मकता के लिए प्रतिबद्धता व जागरूकता को स्पष्ट रूप से बताया जाता है ।

(2) स्पष्ट कार्य लक्ष्य (A Clear Mission)

- संस्थान को अपने विद्यार्थियों को किस रूप में तैयार करना है इसका कोई स्पष्ट लक्ष्य तैयार किया जाता है । जैसे - इंजीनियर, डॉक्टर, शिक्षक बनाना आदि ।
- यदि संस्थान इस प्रकार का कोई कार्य लक्ष्य निर्धारित नहीं करता है तो उस संस्थान से निकले विद्यार्थियों के लिए स्थानीय, राज्यीय या राष्ट्रीय स्तर पर, जहाँ वे विद्यार्थी जिस कार्य से जुड़े, उस व्यवसाय के नियोक्ता द्वारा उसके कार्य की गुणात्मकता विकसित करने का प्रबन्ध किया जाता है ।

(3) प्रणालियों की योजना पद्धति (A Systems Planning Approach)

वर्तमान समय में परम्परागत शिक्षा की व्यवस्था विभिन्न विषयों व विभागों में विभक्त की हुई है । जैसे- विभिन्न विषयों का विभाजन किया गया है । विज्ञान विषय का शिक्षक विज्ञान पढ़ाते समय अंग्रेजी भाषा के सिद्धान्तों का उपयोग करते हुए तकनीकी प्रतिवेदन तैयार करने या लिखने की शिक्षा नहीं देता है, इससे विद्यार्थी अंग्रेजी भाषा को कौशल के स्थान पर एक अलग विषय या पाठ्यक्रम का हिस्सा मानते हैं जबकि विज्ञान पढ़ाते हुए भाषायी कौशल भी विकसित किए जा सकते हैं ।

विद्यार्थियों में उच्च दक्षता के स्तर को बढ़ाने के लिए उच्च स्तर पर प्रणाली युक्त एवं विषयों की परिधि से परे जाकर अन्य विषयों से सम्बन्ध स्थापित करते हुए व्यापक योजना बनाई जाती है । जिससे संस्थानों में अनुदेशनात्मक (instructional) सुधार हो सकता है । इस प्रकार प्रणाली उपागम मानते हुए यदि अन्तःविभागीय एवं अन्तर्विषयी तारतम्यता एवं सम्बद्धता रखते हुए योजना बनाई जाए तो सीखने और सिखाने की आशातीत प्रगति की जा सकती है ।

(4) पदानुक्रम के स्थान पर दलपद्धति (Teaming in Place of Hierarchy)

विभिन्न संगठनों व संस्थानों में पारम्परिक रूप से पदानुक्रम पद्धति का ही प्रचलन है, जिसमें व्यक्ति के प्रयासों से ही प्रगति दर्शायी जाती है तथा अपने उच्चाधिकारियों को सन्तुष्ट कर दिया जाता है जबकि उच्चाधिकारियों को कार्य करने वाले व्यक्तियों से कम जानकारी होती है ।

यदि स्पष्ट लक्ष्य और उचित अधिकार दिए जाएँ तथा दमनात्मक पर्यवेक्षण के स्थान पर सहयोगात्मक पर्यवेक्षण किया जाए तो परस्पर क्रोस विभागीय दल, संस्थान की अधिक उन्नति करने में सक्षम हो सकते ।

सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्ध (TQM) की सफलता या विफलता में परस्पर सहयोग एक महत्त्वपूर्ण घटक होता है । TQM के कार्यक्रम को सही रूप से संचालित करने के लिए पर्यवेक्षक या प्रशासक को निम्नांकित बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए-

1. स्पष्ट लक्ष्य एवं स्पष्ट दृष्टि
2. कार्यदलों में समन्वय
3. कार्यदल द्वारा उच्चतम स्तर तक कार्य निष्पादन के लिए किए जा रहे प्रयासों व अधिकारों के
4. लिए पूर्ण सहयोग ।

यदि पर्यवेक्षक उपर्युक्त इन तीन महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का ध्यान रखता है तो सुधारात्मक प्रणाली निश्चित रूप से सफल हो सकती है ।

(5) भय के स्थान पर सशक्तिकरण एवं योग्यता (Enhancement and Empowerment in Place of Fear)

पारम्परिक संदर्भ में व्यक्ति केवल उतना ही कार्य करने में रुचि लेता 'है, जितना करना आवश्यक समझता है । वह परिणाम के भय से व स्वयं की इच्छा से अतिरिक्त कार्य नहीं करता है ।

इसके विपरीत यदि गुणवत्ता दल को अवसर देकर विषय में निष्णात बनाने का प्रयास किया जाता है तो वे अधिक गुणवत्ता के साथ कार्य करते हैं । दल के सदस्यों को इसके सेमीनार, सम्मेलन, अन्य संस्थानों व संगठनों में जाने तथा कार्यानुभवों का आदान-प्रदान करने, सलाहकारों विशेषज्ञों की मदद लेकर उन्हें सामर्थ्यवान और शक्तिवान बनाने के अवसर देकर उनकी गुणात्मकता को बढ़ाया जाता है ।

शिक्षक-प्रशिक्षक, प्रशासक, नियंत्रण आदि सबको यह बात सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि विद्यालय या कोई भी शिक्षा संस्थान एक अधिगम संगठन (learning Organization) होता है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति एक अधिगमकर्ता (Learner) होता है जो गुणात्मक सुधार व प्रगति पथ पर अग्रसर होता है ।

(6) निष्णात / आधिकारिक अधिगम पर ध्यान केंद्रण (Focus on Mastery Learning)

प्रचलित शिक्षा पद्धति में एक निर्धारित योजनाबद्ध रीति से पहले शिक्षा दक्षताओं फिर उसका परीक्षण, इस प्रकार निम्नानुसार एक सीधा मार्ग तैयार किया गया है, जिसका परीक्षण के पश्चात की व्यवस्था से तादात्म्य नहीं होता । इसमें विद्यार्थियों के अधिगम स्तर में पुन: कोई भी सुधारात्मक प्रयास नहीं किया जाता अपितु निर्धारित दक्षताओं की आधिकारिक पूर्ति के बिना ही वे अगली कक्षा में प्रविष्ट करा दिए जाते हैं ।

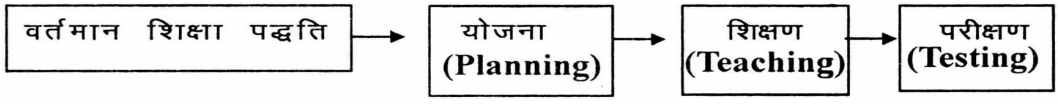

जबकि सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्ध (TQM) में सर्वप्रथम योजना बनाकर शिक्षित किया जाता है । शिक्षण के बाद परीक्षण करके जो कमियाँ ज्ञात की जाती हैं उन्हें दूर करने के लिए पुन।

शिक्षण तथा शिक्षण सामग्री में आवश्यक सुधार, परिवर्तन व परिवर्द्धन कर पुन: पढ़ाया व परीक्षण किया जाता है । यह पथ या तरीका सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन को अधिक गुणवत्ता प्रदान करता है तथा अधिगम की आधिकारिक दक्षता प्रदान करता है । इस दक्षता को हम निम्नानुसार समझ सकते हैं-

सम्पूर्ण गुणात्मक पद्धति -

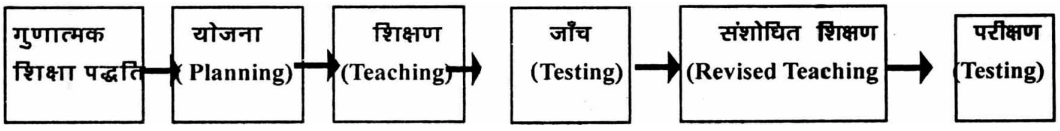

(7) मापन आधारित प्रबन्धन (Management by Measurment)

विभिन्न तकनीकों व उपकरणों का प्रयोग करते हुए अधिगम का करना सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन का एक महत्त्वपूर्ण भाग है । इसके आधार पर विषयों, तकनीकों तथा उपकरणों के बीच अन्तर्सम्बन्ध ज्ञात कर विभिन्न विषयाधिगम के अंक बढ़ाए जा सकते हैं । शिक्षा में गुणात्मकता हेतु मापदण्ड से वास्तविकता का पता तो लगता ही है साथ ही उत्तरोत्तर वृद्धि के प्रयास भी किए जा सकते हैं ।

शिक्षा में गुणात्मक प्रबन्धन के निम्नांकित आधारभूत कारक भी यही हैं कि सीमित संसाधनों से अधिकाधिक अधिगम कैसे करवाया जाए । प्रबन्धकों द्वारा अपने कार्यकर्ताओं को कम संसाधनों से शिक्षा में गुणात्मकता लाने हेतु प्रोत्साहित व प्रेरित किया जाता है । इस बात को हम TQM के मुख्य कारक के निम्नांकित चित्र से समझ सकते हैं -

TQM के मुख्य कारक

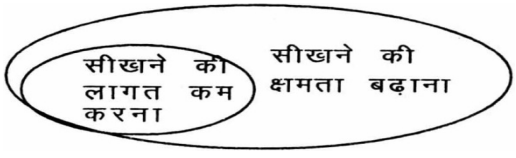

(8) विद्यार्थियों के सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्ध कौशलों का विकास (Development of Students' TQM Skills)

प्रत्येक विद्यार्थी को सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन (TQM) का ज्ञान एवं उसके उपयोग करने के तरीके मालूम होना चाहिए । इस परिप्रेक्ष्य में यदि हम वर्तमान शिक्षा में गुणात्मकता आरम्भ करना चाहते हैं तो सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के तत्त्वों को वर्तमान पाठ्यक्रम में जोड़ सकते हैं अथवा उसका एक अलग पाठ्यक्रम तैयार करके लागू कर सकते हैं, ताकि विद्यार्थी सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन (TQM) करें, केवल पढ़ें ही नहीं । यद्यपि यह कार्य आसान व शीघ्र होने वाला नहीं है, किन्तु इसे सीखने एवं करने हेतु कई स्रोत उपलब्ध हैं, जिनमें अमेरिका लीसबर्ग के शिक्षा विभाग द्वारा इस विषय पर पाठ्यक्रम तैयार किया गया है जो 'Total Quality Curriculum' के नाम से जाना जाता है जिसे हम वेबसाईट www.skillsusa.org. पर देख सकते हैं । कम्प्यूटर पर SMART Teaching वेब साईट पर भी प्रकरण सम्बन्धी जानकारी प्राप्त की जा सकती है ।

(9) अधिगम परिस्थितियों में मानवीय एवं बौद्धिक अनुरूपता पर बल)

(A Focus on Humanistic and Mental Compatibility in the Learning Environment)

विद्यार्थियों में एक खुशनुमा और सहयोगी अधिगम वातावरण होना चाहिए -क्योंकि ऐसे वातावरण में विद्यार्थियों द्वारा अधिगम आनन्ददायी व अधिकाधिक होता है । विलियम ग्लैसर (William Glasser M.D. 1993) ने गुणात्मक विद्यालय के लिए निम्नांकित छः तत्त्व आवश्यक बताए हैं-

1. विद्यालय में उत्साहवर्द्धक एवं सहयोगी वातावरण बनाया जाए ।
2. विद्यार्थियों को केवल उपयोगी कार्य करने के लिए कहा जाए ।
4. विद्यार्थियों को उनकी क्षमतानुसार श्रेष्ठतम कार्य करने हेतु कहा जाए ।
5. विद्यार्थियों को उनके कार्य का मूल्यांकन स्वयं ही करने तथा उसमें सुधार करने व उन्नत करने हेतु कहा जाए ।
5. गुणात्मक कार्य सदैव आनन्ददायी व प्रसन्नता प्रदान करने वाला बनाया जाए ।
6. गुणात्मक कार्य को कभी भी विध्वंसात्मक नहीं होना चाहिए, इस बात का ध्यान रखा जाए।

उपर्युक्त अधिगम परिस्थितियाँ न केवल गुणात्मकता में वृद्धि करती है, अपितु मानवीय सम्बन्धों में गहन संवेदनशीलता का विकास भी करती है ।

(10) रूपान्तरण योजना (Transformation Plan)

सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन (TQM) के लिए उन व्यक्तियों की लिया जा सकता है, जिनकी संस्थाओं में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्ध किए जा चुके हैं । TQM के इन पूर्व समस्त तत्त्वों की चर्चा में परम्परागत रूप से गुणात्मक प्रबन्धन की ओर धीरे-धीरे अग्रसर होने की बात कही गई है किन्तु यह अन्तिम बिन्दु (तत्त्व) इस बात पर बल देता है कि शिक्षा में सम्पूर्ण प्रबन्धन के लिये सीधे प्रयास भी किए जा सकते हैं । इस परिप्रेक्ष्य में कुछ निम्नांकित प्रयास किए जा हैं

1. सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन हेतु एक संचालन समिति बनाई जाए ।
2. वह समिति TQM के क्रियान्वयन में मदद करने की योजना ।
3. विद्यालय के पारम्परिक पर्यवेक्षकों तथा इस समिति के पर्यवेक्षकों बीच सकारात्मक सम्पर्क हेतु योजना बनाई जाए ।
4. जिन संस्थाओं में परामर्शदों द्वारा सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन TQM रूपान्तरित हो चुका है उनसे परामर्श व मार्गदर्शन प्राप्त किया जाए ।

चतुर्थ प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जिन्होंने जिस कठिनाई से कोई सीखी है, वे अपने अनुभवों से अन्य को लाभान्वित कर सकते हैं । उनसे गुणात्मकता के संदर्भ में निम्नांकित प्रकरणों में मार्गदर्शन मिल सकता है -

1. प्राथमिकता क्या है?
2. एक समय में कौनसा कार्य करना है?
3. उस कार्य को कैसे करना है?
4. अधिगम कौशलों का विकास कैसे विकसित किया जाता है?
5. समय की बचत कैसे की जाए, इत्यादि ।

इस प्रकार TQM के आवश्यक तत्त्वों में सिद्धान्तों एवं क्रियान्वयन से प्रबंधन में सम्पूर्ण गुणात्मकता लाई जा सकती है ।

5.10 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन की विधि (Methods of TQM)

सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन में अपेक्षित व वांछित उत्पाद बनाने के लिए संगठन के समस्त सदस्यों की प्रतिबद्धता और सहकार्य आवश्यक होता है । साथ ही संगठन में प्रबन्धकों में गुणात्मकता के अभियान को सही दिशा प्रदान करने के लिए नेतृत्व क्षमता होना चाहिए जो गुणात्मकता की विधि का उपयुक्ता क्रियान्वयन करवा सके । सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन की विधि को आगे स्पष्ट किया जा रहा है जिसमें निम्नांकित चार चरणों में प्रक्रिया को पूर्ण किया जाता है-

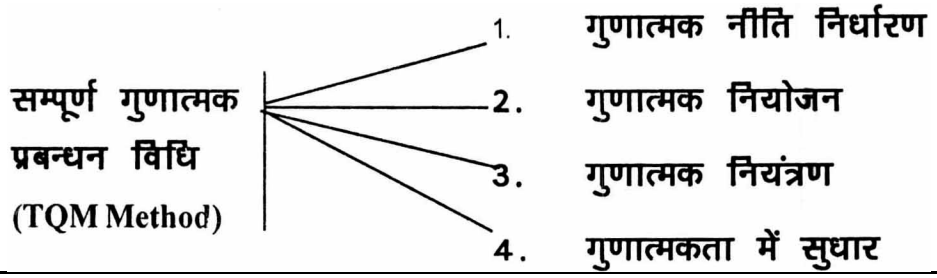

5.11 सम्पूर्ण संगुणात्मक और सामान्य शिक्षा संस्थानों में अन्तर (Difference Between Total Quality and General Educational Institutions)

सैलिस (Sallis) (1996) के द्वारा संस्थानों में गुणात्मक प्रबन्धन का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है जो निम्नानुसार है -

सम्पूर्ण गुणात्मक संस्थान	सामान्य संस्थान
1. पूर्णत: विद्यार्थी की गुणात्मकता पर ध्यान	संस्थान की आन्तरिक आवश्यकताओं पर ध्यान
2. बाधाओं या समस्याओं के निवारण पर बल	समस्याओं की खोजबीन पर बल
3. गुणात्मकता के लिए योजना पूर्ण होना	गुणात्मकता को दूरदर्शिता का अभाव होना
4. संगठन के समस्त क्षेत्रों की गुणात्मकता परिभाषित होना	गुणात्मकता के स्तर के सम्बन्ध में अस्पष्ट होना
5. सीखने के अवसर हेतु शिकायत करना	व्यर्थ की शिकायतें करना
6. गुणात्मक नीति एवं योजना से युक्त	कोई भी गुणात्मक योजना न रखना

7. वरिष्ठ प्रबन्धकों द्वारा गुणात्मकता का नेतृत्व करना	प्रबन्धन की भूमिका एक नियंत्रक के रूप में होना ।
8. सुधारात्मक प्रक्रिया में प्रत्येक की सहभागिता होना	केवल प्रबन्धक दल की ही सहभागिता होना
9. गुणात्मक सुविधा प्रदाता द्वारा सुधारात्मक प्रक्रिया का नेतृत्व करना	गुणात्मक सुविधा प्रदाता का अभाव होना
10. व्यक्तियों द्वारा गुणात्मक का सृजन एवं सृजनशील को प्रोत्साहन	निश्चित प्रक्रिया और समस्त नियम ही महत्वपूर्ण
11. भूमिका और उत्तरदायित्व की स्पष्टता	भूमिका व उत्तरदायित्व की स्पष्टता अभाव
12. मूल्यांकन योजना-पद्धति स्पष्ट	व्यवस्थित रूप से कोई मूल्यांकन पद्धति नहीं
13. गुणात्मकता से तात्पर्य विद्यार्थियों के सन्तुष्टि स्तर को बढ़ाना	गुणात्मकता से तात्पर्य लागत कम करना
14. दीर्घकालिक योजना निर्माण	अल्पावधि-योजना निर्माण
15. गुणात्मकता को संस्कृति के एक पक्ष के रूप में देखना	गुणात्मकता को किसी अन्य एवं कठिनाई के रूप में समझना ।
16. योजनागत आवश्यकता के अनुसार गुणात्मकता का विकास करना	किसी बाह्य अभिकरण की मांग पर गुणात्मकता की जांच करना ।
17. एक स्पष्ट ध्येय रखना	किसी भी ध्येय की स्पष्टता न दिखाई देना
18. विद्यार्थियों के साथ साथियों जैसा व्यवहार करना ।	पदानुक्रम के अनुसार व्यवहार करना

5.12 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्ध के मापन की नई विधि : सिक्स सिग्मा (The Six Sigma : A New Method of Measurement of TQM)

सिक्स सिग्मा (Six Sigma) गुणात्मकता के मापन का एक सांख्यिकीय मापदण्ड है, जिससे यह पता लगाया जाता है कि कोई उत्पाद अपनी गुणात्मकता के उद्देश्य या लक्ष्य के कितने समीप पहुँच पाता है । सिक्स सिग्मा उच्च गुणात्मकता का मार्क बन चुका है ।

सिक्स सिग्मा (Six Sigma) मूलत: व्यावसायिक प्रबन्धन की एक रणनीति है । यह मोटारोला (Motorola) द्वारा विकसित की गई है जिसे वर्तमान समय में अनेक संगठनों, कम्पनियों व कारखानों में प्रयुक्त किया जा रहा है । व्यावसायिक प्रक्रिया और निर्माण कार्य में त्रुटियों और कमियों के कारणों को 'सिक्स सिग्मा द्वारा पता लगाया जाता है और उन्हें दूर किया जाता है ।

सिक्स सिग्मा गुणात्मक प्रबन्धन के तत्त्वों का प्रयोग करता है त इसके साथ ही सांख्यिकीय विधि का प्रयोग भी करता है । यह संगठन के अन्तर्गत ही कार्यरत दक्ष लोगों को

एक विशिष्ट संसाधन के रूप में तैयार करता है । किसी भी संगठन में जब सिक्स सिग्मा का प्रयोग किया जाता है तो इस प्रक्रिया में उस संगठन के प्रत्येक कार्य या गतिविधि के प्रत्येक चरण के वित्तीय पक्ष को आरम्भ में ही परिमाणित (Quantified) कर लिया जाता है ।

सिक्स सिग्मा वस्तुत: दोषों को विलुप्त करने एवं निर्माण की को उन्नत करने के उद्देश्य से तैयार किया गया अभ्यासों का एक सेट है । गुणात्मकता हेतु वैश्विक में शिक्षा में भी यदि सिक्स सिग्मा की तदनुरूप योजना बनाकर विधिवत् क्रियान्विति की जाती है तो शैक्षिक प्रबन्धन में अधिकाधिक गुणात्मकता लाई जा सकती है । इसके द्वारा संस्थान के कार्यों की गुणात्मकता को प्रतिशत में ज्ञात किया जा सकता है । जिस संस्था में जितनी गुणात्मकता होती है उसे उतने सिग्मा प्राप्त होते हैं जो उस संस्थान की कमियों की रेट तथा क्षमता को दर्शाते हैं । प्रत्येक सिग्मा का मूल्य '-' तालिका में स्पष्ट किया गया है-

सिक्स सिग्मा Six Sigma

- One Sigma = 690,000 (Defects per million opportunities)=31% efficiency
- Two Sigma = 308,000 DPMO = 69.2% efficiency
- Three Sigma = 66,8000 DPMO = 93.32% efficiency
- Four Sigma = 6,210 DMPO = 99.379% efficiency
- Five Sigma = 5230 DPMO = 5230 DPMO = 99.977% efficiency
- Six Sigma = 3.4 DPMO = 99.9997% efficiency

5.13 सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के लाभ (Advantages of TQM)

यह सर्वविदित ही है कि किसी वस्तु या सेवा के सम्पूर्ण प्रबन्धन से ही वह संगठन दीर्घकाल तक अपना अस्तित्व बनाए रख सकता है किन्तु जिसके में शिथिलता होती है वह संगठन लम्बे समय तक प्रतिस्पर्धा में नहीं टिक पाता । कई बार प्रबन्धक कम (समय में अधिकतम लाभ कमाने के लिए उत्पादन की मात्रा पर अधिक और गुणात्मकता पर कम ध्यान देते हैं और ऐसी अदूरदर्शितापूर्ण नीति से वे कितने ही ग्राहक खो देते हैं । ग्राहक जोडने का कार्य अत्यन्त होता है । शिक्षा में किसी संस्थान में प्रवेश लेने के इच्छुक छात्र उस संस्थान की गुणात्मकता के प्रति ही रहते हैं । ऐसे में यदि संस्थान की छवि धूमिल होती जाती है तो विद्यार्थियों की संख्या भी घटती जती है । यदि किसी भी कीमत पर उत्कृष्टता बनी रहती है तो उस संस्थान की प्रतिष्ठा बनी रहती है तथा वह अपने (छात्रों) को आकृष्ट करने में सफल रहता है । इसीलिए प्रबन्धकों ने उत्कृष्ट गुणात्मक प्रबन्धन के कुछ लाभ बताए हैं, जो निम्नानुसार है ।

TQM लाभ

1. गुणात्मक प्रबन्धन से संगठन लम्बे समय तक लाभ प्राप्त में समर्थ रहता है ।
2. सफलता की दुश्चिन्ता तथा भावी दुष्परिणामों से संगठन मुक्त रहता है ।

3. विद्यार्थियों, अध्यापकों, अभिभावकों एवं अन्य संबंधित लोगों का विश्वास अडिग बना रहता है।
4. संगठन की अन्य संगठनों से प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता में वृद्धि होती है ।
5. कार्यकर्ताओं की सृजन शक्ति और कार्यक्षमता में वृद्धि होती है ।
6. सफल एवं सन्तुष्ट विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि होती है ।

प्रसिद्ध प्रबन्धक कान के अनुसार गुणात्मकता में सुधार लाने से तात्पर्य है कि उत्पाद को दोषमुक्त बनाना और इससे निम्नांकित लाभ होते हैं-

1. गलतियों की दर घटती है ।
2. संशोधन एवं पुनर्निर्माण की सम्भावना कम हो जाती है ।
3. विफलता की आशंका कम होने लगती है ।
4. परीक्षण, निरीक्षण आदि का व्यय कम होने लगता है ।
5. नए उत्पाद को बनाने में अधिक समय नहीं लगता ।

5.14 सारांश (Summary)

सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन मूलत: इण्डस्ट्री से सम्बन्धित विचारधारा है जो उत्पाद की उत्कृष्टता, गुणात्मकता एवं उपयोगिता के संदर्भ में आरम्भ की गई थी । कालान्तर में इस सिद्धान्त को अन्य व्यवसायों द्वारा भी अपनाया जाने लगा, चूंकि प्रबन्धन का सम्बन्ध प्रत्येक व्यवसाय से होता है । अत: शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थी रूपी उत्पाद की श्रेष्ठता को ध्यान में रखकर ही सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन TQM की विचारधारा को शिक्षा के सभी स्तर पर स्वीकार किया गया है । शैक्षिक प्रबन्धन में TQR ने संस्थाओं को शिक्षा की परिवर्तित और नवीन वैश्विक परिस्थितियों से परिचित कराया है तथा प्रबन्धकों एवं कार्यकर्ताओं में प्रतिस्पर्धात्मक जागरूकता विकसित की है । TQR के अन्तर्गत संस्थान के प्रत्येक सदस्य की प्रतिबद्धता होना आवश्यक है। यह एक सहक्रियात्मकता से किया जाने वाला कार्य है जो गतिशील रहते हुए निरन्तर प्रगतिगामी तथा सतत स्व-मूल्यांकन पर आधारित होता है । संस्थान को अपने भौतिक एवं मानवीय संसाधनों की गुणात्मकता बनाए रखने तथा उसमें उत्तरोत्तर विकास व समसामयिक परिवर्तन द्वारा उत्कृष्टता हेतु सदैव सजग रहना ही इस प्रबन्धन की विशेषता व अनिवार्यता है ।

शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को श्रेष्ठ मानव और सुयोग्य नागरिक बनाना है तथा इसकी सम्प्राप्ति में गुणात्मकता व उत्कृष्टता की सम्भावनाएँ उत्तरोत्तर बनती जाती है । इस कार्य में संस्थान के प्रत्येक व्यक्ति की पूर्ण सहभागिता व जवाबदारी होती ' है । शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबंधन हेतु एक प्रभावी प्रणाली स्थापित की जाती है तथा समय-समय पर संस्थान में किए गए कार्यों का निर्धारित मानदण्डों के अनुसार मूल्यांकन करते हुए गुणात्मकता को न केवल कायम रखा जाता है अपितु परिवर्तित आवश्यकताओं के अनुरूप उनमें गुणात्मकता का विकास भी किया जाता है । जिस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इण्डस्ट्री और विभिन्न कम्पनियों में सम्पूर्ण गुणात्मकता हेतु 'सिक्स सिग्मा सिद्धान्त का प्रयोग किया जा रहा है उसी प्रकार शिक्षा प्रबन्धन में भी सम्पूर्ण गुणात्मक

प्रबन्धन से योग्य और श्रेष्ठ विद्यार्थियों को तैयार करने के लिए इस सिद्धान्त को लागू किया जाना चाहिए ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन TQM को परिभाषित कीजिए ।
2. सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के किन्हीं दो उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए ।
3. सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन हेतु आवश्यक किन्हीं तीन तत्वों के नाम लिखिए ।
4. सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के सक्रियात्मक सम्बन्ध' सिद्धान्त की चार विशेषताएँ बताइए ।
5. सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के मापन की नवीनतम विधि क्या है, उसकी कोई दो विशेषताएँ बताइए ।

अभ्यास प्रश्न (Excercises)

1. शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के अर्थ एवं सम्प्रत्यय को स्पष्ट करते हुए इसके सिद्धान्तों की व्याख्या करिए ।
2. सिक्स सिग्मा तथा सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन की तुलनात्मक व्याख्या करिए ।

5.15 सन्दर्भ पुस्तकें (Reference Books)

(1) Ahluwalia, Lt Gen. J.S. (2001). Total Quality Management : Creating a Quality Environment fo the Next Millennium. New Delhi : Vanity Books International.

(2) Balsara, Maitrya (2002). Administration and Reorganisation of Teacher Education. New Delhi : Kanishka Publishers.

(3) Chandras Karan, P.(1994) Educational Planning and management. New Delhi: sterling Publishers Private Limited.

(4) Chester, Barnard (1954).The Functions of Executive. Cambridge : Harvard University press.

(5) Choudhary, Namita Roy (2001).Management in Education. New Delhi : S.B Nangia, A.P.H. Publishing Corporation.

(6) जी.एस. सुधा (2003). प्रबन्ध अवधारणा,चिन्तन एवं व्यवहार जयपुर: रमेश बुक डिपो.

(7) Goens, GeorgeA. and Clover, Sharon I.R.(1984)Mastering School Reform. Singapore:Allyn and Bacon.

(8) Kumar,K.L.(2001)Educational Technology. New Delhi:New AGE International(P) Limited, Publishers.

(9) 9.Mukhopadhyay,M.(2001).Total Quality Management in Education. New Delhi: National Institute of Education Planning and Administration.

(10) Organization and Management Intermediate Course Study Material.Paper- 6A,Board of Studies, The Institute of Chartered Accountants of India.

(11) 11.Pandya,S.R.(2001).Administration and Management of Education.Mumbai:Himalaya Publicating House.

(12) 12. शर्मा, आर. एस. (1995). विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन । मेरठ : सूर्या पब्लिकेशन.

(13) शर्मा, डॉ. आर.ए. (2004). शिक्षा तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन। मेरठ : सूर्या पब्लिकेशन राजकी इन्टर कोलेज के समीप ।

(14) Tripathi,P.C. and Reddy,P.N.(1997).Principles of Management. Second Edition. New Delhi: Tata Me Graw - Hill Publishing Company Limited.

(15) वर्मा, जे. पी. (2002) शैक्षिक प्रबन्धन (Educational Management) जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी.

Websites-

1. http://bctf.ca/social/globalization.
2. http://enwikipedia.org/wiki/SWOT_analysis.
3. Globalization and Education.ed.uiue.edu
4. www.smart teaching.org.
5. Wikipedia.the free Encyclopedia
6. www.globalization.wikipedia
7. www.wharton.upenn.edu/faclty/innovation/-21k
8. www.businessballs.com/swotanalysisfreetemplete.
9. www.boloji.com/analysis/068.htm.
10. www.sixsigma.wikipedia.com

इकाई 6

शैक्षिक योजना

(Educational Planning)

इकाई की संरचना

6.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

6.1 विषय प्रवेश (Introduction)

6.2 योजना : अर्थ (Planning : Meaning)

6.3 योजना निर्माण की प्रक्रिया व स्तर (Planning : Process and Level)

6.4 शैक्षिक योजना का अर्थ, महत्व एवं विशेषताएँ (Educational Planning : Meaning, Importance and Characterstics)

6.5 शैक्षिक-योजना के सिद्धान्त व उपागम (Educational Planning : Principles and Approaches)

6.6 भारत में शैक्षिक आयोजन (Education Planning in India)

6.7 सारांश (Summary)

6.8 संदर्भ (References)

6.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

(1) योजना का अर्थ समझ सकेंगे ।

(2) योजना निर्माण के लाभों को जान सकेंगे ।

(3) योजना निर्माण की प्रक्रिया को समझ सकेंगे ।

(4) शैक्षिक-योजना का अर्थ जान सकेंगे ।

(5) शैक्षिक-योजना का महत्त्व समझ सकेंगे ।

(6) शैक्षिक योजना के विभिन्न उपागम जान सकेंगे ।

(7) शैक्षिक-योजना के विभिन्न उपागमों को समझ सकेंगे ।

(8) शैक्षिक योजना के विभिन्न उपागमों की व्याख्या कर सकेंगे ।

(9) भारत में शैक्षिक आयोजन को जान सकेंगे ।

(10) भारत में शैक्षिक आयोजन की व्याख्या कर सकेंगे ।

6.1 विषय प्रवेश (Introduction)

"देश में शिक्षा के भविष्य को आकार देने में शैक्षिक नीतियों की भूमिका बड़ी महत्त्वपूर्ण होती है । राष्ट्रीय स्तर पर तैयार की गई सामान्य नीतियों के आधार पर राज्य स्तर पर नीतियों का निर्धारण होता है । ये नीतियाँ कुछ विशेष लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षा की

प्रक्रिया को समाज के विकास के साथ जोड़ती हैं । इन लक्ष्यों का निर्धारण इस बात से होता है कि संबधित समाज विकास की किस अवस्था पर पहुँच चुका है और आगे उसके कितना और विकसित होने की संभावना है । शिक्षा प्रणाली अपनी नीतियों के माध्यम से कुछ ऐसी प्रभावकारी निविष्टियां मुहैया करने के ऐसे सुविचारित और सुव्यवस्थित प्रयास करती है जिससे व्यक्ति के स्तर पर विकास की प्रक्रिया आरम्भ हो सके और उसके परिणामस्वरूप व्यापक सामाजिक परिवर्तन हो सके ।"

(एम. एस. खापर्डे का लेख - 'नीति अनुसंधान और विद्यालयी शिक्षा' : विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में अनुभव (2001) सं. जगमोहन सिंह राजपूत व अन्य, एन.सी.ई.आर.टी.)

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि देश के विकास में शैक्षिक नीतियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और वे देश के विकास की दिशा भी तय करती हैं ।

किसी कार्य को भली-भाँति सम्पादित करने के लिए योजना बनाना बहुत जरूरी होता है । शैक्षिक आयोजना को समझने के लिए हमें पहले योजना को भली-भाँति समझ लेना चाहिए ।

6.2 योजना का अर्थ (Meaning of Planning)

कनफ्यूशियस ने कहा था कि - "जो व्यक्ति बहुत पहले से विचार और नियोजन नहीं करता वह अपने द्वार पर ही संकट को उपस्थित पाएगा ।" यानि किसी कार्य को व्यवस्थित रूप से संचालित करने के लिए योजना बनाना सार्थक होता है ।

प्रबन्धन प्रक्रिया में योजना निर्माण करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कदम माना जाता है । योजना प्रबंधन का गतिशील कार्य है और प्रबन्धन के लक्ष्य और कार्यक्रम निश्चित करने का आधार है ।

योजना को कुछ विद्वानों ने इस प्रकार परिभाषित किया है :-

(1) "चयनित उद्देश्य या उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संसाधनों को व्यवस्थित करने के प्रयास को नियोजन कहा जाता है । नियोजन एक सौद्देश्य क्रिया है ।"

-- थिडोरे ग्रेगॉरी

(2) "योजना का सीधा सादा अर्थ किसी कार्य को करने या समस्या हल करने की तैयारी है।"

--जे. बी. सीयर्स

(3) "योजना भावी कार्यक्रम की बुद्धिमतापूर्ण तैयारी है ।"

-- जान मिलेट

(4) "योजना वह प्रक्रिया है जिसमें क्रियान्विति से पूर्व, पूरी तैयारी के साथ कार्य प्रणाली स्पष्ट निर्णय के आधार पर तय कर ली जाती है ।"

-- साइमन

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि योजना किसी कार्य की पूर्व व्यवस्थित तैयारी है । इसमें लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निश्चित कार्य-प्रणाली पूर्व में तय कर ली जाती है । प्रबंधन में योजना बनाकर कार्य संपादित नहीं करने से अनेक दिक्कतें आ सकती हैं, योजना के अभाव में

प्रबंधन की शक्ति व ऊर्जा अनावश्यक कार्यों में खर्च हो सकती है, लक्ष्य की प्राप्ति में समस्याएँ व विलम्ब हो सकता है ।

योजना निर्माण करना प्रबन्धन के लिए निम्नलिखित प्रकार लाभकारी हो सकता है :-

(1) बदलते परिवेश में अनुकूल परिवर्तन के लक्ष्यों की प्राप्ति में प्रबंधन को सहायता मिलती है ।

(2) योजना-निर्माण करते समय विचार-विमर्श से अनेक समस्याओं का समाधान मिल जाता है ।

(3) योजना-निर्माण करने से प्रबंधन को कार्यकर्ताओं के कर्त्तव्य निर्धारित करने में सहयोग मिलता है ।

(4) कार्य सम्पादन करने के नियम व मानक बन जाते हैं ।

(5) कार्य में. नियमितता आ जाती है ।

(6) योजना निर्माण से संगठन के विभिन्न घटकों में समन्वय स्थापित करने में आसानी व सुविधा रहती

(7) प्रबंधक अपने उद्देश्य एवं कार्यों के बारे में स्पष्ट हो जाते हैं ।

(8) कार्यकर्ता अपने कार्य के बारे में स्पष्ट हो जाते हैं ।

(9) समय व ऊर्जा की बचत होती है ।

(10) निर्णय-दोषों को सुधारने का अवसर मिलता है ।

(11) योजना-निर्माण से संसाधनों का सार्थक उपयोग संभव है ।

(12) योजना-निर्माण करने से कार्यकर्ताओं को उत्तरदायित्व का बोध हो जाता

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

(1) योजना का अर्थ स्पष्ट कीजिए ।

(2) योजना निर्माण करना प्रबन्धन के लिए लाभकारी कैसे है? स्पष्ट कीजिए ।

(3) योजना की एक उपयुक्त परिभाषा दीजिए ।

6.3 योजना-निर्माण की प्रक्रिया व स्तर (Planning :Process and Level)

योजना-निर्माण की प्रक्रिया समझने से पूर्व हमें प्रबंधन के विविध घटकों का योजना प्रक्रिया के संबंध में जानना जरूरी है । योजना-निर्माण प्रक्रिया का प्रबन्ध के विभिन्न घटकों से महत्त्वपूर्ण और अन्योन्याश्रित संबंध होता है । योजना का प्रबन्ध के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्ध को हम आगे दिए गए चित्र में देख सकते हैं :-

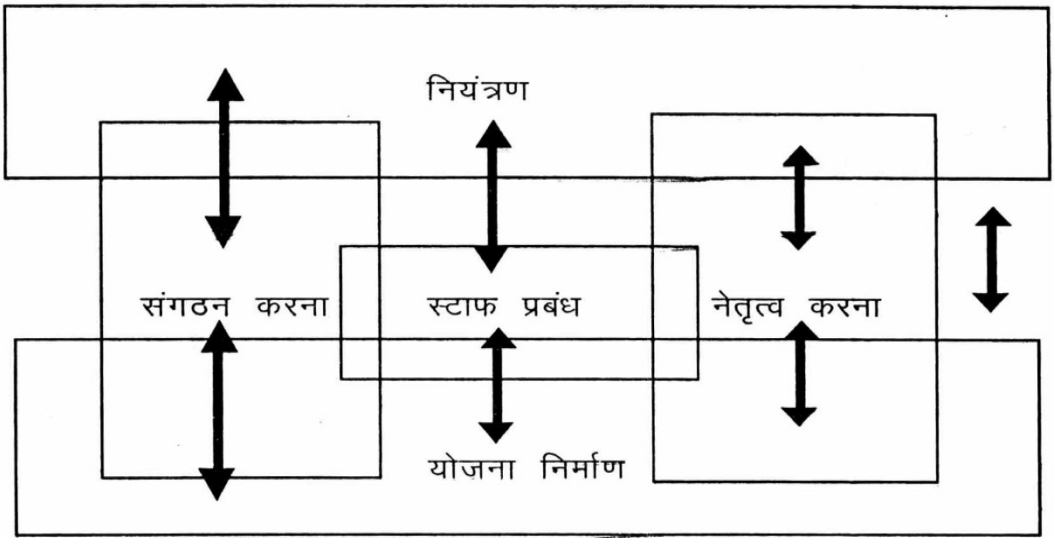

चित्र सं. 1 : योजना का प्रबन्धन के विविध क्षेत्रों से संबंध

स्टाफ प्रबन्ध : संगठन के सभी संसाधन मानवीय व भौतिक एक साथ मिलकर कार्य करते हैं । योजना में यह तय किया जाना चाहिए कि इन संसाधनों को किस प्रकार एक साथ समन्वित किया जाए कि इनका उपयोग लक्ष्य प्राप्ति हेतु सार्थक सिद्ध हो ।

नेतृत्व : नेतृत्व प्रबन्धन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष है । प्रबन्धन का यह पक्ष योजना से सीधा जुड़ा हुआ है । नेतृत्व क्षमता द्वारा योजना के अनुरूप संसाधनों, शक्तियों व संबंधों का उपयोग प्रभावी व सार्थक ढंग से किया जा सकता है ।

नियंत्रण : प्रबन्धन का नियंत्रण पक्ष भी योजना से जुड़ा हुआ है । वास्तविकता तो यह है कि नियंत्रण योजना का ही प्रतिफल है । यदि योजना तथ्यों पर आधारित नहीं है, या प्रबंधन कमजोर है तब योजना के परिणाम भी सार्थक नहीं होंगे । इस प्रकार नियंत्रण भी योजना के मूल्यांकन के आधार पर किया जाएगा ।

योजना निर्माण प्रक्रिया :

किसी भी योजना के निर्माण के कुछ आधार होते हैं, ये एक तरह के प्रश्न भी हैं जिनका उत्तर हमें योजना निर्माण के समय तलाशना होता है । ये प्रश्न हैं :-

1. योजना निर्माण के उद्देश्य क्या हैं?
2. इन्हें किस क्रम में रखना है ?
3. इन्हें पूरा करने का समय क्या रहेगा ?
4. इन्हें पूरा कैसे किया जाएगा ?
5. इन्हें पूरा कहाँ किया जाएगा ?
6. इन्हें पूरा किसके द्वारा किया जाएगा ?

योजना निर्माण के लिए प्रश्न आधार का कार्य करते हैं । अमेरिकन विद्यालय प्रशासक संगठन ने इन प्रश्नों को चार कदमों में रखा है, ये हैं:-

(1) संगठन के लक्ष्यों का सही और स्पष्ट निर्धारण ।

(2) संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में आने वाली परिस्थितियों का स्पष्ट ज्ञान ।

(3) योजना संबंधी विश्वसनीय तथ्य जुटाना ।

(4) योजना क्रियान्विति सम्बन्धी स्पष्ट नीति का निर्धारण ।

इलियट मोसियर ने योजना निर्माण प्रक्रिया के सात कदमों का उल्लेख किया है, ये हैं :-

(1) उद्देश्य निर्धारण ।

(2) योजना निर्माण से पहले वर्तमान स्थिति, पर्यावरण व प्रगति से संबंधित आकलन ।

(3) उद्देश्यों के अनुसार कार्यक्रम संबंधी विकल्पों का चयन ।

(4) सर्वाधिक उपयुक्त व सार्थक कार्य प्रणाली का निर्णय लेना ।

(5) योजना की क्रियान्विति करना ।

(6) योजना की प्रभावशीलता का नियमित मूल्यांकन करना ।

(7) मूल्यांकन के आधार पर आवश्यक संशोधन कर पुनर्योजना निर्माण करना ।

योजना प्रक्रिया के चरण :-

योजना प्रक्रिया के विभिन्न चरणों को हम निम्नलिखित प्रकार से देख सकते हैं :-

1. प्रथम चरण	–	उद्देश्य निर्धारण	–	निकट और भविष्य के लिए लक्ष्य तय करना ।
2. द्वितीय चरण	–	पर्यावरण का विश्लेषण एवं मूल्यांकन	–	उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि उपलब्ध संसाधनों मानवीय व भौतिक का योजना के संदर्भ में विश्लेषण किया जाए ।
3. तृतीय चरण	–	विकल्पों का निश्चय	–	योजना के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निश्चित कार्यक्रमों की सूची का निर्माण करना जिससे उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके ।
4. चतुर्थ चरण	–	विकल्पों का मूल्यांकन	–	प्रत्येक विकल्प के गुण व दोषों को सूचीबद्ध करना ।
5. पंचम चरण	–	समाधान हेतु उपयुक्त विकल्प का चयन	–	प्राप्त विकल्पों के गुण और दोषों के आधार पर सर्वाधिक उपयुक्त और सार्थक विकल्प का चयन
6.छठवां चरण	–	योजना की क्रियान्विति	–	इस योजना की क्रियान्विति में कौन-कौन किस प्रकार सम्मिलित होंगे तथा संसाधन किस-किस मात्रा में उपलब्ध होंगे इस पर विचार करना ।
7. सप्तम चरण	–	मूल्यांकन व नियंत्रण	–	इसके लिए आश्वस्त होना की योजना अपेक्षाओं के अनुरूप पूर्ण हो रही है।

समन्वय व समायोजन सही दिशा में हो रहा है ।

उपर्युक्त सभी सात चरणों को पूरा करने पर योजना की अपने उद्देश्यों । के अनुरूप सम्पन्न होगी लेकिन इसकी सफलता को वर्तमान आन्तरिक व बाह्य पर्यावरण, कार्यकर्ताओं की तकनीकी योग्यता, उनका सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश, देश-काल व राजनीतिक स्थितियां भी प्रभावित करती हैं ।

योजना की अवधि : अवधि की दृष्टि से ये योजनाएँ अनेक प्रकार की हो सकती हैं । समय के आधार पर हम योजनाओं को तीन मुख्यत: भागों में बाँट सकते हैं :-

(1) अल्प अवधि की योजना – इसमें हम एक वर्ष या उससे कम अवधि की योजनाओं को रख सकते हैं ।

(2) मध्यम अवधि की योजना – इसमें हम एक वर्ष से लेकर 5 वर्ष की अवधि की योजनाओं को रख सकते हैं ।

(3) दीर्घकालीन योजना – इसमें हम 5 वर्ष से अधिक अवधि की योजनाओं को रख सकते हैं ।

शिक्षा प्रबंधन में सामान्यत: अवधि की दृष्टि से तीनों प्रकार की योजनाओं की आवश्यकता होती है उदाहरण के लिए

(1) अल्पावधि योजना	–	विद्यालय योजना	पाठ्यक्रम संबंधी योजना
(2) मध्यावधि योजना	–	राज्य स्तर	विद्यालयों में गुणात्मक सुधार योजना
(3) दीर्घ अवधि योजना	–	विद्यालय स्तर	भवन, परिसर विकास योजना

योजना निर्माण के स्तर -

योजना निर्माण में सामान्यत: तीन स्तर कार्य करते हैं :-

(1) उच्च स्तरीय प्रबंधन नीति स्तरीय योजना
(उच्च अधिकारी, प्रबंधक, विभागाध्यक्ष)

(2) मध्य स्तरीय प्रबंधन कुशल / दक्ष तकनीकी
(मध्य क्रम के अधिकारी, समन्वयक विशेषज्ञ) विशेषज्ञा द्वारा तैयार योजना

(3) कार्य स्तरीय प्रबंधन प्रारम्भिक, क्रियात्मक
(पर्यवेक्षक, समूह नेता) स्तर की योजना

स्व-मूल्यांकन (Self Evaluation Questions)

(1) स्टाफ प्रबंधक का योजना निर्माण से क्या संबंध है ?

(2) योजना निर्माण के आधारभूत प्रश्न क्या हैं ?

(3) योजना निर्माण प्रक्रिया के प्रमुख चरण लिखिए ?

(4) समय अवधि के आधार प्र योजनाएँ कितने प्रकार की होती हैं ?

(5) योजना निर्माण में प्राय: कितने स्तर कार्य करते हैं ?

6.4 शैक्षिक योजना का अर्थ, महत्व एवं विशेषताएँ (Educational Planning:Meaning, Importance and Characteristics)

एक चीनी कहावत है कि - "यदि आपको एक वर्ष के लिए योजना बनानी है तो अनाज बोइए, यदि आप दस वर्ष की योजना बनाते हैं तो पेड़ लगाइए, और यदि आप सौ साल की योजना बनाते हैं तो आदमी तैयार कीजिए ।"

शैक्षिक योजना ऐसा ही प्रयास है । शिक्षा के समुचित व व्यवस्थित विकास के लिए योजना बनाना शैक्षिक आयोजन कहलाता है । ब्लैन्ज ने लिखा है - "भविष्य में किए जाने वाले कार्यों के निर्णयों की सूची के निर्माण करने की प्रक्रिया को शैक्षिक नियोजन कहते हैं ।"

इस आधार पर हम कह सकते हैं कि राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक यथार्थ को ध्यान में रखते हुए देश की शैक्षिक आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा में सुधार के लिए योजना बनाने को हम शैक्षिक आयोजना कह सकते हैं ।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के शिक्षा परिभाषा कोश खण्ड-II में शैक्षिक आयोजना को परिभाषित करते हुए लिखा गया है - "विद्यार्थियों और अध्यापकों की संख्या के साथ-साथ शैक्षिक व्यय का पूर्वानुमान करने का विधिवत प्रयत्न तथा शिक्षा के विभिन्न स्तरों के बीच संसाधनों का कुशलतापूर्वक विनिधान अथवा बँटवारा ।"

अत: हम समझ सकते हैं कि शैक्षिक आयोजन वह कोशिश है जिससे किसी देश अथवा प्रान्त के उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग करते हुए, उनको नागरिकों के शुभ भविष्य के लिए शैक्षिक विकास में लगाया जाता है । शैक्षिक आयोजना में संसाधनों का समन्वय कर शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का तार्किक हल खोजकर लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है, शैक्षिक आयोजन से देश / प्रान्त के भविष्य के विकास के प्रति आश्वस्त हुआ जा सकता है ।

शैक्षिक आयोजन का महत्त्व

कोई भी कार्य बिना योजना के भली-भाँति सम्पन्न नहीं हो सकता । शिक्षा व्यवस्था के लिए भी नियोजन होना जरूरी है । शैक्षिक आयोजना के महत्त्व को हम निम्नलिखित से देख सकते

हैं -

(1) शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति की दृष्टि से : शैक्षिक आयोजना का निर्माण शिक्षा के लक्ष्यों के आधार पर किया जाता है । शिक्षा के लक्ष्यों की राह शैक्षिक आयोजन द्वारा आसान हो जाती है । शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति की दृष्टि से शैक्षिक आयोजन का महत्त्व होता है ।

(2) संसाधनों के सार्थक उपयोग की दृष्टि से : शैक्षिक आयोजना में शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति की दृष्टि से उपलब्ध संसाधनों, जिसमें मानवीय व भौतिक दोनों होते हैं, के उपयोग का उल्लेख किया जाता है । आयोजना में इस बात का विशेष ध्यान रखा

जाता है कि उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम सार्थक उपयोग किया जाए अत: इस दृष्टि से शैक्षिक आयोजन का महत्व है ।

(3) सार्थक व अच्छे परिणामों की दृष्टि से : शैक्षिक आयोजना का निर्माण ही इसलिए किया जाता है कि उपलब्ध संसाधनों से शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति कर सार्थक व अच्छे परिणाम प्राप्त किए जाएं अत: इस दृष्टि से शैक्षिक आयोजन का महत्व है ।

(4) शैक्षिक कार्यों की प्रक्रिया की गति की दृष्टि से : शैक्षिक आयोजना के आधार पर शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न कार्य सम्पन्न किए जाते हैं । योजना के अनुरूप कार्य करने से शैक्षिक कार्यों की प्रक्रिया की गति बढ़ जाती है अत: इस दृष्टि से शैक्षिक आयोजन का महत्व है ।

(5) उत्पादन में परिमाणात्मक वृद्धि की दृष्टि से : शैक्षिक आयोजना के आधार पर कार्य करने से शिक्षा के उत्पादन में परिमाणात्मक वृद्धि होती है जैसे उदाहरण के लिए सर्वशिक्षा अभियान में लिंग विभेद खत्म करने का लक्ष्य रखा गया है । इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो हुए उनके चलते विद्यालयों में लडकियों की नामांकन दर में वृद्धि हुई । इस प्रकार उत्पादन ' परिमाणात्मक वृद्धि की दृष्टि से शैक्षिक आयोजन का महत्त्व है ।

(6) परिवर्तन के मूल्यों की स्पष्टता की दृष्टि से : शैक्षिक आयोजना के आधार पर कार्य करने से जो परिवर्तन होता है उसके मूल्य भी स्पष्ट होते जाते हैं, आयोजना के अनुसार कार्य करने से स्पष्ट होता जाता है कि परिवर्तन सार्थक है या नहीं इस प्रकार परिवर्तन के मूल्यों की स्पष्टता की दृष्टि से शैक्षिक आयोजन का महत्त्व है ।

(7) भौतिक समृद्धि की सुनिश्चितता की दृष्टि से : शैक्षिक आयोजना के आधार पर कार्य करने से जो परिमाणात्मक उत्पादन होता है उससे भौतिक समृद्धि की सुनिश्चितता भी होती है अत: इस दृष्टि से भी शैक्षिक आयोजन का महत्त्व सिद्ध है ।

(8) प्राथमिकताओं की निश्चितता की दृष्टि से : शैक्षिक आयोजना के निर्माण करने तथा उसके अनुरूप कार्य करने से शिक्षा के क्षेत्र की प्राथमिकताएँ निश्चित होती हैं, शैक्षिक आयोजना के परिणाम भी प्राथमिकताओं को निश्चित करने का आधार बनते हैं अत: इस दृष्टि से शैक्षिक आयोजना का महत्व स्पष्ट है ।

(9) निर्णय लेने की दृष्टि से : शैक्षिक आयोजना के आधार पर कार्य करने से शिक्षा सम्बन्धी कार्यों के निर्णय आसानी से लिए जा सकते हैं तथा आयोजना के परिणाम शिक्षा के भविष्य के निर्णयों को दिशा देने का कार्य करते हैं अत: इस दृष्टि से भी शैक्षिक आयोजना का महत्त्व है ।

(10) शैक्षिक कार्यों की निरन्तरता व वांछित प्रगति की दृष्टि से : शैक्षिक आयोजना के आधार पर कार्य करने से शैक्षिक कार्यों की गति निरन्तर बनी रहती है तथा शैक्षिक कार्यों को वांछित प्रगति की राह पर व्यवस्थित रूप से आगे बढ़ाया जा सकता है अत: इस दृष्टि से भी शैक्षिक आयोजना का महत्त्व हैं ।

उपर्युक्त बिन्दुओं से शैक्षिक आयोजना का महत्त्व स्पष्ट है । शैक्षिक आयोजना के अर्थ एवं महत्त्व के आधार पर हम उसकी विशेषताओं को भी समझ सकते हैं ।

शैक्षिक योजना की विशेषताएँ

(1) शैक्षिक आयोजना राष्ट्रीय आयोजना का ही एक अंग होती है ।

(2) शैक्षिक आयोजना राष्ट्रीय विकास की नीतियों का एक हिस्सा होती है ।

(3) शैक्षिक आयोजना में शिक्षा संबंधी समस्याओं पर गहन चिंतन कर उनका समाधान खोजा जाता है ।

(4) शैक्षिक आयोजना शिक्षा के बेहतर भविष्य के लिए आश्वस्त करने का कार्य करती है।

(5) शैक्षिक आयोजना एक सतत् प्रक्रिया है । एक पूर्ववर्ती और परवर्ती योजना में संबंध होता है ताकि शिक्षा की वरीयताओं को पहचाना जा सके ।

(6) शैक्षिक आयोजना राष्ट्र के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक है ।

स्व-मूल्यांकन (Self Evaluation Question)

1. शैक्षिक आयोजन का अर्थ स्पष्ट कीजिए ।
2. शैक्षिक आयोजन का महत्त्व समझाइए ।
3. शैक्षिक आयोजन की विशेषताएँ लिखिए ।

6.5 शैक्षिक आयोजना के सिद्धान्त व उपागम (Educational Planning : Principles and Approaches)

शैक्षिक आयोजना के कुछ मूलभूत सिद्धान्त तथा उपागम हैं जिनके आधार पर शैक्षिक आयोजन अच्छी तरह किया जा सकता है । आगे हम शैक्षिक आयोजन के सिद्धान्त व उपागम पर विचार विमर्श कर रहे हैं ।

शैक्षिक योजना के सिद्धान्त : शैक्षिक आयोजन को व्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए कुछ सिद्धान्त आधार कार्य करते हैं, इनमें से प्रमुख सिद्धान्तों को हम निम्नलिखित प्रकार से देख सकते हैं :-

(1) **प्राथमिक आवश्यकता का सिद्धान्त :** जब किसी राष्ट्र या प्रान्त के लिए शैक्षिक नियोजन किया जाता है तो उस राष्ट्र या प्रान्त की आवश्यकताओं की प्राथमिकताओं को समझकर उनको वरीयता प्रदान करते हुए शैक्षिक नियोजन करना सार्थक साबित होता है ।

(2) **यथार्थ का सिद्धान्त** : शैक्षिक आयोजन को काल्पनिक आधारों पर विकसित नहीं किया जा सकता । यथार्थ रूप में राष्ट्र या प्रांत की जो जरूरतें तथा उपलब्ध संसाधन तथा स्थितियाँ होती हैं उसी के आधार पर शैक्षिक आयोजन किया जाना चाहिए ।

(3) **उपयोगिता का सिद्धान्त :** शैक्षिक आयोजन उपयोगिता के सिद्धान्त पर किया जाता है । प्रत्येक शैक्षिक आयोजन को राष्ट्र / प्रान्त, समाज और समुदाय के लिए उपयोगी होना चाहिए ।

(4) **संसाधनों के सदुपयोग का सिद्धान्त** : शैक्षिक आयोजन में मानवीय व भौतिक दोनों तरह के संसाधनों का सार्थक उपयोग होना चाहिए ।

(5) **लक्ष्य प्राप्ति का सिद्धान्त** : शैक्षिक आयोजन लक्ष्यों के आधार पर ही किया जाता है । शैक्षिक आयोजन के कार्यक्रम एकदम स्पष्ट लक्ष्यों की पूर्ति के लिए बने होने चाहिए ।

(6) **गुणात्मक सुधार का सिद्धान्त** : शैक्षिक आयोजना में केवल संख्यात्मक या परिमाणात्मक सुधार का ही ध्यान नहीं अपितु गुणात्मक सुधार पर भी ध्यान केन्द्रित होना चाहिए । अगर ऐसा नहीं हो पाता है तो शैक्षिक आयोजन विकास में अपनी भूमिका का निर्वहन भली प्रकार नहीं कर पाएगा ।

(7) **आर्थिक नियोजन से सम्बन्ध का सिद्धान्त :** शैक्षिक नियोजन का आर्थिक नियोजन से गहरा सम्बन्ध है । शैक्षिक आयोजना आर्थिक नियोजन के आधार पर विकसित । होनी चाहिए क्योंकि आर्थिक नियोजन के अभाव में बहुत सी योजनाएँ निरर्थक साबित हो जाती हैं ।

(8) **व्यापकता का सिद्धान्त :** शैक्षिक आयोजन राष्ट्रीय विकास का होती है । अनेक स्तरों पर लघु तथा मध्य योजनाओं का निर्माण किया जाता है लेकिन ये सभी योजनाएँ किसी न किसी रूप में दीर्घकालीन योजनाओं से संबंधित होती हैं, जो राष्ट्रीय विकास से संबंधित होती हैं । अत: शैक्षिक आयोजन में व्यापकता के सिद्धान्त को अपनाया जाना चाहिए ।

शैक्षिक आयोजन के उपागम :

हम शैक्षिक आयोजन के प्रमुख उपागम निम्नलिखित प्रकार से देख सकते हैं :-

(1) सामाजिक माँग उपागम

(2) जनशक्ति आवश्यकता उपागम

(3) सामाजिक न्याय उपागम

(4) प्रतिफल दर उपागम

(5) समन्वित उपागम

शैक्षिक आयोजन उपर्युक्त प्रमुख उपागमों को हम निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट समझ सकते हैं :-

(1) **सामाजिक माँग उपागम :** शैक्षिक आयोजन के इस उपागम का आधार सामाजिक माँग है । समाज के सभी व्यक्तियों की माँगों का अनुमान लगाकर शैक्षिक योजना बनायी जाती है जिससे कि सभी व्यक्तियों को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर उपलब्ध हो सकें । इसमें महिला-पुरुषों की साक्षरता, प्राथमिक शिक्षा, अनिवार्य शिक्षा, माध्यमिक व उच्च शिक्षा, व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा की वर्तमान माँग के आधार पर भविष्य की माँग के अनुमान पर योजना का निर्माण किया जाता है ।

(2) **जनशक्ति आवश्यकता उपागम** : इस उपागम का आधार देश की भावी जनशक्ति की माँगों के विभिन्न क्षेत्र होते हैं । इन जनशक्ति की माँगों के विभिन्न क्षेत्रों के आधार पर योजना का निर्माण किया जाता है । उदाहरण के लिए भविष्य में शिक्षकों की माँग के अनुसार शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए योजना निर्मित की जाएगी । इस उपागम में प्रत्येक व्यवसाय की माँग के आधार पर सम्पूर्ण जनसंख्या के विभिन्न व्यवसाय व क्षेत्रों के लिए योजना बनाई जाती

है तथा इसका भी निर्धारण किया, जाता है कि शैक्षिक व्यवस्था के प्रत्येक स्तर पर कितने लोगों को प्रवेश दिया जाए ।

(3) **सामाजिक न्याय उपागम** : इस उपागम का आधार सामाजिक न्याय है । लिंग-विभेद, जातीय विभेद, क्षेत्रीय असमानता दूर करने के प्रयासों को हम इस उपागम का उदाहरण समझ सकते हैं । भारतीय संविधान के निर्देशों के अनुरूप समाज पिछड़े, शोषित तथा वंचित वर्गों को समान शैक्षिक अवसर उपलब्ध करवाने की दृष्टि से यह उपागम का अत्यन्त महत्त्व है ।

(4) **प्रतिफल दर उपागम :** यह उपागम आर्थिक व्यय तथा उसके लाभ पर आधारित है । यह उपागम इस आधार पर योजना का निर्माण करेगा कि शिक्षा पर कितना धन व्यय किया जाएगा तथा समाज, राष्ट्र और व्यक्ति को यह धन खर्च करने से कितना लाभ होगा । बिड़ला-अम्बानी ने कुछ बरस पहले सरकार को शिक्षा पर जो रिपोर्ट सौंपी थी, उसका अध्ययन इसी उपागम के आधार पर किया गया था, उसे हम इसके उदाहरण के रूप में देख सकते हैं ।

(5) **समन्वित उपागम** : यह उपागम पहले वर्णित चारों उपागमों का मिश्रित रूप है । इस उपागम का आधार यह है कि जहाँ जिस उपागम की जरूरत हो उसे अपना लिया जाए क्योंकि सामान्यतया किसी एक उपागम से शैक्षिक विकास की सभी समस्याएँ हल नहीं हो सकतीं अत: समाज एवं राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुरूप शैक्षिक आयोजना का निर्माण करते समय विभिन्न उपागमों को आधार बनाना चाहिए क्योंकि विकास के लिए यही अधिक सार्थक एवं उपयोगी रहेगा ।

स्व-मूल्यांकन (Self Evaluation Questions)

1. शैक्षिक आयोजन के प्रमुख सिद्धान्तों को लिखिए ।
2. शैक्षिक आयोजन के उपागम कौन-कौन से हैं ?
3. शैक्षिक आयोजन के सामाजिक न्याय उपागम को समझाइए ।

6.6 भारत में शैक्षिक आयोजन (Educational Planning in India)

भारत में शैक्षिक आयोजन का व्यवस्थित प्रयास स्वतंत्रता के बाद संविधान निर्माण के पश्चात् प्रारम्भ हुआ । भारत के शैक्षिक आयोजन का विकास राष्ट्रीय विकास की कहानी है । प्रारम्भ में भारतीय शैक्षिक योजनाओं रूस तथा अन्य देशों के अनुभवों को अपनाते हुए उनका विकास किया गया । भारत के शिक्षा आयोजन के प्रमुख उद्देश्यों को हम निम्नलिखित प्रकार से देख सकते हैं -

(1) देश के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास को सुनिश्चित करना ।

(2) देश के उपलब्ध भौतिक एवं मानवीय संसाधनों को शैक्षिक लक्ष्यों की पूर्ति में नियोजित करना ताकि शैक्षिक अपेक्षाओं को पूरा किया जा सके ।

(3) शैक्षिक आयोजन द्वारा राष्ट्र के विकास का मार्ग प्रशस्त करना ।

(4) राष्ट्रीय शिक्षा तथा देश के नागरिकों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की स्पर्धा के योग्य बनाना।

भारत के शैक्षिक आयोजन की क्रियान्विति के चरण :

किसी भी योजना की क्रियान्विति के मुख्यत: चार चरण होते हैं । भारतीय शैक्षिक आयोजन की क्रियान्विति में इन मुख्य चार चरणों को अभी तक पारम्परिक रूप से अपनाया जाता रहा है । भारतीय शैक्षिक आयोजन की क्रियान्विति के इन चरणों को हम निम्नलिखित प्रकार से देख सकते हैं:-

(1) **योजना निर्माण करना -** देश के भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप योजना विभाग द्वारा उपलब्ध संसाधनों के आधार पर योजना तैयार की जाती है । इसके लिए विभिन्न स्तरों पर विचार-विमर्श होता है । राज्य / प्रान्त और जिला स्तर पर संबंधित विभाग या अभिकरण योजना का निर्माण करते हैं । राष्ट्रीय स्तर पर योजना का निर्माण योजना आयोग करता है जिसका प्रमुख (प्रधान) वरिष्ठ केन्द्रीय मंत्री या प्रधानमंत्री होता है ।

(2) **योजना की स्वीकृति :** योजना निर्माण के पश्चात् योजना की उपयुक्त स्तर पर स्वीकृति लेना जरूरी होता है । सामान्यत: प्रान्तीय / राज्य स्तरीय योजनाओं को विधानसभा स्वीकृति प्रदान करती है तथा राष्ट्रीय स्तर की योजनाओं को संसद द्वारा स्वीकृति प्रदान की जाती है ।

(3) **योजना की क्रियान्विति** : योजना के निर्माण व स्वीकृति के पश्चात् योजना की क्रियान्विति का चरण आता है । योजना क्रियान्विति के लिए विभिन्न स्तरों पर आवश्यक दायित्व निर्वहन का विभाजन क्रियान्विति के विभिन्न चरण, योजना के विभिन्न प्रमुख कार्यक्रम, पायलट योजनाएँ एवं प्रयोग आदि कार्य किए जाते हैं ।

(4) **मूल्यांकन** : योजना क्रियान्विति के पश्चात् क्रियान्विति से प्राप्त अनुभवों के आधार पर उचित मूल्यांकन किया जाता है और यदि जरूरत होती है तो योजना में आवश्यक संशोधन कर योजना को उन्नत बनाने का प्रयत्न किया जाता है ।

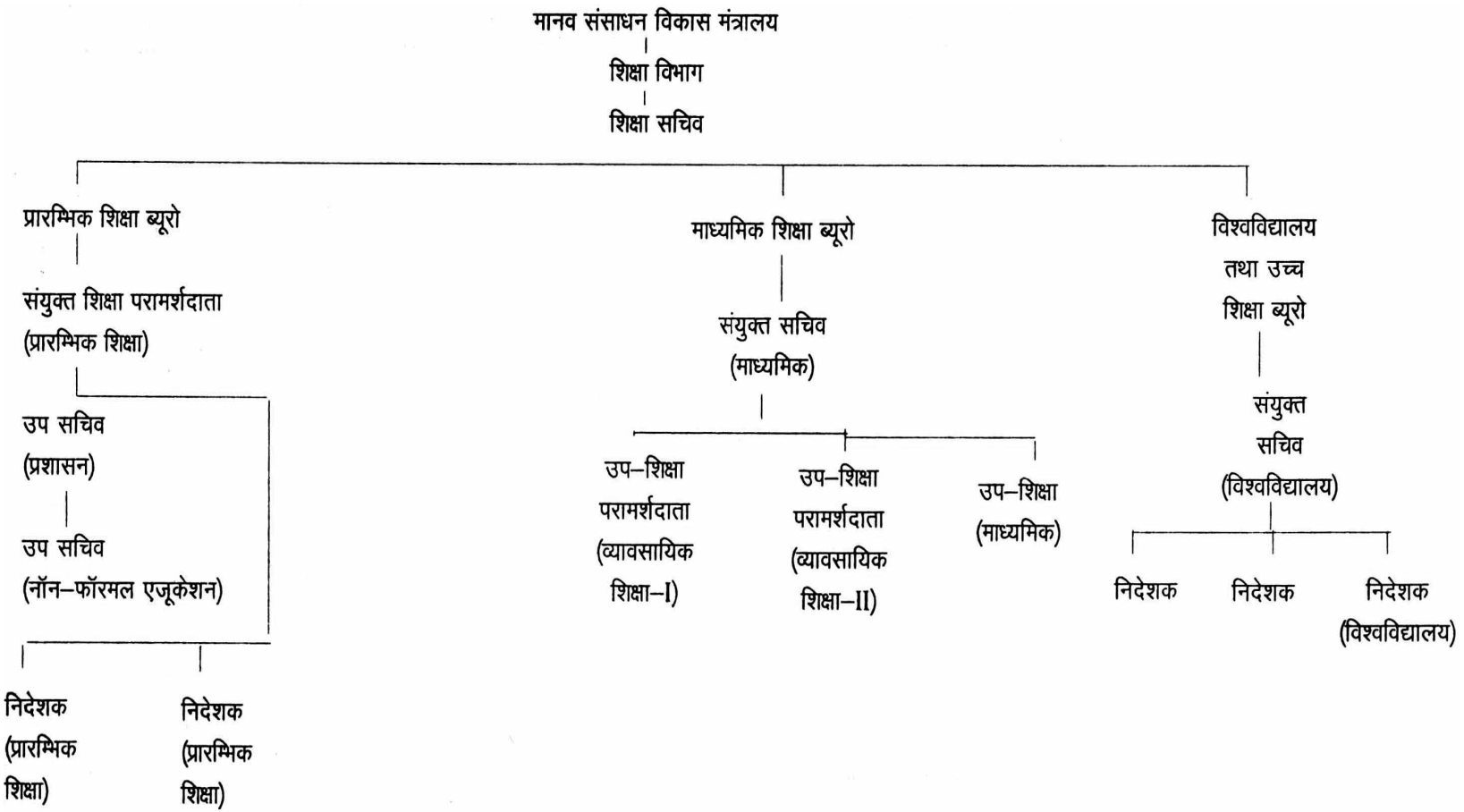
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
शिक्षा विभाग
शिक्षा सचिव
प्रारम्भिक शिक्षा ब्यूरो
संयुक्त शिक्षा परामर्शदाता
(प्रारम्भिक शिक्षा)
उप सचिव
(प्रशासन)
उप सचिव
(नॉन–फॉरमल एजूकेशन)
निदेशक
(प्रारम्भिक
शिक्षा)
निदेशक
(प्रारम्भिक
शिक्षा)
माध्यमिक शिक्षा ब्यूरो
संयुक्त सचिव
(माध्यमिक)
उप–शिक्षा
परामर्शदाता
(व्यावसायिक
शिक्षा–I)
उप–शिक्षा
परामर्शदाता
(व्यावसायिक
शिक्षा–II)
उप–शिक्षा
(माध्यमिक)
विश्वविद्यालय
तथा उच्च
शिक्षा ब्यूरो
संयुक्त
सचिव
(विश्वविद्यालय)
निदेशक
निदेशक
निदेशक
(विश्वविद्यालय)

स्व-मूल्यांकन (Self Evaluation Questions)

(1) भारत के शैक्षिक आयोजन के उद्देश्यों को लिखिए ।

(2) भारत के शैक्षिक आयोजन की क्रियान्विति के प्रमुख चरणों को लिखिए ।

(3) योजना का अर्थ स्पष्ट कीजिए ।

(4) प्रबन्धन के लिए योजना निर्माण करना क्यों जरूरी है ? समझाइए ।

(5) योजना निर्माण की प्रक्रिया समझाइए ।

(6) समय के आधार पर योजना के प्रकारों को समझाइए ।

(7) शैक्षिक योजना का अर्थ स्पष्ट कीजिए

(8) शैक्षिक योजना की एक उपयुक्त परिभाषा दीजिए ।

(9) शैक्षिक आयोजन के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए ।

(10) शैक्षिक आयोजना की विशेषताएँ क्या हैं?

(11) शैक्षिक आयोजन के सिद्धान्तों को समझाइए ।

(12) शैक्षिक आयोजन के प्रमुख उपागमों का विस्तार से वर्णन कीजिए ।

(13) भारत में शैक्षिक आयोजन के क्रियान्विति के चरणों को समझाइए ।

6.7 सारांश (Summary)

देश के विकास में शैक्षिक नीतियाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और वे देश के विकास की दिशा तय करती हैं । प्रबन्धन प्रक्रिया में योजना निर्माण करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कदम माना जाता है । योजना का सीधा-सादा अर्थ किसी कार्य को करने या समस्या को हल करने की तैयारी से लिया जाता है योजना के निर्माण करने से प्रबन्धन को कई लाभ होते हैं । योजनाएँ कई प्रकार की होती हैं । समय के आधार पर हम योजनाओं को तीन मुख्य भागों में बाँट सकते हैं -

(1) अल्प अवधि की योजना

(2) मध्यम अवधि की योजना

(3) दीर्घकालीन योजना

योजना निर्माण में मुख्यत: तीन स्तर कार्य करते हैं -

(1) उच्च स्तरीय प्रबन्धन

(2) मध्य स्तरीय प्रबन्धन

(3) कार्य स्तरीय प्रबन्धन

शैक्षिक योजना शिक्षा के समुचित व व्यवस्थित विकास के लिए बनाई गई योजना है। निम्न दृष्टियों से शैक्षिक आयोजन का महत्त्व है:-

(1) शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति की दृष्टि से

(2) संसाधनों के सार्थक उपयोग की दृष्टि से

(3) सार्थक व अच्छे परिणामों की दृष्टि से

(4) शैक्षिक कार्यों की प्रक्रिया की गति की दृष्टि से

(5) उत्पादन में परिमाणात्मक वृद्धि की दृष्टि से

(6) परिवर्तन के मूल्यों की स्पष्टता की दृष्टि से

(7) भौतिक समृद्धि की सुनिश्चितता की दृष्टि से

(8) प्राथमिकताओं की निश्चितता की दृष्टि से

(9) निर्णय लेने की दृष्टि से

(10) शैक्षिक कार्यों की निरन्तरता व वांछित प्रगति की दृष्टि से

शैक्षिक आयोजना के सिद्धान्त :

(1) प्राथमिक आवश्यकता का सिद्धान्त

(2) यथार्थ का सिद्धान्त

(3) उपयोगिता का सिद्धान्त

(4) संसाधनों के सदुपयोग का सिद्धान्त

(5) लक्ष्य प्राप्ति का सिद्धान्त

(6) गुणात्मक सुधार का सिद्धान्त

(7) आर्थिक नियोजन से सम्बन्ध का सिद्धान्त

(8) व्यापकता का सिद्धान्त

शैक्षिक आयोजना के उपागम :

(1) सामाजिक माँग उपागम

(2) जनशक्ति आवश्यकता उपागम

(3) सामाजिक न्याय उपागम

(4) प्रतिफल दर उपागम

(5) समन्वित उपागम

भारत में शैक्षिक आयोजन :

भारत में निम्नलिखित चरणों में शैक्षिक आयोजन की क्रियान्विती होती है:-

(1) योजना का निर्माण करना

(2) योजना की स्वीकृति

(3) योजना की क्रियान्विति

(4) मूल्यांकन

अभ्यास प्रश्न (Exercises)

1. शैक्षिक योजना के अर्थ, महत्त्व एवं विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए इसके सिद्धान्तों एवं उपागम की व्याख्या करिए ।
2. भारत में शैक्षिक आयोजन पर एक समालोचनात्मक निबन्ध लिखिए ।

6.8 संदर्भ (References)

(1) राजपूत, जे.एस. व अन्य (सं.) (2001) विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में अनुभव, नई दिल्ली

(2) एन.सी.ई.आर.टी.

(3) पाण्डेय, रामशक्ल (2007), शैक्षिक नियोजन और वित्त प्रबन्धन, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर

(4) वर्मा, जे. पी. (पहला सं. 2002, तीसरा सं. 2007), शैक्षिक प्रबंधन, जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी

(5) वार्षिक संदर्भ ग्रंथ, भारत 2005, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

इकाई 7

संगठनात्मक पर्यावरण

(Organizational Climate)

इकाई की संरचना

7.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

7.2 संगठन का अर्थ (Meaning of Organization)

7.3 संगठन की प्रकृति (Nature of Organization)

7.4 संगठनात्मक पर्यावरण का अर्थ (Meaning of Organizational Climate)

7.5 संगठन और पर्यावरण की अन्योन्याश्रिता (Interdependence of Organization and Environment)

7.6 संगठन का पर्यावरण से सामंजस्य (Adjustment of Organization with Environment)

7.7 संगठनात्मक पर्यावरण के क्षेत्र (The Areas of Organizational Climate)

7.8 संगठनात्मक पर्यावरण के प्रकार (Types of Organization Climate)

7.9 संगठन पर बाह्य पर्यावरण का प्रभाव (Impact of External Environment on Organization)

7.10 सारांश (Summary)

7.11 संदर्भ (References)

7.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई को पढ़कर आप निम्नांकित को समझ सकेंगे -

1. संगठन का अर्थ एवं अवधारणा ।
2. संगठन की प्रकृति
3. संगठनात्मक पर्यावरण का अर्थ
4. संगठनात्मक पर्यावरण के क्षेत्र
5. संगठनात्मक पर्यावरण के प्रकार

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

संगठनात्मक संरचना एवं उसका पर्यावरण / वातावरण या परिवेश (Climate) किसी भी संस्था की सफलता का एक महत्वपूर्ण पक्ष होता है । इसमें संगठन की क्रियाओं व दायित्वों के प्रवाह तथा कार्यकर्त्ताओं के आपसी सम्बन्ध में आने वाले परिवर्तन एवं परिवर्द्धन संगठन की

कार्यशैली एवं प्रगति को प्रभावित करते हैं । संगठनात्मक पर्यावरण क्या है, इसे समझने से पूर्व हमें यह जानना चाहिए कि संगठन से क्या तात्पर्य है ।

7.2 संगठन का अर्थ (Meaning of Organization)

संगठन का शाब्दिक अर्थ है- 'बिखरी हुई शक्तियों को साथ-साथ जोड़ना या इकट्ठा करना ।' संगठन शब्द अंग्रेजी भाषा के ऑर्गेनाइजेशन (Organization) शब्द का रूपान्तरण है, जिसकी व्युत्पत्ति आंग्ल भाषा के शब्द आर्गनिज्म से हुई है । इस शब्द का आशय ऐसी संस्था से है जो विविध भागों में विभक्त हो तथा उसे एक सूत्र में जोड़ने की आवश्यकता हो । संगठन मूलत: एक निश्चित उद्देश्य के लिए एकत्रित हुए व्यक्तियों का समूह है, जो एक नेतृत्व के निर्देशन में उसके उद्देश्य या लक्ष्य को प्राप्त करता है ।

आर्थर भी मोलमैन (Arthur B Moelman) ने अपनी पुस्तक 'School Organization' में लिखा है कि-

"An organization is a machine for doing work.It may be composed primarly of process of materials, of ideas, concepts, symbols, rules, principles of more often a combination of these."

अर्थात- "संगठन कार्य करने की एक मशीन है, जिसमें पुर्जों के रूप में व्यक्ति, उपकरण, विचार, प्रत्यय, प्रतीक, नियम व सिद्धान्त स्वतंत्र तथा मिलकर कार्य करते हैं ।

संगठन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए चेस्टर बर्नार्ड (Chester Barnard, 1954) ने अपनी पुस्तक - "The Functions of Execuitve" में लिखा है कि-

"संगठन चाहे जटिल हो या साधारण, हमेशा मानव द्वारा समन्वित यत्नों की अवैयक्तिक प्रणाली होती है । संगठन का सदैव कोई उद्देश्य होता है तथा इसमें व्यक्तियों के समन्वय करने तथा एक जुट करने के नियम होते हैं । इसमें सदेव सम्प्रेषण की प्रभावी योग्यता होती है तथा इसमें कार्य करने वाले व्यक्ति संगठन के प्रति निष्ठावान रहते हुए निरन्तर इसे योगदान प्रदान करते रहते हैं ।

इस प्रकार संगठन एक रचनात्मक प्रक्रिया है, जिसमें मनुष्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए परस्पर मिलकर कार्य करते हैं । संगठन की रोचक परिभाषा देते हुए हेनरी मिंटजबर्ग लिखते हैं कि "संगठन कार्य, सत्ता और सूचनाओं के प्रवाहों को नियत और नियमित करता है ।" उपर्युक्त समस्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि संगठन प्रबन्धकों का मुख्य कार्य है, जिसे वे निम्नलिखित चरणों में पूरा करते हैं -

(1) संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक समस्त कार्यों की पहचान करना ।

(2) उन कार्यों का सोच-विचार कर छोटी-छोटी इकाइयों में विभाजन करना ।

(3) व्यक्तियों की योग्यता को ध्यान में रखते हुए कार्यसत्ता और कार्य वितरण करना ।

(4) समस्त कार्यों के समन्वय हेतु उनका पुनर्गठन करना ।

(5) कार्य के निष्पादन पर निगरानी और नियंत्रण रखना ।

इस प्रकार संगठन में कार्य को कर्त्ता से अथवा कर्त्ता को कार्य से जोड़ने का निरन्तर प्रयास चलता रहता है ।

हम संगठनों के संसार में ही रहते हैं और उसी में कार्य भी करते हैं । परिवार जहाँ हम जन्म लेते हैं, विद्यालय में अथवा महाविद्यालय जहाँ हम शिक्षा पूर्ण करते हैं, मन्दिर-मस्जिद जहाँ हम पूजा व प्रार्थना करते हैं, दुकानदार जिससे हम प्रतिदिन इच्छित सामान खरीदते हैं, ये सब संगठन ही होते हैं । सामाजिक संस्थाएँ, हॉस्पीटल आदि विभिन्न प्रकार के कई संगठन होते हैं, जो विभिन्न प्रकार की गतिविधियों से युक्त होते हैं । इस प्रकार सामाजिक, शैक्षिक राजनैतिक, प्रशासनिक, व्यावसायिक, धार्मिक, सैनिक आदि नामों से संगठन जाने जाते हैं ।

7.3 संगठन की प्रकृति (The Nature of Organization)

1. संगठन एक अमूर्त (abstract) नाम होता है ।
2. यह प्रबन्धन का प्रारूप होता है, जिसकी दृष्टि से कार्य सम्पादित किए जाते हैं ।
3. इसका प्रारूप उद्देश्यों की दृष्टि से विकसित किया जाता है ।
4. संगठन में व्यक्तियों और संसाधनों की भूमिका निर्धारित की जातीं है ।
5. संगठन प्रशासन से पूर्व की अवस्था होती है ।
6. संगठन एक औपचारिक संरचना है, जिससे जुड़े व्यक्ति सहयोगपूर्वक कार्य करते हैं ।
7. संगठन के अन्तर्गत नियम व उपनियम होते हैं जिनके अनुसार संगठन में सम्मिलित सभी व्यक्ति कार्य करते हैं ।

इस प्रकार संगठन के अर्थ एवं प्रकृति को समझने के बाद संगठनात्मक पर्यावरण को समझना उपयुक्त होगा ।

संगठन के व्यक्तियों द्वारा जिस कार्य स्थल पर कार्य सम्पन्न किए जाते हैं, उस कार्यस्थल की प्रकृति जानना ही संगठनात्मक पर्यावरण को समझना है । आगे हम संगठनात्मक पर्यावरण क्या है, इसे जानेंगे ।

7.4 संगठनात्मक पर्यावरण का अर्थ (Meaning of Organization Climate)

प्रत्येक संगठन बहु-संस्कृतियों का मिश्रण होता है, जिसमें कर्मचारियों के विचार, मान्यताएँ, लक्ष्य, सोच, आकांक्षा विश्वास आदि की विविधता में संगठनात्मक वातावरण का निर्माण होता है । इस वातावरण में निगमीय संस्कृति को अनेक संस्कृतियों के साथ समायोजन करना पड़ता है । जीवन शैलियों, प्रान्तों, भाषाओं और सभ्यता आदि की विविधता के कारण, विकासात्मक समस्याएँ भी आती हैं । गेराल्ड बेल ने पर्यावरण की परिभाषा देते हुए लिखा है कि - "वातावरण ऐसा क्षेत्र है, जिसमें संगठन का निर्माण और विकास होता है, परन्तु वह संगठन की सीमाओं के बाहर रहता है ।"

किसी भी संगठन के विकास में उस संगठन विशेष की शैक्षिक प्रशासनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व कार्य-संस्कृति में समन्वय अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य होता है । यदि संगठन के

वातावरण का अध्ययन कर अपेक्षित वातावरण या पर्यावरण का निर्माण किया जाय तो उन संस्थाओं की गुणवत्ता व प्रभावशीलता बढ़ाई जा सकती हे ।

संगठनात्मक वातावरण के लिए प्राय: दो शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं- संगठनात्मक जलवायु एवं संगठनात्मक पर्यावरण । संगठनात्मक जलवायु, समग्र संगठनात्मक पर्यावरण का एक अंश है जो यह संगठन के एक पक्ष का ही. प्रतिनिधित्व करता है । इसमें संगठन की उन दशाओं व परिस्थितियों का सम्बन्ध होता है जो संगठन अपने कार्यकर्ताओं पर लागू करता है । जबकि संगठनात्मक पर्यावरण विस्तृत आयामी अवधारणा है ।

ब्लूम (1968) ने संगठनात्मक पर्यावरण को उन व्यक्तियों व कारकों का जाल कहा है जो व्यक्ति को उसकी कार्यकारी दशाओं में घेरे रहती है । जबकि **मिस्केल (1997)** ने संगठनात्मक क्लाइमेट को संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्ध व कार्य का परिणाम माना है । इसके अन्तर्गत उन्होंने संगठन के व्यक्तियों के आपसी व्यवहार के प्रति अभिवृत्ति का प्रत्यक्षीकरण भी किया है । प्रत्येक शैक्षिक संगठन अपने में एक विशेषता लिए होता है, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कि प्रत्येक व्यक्ति का अलग-अलग व्यक्तित्व होता है; अत: अपनी विशेषताओं के कारण प्रत्येक संस्थान का अलग-अलग संगठनात्मक पर्यावरण होता है ।

संगठनात्मक पर्यावरण को परिभाषित करते हुए टागिउरी **(Tagiuri 1966)** ने स्पष्ट किया है कि- "संगठन पर्यावरण सापेक्षत: संगठन के आन्तरिक पर्यावरण को स्थायित्व देने वाली विशेषता है, जिसे उसमें कार्य करने वाले लोग अनुभव करते हैं तथा जो उनके व्यवहार को बदलती है एवं मूल्यों के दृष्टिकोण से किसी संगठन की खास प्रकार की विशेषताओं को परिलक्षित करती है । "

इसका तात्पर्य यह हुआ कि संगठनात्मक पर्यावरण अपनी विशिष्ट विशेषताओं व मूल्यों के आधार पर पहचाना जा सकता है । यह इसके अन्दर कार्य करने वाले लोगों के व्यवहार को बदल देता है । यदि शैक्षिक संस्थानों में एक उपयुक्त प्रकार का संगठनात्मक पर्यावरण हो तो कार्य करने वाले लोगों का उपयुक्ता व्यवहार हो सकता है जो संगठन की उपलब्दियों को उत्कृष्ट व श्रेष्ठ बना सकता है ।

जेम्स सार्जेन्ट के विचारानुसार-

"विद्यालय एक सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रणाली है तथा इस प्रणाली में शिक्षक एवं प्रधानाध्यापक परस्पर व्यवहार करते हैं । उनके व्यवहार के अनुरूप विद्यालयी संगठन में अनेक प्रकार के पर्यावरणों का जन्म होता है ।" इस पर्यावरण का प्रभाव पर्यावरण की विशेषता के अनुरूप संस्थान की गुणवत्ता, उपलब्धियों, शैक्षिक व सह-शैक्षिक क्रिया-कलापों, शिक्षकों के उद्देश्यों की पूर्ति व समाज के उद्देश्यों की पूर्ति आदि अनेक कारकों पर पड़ता है । अन्ततोगत्वा इन सबका प्रभाव संगठन के लक्ष्यों की पूर्ति पर भी पड़ता है ।

रेनेटो टागिउरी (Renato Taigiuri 1968) के अनुसार संगठनात्मक पर्यावरण चार आयामों का संघटित रूप होता है । एक विद्यालय में सम्पूर्ण पर्यावरण की रचना निम्नांकित चार आयामों के संघटन से होती है-

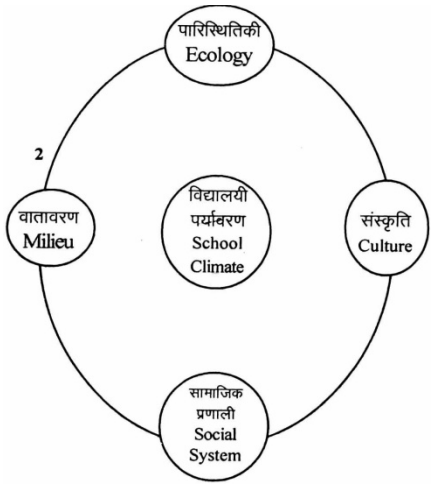

1. **पारिस्थितिकी** से तात्पर्य किसी के भौतिक संसाधनों से है । जैसे- भवन का आकार, आयु, रूप, सुविधाएँ आदि । पारिस्थितिकी का एक और अर्थ, किसी संस्थान के व्यक्तियों द्वारा काम में ली जाने वाली तकनीक से भी है । जैसे- टेबल, कुर्सी, कम्प्यूटर, ओ.एच.पी., टेपरिकॉर्डर, एल.सी.डी. आदि ।

2. **वातावरण,** किसी संस्थान के सामाजिक आयाम से है । इसमें जाति, मानवीयता, विद्यार्थियों का सामाजिक-आर्थिक स्तर, शिक्षकों के शैक्षिक स्तर, वेतन का स्तर, विद्यार्थियों व वयस्कों का मनोबल कैसा है तथा कार्य सन्तुष्टि का स्तर कितना है, इत्यादि । कार्यकर्ताओं के व्यक्तियों से सम्बन्धित जितने भी पक्ष होते हैं वे सब परिवेश में या वातावरण में सम्मिलित होते हैं ।

3. **सामाजिक** प्रणाली के अन्तर्गत यह देखा जाता है कि संस्थान का संस्थागत व प्रशासनिक स्वरूप कैसा है? संस्थान में किस प्रकार के निर्णय लिए जाते हैं तथा व्यक्तियों का संवाद सम्प्रेषण कैसा है?

4. **संस्कृति** से तात्पर्य संस्था के व्यक्तियों के मूल्य, विश्वास, मानदण्ड, सोचने की पद्धति आदि से है । उपर्युक्त चारों आयाम अन्त: क्रियात्मकता से संगठनात्मक पर्यावरण का निर्माण करते हैं । अब हम आगे संगठनात्मक पर्यावरण के क्षेत्रों का अध्ययन करेंगे ।

7.5 संगठन और पर्यावरण की अन्योन्याश्रिता (Interdependence of Organization and Environment)

प्रत्येक संगठन पूर्णत: अपने पर्यावरण पर आश्रित रहता है । वह अपने पर्यावरण से समस्त साधन, सामग्री, सुविधाएँ, सेवाएँ आदि निरन्तर प्राप्त करता है और बदले में तथानुरूप सेवाएँ प्रदान करता है । पर्यावरण में होने वाला बाह्य या आन्तरिक, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिवर्तन संगठन को प्रभावित करता रहता है । संगठन और पर्यावरण के परस्पर अन्योन्याश्रिता के संबंध में प्रसिद्ध प्रबन्धवेत्ता ग्रेगरी बेटसन का मानना है कि -

(1) संगठन का अस्तित्व पर्यावरण से बनता है, पनपता है और अन्त में उसी में लीन भी हो जाता है ।

(2) संगठन स्वयं में पूर्ण न रहने के कारण उसे पूर्णत: पर्यावरण पर आश्रित रहना पड़ता है ।

(3) संगठन अपने पर्यावरण में रहते हुए भी अपना पृथक अस्तित्व रखता है ।

(4) संगठन स्वचालित और स्वनियमित प्रणाली है ।

7.6 संगठन का पर्यावरण से सामंजस्य (Adjustment of Organization with Environment)

प्रत्येक संगठन अपने पर्यावरण पर उस समय अधिक निर्भर करता है क्योंकि वह संगठन के लिए सूचनाओं, स्रोतों एवं संसाधनों की खान होता है । अत: संगठन को अपने पर्यावरण से सामंजस्य बनाकर चलना पड़ता है । संगठन के लिए पर्यावरण तब बहुत अनिश्चित बन जाता है जब उसमें विविधताएँ ज्यादा रहती हैं और लगातार परिवर्तन होते हैं । अनिश्चित वातावरण पर संगठन की सम्पूर्ण निर्भरता प्रबन्धकों के लिए एक चुनौती होती है । संगठन का आकार और कार्यक्षेत्र जितना विस्तृत होता है, पर्यावरण पर उसकी निर्भरता उतनी ही अधिक होती है ।

पर्यावरण से संगठन की अनुकूलता

चूंकि संगठन अपने पर्यावरण को प्रभावित करने में प्राय: समर्थ नहीं रहता, उसे पर्यावरण के अनुकूल अपने लक्ष्य, कार्य, स्वरूप आदि निर्धारित करने पड़ते हैं । इस प्रकार पर्यावरण से निरन्तर तारतम्य स्थापित करने को अनुकूलनशीलता कहते हैं । 'जार्ज कागहिल' ने अनुकूलनशीलता के तीन घटक बताए है । ये तीन घटक हैं - प्रारूप, कार्य और मनोभाव । यहाँ मनोभाव का आशय प्रबन्धन की नीति और निर्णय से है । यदि संगठन के शीर्षस्थ प्रबन्धक वातावरण को भली-भाँति समझते हुए समयोचित निर्णय लेते हुए संगठन के कार्य और प्रारूप में बदलाव लाने में समर्थ हो पाते हैं तो कोई कारण नहीं कि संगठन सफल न हो । इसीलिए शीर्षस्थ प्रबन्धकों की दृष्टि और ध्यान संगठन के भीतर कम और बाहर अधिक होना चाहिए । शिक्षा संस्थानों में चूंकि सजीव उत्पाद का निर्माण किया जाता है, अत: उस पर पड़ने वाले पर्यावरण के समस्त बाह्य प्रभावों का विशेष ध्यान रखा जाता है तथा आवश्यकतानुसार नियंत्रण भी किया जाता है ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. संगठन का क्या अर्थ है ?
2. संगठन की प्रकृति से आप क्या समझते हैं ?
3. संगठनात्मक पर्यावरण से क्या तात्पर्य है ?
4. "विद्यालय एक सामाजिक प्रणाली है ।" स्पष्ट करें ।
5. संगठन और पर्यावरण की अन्योन्याश्रिता क्यों रहती है ?

7.7 संगठनात्मक पर्यावरण के क्षेत्र (The Area of Organizational Climate)

संगठनात्मक पर्यावरण के क्षेत्र :अन्त: स्थित होते हैं जो संगठन का मापन, नियन्त्रण एवं परिवर्तन करने में सहयोग करते हैं । इसके कार्यकारी सदस्यों के लिए एक विस्तृत स्वरूप तैयार किया जाता है जो उनके निर्णय व्यवहार और क्षमता को प्रभावित करता है । संगठनात्मक पर्यावरण के अध्ययनीय क्षेत्र निम्नांकित हैं जिनके द्वारा संगठनात्मक पर्यावरणीय निम्नांकित स्थितियों का पता लगाया जाता है ।

विभिन्न क्षेत्र -

1. संस्था का लक्ष्य, मूल्य और प्राथमिकता के आधार पर निर्धारित कार्य व उनका क्रियान्वयन किया जा रहा है या नहीं । इसके साथ ही कथनी और करनी में समानता है या नहीं ।
2. प्रबन्ध की दक्षता, चरित्र, प्रतिबद्धता और गतिशीलता कैसी है ?
3. संगठन के स्वरूप व नीति क्या हैं व उनका निरन्तरता से उपयोग होता है या नहीं ।
4. संगठन का पदानुक्रम, कठोरता, लचीलापन, स्पष्टता आदि की संरचना कैसी है
5. कार्य की प्रकृति कैसी है, कार्य में विविधता है या नहीं, अपेक्षित कौशल, प्रयास और में सम्बन्ध है या नहीं ?
6. अधीनस्थ कर्मचारियों से संस्थागत संबंध कैसा है ?
7. परस्पर सम्प्रेषण व सम्बन्ध कैसा है ?
8. अनौपचारिक सामाजिक सम्बन्ध कैसे हैं ?
9. प्रयत्न व उत्पादन में कितना सम्बन्ध है ?
10. अधिकृत शक्तियाँ एक के पास हैं या विकेन्द्रित हैं ।
11. औपचारिक शक्तियों का उपयोग कैसे किया जाता है ?
12. स्वतंत्रता और नियन्त्रण का स्तर क्या है ?
13. संगठन द्वारा निर्धारित मानदण्डों के साथ समन्वय और पालन करने का सामंजस्य कैसा है ?
14. पर्यवेक्षण का तरीका क्या है ?
15. प्रबन्धक का अपने सदस्यों के साथ उनकी कार्य क्षमता के निष्पादन के प्रति व्यवहार कैसा है?
16. पुरस्कार का स्वरूप क्या है ?
    सम्मान का स्तर कैसा है ?
    परस्पर सम्बन्ध है या नहीं ?
    सम्मान में समान रूपता है या नहीं ?
    वित्तीय है या अन्य रूप में है ।
17. द्वन्द्वात्मक तथा विरोधी परिस्थितियों में संगठन की नीति क्या है-
    तुष्टीकरण नीति है ?

दमनकारी नीति है ?

लोकतांत्रिक सर्वमान्य नीति है.?

18. संगठन की कार्य सम्बन्धी भौतिक-संसाधन-सुविधाओं की परिस्थितियों में कार्य पद्धति कैसी है?

इस प्रकार संगठनात्मक पर्यावरण का अध्ययन करने हेतु विभिन्न क्षेत्र से संबंधित स्थितियों का पता लगाया जाता है ।

संगठनात्मक पर्यावरण एक प्रकार की सम्पूर्ण एवं समग्र (holistic) प्रणाली है जिसमें परस्पर अन्त: क्रियात्मकता का प्रभाव कार्य करने वालों की क्षमता से अधिक और महत्वपूर्ण होता है । इसका प्रभाव व्यक्तिगत प्रभाव से अधिक होता है । इसमें जितने सदस्य होते हैं उन सबका इस पर्यावरण को समझने का प्रत्यक्षण अलग-अलग होता है । साथ ही विभिन्न आयामों का प्रत्येक पर प्रभाव भी अलग-अलग पड़ता है क्योंकि उनका प्रत्यक्षण परस्पर सम्बन्ध व प्रत्युत्तर अलग होते हैं । यदि संगठन में अधिक स्वतंत्रता है तो कोई इसे सकारात्मक लेगा तथा कोई मनमानी समझेगा ।

पर्यावरण से प्रभावित होने वाले संगठन के विभिन्न तत्त्वों में कुछ प्रमुख तत्त्व सभी प्रबन्धकों द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार किए गए हैं, वे निम्नानुसार हैं -

<u>पर्यावरण से प्रभावित होने वाले प्रमुख तत्त्व</u>

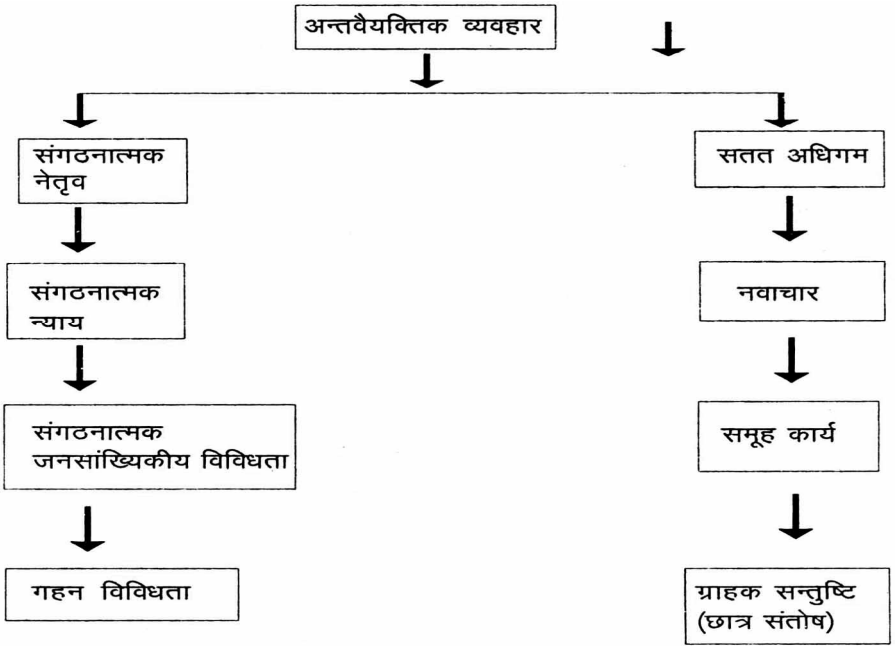

सामान्यत: संगठनात्मक पर्यावरण सदस्यों का उत्साहवर्द्धन ही करता है तथा अवसर भी देता है । साथ ही सदस्यों से कुछ अपेक्षाएँ भी रखता है और सदस्य भी उससे अपेक्षाएँ रखते हैं । कभी-कभी संगठन रूकावटें व समस्याएँ उपस्थित करता है और सदस्यों को हतोत्साहित भी करता है ।

संगठनात्मक पर्यावरण उन्नति के अवसर व बाधाओं को जिस दृष्टि से देखता है उसके आधार पर व्यक्ति का व्यवहार प्रभावित होता है व संगठन की उत्पादकता निर्भर करती है । संगठनात्मक पर्यावरण एक जटिल परिस्थिति होता है । इसे समझने के लिए हम इसके विभिन्न प्रकारों को समझेंगे ।

7.8 संगठनात्मक पर्यावरण के प्रकार (Types of Organization Climate)

शोध के आधार पर यह पाया गया है कि प्रभावशीलता के लिए विभिन्न प्रकार के संगठनों के लिए विभिन्न प्रकार के पर्यावरण की आवश्यकता होती है । बर्नर्स और स्टेलकर (Burners and Stalker) ने शोध द्वारा ज्ञात किया कि-

"लोग स्थिर पर्यावरण में निश्चित व विशिष्ट कार्य करते हैं तथा अपने कौशलों, परम्परागत संरचना व मजबूत नियन्त्रण में कठिन कार्य को ठीक से कर लेते हैं ।"

विद्यालय व अन्य शिक्षण संस्थान, सामाजिक व मनोवैज्ञानिक संस्थाएँ होती है । जिस प्रकार व्यक्ति अपने अच्छे-बुरे व प्रभावी व्यक्तित्व से जाने जाते हैं, उसी प्रकार शैक्षिक संस्थाएँ भी अपने कार्य एवं पर्यावरण से लोगों को प्रभावित व आकर्षित करती है । प्रसन्नता, तनाव, आतंक, भय, लोकतंत्रात्मकता, असन्तोष, सन्तोष आदि स्थितियाँ संस्था के पर्यावरण का निर्माण करती है और इनके कारण ही लोगों का उस संस्था के प्रति आकर्षण या विकर्षण बनता है ।

संस्थागत पर्यावरण या परिवेश पर कई शोधकार्यों के फलस्वरूप उसके विभिन्न प्रकार परिभाषित किए गए हैं । इस दिशा में हाल्विन तथा क्राफ्ट ने संगठनात्मक पर्यावरण पर जो शोधकार्य किया उसका प्रभाव शिक्षा पर भी व्यापक रूप से देखा गया । परिणामस्वरूप शिक्षा में भी संगठनात्मक पर्यावरण के विभिन्न प्रकार माने जाते हैं जिन्हें हम आन्तरिक पर्यावरण भी कह सकते हैं,जो इस प्रकार है

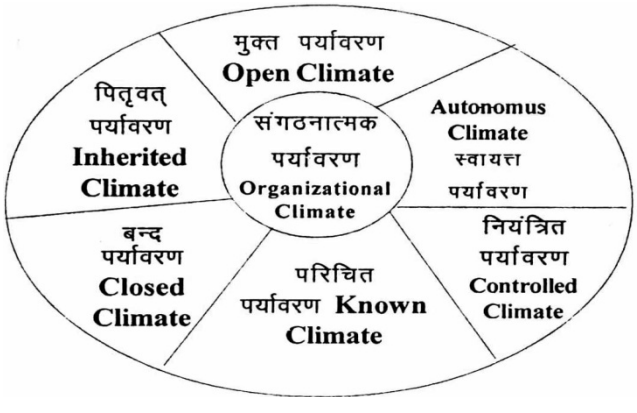

7.8.1. मुक्त पर्यावरण (Open Climate)

जिस संगठन की स्थिति में सदस्यों का मनोबल (Espirit) उच्च होता है तथा उन पर अनावश्यक भार नहीं होता, शिक्षकों को अपने कार्य से सन्तोष होता है तथा कार्यकर्त्ताओं को

कठिनाइयों के निराकरण व निराशाओं से ऊपर उठने हेतु प्रेरित किया जाता है, उसे मुक्त पर्यावरण कहा जाता है ।

इस प्रकार के पर्यावरण में संस्था प्रधान के व्यवहार में अपेक्षित भूमिका (Expected Role) और वास्तविक भूमिका (Role Performance) के बीच साम्यता होती है । वह कार्य करके स्वयं आदर्श उपस्थित करता है तथा शिक्षकों के कार्य में सहयोग भी करता है । वह सबसे मिलकर चलता है तथा कार्यकर्ताओं के विकास हेतु कभी नियमों में परिवर्तन भी कर लेता है । वह कार्यों का योग्यतानुसार उचित विभाजन करता है तथा शिक्षकों में नेतृत्व उभरने के अवसर प्रदान करता है । संस्था प्रधान संगठन में उचित मानवीय सम्बन्धों को बनाए रखने का आग्रह रहता है और वह परिणामों पर अत्यधिक आग्रह नहीं करता ।

इस पर्यावरण में प्रधानाध्यापक या प्राचार्य द्वारा संस्था की समग्र परिस्थितियों पर नियंत्रण रखने का प्रयास किया जाता है । कार्यकर्ता अधिक भार होने पर भी प्रसन्नचित रहते हैं तथा मिलकर कार्य करते हैं ।

मुक्त पर्यावरण की विशेषताओं को निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है-

मुक्त पर्यावरण को विशेषताएँ

1. उच्च मनोबल
2. निम्न अन्यमनस्कता
3. औसत घनिष्ठता
4. निम्न बाधाएँ
5. उच्च सद्भव
6. परिणामों पर निम्न बल
7. औसत उदाहरण
8. निम्न एकाकीपन

7.8.2 स्वायत्त पर्यावरण (Autonomus Climate)

स्वायत्त पर्यावरण में लक्ष्य को शीघ्रता से प्राप्त करने हेतु मिलकर प्रयास किए जाते है । सहभागित्व के कारण अधिक कार्यभार में भी प्रगति में व्यवधान की अनुभूति नहीं की जाती । प्रधान स्वयं ही इस प्रकार के नियम और विधियों का निर्माण कर देता है, जिसमें कार्यकर्ताओं के कार्य सुविधापूर्वक सम्पन्न हो जाते हैं । इसमें यद्यपि शिक्षकों का मनोबल मुक्त पर्यावरण की अपेक्षा कम होता है तथापि उन्हें कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है । संस्था प्रधान का यह दृष्टिकोण रहता है कि शिक्षक अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं खोज लें । इस पर्यावरण में कार्यकर्ता अपनी सामाजिक आवश्यकताओं की तुष्टि भी करते हैं । यद्यपि कार्यकर्ता अपने कार्य का सम्पादन व्यावसायिक एवं वैयक्तिक ढंग से करते हैं तथापि नेतृत्व का प्रकार कानून, नियम, कायदे तथा निर्देशन आदि केन्द्रित होता है । संस्था प्रधान व्यक्तिगत रूप से यह नहीं देखता कि कार्य किस सीमा तक सम्पन्न हुआ है, अपितु वह इस बात से सन्तुष्ट रहता है कि शिक्षक अपने-अपने कार्य कर रहे हैं । उसका संगठन के श्रेष्ठ परिणामों पर भी

कम आग्रह रहता है । उसका सामान्यत: व्यवहार उदार व लचीला होता है किन्तु मुक्त पर्यावरण की तुलना में कम होता है ।

स्वायत्त पर्यावरण की विशेषताएँ

1. उच्च मनोबल
2. उच्च घनिष्ठता
3. निम्न अन्यमनस्कता
4. निम्न बाधाएँ
5. उच्च एकाकीपन
6. निम्न परिणामों पर बल
7. औसत सद्भाव
8. औसत उदाहरण

7.8.3. नियंत्रित पर्यावरण (Controlled Climate)

नियन्त्रित पर्यावरण में उपलब्दियों पर सर्वाधिक बल दिया जाता है । इसमें कार्यकर्ताओं की सामाजिक एवं व्यक्तिगत आवश्यकताओं की तुष्टि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है । शिक्षक यद्यपि 1प्रधानाध्यापकों के निर्देशों के विपरीत नहीं जाते तथापि उनका मनोबल ऊँचा होता है ।

इस प्रकार के पर्यावरण में प्रतिदिन प्राय: कागजी कार्य अधिक किया जाता वै जिससे कार्यकर्ता अधिक कार्यभार का अनुभव करते हैं, साथ ही इसे अपनी प्रगति में बाधक भी मानते हैं । शिक्षकों के पास व्यक्तिगत चर्चा या सम्पर्क के लिए समयाभाव होने से परस्पर सम्बन्ध भी घनिष्ट नहीं हो पाते हैं । संस्था प्रधान सभी कार्यो को अपनी इच्छानुसार देखना पसन्द करता है तथा नियमों में किसी भी प्रकार का लचीलापन पसन्द नहीं करता । वह सम्बन्धों की अपेक्षा परिणामों पर बल देता है । संस्था प्रधान के विचारों को यदि कार्यकर्ता मान्यता प्रदान नहीं करते तो वह हठी भी हो जाता है तथा कार्य सम्पादन को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानता है । यद्यपि समूह की सामाजिक आवश्यकता पर वह कम ध्यान देता है तथापि संगठन के विकास के प्रयास भी करता है ।

नियंत्रित पर्यावरण की विशेषताएँ

1. उच्च मनोबल
2. निम्न अन्यमनस्कता
3. उच्च परिणामों पर बल
4. निम्न सद्भाव
5. उच्च उदाहरण प्रस्तुति
6. अत्यधिक बाधाएँ
7. औसत एकाकीपन
8. निम्न घनिष्ठता

7.8.4. परिचित पर्यावरण (Known Climate)

इस प्रकार के पर्यावरण में शिक्षकों एवं प्रशासक के मध्य मित्रवत् सम्बन्ध रहते हैं, किन्तु कार्यकर्ताओं को सामाजिक आवश्यकताओं की तुष्टि का सर्वाधिक अभाव रहता है । शिक्षक कार्य की उपलब्धि पर बहुत कम ध्यान देते हैं तथा संस्था प्रधान का शिक्षकों के कार्यकलापों पर नियंत्रण भी कम होता है । शिक्षकों का मनोबल तथा व्यावसायिक तुष्टि औसत होती है । संस्था प्रधान प्राय: समूह के साथ रहता है तथा शिक्षकों द्वारा अपने कार्यो के सही रूप से करने या न करने की चिन्ता नहीं करता । वह कार्य के मूल्यांकन पर भी बहुत कम ध्यान होता है । इस प्रकार के पर्यावरण में शिक्षक अपने संस्था प्रधान पर विश्वास करते हैं क्योंकि वह उनके कल्याण में रूचि रखता है ।

परिचित पर्यावरण का विशेषताएँ

1. उच्च अन्ययमस्कता
2. निम्न बाधाएँ
3. उच्च घनिष्ठता
4. औसत मनोबल
5. उच्च सद्भाव
6. निम्न अलगाव
7. परिणामों पर न्यून बल
8. औसत उदाहरण प्रस्तुति

7.8.5. पितृत्व पर्यावरण (Inherited Climate)

इस पर्यावरण में संस्था प्रधान न तो शिक्षकों पर नियंत्रण रख पाता है और न ही उसकी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाता है । उसका व्यवहार कार्यकर्ताओं को प्रेरित नहीं करता इसीलिए यह पर्यावरण आंशिक रूप से बन्द पर्यावरण की विशेषता भी रखता है । संस्था प्रधान चूंकि अधिकांश समय औपचारिक व प्रशासनिक कार्यों में व्यस्त रहता है; अत: कार्यकर्ता उसे स्वयं की प्रगति में बाधक नहीं समझते ।

इस पर्यावरण को पितृत्व इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें संस्था प्रधान ही यह बताने का प्रयास करता है, कि कार्य कैसे किया जाय । वह प्रत्येक कार्य के लिए व्यक्तिगत प्रणाली निश्चित करता है तथा इसमें शिक्षकों को सम्मिलित नहीं करता । उसका दृष्टिकोण होता है कि वह संस्था का वरिष्ठ व्यक्ति होने के नाते अधिक जानता है (Daddy knows best) । वह शिक्षकों के हितों पर ध्यान इसलिए देता है क्योंकि उसकी स्वयं की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है । इस पर्यावरण की विशेषताएँ निम्नानुसार हे-

पितृत्व पर्यावरण की विशेषताएं

1. उच्च परिणाम पर बल
2. उच्च अन्यमनस्कता

3. निम्न बाधा
4. निम्न घनिष्ठता
5. निम्न मनोबल
9. औसत पहल
6. निम्न एकाकीपन
7. उच्च सद्भाव

7.8.6. बन्द पर्यावरण (Closed Climate)

इस प्रकार के पर्यावरण में संस्था प्रधान कार्यकर्ताओं को निर्देश देने में समर्थ नहीं होता और न ही उनके व्यक्तित्व उन्नयन की ओर ध्यान दे पाता है । शिक्षकगण भी उसके साथ मिलकर कार्य नहीं कर पाते परिणामस्वरूप सामूहिक उपलब्धियाँ भी नगण्य होती है । शिक्षकों को उनकी व्यावसायिक व सामाजिक आवश्यकता तथा कार्य उपलब्दियों में बहुत कम सन्तोष मिल पाता है । उनके कार्य करने की दशाएँ उपयुक्त नहीं होती तथा मनोबल भी कम होता है ।

यद्यपि स्टाफ सदस्यों में मैत्रीपूर्ण सम्बंध रहते हैं तथापि शिक्षक विद्यालय छोड़ते रहते हैं और दीर्घायु शिक्षक ही संस्था में रह जाते हैं । प्रधानाचार्य परिश्रम और कार्य पर बल देते हैं किन्तु उनके शब्दों का शिक्षकों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि व्यक्तिगत स्तर पर वे स्वयं उदाहरण प्रस्तुत करने में असमर्थ होते हैं ।

बन्द पर्यावरण की विशेषताएँ

1. उच्च उदासीनता
2. औसत बाधा
3. निम्न मनोबल
4. उच्च घनिष्ठता
5. उच्च एकाकीपन
6. उच्च परिणामों पर बल
7. निम्न उदाहरण
8. निम्न सद्भभाव

यद्यपि संगठनात्मक पर्यावरण के विभिन्न प्रकार वर्गीकृत किए गए है, किन्तु कई बार एक ही प्रकार का पर्यावरण संस्था में प्राय: नहीं दिखाई देता । संस्थाओं में हमें दो या तीन प्रकार के पर्यावरण एक साथ देखने को मिल जाते हैं । कभी-कभी समसामयिक परिस्थितियों के कारण विभिन्न संस्थाओं या संगठनों में विभिन्न प्रकार के पर्यावरण की विशेषताओं का समन्वय करना भी आवश्यक हो जाता है ।

7.9 संगठन पर बाल पर्यावरण का प्रभाव (Impact of External Environment On Organization)

किसी भी संगठन में आन्तरिक पर्यावरण के साथ-साथ बाह्य पर्यावरण भी उतना ही प्रभावी रहता है, जिसमें पूर्ववर्णित परिस्थिति, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि पर्यावरण के साथ राजनैतिक, तकनीकी, आर्थिक आदि आयाम भी सम्मिलित हैं । ये क्षेत्र जब अनुकूल संगठन की में निर्बाध रूप से सक्रिय रहते हैं तो प्रबन्धक को या किसी संस्था प्रधान को अपने प्रशासकीय प्रबन्धकीय कार्यों को चलाने में आसानी रहती है, किन्तु प्रतिकूल होने पर एक प्रबन्धक को बहुत ही सचेत रहकर अपने संगठन को चलाना पड़ता है । इस प्रकार के बाह्य पर्यावरण के साथ संघर्ष करने व उससे निपटने हेतु प्रबन्धक का दक्ष होना आवश्यक है । कुशल प्रबन्धकों ने इस दक्षता की प्राप्ति हेतु कुछ उपाय। बताए हैं जो इस प्रकार हैं -

बाह्म पर्यावरण से निपटने के उपाय

संगठन के बाहरी पर्यावरण को भली-भाँति जाँचने और परखने के बाद ही सतर्क और संवेदनशील प्रबन्धक उससे संघर्ष करके निपटने के उपायों पर विचार करते हैं । इस दिशा में गहन अध्ययन करने वाले एस्फेड चेंडलर का कहना है कि "वातावरण में आने वाले परिवर्तनों से निपटने के लिए संगठन नई नीतियों विकसित करते हैं तथा इन नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यकता पड़ने पर संगठन का प्रारूप और क्रिया प्रणाली भी बदल डालते हैं । बदलते परिवेश में यदि नीतियों और उनके अनुरूप संगठन के आन्तरिक प्रारूप को यथावत् रखा जाता है तो लक्ष्यों को हासिल करना असम्भव सा हो जाता है ।

शिक्षा के क्षेत्र में जहाँ शिक्षा के वैश्वीकरण की बात हो रही है, ऐसे में मात्र स्थानीय व सीमित शिक्षा से विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास नहीं किया जा सकता । गुणात्मक शिक्षा के लिए किसी भी शैक्षिक प्रबन्धक को अपने संगठन में उन तमाम आयामों और नवीन तथ्यों को जोड़ना पड़ेगा जो उसके बाह्य पर्यावरण में नजर आ रहे हैं । विभिन्न उपायों से संगठन की पहचान बनाई जाती है । माइल्स और स्नो ने पर्यावरण से निपटने वाले संगठनों का विश्लेषण करने के बाद यह स्पष्ट किया कि उपायों के आधार पर संगठनों के मुख्य चार प्रकार हैं, जो निम्नलिखित हैं -

(1) **प्रतिरक्षक (Defender) -** प्रतिरक्षक संगठन पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों से अपनी रक्षा में लगे रहते हैं । ऐसे कई शिक्षा संस्थान हैं, जिनके संगठन का दायरा सीमित होता है, किन्तु उनके प्रबन्धक निपुणता के साथ अपने सीमित क्षेत्र में आवश्यक समायोजन कर लेते हैं । निजी किन्तु प्राथमिक, माध्यमिक, गैर अनुदानित एवं धार्मिक विद्यालयों जैसे संगठनों को हम इस श्रेणी में रख सकते हैं । ये संगठन न तो अपने परकोटे से बाहर निकलते हैं और न ही किसी प्रकार का बदलाव लाते हैं । इनकी विकास गति नगण्य ही बनी रहती है । ऐसे संगठनों को अपने विकास पर भी ध्यान देना चाहिए ।

(2) **पूर्वेक्षक (Prospector)** - इन संगठनों के प्रबन्धक दूरदर्शी और शोध प्रवृत्ति वाले होते हैं । वे पर्यावरण के परिवर्तन मे अपने संस्थान के लिए हितकारी अवसरों का पता लगाकर

संस्थान को उनके अनुरूप तैयार करते हैं । वे अपने संगठन की नीतियों, कार्यप्रणालियों एवं विद्यार्थियों के निर्माण में पर्यावरणानुसार आवश्यक सुधार करने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं करते । वर्तमान समय में प्राय: हम देखते हैं कि सरकारी और वर्षों से प्रतिष्ठित विद्यालयों की तुलना में वे विद्यालय सभी दृष्टि से आगे निकल रहे है जिन्होंने ये पता लगा लिया है कि आज बदलते तकनीकी, सामाजिक और वैश्विक परिदृश्य में विद्यार्थियों का निर्माण कैसे करना है । शिक्षा के क्षेत्र में तकनीकी ने ऐसे संगठनों का अत्यधिक मार्गदर्शन किया है ।

(3) **विश्लेषक (Analyzer**) - विश्लेषक-संगठन एक साथ दो तरीके अपनाते हैं । पहले तरीके में ऐसे प्रबन्धक अपने संगठन की क्षमता अपने मूलभूत उद्देश्यों के अनुरूप विद्यार्थी (उत्पाद) तैयार करने में लगाते हैं ताकि अभिभावकों ने जिस आकर्षण से अपने बच्चों को संस्थान में प्रवेश दिलाया है, उसकी पूर्ति की जा सके । दूसरे तरीके में प्रबन्धक अपने संगठन की शेष क्षमता का उपयोग, परिस्थितियों के अनुसार शिक्षा व्यवस्था में सुधार लाते हुए विद्यार्थियों में नवीन मूल्यों का विकास करते हैं । इस प्रकार ये संगठन नई परिस्थितियों से लाभ उठाने का हर सम्भव प्रयत्न करते हैं ।

(4) **प्रतिकारी (Reactor) -** इन संगठनों के प्रबन्धक पर्यावरण की अनिश्चितता और अस्थिरता से पूर्णतया परिचित रहते है तथापि संगठन की रुढिबद्धता के कारण यथासमय उपयुक्त कदम उठाने में सफल नहीं हो पाते । परिवर्तित पर्यावरण के प्रति कुछ सतही प्रतिक्रियात्मक कार्यवाही अवश्य कर लेते हैं । किसी तरह संगठन कायम रहे, यही उनका एकमात्र लक्ष्य बन जाता है ।

इस प्रकार संगठन अपने लक्ष्यों को पूरा करने के लिए बदलते हुए पर्यावरण में अपनी नीति और रीति में केवल प्रतिकारात्मक प्रयास ही करते हैं । स्टिंचकोंबे ने इस वास्तविकता की पुष्टि करते हुए लिखा है कि- ' 'संगठनों की संरचना लम्बे समय तक यथावत् बनी रहती है, जबकि उनका पर्यावरण बहुत बदल चुका होता है । '' ऐसे संगठन यंत्रवत होते हैं ।

वस्तुत: परिवर्तित पर्यावरण के प्रति संगठनों को अधिकाधिक संवेदनशील होना चाहिए ताकि वे संगठन की रक्षा के साथ-साथ उसे निरन्तर मजबूती व नई पहचान दे सके । वैसे भी शैक्षिक संगठन सजीव उत्पाद के लिए बनाए जाते हैं । अत: उनको आन्तरिक एवं बाह्य पर्यावरण से जूझने तथा निर्णय लेने के लिए अन्य व्यावसायिक संगठनों की तुलना अधिक संवेदनशील और सशक्त होना आवश्यक होता है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. संगठनात्मक पर्यावरण के प्रमुख क्षेत्र क्या है ?
2. संगठनात्मक पर्यावरण के प्रकार लिखिए ।
3. मुक्त पर्यावरण एवं बंद पर्यावरण मे क्या अन्तर है ?
4. स्वायत्त पर्यावरण के विशेषताएँ क्या है ?
5. संगठनात्मक पर्यावरण की अवधारणा को उदाहरण सहित स्पष्ट करिए ।
6. संगठनात्मक पर्यावरण क्षेत्र की विवेचना करिए ।

7.10 सारांश (Summary)

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि, संस्थाएँ सामाजिक तंत्र होती हैं तथा उनके संगठनात्मक पर्यावरण को निम्नांकित बिन्दुओं से समझा जा सकता है ।

1. संगठनात्मक पर्यावरण का तात्पर्य संगठन के सदस्यों द्वारा अनुभूत एवं ग्रहण किए जाने वाले आन्तरिक वातावरण की विद्यमान स्थितियों से है ।
2. ये पर्यावरणनीय स्थितियाँ संगठन के सदस्यों के कार्य निष्पादन. व्यवहार के तरीकों को प्रभावित करती हैं ।
3. ये प्रभाव पूर्णत: अन्तःक्रियात्मक और अर्न्तसम्बन्धित आयाम होते हैं ।
4. ये आयाम सदस्यों को प्रेरित व प्रभावित करते हैं ।
5. इससे संगठन की उत्कृष्टता व गुणात्मकता प्रभावित होती है ।
6. संगठनात्मक पर्यावरण संस्था के व्यक्तियों के व्यवहार को सकारात्मक और नकारात्मक दोनों बना सकता है ।

इसीलिए कर्ट लेविन (Kurt Levin,1940) ने उल्लेख किया है कि व्यक्ति के व्यवहार को समझने के लिए उसके आसपास की समस्त परिस्थितियों का अध्ययन करना पड़ता। है क्योंकि व्यक्ति व वातावरण के बीच की अन्तःक्रिया से व्यवहार की उत्पत्ति होती है ।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य मे प्रत्येक कार्य की प्रबन्धकीय शैली में तीव्रता से बढ़ रही प्रभावशाली प्रबन्धन प्रणालियों ने प्रत्येक क्षेत्र को आकर्षित किया है । परिणामस्वरूप प्रबन्धन को प्रभावी, उद्देश्यनिष्ठ व उत्कृष्ट बनाने के लिए प्रबन्धकों, विशेषज्ञों एवं कुशल कार्यकर्त्ताओं द्वारा समय की आवश्यकता एवं उपयोगिता को ध्यान में रखकर प्रबन्धन में कई नवीन परिवर्तन किए जा रहे हैं । शैक्षिक पबन्धन में भी इसी परिप्रेक्ष्य में समसामयिक प्रवृत्तियों का समावेश किया जा रहा है ।

अभ्यास प्रश्न (Exercises)

1 संगठनात्मक पर्यावरण के अर्थ, प्रकृति तथा क्षेत्र को उदाहरण सहित स्पष्ट करिए ।

2 संगठनात्मक पर्यावरण के प्रकार के स्पष्ट करते हुए संगठन पर पड़ने वाले बाह्य पर्यावरण के प्रभाव को उदाहरण सहित स्पष्ट करिए ।

7.11 संदर्भ (References)

1. Ahluwalia, Lt Gen. J.S. (2001). Total Quality Management : Creating a Quality Environment for the Next Millennium. New Delhi : Vanity Books International.
2. Balsara, Maitrya (2002). Administration and Reorganisation of Teacher Education. New Delhi : Kanishka Publisher.
3. Chandras Karan, P. (1994) Educational Planning and management. New Delhi : Sterling Publishers Private Limited.

4. Chester, Barnard (1954). The Functions of Executive. Cambridge : Harvard University press
5. Choudhary. Namita Roy (2001). Management in Education. New Delhi : S.B.Nangia, A.P.H. Publishing Corporation.
6. देसाई, वसंत (2000), प्रबन्धन के सिद्धान्त, नई दिल्ली ग्रंथ अकादमी, 1686 पुराना दरियागंज
7. जी.एस सुधा (2003). प्रबन्ध अवधारणा, चिन्तन एवं व्यवहार जयपुर: रमेश बुक डिपो.
8. Goens, George A. and Clover, Sharon I.R (1984) Mastering School Reform. Singapore : Allyn and Bacon.
9. Kumar, K.L.(2001) Educational Technology. New Delhi : New AGE International (P) Limited,Publishers.
10. Mukhopadhyay, M. (2001). Total Quality Management in Education. New Delhi : National Institute of Education planning and Administration.
11. Organization and Management Intermediate Course Study Material. Paper - 64, Board of Studies, The Institute of Chartered of India.
12. Pandya, S.R (2002). Administration and Management of Education.Mumbai:Himalaya Publicating House.
13. शर्मा, आर.एस. (1995). विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन। मेरठ : सूर्या पब्लिकेशन.
14. शर्मा, डॉ. आर.ए. (2004). शिक्षा तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन। मेरठ : सूर्या पब्लिकेशन राजकी इन्टर कॉलेज के समीप ।
15. सोडानी, डॉ. कैलाश एवं बांगड डॉ. आर. एस. (1998-99), प्रबन्ध, उदयपुर (राज.) : अरावली प्रकाशन
16. Tripathi, P.C. and Reddy, P.N.(1997). Principles of Management. Second Edition. New Delhi : Tata Mc Graw - Hill Publishing Company Limited.
17. वर्मा, जे.पी. (2002) शैक्षिक प्रबन्धन (Educational management) जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी.

Websites-

1. www._wikipedia.org/wiki/change_management.
2. http://bctf.ca/social/globalization.
3. Globalization and Education.ed.uiue.edu

4. www.smart teaching.org.
5. Wikipedia.the Free Encyclopedia
6. www.globalization.wikipedia
7. www.wharton.upenn.edu/faclty/innovation/-21k
8. www.businessballs.com/swotanalysisfreetemplete.
9. www.highbean.com/doc/161-8249316/htm/-131k

इकाई 8

शैक्षिक प्रबन्धन में नेतृत्व शैलियाँ

(Leadership Styles in Educational Management)

इकाई की संरचना

8.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

8.2 शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व का अर्थ (Meaning of Leadership in Educational Management)

8.3 शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व की आवश्यकता (Need for Leadership in Educational Management)

8.4 शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व की प्रमुख विशेषताएँ (Main Characteristics of Leadership in Educational Management)

8.5 शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व सम्बन्धित प्रमुख गुण सिद्धान्त (Main Trait Theories of Leadership in Educational Management)

8.6 नेतृत्व के प्रकार (Types of Leadership)

8.7 नेतृत्व की शैलियाँ (Leadership Styles)

8.8 अनुकरणकर्ताओं के आधार पर नेतृत्व शैलियाँ (Leadership Styles based on Followers' point of views)

8.9 नेतृत्व शैली सम्बन्धित आधुनिक मॉडल (Modern Models Related to Leadership Style)

8.10 सारांश (Summary)

8.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

8.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई की सम्प्राप्ति पर आप -

1. नेतृत्व के अर्थ को समझ सकेंगे ।
2. शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व की आवश्यकता को समझ सकेंगे ।
3. शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व की विभिन्न विशेषताओं को उल्लेखित कर सकेंगे ।
4. शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व के विभिन्न गुणों की पहचान कर सकेंगे ।
5. शैक्षिक प्रबन्ध में विभिन्न नेतृत्व शैलियों को समझ सकेंगे ।

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रत्येक राष्ट्र, समाज और संगठन को प्रभावी नेतृत्व की आवश्यकता होती है । कुशल नेतृत्व जहाँ इन्हें नई दिशा देकर प्रगति व उपलब्धियों की ऊँचाई पर ले जाता है, वहीं अकुशल नेतृत्व इनके पराभव व पतन के लिए उत्तरदायी होता है । कुशल नेतृत्व में छोटे राष्ट्र भी संसार में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लेते हैं, वहीं अकुशल नेतृत्व में बड़े से बड़ा समूह विग्रह व पतन के कगार पर चला जाता है । यही कारण है कि समाज के विकास के साथ-साथ ही नेतृत्व के बारे में भी विचार किया जाता है । हर समाज व राष्ट्र के पास ही नेतृत्व संबंधी विचारों का अपना संचित अनुभव होता है । भारत के कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नेतृत्व के गुणों का विस्तार से वर्णन किया गया है ।

8.2 शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व का अर्थ (Meaning of Leadership in Educational Management)

शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से नेतृत्व अंग्रेजी के 'लीडरशिप' शब्द से लिया गया है जो नेतृत्व प्रदान करे । प्रारम्भिक नेतृत्व साहित्य में नेता उसे माना गया जो उच्च पद प्रस्थिति में हो । कार्य मूल्यांकन की दृष्टि से कार्य के प्रभावी व अप्रभावी सम्पादन के आधार पर अच्छा नेता या बुरा नेता कहा गया । नेतृत्व की अनेकानेक परिभाषाएँ मिलती हैं । सभी परिभाषाओं में एक तथ्य पर सभी सहमत मिलते हैं कि नेतृत्व का सम्बन्ध समूह के प्रभाव से है, अत: नेतृत्व तभी माना जा सकता है जब समूह उसे स्वीकार करता है । एक अन्य दृष्टिकोण से 'लिपहम' ने तत्कालीन स्थिति में परिवर्तन लाने वाले को नेता कहा है ।

8.2.1 नेतृत्व की विभिन्न परिभाषाएँ (Definitions of Leadership)

शैक्षिक प्रबन्धन में नेतृत्व की विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने शब्दों में निम्नलिखित परिभाषाएँ दी हैं ।

1. "Leadership is concerned with motivating and directing workers so that the objective of the company policies, plans and programme will be successfully executed."

   Neuner and Keeling

2. आर. टी. लिविंगस्टन (R.T. Livingston) के अनुसार, "नेतृत्व दूसरे व्यक्तियों में किसी सामान्य उद्देश्य को अनुसरण करने की इच्छा को जागृत करने की योग्यता है ।"
   "Leadership is the ability to awaken in other the desire to follow a common objective."

   - R.T. Livingston

3. ऑर्डवे टीड (Ordway Tead) के अनुसार, "नेतृत्व गुणों के उस संयोजन (Combination) का नाम है, जिसके होने से एक व्यक्ति दूसरों से काम लेने के योग्य हो जाता है, क्योंकि उसके प्रभाव के कारण वे कार्य करने को तत्पर हो जाते हैं ।"

"Leadership is that combination of qualities by the possession of which one is able to get something done by other chiefly because through his influence they become willing to do so."

Ordway Tead

4. फ्रेन्कलिन जी. मूरे (Franklin G. Moore) के अनुसार, "नेतृत्व अनुयायियों को नेता की इच्छानुसार क्रियाएँ करने के लिए तैयार करने की योग्यता है ।"
5. चेस्टर आई. बर्नार्ड (Chesteral Barnard) के अनुसार, "नेतृत्व से आशय व्यक्ति के व्यवहार के उस गुण से है जिसके द्वारा वह अन्य व्यक्तियों या उनकी क्रियाओं का संगठित प्रयास में मार्गदर्शन करता है ।"

   "Leadership refers to the quality of the behavior of the individual where by they guide people on their activities in organized work."

Chester I. Barnard

6. न्यूनर एवं कीलिंग (Neuner and Keeling) के मतानुसार, "नेतृत्व कर्मचारियों को अभिप्रेरित और निर्देशित करने से सम्बन्धित है ताकि कम्पनी नीतियों, योजनाओं एवं कार्यक्रमों के उद्देश्यों का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन किया जा सके ।"
7. रोबर्ट टेनिनबाम तथा फ्रेंड मासारिक के अनुसार, "नेतृत्व में सदैव नेता अनुयायी के व्यवहार को प्रभावित करता है ।"
8. सामाजिक विज्ञान के शब्दकोष के अनुसार, "नेतृत्व से आशय किसी व्यक्ति एवं वर्ग के मध्य ऐसे सम्बन्ध से है जिससे कि सामान्य हित के लिए दोनों परस्पर मिल जाते हैं तथा अनुयायियों का समूह उस एक व्यक्ति के निर्देशानुसार ही कार्य करता है ।"
9. कूण्टन एवं ओ'डोनेल (Koontz and O'Donnell) के अनुसार, "किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सन्देशवाहन के माध्यम द्वारा व्यक्तियों को प्रभावित कर सकने की योग्यता नेतृत्व कहलाती है ।"

   "Leadership may be defined as the ability to exert interpersonal influence by means of communication towards the achievement of a goal."

- Koontz and O'Donnell

10. जार्ज आर. टेरी (George R. Terry) के अनुसार, "नेतृत्व पारस्परिक उद्देश्यों के लिये स्वेच्छापूर्वक प्रयास करने हेतु लोगों को प्रभावित करने की योग्यता है ।"

"Leadership is the ability of influencing people to strive willingly for mutual objectives."

-George R.Terry

उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात हम कह सकते हैं कि शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को सहकारी प्रयत्नों में अधिकतम योगदान के लिए अभिप्रेरित कर सके इसकी प्रक्रिया है ।

8.3 शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व की आवश्यकता (Need of Leadership)

नेतृत्व प्रारम्भ से ही शैक्षिक प्रबन्ध के अध्ययन की प्रमुख आवश्यकता रहा है । इसका अध्ययन अधिकाधिक विशेषीकृत होता जा रहा है । हर छोटे-बड़े संगठन में प्रशासकीय नेतृत्व एक अनिवार्य तत्त्व बन गया है जिसके बिना किसी भी संगठन की कोई भी योजना पूरी नहीं हो सकती न किसी कार्य को कोई गति मिल सकती है । नेतृत्व के बिना किसी संगठन की स्थिति वही है जो समुद्र में नाविक के बिना नाव की होती है ।

शिक्षा के प्रबन्धन में भी दिन प्रतिदिन नई चुनौतियाँ बढ़ती जा रही हैं । कार्य में विस्तार होता जा रहा है । शिक्षा से जुड़ी छोटी-बड़ी सभी संस्थाओं में जटिलताएँ और विशेषीकरण बढ़ते जा रहे हैं । ऐसी स्थिति में तकनीकी विकास ने एक विशेष विशेषज्ञता की आवश्यकता की स्थिति पैदा कर दी है । ये सभी परिस्थितियाँ शैक्षिक प्रबन्धन में कुशल नेतृत्व की माँग करती है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. शैक्षिक प्रबन्ध मै नेतृत्व का अर्थ बताइए । इसके आवश्यकता तथा महत्त्व का वर्णन कीजिए ।

8.4 शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व को प्रमुख विशेषताएं (Main Characteristics of Leadership in Educational Management)

शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व की विभिन्न आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हूए एक अच्छे नेतृत्व में निम्नलिखित विशेषताएँ अवश्य होनी चाहिए -

1. **यथार्थवादी दृष्टिकोण** - नेतृत्व का एक लक्षण यह है कि वह मानव 'आचरण के प्रति पूर्णत: यथार्थवादी दृष्टिकोण रखता है ।

2. **आचरण का आदर्श रूप -** नेतृत्व का एक प्रमुख लक्षण यह भी है कि यह अपने अनुयायियों में आचरण का आदर्श रूप होता है । यही कारण है कि नेता के आचरण को आदर्श मानकर समस्त अनुयायी उसे अपनाने का प्रयत्न करते हैं । प्रशासन में नेता केवल प्रशासनिक कार्यों में ही दक्ष नहीं होता वरन् वह आदर्श व्यक्तित्व भी रखता है ।

3. **अनुयायियों लक्ष्य -** नेतृत्व का एक प्रमुख लक्षण यह भी है कि वह अपने अनुयायियों के प्रयत्नों को सामूहिक लक्ष्यों या उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु निर्देशित करता है । इस दृष्टि से नेता को चाहिए कि वह कुछ लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित कर दे जिससे कि अनुयायी इन लक्ष्यों से अपने हितों का एकीकरण कर सके ।

4. **अनुयायियों का होना** - नेतृत्व का एक प्रमुख लक्षण यह है कि इसके अनुयायी होते हैं । अनुयायियों के अभाव में नेतृत्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती है । एक नेता का महत्त्व या उसकी स्थिति का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि उसके अनुयायियों की संख्या कितनी है ।

5. **गतिशील प्रक्रिया -** नेतत्व की प्रकृति गतिशील होती है जो संगठन में सदैव जारी रहती है । प्रशासनिक संगठन के निर्माण से ही यह प्रक्रिया शुरू होकर तब तक जारी रहती है जब तक संगठन विद्यमान होता है ।

6. **सम्बन्धों की क्रियाशीलता** - नेता और उसके अनुयायियों के आपसी सम्बन्ध निष्क्रिय न होकर क्रियाशील होते हैं । वह किसी भी कार्य को करवाने के लिए सबसे आगे खड़ा होकर अपने समस्त अनुयायियों को उस कार्य को करने का आहवान करता है ।

8.5 शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व सम्बन्धित प्रमुख गुण सिद्धान्त (Main Trait Theory of Leadership in Educational Management)

नेतृत्व सम्बन्धी प्रारम्भिक अध्ययन गुणों को लेकर हुए हैं । इन विशेषज्ञों की धारणा थी कि समाज में दो प्रकार के लोग होते हैं - (1) नेता (2) अनेता

नेता जन्म से ही कुछ गुण लेकर पैदा होते हैं एवं नेता कभी बनाये नहीं जा सकते हैं । अत: इस परिकल्पना का पता लगाने के लिए कुछ अनुसंधान किए गए । इस श्रृंखला में सर्वप्रथम चार्ल्स बर्ड (Charles Bird) ने 1940 में अपने शोध से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर 40 नेतृत्व गुणों की सूची प्रस्तुत की ।

स्टोगडिल (Stogdill) (1945) ने अपने अध्ययन में निम्नलिखित गुणों को श्रेष्ठ माना-

(1) बुद्धि (2) योग्यता (3) उत्तरदायित्व वहन करना (4) परस्पर क्रिया तथा सामाजिक सहभागिता (5) उच्च सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति ।

स्टोगडिल ने 10 अन्य अध्ययनों के सर्वेक्षण में अधोलिखित गुणों का भी धनात्मक सम्बन्ध नेतृत्व के साथ पाया ।

1. सामाजिकता (Sociability)
2. अगुवाई करना (Initiative)
3. कार्य में लगे रहना (Persistency)
4. यह जानना कि कार्य कैसे निकाला जा सकता (Knowing how to get things done)
5. आत्म विश्वास (Self confidence)

6. सावधानी रखना (Alertness)
7. ख्याति (Popularity)
8. परिस्थितियों के अनुरूप ढालना (Adaptability)
9. वाक पटुता (Varbal Facility)

परन्तु अध्ययन के उपर्युक्त निष्कर्षों के साथ-साथ स्टोगडिल बाद के अध्ययनों से निष्कर्ष पर पहुँचा कि कोई व्यक्ति कुछ गुणों की संख्या के आधार पर नेता नहीं होता, वरन् गुणों की एक विशिष्ट पैटर्न तथा परिस्थिति होती है, तभी नेता हो सकता है । जैसा कि स्टोगडिल कहते हैं ।

मायर्स (Myers) (1954) ने भी इसी दिशा में कार्य आगे बढ़ाया । उसने नेतृत्व के क्षेत्र में हुए 200 से अधिक अध्ययनों का विश्लेषण किया । मायर्स के अध्ययन के निष्कर्ष अधोलिखित हैं-

1. नेतृत्व का शारीरिक विशेषताओं से कोई महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध नहीं है ।
2. नेतृत्व का बुद्धिलब्धि के साथ भी कोई महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध नहीं है ।
3. वह योग्यता जिसके द्वारा नेता समूह की समस्याओं को किस तरह सुलझता है, का महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध नेतृत्व से है ।

मायर्स ने जिन व्यक्तिगत गुणों का नेतृत्व के साथ धनात्मक सम्बन्ध पाया वे अधोलिखित है-

1. अन्तर्दृष्टि (Insight)
2. अगुवाई करना (Initiative)
3. सहयोग करना (Cooperation)
4. मौलिकता (Originality)
5. महत्वाकांक्षी (Ambition)
6. लगातार लगे रहना (Persistence)
7. संवेगात्मक स्थिरता (Emotional Stability)
8. निर्णय शक्ति (Judgement)
9. लोकप्रियता (Popularity)
10. संप्रेषण कौशल (Communication)

उपर्युक्त गुणों के अलावा कतिपय वे गुण भी हैं, जो समूह नेतृत्व व्यवहार से सम्बन्ध रखते हैं । ये गुण हैं -

1. दायित्व निर्वाह (Responsibility)
2. निष्ठा (Integrity)
3. आत्म विश्वास (Self confidence)
4. सामाजिक कार्यकलापों में भाग लेना (Social activity)
5. चयनशीलता (Mobiality)

6. सामाजिक कौशल (Social skill)

7. शारीरिक विशेषताएँ (Physical Characteristics)

8. धारा प्रवाह वक्रता (Fluency of speech)

मायर्स के एक अन्य व्यक्ति हुए हैम्फिल जिन्होंने नेतृत्व के क्षेत्र में काफी कार्य किया उनका मानना है कि नेतृत्व कभी भी पूर्ण नहीं होता है । मात्र गुणों के आधार पर नेतृत्व के सम्बन्ध में उपर्युक्त निर्णय नहीं लिया जा सकता । नेतृत्व का अध्ययन समग्रता के आधार पर किया जाना चाहिए । समग्रता की दृष्टि से नेतृत्व के गुणों का अध्ययन करना लाभकारी हो सकता है ।

हैम्फिल का समूह कार्य सिद्धान्त (Group function theory of Hamphill)

हैम्फिल की नेतृत्व के सम्बन्ध में यह धारणा है कि नेतृत्व एक ऐसा कार्य है जिसके द्वारा वह समूह की समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रक्रिया के रूप में परस्पर व्यवहार की संरचना का निर्माण करता है । इसी विचारधारा के आधार पर हैम्फिल ने निम्नलिखित 15 आयाम सुझाए हैं, जिनका सम्बन्ध नेतृत्व से है ।

1. समूह में सदस्यों की संख्या ।
2. साथ रहने की भावना ।
3. समूह के सदस्यों की परस्पर समानता ।
4. वह सीमा जिसे समूह अपने सदस्यों के व्यवहार के ढंग पर निश्चित करता है ।
5. वह सीमा जिसमें समूह अपने सदस्यों की सदस्यता बिल्कुल अलग से रखता है ।
6. समूह के सदस्यों में स्थायीपन की सीमा ।
7. सदस्यों के परस्पर घनिष्ठता की सीमा ।
8. वह सीमा जिसमें समूह के लक्ष्य स्पष्ट तथा निश्चित होते हैं ।
9. दूसरे समूहों से स्वतंत्रता की सीमा ।
10. वह सीमा जिसमें समूह अपने सदस्यों पर नियंत्रण रखती है ।
11. समूह के द्वारा उसके सदस्यों की जीवन आवश्यकताओं की पूर्ति की सीमा ।
12. समूह में प्रत्येक सदस्य की प्रस्थिति ।
13. समूह की सदस्यता से व्यक्ति किस सीमा तक संतुष्ट है ।
14. समूह कें सदस्यों द्वारा परस्पर कार्यों में भाग लेने की सीमा ।
15. वह सीमा जिसमें समूह के सदस्य समूह के नेतृत्व पर निर्भर करते हैं ।

हैस्फिल, उपर्युक्त 15 कारकों में से दो कारकों को सर्वाधिक महत्त्व देता है । ये कारक हैं-

1. समूह में साथ रहने की भावना तथा
2. समूह में वह किस सीमा तक संतुष्ट है ।

ये उपर्युक्त कारक होमंस के भावनाओं सम्बन्धी निष्कर्षों से भी मेल खाते हैं । हैम्फिल के अध्ययन के कुछ प्रमुख निष्कर्ष अधोलिखित हैं -

1. नेतृत्व के लिए यह आवश्यक है कि नेता एक समूह के सदस्य के रूप में अपना सन्तोषजनक सहयोग, बजाय व्यक्तिगत महत्त्व बनाने के, समूह के हित में प्रदान करें।
2. नेतृत्व के अध्ययन में व्यक्तिगत गुणों पर अधिक महत्त्व दिया जाता है ।
3. सफल नेतृत्व के लिये आवश्यकता तथा परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन की आवश्यकता है ।

क्रेच तथा क्रेच फील्ड का नेतृत्व सम्बन्धित गुण सिद्धान्त

क्रेच तथा क्रेच फील्ड का यह मानना था कि नेतृत्व का सम्बन्ध उन व्यवहारों से है, जो समूह को उसके लक्ष्यों की प्राप्त करने में योग देते हैं तथा सदस्यों की समूह में स्थिति को सुधारते ही एवं उनकी अवश्यकताओं को महत्त्व देते हैं अत: क्रेच तथा क्रेच फील्ड ने नेतृत्व व्यवहार सम्बन्धित निम्नलिखित कार्य सुझाए हैं -

1. प्रशासनिक (Executive)
2. नियोजनकर्ता (Planner)
3. नीति निर्धारण कर्त्ता (Policy Maker)
4. बाद समूह के लिए प्रतिनिधित्व कर्ता (External group representative)
5. परस्पर सम्बन्धों का नियंत्रण कर्ता (Controller of inter-relationship)
6. दण्ड व पारितोषिक देने वाला (Purveyer of rewards & punishment)
7. न्यायकर्ता (Arbitiator)
8. आदर्श प्रस्तुत करने वाला (Exampler)
9. समूह प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित (Symbol)
10. प्रच्छन्न प्रतिनिधि (Surrogate)
11. पितृ भाव दिखाने वाला (Father figure)
12. समूह के लिए बलिदान होने वाला (Scape goat)

नेतृत्व के संबंध में सामान्य निष्कर्ष -

उपर्युक्त विवरण के आधार पर नेतृत्व के सम्बन्ध में कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं ।

1. कोई व्यक्ति समूह का नेता है या नहीं, उस व्यक्ति के प्रति समूह की अनुभूति पर निर्भर करता है ।
2. नेता, जिस प्रकार अपने नेतृत्व के बारे में सोचता है, तदनुसार ही उसके कार्यकलाप होते हैं ।
3. अधिकांश समूहों में एक से अधिक नेता नेतृत्व की भूमिका निर्वाह करने वाले होते हैं ।
4. नेता समूह के लोगों में, समूह के कार्यो तथा समूह के सदस्यों के प्रति सकारात्मक भावनाओं का विकास करता है ।
5. नेतृत्व जनतंत्रीय या आधिकारिक हो सकता है, परन्तु कभी भी अहस्तक्षेपी नहीं हो सकता ।

3. नेतृत्व समूह के प्रतिमानों को बनाए रखता है तथा उनकी रक्षा करता है ।
4. नेतृत्व एक प्रकार की अधिकृति है, जो समूह ने उसे उपयुक्त व्यक्ति जानकर सौंपी है, ताकि वह समूह द्वारा निश्चित विशिष्ट भूमिका का निर्वाह कर सके ।
5. नेतृत्व किसी पद या परिस्थितिजन्य नहीं है, वरन् यह समूह में परस्पर व्यवहारजन्य है । यह इस बात पर निर्भर करता है कि नेता व्यवहार कैसे करता है ।
6. नेतृत्व पहले से निर्माण नहीं किया जा सकता है । विभिन्न समूह, उनकी भिन्न-भिन्न प्रकार के परस्पर व्यवहार, बदलते लक्ष्य, विभिन्न प्रकार की शक्तियां आदि के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार के नेतृत्व को जन्म देते हैं ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. शैक्षिक नेतृत्व की विशेषताओं को बताइये ।
2. शैक्षिक प्रबन्धक में नेतृत्व के प्रमुख गुण-सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए ।

8.6 नेतृत्व के प्रकार (Types of Leadership)

नेतृत्व के प्रकारों को उनकी प्रकृति के आधार पर अनेक प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है -

8.6.1 कार्यों के आधार पर -

समूह का नेतृत्व जिस प्रकार का कार्य करता है उस कार्य की प्रकृति तथा अनुगामी पर उसके प्रभाव के आधार पर इसे पुन: निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं -

(a) संकेत रूप में (Symbolic form) - ऐसे नेता जिनका कार्य के संचालन में सीधा-सीधा हस्तक्षेप नहीं होता जैसे राज्य के राज्यपाल या देश का राष्ट्रपति के रूप में नेतृत्व देना ।

(b) नीति निर्धारक नेतृत्व - वह नेतृत्व जो सम्पूर्ण नीति निर्धारण में अपना योगदान देता है जैसे भारत के प्रधानमंत्री ।

(c) सलाहकारी नेतृत्व - समूह के कार्यों को सफल रूप से संचालित करने हेतु सलाहकार की भूमिका निभाना जैसे भारत सरकार के शिक्षा सलाहकार की तरह कार्य करना ।

(d) योजना प्रदत्त नेतृत्व - समूह के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए योजना प्रस्तुत करने की क्षमता रखना जैसे उपाध्यक्ष योजना आयोग द्वारा भारत सरकार को योजना प्रस्तुत करना।

8.6.2 पद प्रस्थिति प्रकार का नेतृत्व -

इसके अन्तर्गत किसी पद पर आसीन व्यक्ति को नेता स्वीकार कर लिया जाता है, क्योंकि उसके पास निर्देशन का अधिकार होता है ।

8.6.3 गतिशील नेतृत्व

इसके अन्तर्गत नेता समाज या समूह की परिवर्तित परिस्थिति में नेतृत्व में अनुकूल परिवर्तन ले आता है ।

8.7 नेतृत्व की शैलियाँ (Leadership Styles)

शैली के रूप में नेतृत्व व्यवहार की तीन शैलियां हैं -

(1) अधिकारिक नेतृत्व (Autocratic Leadership)

(2) जनतंत्रीय नेतृत्व (Democratic Leadership)

(3) अहस्तक्षेपीय नेतृत्व (Laisefaire Leadership)

वस्तुत: नेतृत्व दो प्रकार के ही नेतृत्व होते हैं -

1. अधिकारिक 2. जनतंत्रीय

अहस्तक्षेपीय नेतृत्व केवल संस्था गिनाते भर के लिये होता है । अन्यथा यह स्थिति नेतृत्व विहीनता की होती है जिसमें समूह के व्यक्तियों में स्वेच्छाचारिका व मनमानी का बोलबाला होता है ।

8.7.1 अधिकारिक नेतृत्व शैली

यदि प्रशासन कार्य की स्वयं अगुआई करता है, नीतियों पर नियंत्रण रखता है, कार्य की प्रणाली स्वयं निर्दिष्ट करता है, भविष्य को नियंत्रित करता है, पुरस्कार व दण्ड का निर्णय करता है तथा सहायकों का मूल्यांकन करता है तब उसे निर्देशक या अधिकारिक प्रकार का नेता कहा जा सकता है । प्रारम्भिक दिनों में नेतृत्व का प्रकार अधिकारिक प्रकार का ही देखने को मिलता है । भारत में अंग्रेजों के शासन से इसी प्रकार का नेतृत्व विरासत में मिला है । अत: अधिकारिक नेतृत्व की शैली यदि भारतीय प्रशासकों में दिखाई दे तो आश्चर्य की बात नहीं है । हर समुदाय में मानवीय व्यक्तित्व अविकसित आदि रूप में होता है । अत: अधिकारिक नेतृत्व शैली अपनाने वाले अधिकारी सर्वत्र मिल जाते हैं । विभिन्न शोध अध्ययनों के परिणामस्वरूप अधिकारिक नेतृत्व के सम्बन्ध में अधोलिखित मान्यताएँ हैं -

(1) यह नेतृत्व उन लोगों तक सीमित होता है जो किसी पद या प्रस्थिति में होने के कारण शक्ति में है ।

(2) पद या प्रस्थिति के नेतृत्व का आदेश माना जाये, इसके लिए समूह के लोगों के मध्य उचित मानवीय सम्बन्ध आवश्यक है ।

(3) इस नेतृत्व में अधिकार तथा शक्ति विकेन्द्रित की जा सकती है, परन्तु दायित्व विकेन्द्रित नहीं हो सकते ।

(4) अन्तिम रूप से दायित्व उस नेतृत्व का ही होता है जो अधिकार की सर्वोच्च स्थिति पर होता है ।

(5) व्यक्ति उस पर्यावरण में अपने को सुरक्षित अनुभव करता है जिसमें पद प्रस्थित वाला नेता संगठन में उसकी सुरक्षा करता है ।

(6) उद्देश्यों की प्राप्ति में एकजुटता तभी हो सकती है, जब संगठन के सदस्य पद / प्रस्थिति नेतृत्व के प्रति निष्ठावान हो ।

(7) अच्छे परिणाम प्रतिस्पर्धा एवं दबावजन्य पर्यावरण में ही सम्भव है ।

(8) विभिन्न अधिकृतियों के पद सोपानों का प्रयोग, संगठन के लक्ष्यों, नीतियों व कार्यक्रमों का निर्धारण व लागू करने में किया जाना चाहिए ।

(9) अधिकृति ही सही होती है तथा यह उस व्यक्ति -का अधिकार है जो पदासीन होने के कारण अधिकार प्राप्त किये हुए हैं ।

(10) व्यक्ति संगठन से ऊपर नहीं है, अत: उसे त्यागा जा सकता है ।

(11) मूल्यांकन का दायित्व पद / प्रस्थिति नेतृत्व का ही है ।

8.7.2 जनतंत्रीय नेतृत्व

जनतंत्रीय नेतृत्व आधुनिक युग का सबसे प्रशंसित नेतृत्व माना जाता है । हमारे लिए इसका महत्त्व और भी अधिक है क्योंकि हमारे देश में जनतंत्रीय शासन प्रणाली है । इस प्रणाली में आयोजन, नीति-निर्धारण, कार्य-विभाजन आदि में जन-सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है । नेतृत्व उतना ही सफल माना जाता है, जितना वह अपने अनुकरणकर्त्ताओं से सहयोग ले पाता है ।

जनतंत्रीय नेतृत्व परिस्थितिजन्य होता है । परिस्थिति के बदलने के साथ- साथ नेतृत्व बदल जाता है, क्योंकि एक परिस्थिति के लिए जिन कौशलों, क्षमताओं व संसाधनों की आवश्यकता होती है, दूसरी परिस्थिति में वे उपयुक्त नहीं होते है। नेता प्राय: समूह के समूह के समग्र संसाधनों को नेतृत्व के विकास के लिए लगता है । सभी के साथ मिलकर कार्य करने पर बल देता है । जहाँ नेतृत्व में नेता सर्वेसर्वा होता है वहाँ जनतंत्रीय नेता सहकर्मी होता है और समूह ही व्यक्ति के मूल्यांकन आदि के लिय उत्तरदायी होता है ।

विभिन्न अनुसंधानों के आधार पर जनतंत्रीय नेतृत्व के संबंध में अधोलिखित सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं -

1. नेतृत्व उन लोगों तक ही सीमित नहीं है जो पद या प्रस्थिति में है, वरन् नेतृत्व परिवर्तनशील तथा परिस्थितिजन्य है ।
2. श्रेष्ठ परिणामों की प्राप्ति एवं व्यक्तित्व की आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए समूह के मध्य के अच्छे मानवीय संबंध आवश्यक है ।
3. जनतंत्रीय नेतृत्व में अधिकार एवं कर्त्तव्य दोनों का विकेन्द्रीकरण हो सकता है ।
4. जिन व्यक्तियों को कार्यक्रम या नीतियों से प्रभावित होना है, उन लोगों का उन कार्यक्रमों एवं नीतियों के निर्धारण में सहयोग होना आवश्यक है ।
5. ऐसे गतिशील पर्यावरण में व्यक्ति स्वयं को अधिक सुरक्षित अनुभव करता है जिसमें उसकी स्वयं की सहभागिता एवं दायित्व हो ।
6. समूह के लक्ष्यों को समूह के लोगों की आम सहमति एवं निष्ठा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है ।
7. भयहीन पर्यावरण में ही अधिकाधिक उपलब्धि संभव है ।
8. संगठन के विभिन्न पद या प्रस्थिति का प्रयोग कार्य व श्रम के विभाजन एवं नीतियों के लागू करने के लिए ही किया जाना चाहिए । वे श्रम विभाजन व नीतियों समूह द्वारा ही निश्चित होनी चाहिए ।

9. नेता को विशेष परिस्थिति ही अधिकार प्रयोग के लिए बाध्य करती है न कि पद व प्रस्थिति ।
10. व्यक्ति संगठन के लिए महत्वपूर्ण है तथा त्याज्य नहीं है ।
11. व्यक्ति के कार्य का मूल्यांकन समूह का दायित्व होता है ।

8.7.3 अहस्तक्षेपीय नेतृत्व

अहस्तक्षेपीय नेतृत्व वस्तुत: कोई नेतृत्व नहीं होता । ऐसे नेता को स्वयं की योग्यताओं पर कोई भरोसा नहीं होता, अत: वह स्वयं को कागजी कार्यवाही में व्यस्त रखता है । वह समूह के लोगों से किसी अन्य बहाने दूर रहता है । वह अधिकांश कार्य अपने सहयोगियों पर डाल देता है, परन्तु वे भी स्पष्ट निर्णय नहीं ले पाते हैं । अत: एक ऐसी स्थिति आ जाती है जबकि संगठन नेतृत्व विहीन सा लगने लगता है । यह स्थिति अराजक नेतृत्व कही जा सकती है ।

8.8 अनुकरणकर्ताओं के आधार पर नेतृत्व शैली (Leadership based on follower)

नेतृत्व शैली का एक दूसरा विभाजन अनुकरणकर्ताओं के आधार पर भी किया जा सकता है ।

लिपहम ने इस प्रकार की तीन शैलियों का वर्णन किया है -

1. आदर्शमूलक सैद्धान्तिक (Normative)
2. वैयक्तिक (Personal)
3. मध्यमार्गी व्यवहार (Transactional)

इसी विभाजन को गेटजेल एवं गूषा ने नोमोथिक (Nomothetic), इडियोग्राफिक (Idiagraphic) तथा ट्रांजेक्शनल (Transactional) कहा है ।

8.8.1 आदर्शमूलक शैली (Normative Style)

इसके अन्तर्गत नेता के संगठन में भूमिकागत व्यवहार आते हैं । इस भूमिका में संगठन की अपेक्षाओं पर ध्यान दिया जाता है व्यक्ति की अपेक्षाओं पर नहीं । नेता देखता है कि संगठन की अपेक्षाओं के अनुसार अनुकरणकर्ता कार्य सम्पन्न करते हैं या नहीं? व्यक्ति के कार्यों का संगठन की अपेक्षाओं की पूर्ति के आधार पर मूल्यांकन होता है । वस्तुत: यह शैली भूमिका सिद्धान्त (Role Theory) से प्रभावित है ।

8.8.2 व्यक्तिमूलक (Personal Style)

इस शैली के अन्तर्गत व्यक्तिगत अपेक्षाओं पर ध्यान दिया जाता है । यह देखा जाता है कि संगठन में व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति हो रही है अथवा नहीं । इसके अनुसार संगठन से कहीं अधिक महत्वपूर्ण भूमिका व्यक्ति की होती है । यदि व्यक्ति की भूमिका उपयुक्त हो, उसकी आवश्यकताओं की संतुष्टि हो तो संगठन अच्छा विकास कर सकता है ।

व्यक्ति को अधिक दायित्व दीये जाने चाहिए, बजाय इसके कि निर्दिष्ट अपेक्षाओं के अनुरूप उसे आचरण के लिए बाध्य किया जाए ।

इस शैली के अनुसार संगठन में पूर्ण दक्षता प्राप्त करने के लिए उच्चाधिकारियों तथा अनुकरणकर्ताओं की भूमिका में अपेक्षाओं के अनुरूप व्यवहार होना आवश्यक है । प्रत्येक व्यक्ति को । अपनी वास्तविक भूमिका का सही ज्ञान होना चाहिए तथा अपेक्षित भूमिका तथा वास्तविक व्यवहार की भूमिका के अन्दर को कम से कम करने का यत्न करना चाहिए ।

8.8.3 मध्यमार्गी व्यवहार शैली (The Transactional Style)

इस शैली के अनुसार जहाँ एक ओर व्यक्तिगत अपेक्षाओं पर ध्यान दिया जाता है, वहीं संगठन की अपेक्षाओं का भी ध्यान रखा जाता है । इस प्रकार यह एक मध्यवर्गीय नेतृत्व शैली है जिसमें व्यक्ति और संगठन की अपेक्षाओं के मध्य समन्वय रखने का प्रयास किया जाता है।

इस स्टाइल के अनुरूप नेतृत्व को अन्तर्विरोधी व्यक्तित्व सम्बन्धी तथा संगठन की अपेक्षाओं के बीच तालमेल रखने का यत्न करना होता है । नेता के लिए यह बड़ी ही कठिन स्थिति होती है । सही अपेक्षाओं का समन्वय ही उसकी कसौटी है । अत: इसमें सफलता बहुत कुछ नेतृत्व की क्षमता पर निर्भर करेगी ।

निम्नांकित चित्र इस स्टाइल को और भी अधिक स्पष्ट करता है -

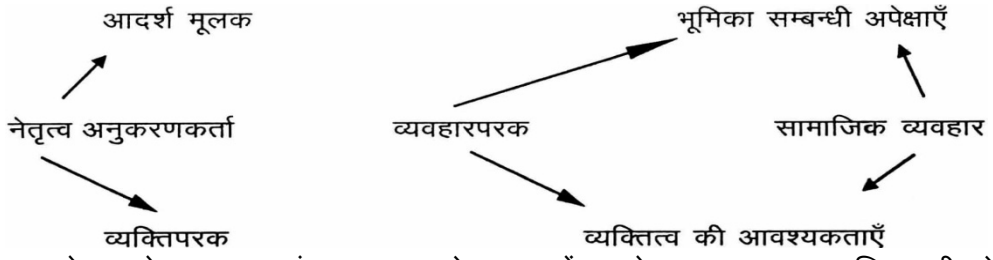

नेतृत्व के महत्त्व एवं व्यापकता को ध्यान में रखते हुए यह कहना उचित नही होगा कि मात्र ऊपर वर्णित शैलियाँ ही होती हैं वस्तुत: हर नेता की अपनी स्टाइल होती है । कभी-कभी जिसे हम जनतांत्रिक शैली कहते हैं, उसके व्यवहार आधिकारिक शैली से मिलते जुलते देखे जा सकते हैं । इसी प्रकार आधिकारिक स्टाइल नेतृत्व शैली में बहुत से गुण जनतंत्रीय शैली के पाए जा सकते हैं ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. शैक्षिक प्रबन्ध मे नेतृत्व की प्रमुख शैलियों का उल्लेख कीजिए । आपको कोनसी नेतृत्व शैली उपयुक्त लगती है ? क्यों ?
2. अनुकरणकर्ताओं के आधार पर प्रमुख नेतृत्व शैलियों का उल्लेख कीजिए ।

8.9 नेतृत्व शैली सम्बन्धित आधुनिक मॉडल (Modern Models related to Leadership style)

किसी संगठन या संस्थान में कौनसी स्टाइल काम में आती है या श्रेयस्कर हो सकती है इसके संबंध, में नेतृत्व शैली सम्बन्धी कुछ मॉडल की हम यहाँ चर्चा करेंगे ।

1. संभावित व्यवहार मॉडल

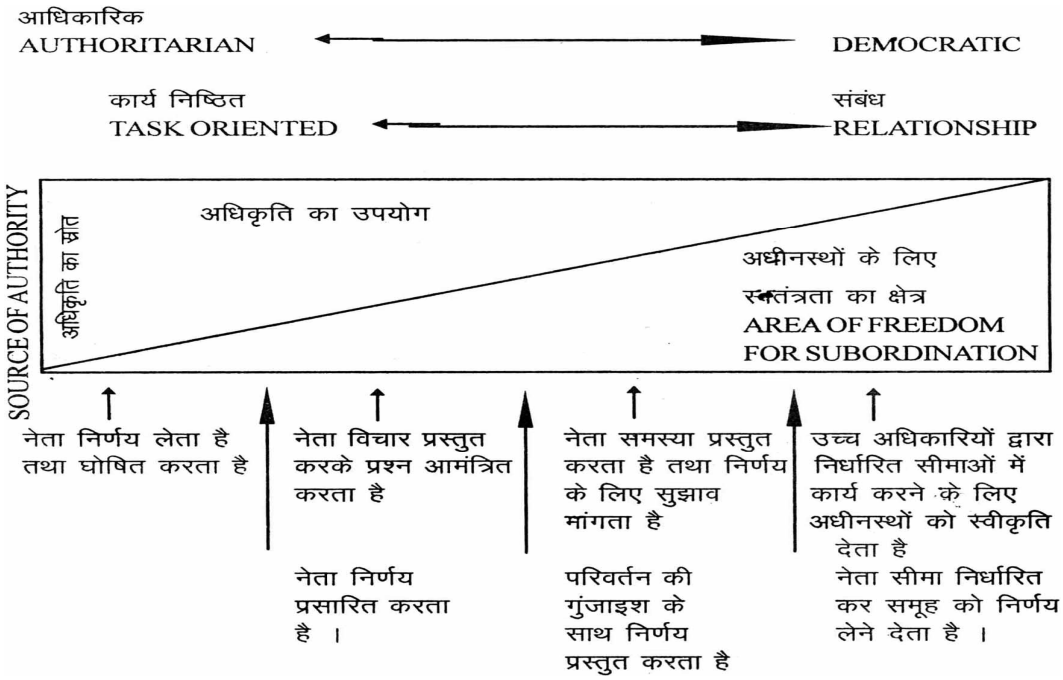

संभावित व्यवहारों की क्रम रेखा में नेतृत्व शैली स्पष्ट दिखाई देती है ।

उपर्युक्त मॉडल यह भली प्रकार से प्रदर्शित करता है कि नेतृत्व में जितनी अधिक आधिकारिक प्रवृत्ति होगी, निर्णय या अन्य कार्यक्रमों में अधीनस्थ लोगों की सहभागिता उतनी ही कम होगी । जितना कम नेतृत्व के अधिकार का प्रयोग होगा, उतना ही अधिक अधीनस्थ लोग उनके निश्चित अधिकार-क्षेत्र के अन्दर प्रशासन में भाग ले सकते हैं ।

2. हैल्पिन का अगुवाई संरचना मॉडल

हैल्पिन ने नेतृत्व व्यवहार को प्रदर्शित करने के लिए एक दूसरा अगुवाई संरचना मॉडल प्रस्तुत किया जिसमें दो व्यवहारों का यथा तथा मानवीय संबंध संरचना का प्रयोग किया गया है । देखें निम्न रेखा चित्र को-

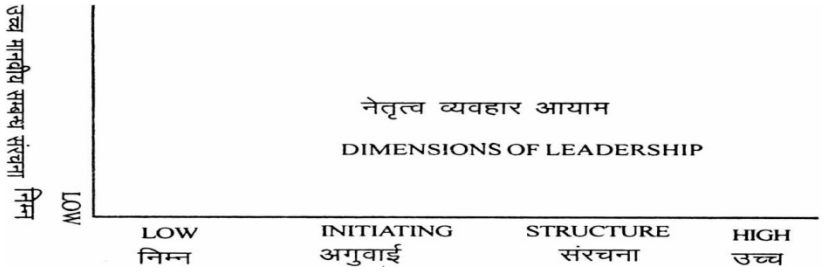

3. ओहियो ग्रिड संकल्पना मॉडल

इस संकल्पना के अन्तर्गत यह माना गया है कि यदि नेतृत्व को दो क्षेत्रों में व्यवहार करना हो तो वह आवश्यक नहीं है कि वह समान रूप से दोनों क्षेत्रों में व्यवहार करे कि

रेखाचित्र में अगुवाई संरचना तथा मानवीय सम्बन्ध संरचना के अन्तर्गत व्यक्त किया गया है । वस्तुत: नेतृत्व व्यवहार के और भी क्षेत्र हो सकते हैं ।

अगुवाई संरचना के अन्तर्गत नेता का वह व्यवहार आता है जिसके द्वारा वह संगठन में समूह की क्रियाओं को परिभाषित करता है तथा उनका गठन करता है । वह प्रत्येक कार्यकर्ता की भूमिका, उत्तरदायित्व व कार्य उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित करता है । वह उन विधियों व कार्य प्रणालियों का भी निर्धारण करता है जिनको अपना कर उनके मातहत कार्यकर्ता उत्पादन लक्ष्य को प्राप्त करते हैं ।

मानवीय सम्बन्ध संरचना के अन्तर्गत नेता का वह व्यवहार आता है, जो वह अपने समूह के साथ :अन्त: प्रतिक्रिया करते समय प्रदर्शित करता है । इसमें उसके परस्पर विश्वास तथा आदर के भाव प्रदर्शित होते हैं । इसमें समूह की आवश्यकताओं का ध्यान, निर्णय प्रक्रिया में उनकी सहभागिता भी परिलक्षित होती है । निम्नलिखित चित्र से यह तथ्य और स्पष्ट हो जाता है -

ओहियो राज्य नेतृत्व ढाँचा

OHIO STATE LEADER GRID

मानवीय संबंध CONSIDERATION			
उच्च HIGH	उच्च मानवीय संबंध HIGH CONSIDERATION 2. निम्न संरचना LOW ST	उच्च मानवीय संबंध HIGH CONSIDERATION 3. उच्च संरचना HIGH STRUCTURE
निम्न LOW	निम्न मानवीय संबंध 1. LOW STRUCTURE निम्न संरचना LOW STRUCTURE	निम्न मानवीय संबंध 4- LOW CONSIDERATION उच्च संरचना HIGH STRUCTURE
	निम्न LOW STRUCTURE	संरचना STRUCTURE	उच्च HIGH

उपर्युक्त चित्र को देखने से पता चलता है कि नेतृत्व व्यवहार की चार स्थितियाँ बनती हैं-

1. उच्च मानवीय सम्बन्ध तथा निम्न संरचना
   (High Consideration & Low Structure)
2. उच्च संरचना व निम्न मानवीय संबंध
)High Structure & Low Consideration)
3. उच्च संरचना तथा उच्च मानवीय संबंध
   (High Structure & High Consideration)
4. निम्न संरचना तथा निम्न मानवीय संबंध
   (Low Structure & Low Consideration)

जो नेता अगुवाई सम्बन्ध (Initiating Structure) तथा मानवीय (Consideration) दोनों पर उच्च व्यवहार प्रदर्शित करते हैं वो प्रभावी नेता माने जाते हैं तथा इसके विपरीत अन्य दो व्यवहार वाले नेता अप्रभावी माने जाते हैं ।

4. नेतृत्व एकीकृत प्रतिमान (Integrated Model of Leadership)

टेरी तथा फ्रेंकलिन के अनुसार नेतृत्व विकास में चार कारक निहित हैं -

1. नेता 2. अनुयायी 3. संगठन 4. सामाजिक मूल्य

निम्नलिखित रेखाचित्र से यह प्रतिमान स्पष्ट हो जाता है -

नेतृत्व एकीकृत प्रतिमान

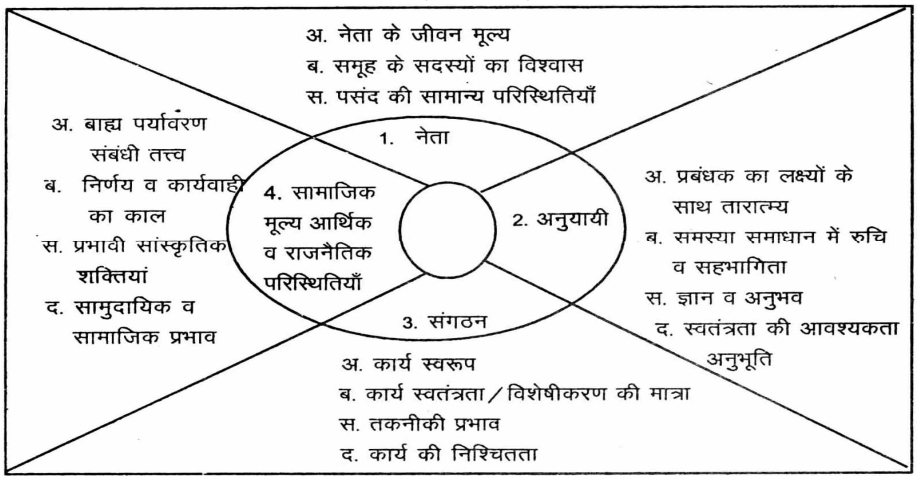

उपर्युक्त रेखाचित्र में प्रदर्शित चार तत्त्वों तथा उनको प्रभावित करने वाले कारकों पर यदि विचार किया जाये तो यह स्पष्ट होता है कि नेतृत्व अपने जीवन मूल्यों, समूह के सदस्यों में परस्पर विश्वास तथा उन परिस्थितियों को जिन्हें वह पसन्द करता है, के आधार पर विकसित होता है । नेतृत्व का अनुयायी या कार्यकर्ता दूसरा घटक है । कार्यकर्ता नेतृत्व के साथ मिलकर परस्पर विश्वास, समझ और सहयोग से समस्याओं का हल ढूंढते हैं तथा समस्याओं को सुलझाते हैं । ज्ञान और अनुभव नेतृत्व की कुशलता बढ़ाते हैं । संगठन की परिस्थितियाँ, तीसरा महत्त्वपूर्ण कारक है । इसके अन्तर्गत संगठन का किसी विशिष्ट क्षेत्र में विशेषीकरण, तकनीकी कुशलता तथा कार्य करने की संस्थितियाँ, कार्यकर्ताओं को प्राप्त स्वतंत्रता तथा कार्य की निश्चितता आती है । संगठन सामाजिक मूल्य आर्थिक व राजनैतिक परिस्थितियाँ हैं जो तात्कालिक बाह्य सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण से प्रभावित होती है, इनका प्रभाव नेता की निर्णय शैली अथवा कार्यवाही पर पड़ता है ।

यदि उपर्युक्त कारकों के आधार पर विद्यालयी का प्रशिक्षण दिया जाए तो नेता के अन्दर विद्यमान गुणों के आधार पर प्रभावी नेतृत्व प्रदान किया जा सकता है ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

नेतृत्व शैली संबंधित निम्नलिखित आधुनिक मॉडल की सविस्तार व्याख्या कीजिए।

Explain following Modern Leadership Style Models in detail.

1. संभावित व्यवहार मॉडल (Possible Behaviour Model)
2. हेल्पिन का अगुवाई संरचना मॉडल (Helpin's Initiating Structure model)
3. ओहियो ग्रिड संकल्पना मॉडल (Ohio Grid Concept Model)

4.	नेतृत्व एकीकृत प्रतिमान (Integrated Model of Leadership)

8.10 सारांश (Summary)

विद्यालयी संस्थितियों में एवं किसी भी प्रबंधन में संस्था प्रधान एक नेता होता है । संस्था की समग्र गतिविधियाँ उसी पर आधारित होती है । अत: आवश्यक है कि उन्हें नेतृत्व शैलियों का ज्ञान हो । उनसे यह अपेक्षा भी है कि वह उस नेतृत्व शैली को अपनाए जिससे संगठन व समूह की अपेक्षाओं को पूरा किया जा सके । प्रस्तुत अध्याय में यही प्रयास किया गया है कि विभिन्न नेतृत्व शैलियों को समझकर कोई नेता स्वयं निर्णय ले सके या इन सबके अध्ययन के पश्चात् अपनी कोई शैली विकसित कर सके ।

अभ्यास प्रश्न (Exercise)

1. शैक्षिक प्रबन्ध के अर्थ तथा उसकी आवश्यकताओं के संदर्भ मे नेतृत्व की प्रमुख विशेषताओं का विस्तृत वर्णन करिए ।
3 शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व सम्बन्धी गुण-सिद्धान्त पर एक निबन्ध लिखिए ।
4 नेतृत्व के प्रकार तथा इसकी शैलियों को स्पष्ट करते हुऐ एक समालोचनात्मक निबन्ध लिखिए।

8.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. Aggarwal J.C., School Administration, Arya Book Depot, Karol Bagh, New Delhi -5
2. Argyris Charles, Research Trends in Executive Behaviour in Advance Management, 1980
3. Bhagtnagar, R.P. and Agrawal, V.Educational Administration, R.Lall Book Depot, Meerut,2002.
4. Camphell, R.F. Gregg, Russel T.,Administrative Behaviour in Education, New York, Harper and Brothers Publishers, 1957
5. Mathur, S.S. Educational Administration, Principles and Practices, Krishna Brothers, Jullandhar, 1959
6. Mukherji, S.N. Secondary School Administration, Achary Book Depot, Baroda 1963
7. Oad, L.K., Educational Administration, Rajasthan Hindi Granth Academy, Jaipur,1991.

इकाई 9

शैक्षिक पर्यवेक्षण

(Educational Supervision)

इकाई कीं संरचना

9.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

9.2 शैक्षिक पर्यवेक्षण का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Concept of Educational Supervision)

9.3 शैक्षिक पर्यवेक्षण की आधुनिक संकल्पना (Modern concept of Educational Supervision)

9.4 आधुनिक शैक्षिक पर्यवेक्षण की विशेषताएँ (Characteristics of Modern Educational Supervision)

9.5 शैक्षिक पर्यवेक्षण के उद्देश्य (Objectives of Educational Supervision)

9.6 पर्यवेक्षण की प्रकृति (Nature of Supervision)

9.7 शैक्षिक पर्यवेक्षण की आवश्यकता (Need of Educational Supervision)

9.8 शैक्षिक पर्यवेक्षण के स्तर (Levels of Educational Supervision)

9.9 शैक्षिक पर्यवेक्षण के क्षेत्र (Scope of Educational Supervision)

9.10 भारत में विद्यालय निरीक्षण की वर्तमान स्थिति (Present Status of School Inspection in India)

9.11 पर्यवेक्षण कार्य के कुछ महत्वपूर्ण पहलू (Some important Aspects of Supervision work)

9.12 पर्यवेक्षण के घटक (Components of Supervision)

9.13 पर्यवेक्षण का उत्तरदायित्व (Responsibilities of Supervision)

9.14 शैक्षिक पर्यवेक्षण के प्रकार (Types of Educational Supervision)

9.15 शैक्षिक पर्यवेक्षण की तकनीकें (Techniques of Educational Supervision)

9.16 शैक्षिक पर्यवेक्षण में मानवीय संबंध (Human Relations in Educational Supervision)

9.17 पर्यवेक्षक की परिभाषा (Definition of Supervisor)

9.18 पर्यवेक्षक की स्थिति (Position of Supervisor)

9.19 पर्यवेक्षक के उत्तरदायित्व (Responsibilities of Supervisor)

9.20 प्रभावी एवं सफल शैक्षिक पर्यवेक्षण की कुंजी (Keys to Effective and Successful Educational Supervision)

9.21 सारांश (Summary)

9.22 संदर्भ (References)

9.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेंगे-

1. शैक्षिक पर्यवेक्षण का अर्थ एवं सम्प्रत्यय बता सकेंगे ।
2. आधुनिक शैक्षिक पर्यवेक्षण का सम्प्रत्यय और विशेषताओं की विवेचना कर सकेंगे ।
3. शैक्षिक पर्यवेक्षण व विद्यालय पर्यवेक्षण के उद्देश्य स्पष्ट कर सकेंगे ।
4. पर्यवेक्षण की प्रकृति और आवश्यकता पर प्रकाश डाल सकेंगे ।
5. शैक्षिक पर्यवेक्षण के स्तर और क्षेत्रों की विवेचना कर सकेंगे ।
6. शैक्षिक पर्यवेक्षण के सिद्धान्तों को समझ सकेंगे ।
7. पर्यवेक्षण कार्य के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलू स्पष्ट कर सकेंगे ।
8. पर्यवेक्षण के घटक और शैक्षिक पर्यवेक्षण के प्रकारों की विस्तार से चर्चा कर सकेंगे ।
9. शैक्षिक पर्यवेक्षण की तकनीकों को बता सकेंगे ।
10. शैक्षिक पर्यवेक्षण में मानवीय सम्बन्ध पर प्रकाश डाल सकेंगे ।
11. पर्यवेक्षक की परिभाषा, स्थिति, उत्तरदायित्व भी स्पष्ट कर सकेंगे ।
12. प्रभावी एवं सफल शैक्षिक पर्यवेक्षण के बिन्दुओं को बता सकेंगे ।

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

शैक्षिक पर्यवेक्षण शैक्षिक परिचालनात्मक प्रबन्ध (Educational Operational Management) का केन्द्र बिन्दु होता है । शैक्षिक संस्था की सामान्य योजनाओं एवं नीतियों, का कार्य योजनाओं (Work Plans) में और कार्य योजनाओं को निष्पादन इकाइयों (Performance Units) में बदलने का महत्त्वपूर्ण कार्य शैक्षिक पर्यवेक्षण के माध्यम से ही किया जाता है । शैक्षिक पर्यवेक्षण व्यक्तियों को यह बतलाता है कि उनको क्या करना है । उस कार्य को करने में पर्यवेक्षण व्यक्तियों की सहायता करता है । शैक्षिक पर्यवेक्षण समन्वय प्राप्त करने का प्रमुख साधन है, इसके माध्यम से कार्यकर्ताओं को उच्च स्तरीय कार्य-निष्पादन एवं मनोबल प्राप्त करने हेतु प्रशिक्षित एवं उत्पेरित किया जाता है । शैक्षिक पर्यवेक्षण परिणामों को नियंत्रित करने का भी महत्त्वपूर्ण आधार है, इस प्रकार शैक्षिक पर्यवेक्षण एक प्रकार से नेतृत्व कार्य का विस्तार (Extension of Leadership Function) है, जिसका प्रयोग 'कार्य-निर्देशन' (Direction) में किया जाता है ।

9.2 शैक्षिक पर्यवेक्षण का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Concept of Educational Supervision)

शिक्षा शब्द-कोश जिसके लेखक कार्टर वी. गुड है, उन्होंने पर्यवेक्षण के जुल 23 प्रकारों का उल्लेख किया है और इसमें पर्यवेक्षण का अर्थ भी दिया है जिससे स्पष्ट होता है कि पर्यवेक्षण शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत सभी कर्मचारियों तथा शिक्षकों को नेतृत्व प्रदान करने

सम्बन्धी सभी प्रयास। शिक्षकों के विकास तथा व्यावसायिक उन्नति के लिए उत्प्रेरण, शिक्षण उद्देश्य, शिक्षण-सामग्री, मूल्यांकन आदि का चुनाव तथा सुधार । शैक्षिक पर्यवेक्षण का यह अर्थ अब मान्य नहीं रहा है, अब शैक्षिक पर्यवेक्षण का अर्थ मानते हैं कि वह उच्च दृष्टि जो संस्था के विकास को गति दे सके, उसके कार्यक्रम वर्तमान व भावी अपेक्षाओं के अनुरूप हों, जिसमें संस्था संगठन के सभी घटकों या इकाइयों का समुचित विकास हो सके । अत: इक्कीसवीं सदी में शिक्षक के व्यावसायिक उन्नयन के विभिन्न प्रयत्नों में पर्यवेक्षण में सुधार भी इन्हीं प्रयास क्रमों में से एक है, इसमें पर्यवेक्षण को अब एक ऐसी प्रक्रिया माना जाता है जिसमें शिक्षक और अधिकारी के मध्य सहयोग की भावना को अधिक महत्त्व दिया जाता है । हम कह सकते हैं कि पर्यवेक्षण ऐसी प्रक्रिया है जिसमें शिक्षक का सर्वोन्मुखी विकास सन्निहित है । अब पर्यवेक्षण की संकल्पना आधिकारिक दृष्टिकोण से जनतंत्रीय दृष्टिकोण आधारित हो गई है । इसके अनुसार परस्पर सहयोग, साहचर्य, समता का व्यवहार, पर्यवेक्षण में दृष्टिगत होता है ।

9.3 शैक्षिक पर्यवेक्षण की आधुनिक संकल्पना (Modern Concept of Educational Supervision)

आधुनिक युग के लगभग सभी शिक्षा शास्त्री- क्रासबी, हैरिस, कुर्टिन, विल्स, हैराल्ड एवं मूर इस बात को स्वीकार करते हैं कि शैक्षिक पर्यवेक्षण का लक्ष्य शिक्षण में सुधार से संबंध रखता है।

निगले एवं इबांस के अनुसार शैक्षिक पर्यवेक्षण के क्षेत्र के अन्तर्गत न केवल। शिक्षक एवं विद्यार्थी वरन् प्रशासक एवं अभिभावक के विकास को भी सम्मिलित करते हैं ।

विल्स के अनुसार आधुनिक पर्यवेक्षण अध्यापन व अधिगम के श्रेष्ठ विकास में सहायक है ।

हैरोल्ड एवं मूर भी स्वीकारते हैं कि शैक्षिक पर्यवेक्षण में वे प्रवृत्तियाँ आती हैं जिनका मूलत: सम्बन्ध उन परिस्थितियों के अध्ययन व सुधार से होता है जो प्रत्यक्षत: अधिगम, छात्र व शिक्षक के विकास से जुड़ी होती है ।

बार. बर्टन. ब्रूकनर ने आधुनिक पर्यवेक्षण की परिभाषा दी है जो अधिक व्यापक है । उन्होंने पर्यवेक्षण में निम्नलिखित तथ्यों को सम्मिलित किया है -

(1) यह एक विशेष तकनीकी सेवा है, जिसका मुख्य उद्देश्य उन सभी तथ्यों का सामूहिक रूप से अध्ययन करना है जिससे विद्यार्थी की प्रगति एवं विकास हो सके ।

(2) पर्यवेक्षक शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों के अनुरूप निर्देशन देता है ।

(3) पर्यवेक्षण समग्र अधिगम-अध्ययन प्रक्रिया को प्रभावी बनाने में योग देता है ।

(4) सभी शिक्षक सहयोगी की भाँति अधिगम में सुधार के लिए परस्पर सहयोग करते हैं ।

अत: शैक्षिक पर्यवेक्षण समग्र अध्यापक अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करता है । इसमें विद्यार्थी, शिक्षक, प्रशासक (पर्यवेक्षक) सभी का विकास होता है इसलिए यदि समग्र शिक्षण परिस्थितियों को सुधारना है तो शैक्षिक पर्यवेक्षण पर ध्यान देना आवश्यक है ।

9.4 आधुनिक शैक्षिक पर्यवेक्षण की विशेषताएँ (Characteristics of Modern Educational Supervision)

आधुनिक शैक्षिक पर्यवेक्षण की विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1. शैक्षिक पर्यवेक्षण में परस्पर उचित मानवीय संबंध आवश्यक है ।
2. यह जनतंत्रीय दर्शन पर आधारित है, अत: जनतंत्रीय मूल्यों जैसे- सहयोग, समानता, व्यक्ति का सम्मान, सहकार तथा सहभागिता का पर्यवेक्षण में ध्यान रखना आवश्यक है।
3. आधुनिक शैक्षिक पर्यवेक्षण वैज्ञानिक है इसलिए पर्यवेक्षण में वैधता, विश्वसनीयता तथा तथ्यों में क्रमबद्धता आवश्यक है । पर्यवेक्षण निष्कर्ष संदेह से परे होना आवश्यक है ।
4. यह आधुनिक तकनीकी पर आधारित है, अत विविध-कौशलों का ज्ञान पर्यवेक्षकों के लिए आवश्यक है ।
5. शैक्षिक पर्यवेक्षण समालोचना आधारित होता है ।
6. इसमें परस्पर सहयोग आवश्यक है अत: प्रत्येक कार्यकर्ता के लिए कोई ना कोई पर्यवेक्षण का दायित्व स्वीकार करना आवश्यक है ।
7. पर्यवेक्षण का क्षेत्र कक्षा-कक्ष तक नहीं है वरन् व्यापक है ।
8. प्रभावी परिणाम के लिए उचित प्रशिक्षण व नेतृत्व आवश्यक है ।
9. स्टाफ की नई शिक्षण तकनीकों में अनुस्थापना आवश्यक है ।
10. नियमित प्रगति के लिए. क्रियात्मक अनुसंधान अनवरत आवश्यक होते हैं ।

9.5 शैक्षिक पर्यवेक्षण के उद्देश्य (Objectives of Educational Supervision)

शैक्षिक पर्यवेक्षण का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है इसलिए इसके उद्देश्य भी अधिक हैं । शैक्षिक पर्यवेक्षण का उद्देश्य शिक्षण के सभी क्षेत्रों में समुचित उन्नति करने हेतु शिक्षकों में कौशल की वृद्धि । संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि शैक्षिक पर्यवेक्षण का उद्देश्य शिक्षा क्षेत्र में कार्यरत सभी व्यक्तियों की शैक्षणिक गतिविधियों को प्रभावी तथा समुचित बनाने की योजनाओं का विकास करना है, जिससे वे अपनी रचनात्मक क्षमताओं का समुचित उपयोग कर सके ।

ब्रीग्रस और जस्टमेन (Briggs and Justman) ने अपनी पुस्तक "Improving Instruction through Supervision" में शैक्षिक पर्यवेक्षण के उद्देश्यों की विवेचना की है इस संबंध में निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं -

(1) शिक्षा के उद्देश्यों, उपलब्धियों आदि को अधिक स्पष्टता से समझने में. शिक्षकों की सहायता करना ।

(2) शिक्षकों को संस्था के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं तथा समस्याओं से सुपरिचित कराना । साथ ही साथ इन आवश्यकताओं की पूर्ति तथा समस्याओं को हल करने हेतु शिक्षकों में आवश्यक कौशलों का विकास करना ।

(3) शिक्षकों को प्रभावी तथा सहयोगी समूह में सुसंगठित करना जिससे वे हिल मिलकर अपने शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति कर सके ।

(4) शिक्षकों की शिक्षण क्षमताओं और कौशल में समुचित विकास करना ।

(5) शिक्षकों को शिक्षण व बाल-विकास की नवीन विधियों से परिचित करना ।

(6) सीखने की प्रक्रिया में आने वाली विद्यार्थियों की कठिनाइयों का शिक्षक को ज्ञान कराना तथा विद्यार्थियों को अधिक सुगमता से सिखाने की विधियों से परिचित कराना तथा शिक्षकों को विद्यार्थियों की कठिनाइयाँ हल करने के योग्य बनाना ।

(7) शिक्षकों की योग्यताओं तथा क्षमताओं का ज्ञान करके उन्हें उसी प्रकार से कार्य सौंपना।

(8) शिक्षकों को सतत् उन्नति करते रहने की प्रेरणा देना ।

(9) नवीन शिक्षकों को विद्यालय के कार्यों से परिचित कराना तथा उन्हें विद्यालय वातावरण में ठीक से व्यवस्थित एवं समायोजित होने में आवश्यक सहायता देना ।

(10) शिक्षकों- संस्था - समाज के संबंधों के विकास में सहायक होना ।

(11) समस्यात्मक विद्यार्थियों की समस्याओं को समझने, उन्हें हल करने तथा अन्य सुधारात्मक कार्य करने की प्रेरणा शिक्षकों को देना ।

(12) विद्यालय तथा उनके कर्मचारियों को समाज में हो रही अनुचित आलोचना से बचाना।

(13) विद्यालय की समस्याओं के हल हेतु समाज को प्रेरणा देना ।

(14) निश्चित किए गए आदर्शों तथा उद्देश्यों तक छात्रों के विकास की पृष्ठभूमि में, शिक्षकों को उचित मूल्यांकन करना ।

9.5.1 विद्यालय पर्यवेक्षण के उद्देश्य (Objectives of School Supervision)

विद्यालय पर्यवेक्षण शैक्षिक पर्यवेक्षण का एक भाग है, इसके अन्तर्गत विद्यालय के अध्यापन-अधिगम संस्थितियों के पर्यवेक्षण के साथ-साथ विद्यालय की अन्य प्रकृतियों जैसे खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यकलाप, विद्यालय कार्यालय, भवन आदि विद्यालय से संबंधित सभी भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का पर्यवेक्षण सम्मिलित होता है । विद्यालय पर्यवेक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं -

(1) वृहत समाज की विद्यालय से अपेक्षाओं के अनुरूप विद्यालय के उद्देश्यों से शिक्षकों को परिचित कराना ।

(2) विद्यालय संसाधनों का प्रभावी अध्यापन व अधिगम प्रवृत्तियों में लगाना ।

(3) आधुनिक बाल विकास, समायोजन सम्बन्धी विद्यार्थियों की समस्याओं के निदान व उपकरण के लिए कदम उठाना ।

(4) शिक्षकों एवं छात्रों की समस्याओं से निकट का परिचय प्राप्त करना ।

(5) शिक्षकों की समस्याओं का सहानुभूतिपूर्वक समाधान खोजना तथा शैक्षिक विकास में योग देना ।

(6) शिक्षकों की विशेष योग्यताओं के विकास के अवसर प्रदान करना ।

(7) मानवीय संबंधों में परस्पर विश्वास उत्पन्न करना व सहयोग को बढ़ावा देना ।

(8) भावी अधिगम सम्बन्धी चुनौतियों के लिए विद्यार्थियो को तैयार करना ।

(9) शिक्षकों को व्यावसायिक विकास के अवसर प्रदान करना ।

(10) विद्यालय विकास की योजनाओं में तथा कार्यक्रमों में शिक्षकों का नियमित सहयोग प्राप्त करना ।

(11) नवीन शिक्षण कौशलों एवं शिक्षण विधियों से परिचित कराना तथा उनमें अनुस्थापना (adaptation) करना

(12) 'सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों का नियमित आयोजन करना ।

(13) विद्यालय व उसके कार्यों के प्रति निष्ठा जगाने के लिए उचित पर्यावरण सृजित करना।

(14) विद्यालय समुदाय तथा राष्ट्र के प्रति शिक्षक की स्वयं की भूमिका के प्रति सचेत करना ।

9.6 पर्यवेक्षण की प्रकृति (Nature of Supervision)

(1) पर्यवेक्षण की प्रकृति कर्मचारी--केन्द्रित अथवा कर्मचारी-उन्मुख होता है ।

(2) पर्यवेक्षण मानवीय सम्बन्ध दर्शन का पोषक होता है ।

(3) पर्यवेक्षण सबसे निचले स्तर के रेखा अधिकारी से संबंधित होता है ।

(4) पर्यवेक्षण अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ व्यवहार करता है, जो वैयक्तिक एवं सामूहिक दोनों रूप में सम्पर्क करते हैं ।

(5) पर्यवेक्षण में नियोजनात्मक तथा नियंत्रणात्मक उत्तरदायित्व सम्मिलित नहीं होता ।

(6) पर्यवेक्षण में न्यूनतम अधिकार सत्ता केन्द्रित होती है ।

(7) पर्यवेक्षण में निर्देशन एवं नेतृत्व की क्रियाएँ भी सम्मिलित होती हैं । वस्तुत: पर्यवेक्षण नेतृत्व का ही विस्तार भाग होता है ।

9.7 शैक्षिक पर्यवेक्षण की आवश्यकता (Need for Educational Supervision)

(1) आशातीत वृद्धि हुई है । साथ ही ज्ञान के द्रुतगामी विकास ने भी शिक्षाशास्त्रियों तथा शिक्षा-प्रशासकों के सामने एक नई चुनौती प्रस्तुत कर दी है कि वे किस प्रकार भावी पीढ़ी को अद्युनातन ज्ञान से परिचित करायें तथा किस प्रकार वे उन्हें भविष्य के अनुरूप अधिगम करने योग्य बनावे ।

(2) विद्यालय ज्ञान का केन्द्र होते हैं अत: उनमें उचित अध्यापन व अधिगम की अपेक्षा होती है। यह आश्वस्त होने के लिए कि विद्यालयों में समुचित अध्ययन-अध्यापन होता है, शिक्षक अध्यापन के योग्य है, अधिगम के लिए समुचित पर्यावरण है, विद्यार्थियों की प्रगति पर समुचित ध्यान दिया जाता है । इसमें पर्यवेक्षक की आवश्यकता स्वत: स्पष्ट हो जाती है ।

(3) प्रभावी पर्यवेक्षण के बिना शिक्षा के लक्ष्यों को पूरा करना सम्भव नहीं है । अत: शैक्षिक पर्यवेक्षण राष्ट्रीय शैक्षिक विकास के लिए अपरिहार्य आवश्यकता है ।

(4) निरन्तर बढ़ते हुए विद्यालयों ओर उनमें विद्यार्थियों की बढ़ती हुई संख्या व वैज्ञानिक तकनीकी विकास ने पर्यवेक्षण के कार्य को अत्यन्त जटिल बना दिया है इसलिए वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रभावी पर्यवेक्षण व कुशल पर्यवेक्षक दोनों ही शैक्षिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है ।

(5) शिक्षा-प्रशासन में प्रशासनिक दक्षता के विकास के लिए विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रयोग व शोध हुए हैं । अत: प्रभावी प्रबन्धन के लिए अनेक उपागमों का भी प्रचलन हुआ है इसलिए शैक्षिक पर्यवेक्षण में भी उन्हीं तकनीकों का तथा उपागमों का प्रयोग करना स्वाभाविक है । यही कारण है कि आधुनिक पर्यवेक्षण में अब अनेक उपकरणों जैसे टेप, टीवी., सीस.टीवी. , वीडियो टेप, निरीक्षण में ETCS,RCEM तथा पर्यवेक्षण उपागमों में एकल पर्यवेक्षण के स्थान पर पैनल पर्यवेक्षण, दल पर्यवेक्षण का प्रचलन है

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. पर्यवेक्षण की आधुनिक संकल्पना से आप क्या समझते हैं ?
2. शैक्षिक पर्यवेक्षण की आवश्यकता को अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिए ।
3. शैक्षिक पर्यवेक्षण के प्रमुख कौन-कौन से क्षेत्र हैं ? विस्तार से लिखें ।

9.8 शैक्षिक पर्यवेक्षण के स्तर (Level of Educational Supervision)

शैक्षिक पर्यवेक्षण की आवश्यकता प्रबन्धन के प्रत्येक स्तर पर अनुभव जाती है क्योंकि प्रबन्धन में सभी स्तर पर अधीनस्थों के साथ-साथ बहुत व्यक्तिगत सम्पर्क अनिवार्य होता है किन्तु शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षकों का शिक्षण कार्य, सर्वोत्तम करवाने व शत-प्रतिशत उपलब्धि प्राप्त करने के लिए कक्षा-शिक्षण स्तर पर किया जाता है । शैक्षिक पर्यवेक्षण को स्तर की दृष्टि से निम्नलिखित तीन स्तरों में विभक्त किया जा सकता है -

1. **उच्च प्रबन्धन पर्यवेक्षण (Top Management Supervision)** - इस स्तर के पर्यवेक्षण में राज्य स्तर के निम्नलिखित अधिकारी सम्मिलित होते हैं -

शिक्षा मंत्री, शिक्षा सचिव, शिक्षा निदेशक

2. **मध्य प्रबन्धन पर्यवेक्षण (Middle Management Supervision) -** स्तर के पर्यवेक्षण में संभागीय स्तर व जिला स्तर को सम्मिलित किया जा सकता है जिसके निम्नलिखित अधिकारी सम्मिलित होते हैं -

शिक्षा उप-निदेशक, जिला शिक्षा अधिकारी

3. **प्राथमिक अथवा प्रथम पंक्ति पर्यवेक्षण (Primary or First Line Supervision) -** इस स्तर के पर्यवेक्षण में विद्यालय स्तर एवं पंचायत समिति स्तर को सम्मिलित किया जा सकता है । पर्यवेक्षण के इस स्तर पर निम्नलिखित अधिकारी सम्मिलित होते हैं -

प्रधानाचार्य / प्रधानाध्यापक, जिला विस्तार अधिकारी, जिला परिषद्, ब्लॉक पंचायत इत्यादि ।

शैक्षिक पर्यवेक्षण के अंतर्गत इस स्तर का पर्यवेक्षण सबसे अधिक होता है जिससे कक्षा-शिक्षण-स्तर का पर्यवेक्षण शिक्षण की गुणवत्ता लाने हेतु किया जाता है ।

9.9 शैक्षिक पर्यवेक्षण के क्षेत्र (Scope of Educational Supervision)

शैक्षिक पर्यवेक्षण की परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि इस पर्यवेक्षण का विस्तार क्षेत्र सम्पूर्ण शिक्षण-प्रक्रिया से होता है या सम्पूर्ण शिक्षण-अधिगम संस्थिति से है । इस शिक्षण-प्रक्रिया के विभिन्न महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को विभिन्न श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है वे हैं- अधिगामक शिक्षक, पाठ्यक्रम और भौतिक-सामाजिक पर्यावरण । क्योंकि अधिगामक (Learners) विद्यालयों में छोटे छात्र होते हैं उनके सर्वांगीण विकास के लिए उनकी प्रकृति, रुचि, आवश्यकता और क्षमता के आधार पर शिक्षण कार्य सम्पादित किया जाए । शिक्षकों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है क्योंकि वह अपने ज्ञान, प्रशिक्षण, रुचि, गतिविधियों, क्रियाओं और व्यवहारों से इन शिक्षण परिस्थितियों को प्रभावित करते हैं जबकि पाठ्यक्रम सभी गतिविधियों और अनुभवों को सम्पूर्ण रूप से सुनियोजित करता है और अधिगामक के उचित विकास में योगदान देता है । भौतिक-सामाजिक पर्यावरण में विद्यालय का भौतिक पर्यावरण इसके अन्तर्गत विद्यालय भवन, उपकरण इत्यादि और विद्यालय परिसर के बाह्य भौतिक, पर्यावरण के साथ-साथ समुदाय की संस्कृति, आकांक्षाएँ, संस्कृति, लोकाचार एवं जीवन इत्यादि सम्मिलित किए जा सकते हैं ।

शैक्षिक प्रशासक विभिन्न शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों को प्रदान करने के साथ-साथ प्रबन्धन भी करते हैं । शैक्षिक पर्यवेक्षण इनका सतत् आंकलन करके उनमें आवश्यकतानुरूप सुधार करती है । इस प्रकार शिक्षकों, अधिगामकों पाठ्यक्रमों में निरन्तर संशोधन होता रहता है।

शैक्षिक पर्यवेक्षण का क्षेत्र उन सभी शैक्षिक गतिविधियों तक विस्तृत हो जाता है जिसका प्रमुख उद्देश्य विद्यालय की गतिविधियों व शिक्षण में अनुदेशन के माध्यम से सुधार हो ताकि शिक्षण की गुणवत्ता को बढाया जा सके । जनतंत्रीय जीवन दर्शन, मनोवैज्ञानिक शोध, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, अच्छे मानवीय शोध, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, अच्छे मानवीय संबंधों पर बल, समूह-गत्यात्मकता की समय, ज्ञान का विस्तार और शैक्षिक सेवाओं के परिणामस्वरूप शिक्षा जगत् में नवीन दर्शन विकसित हुआ जिसने शैक्षिक पर्यवेक्षण के क्षेत्र को बढ़ाया जिसके अंतर्गत शैक्षिक जगत की सभी गतिविधियों को सम्मिलित किया गया है ।

शैक्षिक पर्यवेक्षण के क्षेत्र को मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है:-

अ. पर्यवेक्षण की निदानात्मक भूमिका (Diagnostic Role of Supervision)

ब. पर्यवेक्षण की मार्गदर्शन सम्बन्धी भूमिका (Remedial or Guidance Role of Supervision)

स. पर्यवेक्षण के अन्य क्षेत्र (Other areas of Supervision)

अ. पर्यवेक्षण को निदानात्मक भूमिका (Diagnostic Role of Supervision)

इस भूमिका के अन्तर्गत मुख्य रूप से तीन पक्ष आते हैं -

1. कक्षा-शिक्षण का अवलोकन / निरीक्षण
2. शिक्षकों द्वारा कक्षा में दिए गए कार्य का पर्यवेक्षण
3. प्रधानाध्यापक द्वारा शिक्षकों को प्रदत्त कार्य का पर्यवेक्षण

(1) **कक्षा-शिक्षण का अवलोकन/निरीक्षण** : अनुदेशन के पर्यवेक्षण में कक्षा-शिक्षण का अवलोकन सर्वाधिक महत्त्व रखता है । अधिकांश शिक्षाशास्त्री तो कक्षा निरीक्षण को पर्यवेक्षण का पर्याय ही समझते हे ।

कक्षा शिक्षण निरीक्षण के कई उद्देश्य हो सकते हैं । किसी भी विद्यालय के प्रधानाध्यापक के लिए इसका उद्देश्य कक्षा की समस्याओं का पता लगाना होता है, इसके लिए -

(अ) शिक्षक का कक्षा शिक्षण में पाठ का विकास व प्रवर्तन कैसे किया जा रहा है ।

(ब) शिक्षक को कक्षा में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है ?

(स) शिक्षक को किस प्रकार सुझाव व सहायता दी जाए ताकि उसके कक्षा शिक्षण में गुणात्मक सुधार हो सके ।

नीगले एवं ईवान्स ने अपनी पुस्तक Handbook for Effective Supervision में कक्षा शिक्षण अवलोकन के निम्नलिखित उद्देश्य बताएं -

1. प्रधानाध्यापक एवं शिक्षक के मध्य एक अच्छा सम्बन्ध, सद्भाव बढ़ाने की दृष्टि से करना ।
2. शिक्षक की प्रगति के मूल्यांकन की दृष्टि से करना ।
3. समग्र सीखने की प्रक्रिया पर दृष्टिपात करने के लिए ।
4. शिक्षक के कमजोर और सुदृढ़ पक्षों को जानने की दृष्टि से करना ।

समग्र रूप से कक्षा-शिक्षण के पर्यवेक्षण के द्वारा निम्नलिखित उद्देश्य स्पष्ट रूप से पूर्ण होते हैं-

1. शिक्षक की कक्षा-शिक्षण सम्बन्धी कठिनाइयों का ज्ञान होता है ।
2. शिक्षकों की सहायता / सुझाव देने का आधार बनता है ।
3. शिक्षक की प्रगति का मूल्यांकन किया जा सकता है ।
4. सीखने की समग्र प्रक्रिया पर दृष्टिपात किया जा सकता है ।
5. विद्यार्थियों के स्तर का ज्ञान होता है ।
6. विद्यार्थियों के अधिगम सम्बन्धी कठिनाइयों का ज्ञान होता है ।
7. शिक्षक एवं विद्यार्थियों के परस्पर व्यवहार का ज्ञान होता है ।

8. शिक्षक एवं प्रधानाध्यापक के मध्य परस्पर निकट सम्बन्ध बनने का सुयोग मिलता है।

समग्र शिक्षण के सुधार का आधार ही कक्षा-शिक्षण पर्यवेक्षण है इसलिए शिक्षण प्रक्रिया के उन्नयन के इस आधारभूत पक्ष को अधिक वैज्ञानिक, विश्वसनीय, वैध बनाने के लिए प्रयासरत है । अनेक विद्वानों ने कक्षा-शिक्षण के प्रपत्र तैयार किए हैं । शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय भी प्राय: अपना स्वयं का त्रिबिन्दु मापनी उपकरण का निर्माण करके इस कार्य को वैज्ञानिक, विश्वसनीय वैध रूप प्रदान करने का प्रयास करते हैं ।

(2) शिक्षकों द्वारा छात्रों को कक्षा में दिये गये कार्य पर्यवेक्षण - यह कार्य भी पर्यवेक्षण की निदानात्मक भूमिका में आता है । इसके अन्तर्गत जो कार्य शिक्षक कक्षा में कराता है जैसे अध्यापन के समय पाठ का सारांश देना, गृह कार्य देना, प्रायोगिक कार्य करवाना आदि का समावेश होता है । इन कार्यो के पर्यवेक्षण से किसी भी शिक्षक की योग्यता, कार्य के प्रति निष्ठा, विषय के प्रति तैयारी आदि का पता लगाया जा सकता है ।

(3) प्रधानाध्यापक द्वारा शिक्षकों को दिए गए कार्यो का पर्यवेक्षण - विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के चहुँमुखी विकास हेतु अनेक पाठ्य सहगामी या पाठ्येत्तर प्रवृतियों का संचालन जैसे साहित्यिक सांस्कृतिक, खेलकूद शैक्षिक भ्रमण, क्लब, हॉबी इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम प्रवृत्तियाँ भी विषय संगोष्ठियों, स्टडी सर्किल, विज्ञान मेला, एस.यू.पी.डब्ल्यू. केम्प आदि । ये सभी कार्य शैक्षिक ही हैं जो बालक की विभिन्न योग्यताओं का विकास करते हैं । अत: प्रधानाध्यापक का इन कार्यों में रुचि लेकर आवश्यक मूल्यांकन करना अत्यन्त आवश्यक है ताकि समय-समय पर मार्गदर्शन प्रदान किया जा सके ।

(ब) पर्यवेक्षण की मार्गदर्शन संबंधी भूमिका (Remedial or Guidance role of Supervision)

जब प्रशासक शिक्षकों की शैक्षिक योग्यताओं, उनकी विशेषताओं, उनकी त्रुटियों तथा सीमाओं को जान लेता है तो यह आवश्यक हो जाता है कि वह उनके द्वारा सम्पन्न कार्यों को श्रेष्ठतर बनाने के लिए नियमित रूप से मार्गदर्शन प्रदान करे । प्रशासक या प्रधानाचार्य इन कार्यो को मुख्यत: तीन भागों में विभक्त करके सम्पन्न कर सकता है-

(अ) शिक्षकों की व्यक्तिगत व्यावसायिक कठिनाइयों के आधार पर उनके समाधान में योग देना: नेतृत्वकर्ता को शिक्षकों की व्यावसायिक विकास में योग देने के साथ ही एक योग्य सलाहकार भी होना आवश्यक है । सलाहकार के रूप में वह शिक्षकों के द्वारा किए जाने वाले विविध कार्यो के विकास में निरन्तर योग देना चाहिए । शिक्षकों के व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रोजेक्ट, नवीन विधाएँ, विद्यार्थियों द्वारा उत्पन्न समस्याओं के समाधान इत्यादि में मार्गदर्शन प्रदान करता है ।

(ब) प्रत्येक शिक्षक की शैक्षिक त्रुटियों एवं विशेषताओं के आधार पर त्रुटियों के परिमार्जन एवं विशेषताओं के विकास के लिए मार्गदर्शन प्रदान करना पर्यवेक्षण की मार्गदर्शन भूमिका के अन्तर्गत आधुनिक पर्यवेक्षण अत्यन्त कमजोर व अत्यन्त योग्य शिक्षकों की कमियां । त्रुटियों को दूर करने में सहायता प्रदान करता है तथा योग्य शिक्षकों को निरन्तर अपनी कार्य कुशलता एवं योग्यता बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करता है । इस हेतु उसको शिक्षकों के प्रत्येक कमजोर

पक्ष व सबल पक्ष का पता होना अत्यन्त आवश्यक है जिसके आधार पर उनके उन्नयन हेतु उचित मार्गदर्शन प्रदान किया जा सके । वास्तव में पर्यवेक्षक की यह भूमिका प्रमुख होती है ।

(स) शिक्षकों की अन्य शिक्षोत्तर क्षेत्रों में त्रुटियों को दूर करते हुए उनके सर्वतोन्मुखी विकास में योग देना इस क्षेत्र में पर्यवेक्षणकर्ता बहुत सहायता करता है । इसके लिए पर्यवेक्षक और स्टाफ के सदस्य मिलकर निम्नलिखित गतिविधियों का संचालन कर सकते हैं ताकि उनका उच्च विकास हो सके । वे हैं -

1. पाठ्यक्रम में पुन: दीक्षित करना ।
2. प्रदर्शन पाठ आयोजित करना ।
3. स्टडी सर्कल चलाना ।
4. वर्कशॉप, विषय गोष्ठियों, सेमिनार आदि आयोजित करना ।
5. शैक्षिक उपलब्धि हेतु पत्र-पत्रिकाओं एवं ग्रन्थों की व्यवस्था करना ।
6. अध्ययन समूह गोष्ठियाँ चलाना ।
7. फिल्म प्रदर्शन
8. विस्तार भाषणों का आयोजन
9. केन्द्रीय पुस्तकालय व्यवस्था
10. स्थानीय उच्च शिक्षण केन्द्रों का भ्रमण इत्यादि ।

इस प्रकार का मार्गदर्शन संबंधी भूमिका यदि सुनियोजित नियमित व व्यापक होगी तो बहुत उपयोगी रहेगी ।

(स) विद्यालय पर्यवेक्षण के अन्य क्षेत्र (Other Areas of School Supervision)

विद्यालय में न केवल शिक्षकों का संगठन होता है वरन् कार्यालय व उसका स्टाफ भी होता है जिसका पर्यवेक्षण आवश्यक है । इसके अन्तर्गत विद्यालय से संबंधित लेखावली (रिकार्ड), वित्तीय लेखा-जोखा, बजट, छात्रकोश निधि, छात्रवृत्ति के खाते आदि का समय पर पर्यवेक्षण करना । इसके अतिरिक्त विद्यालय भवन का जिसमें विद्यालय से सम्बंधित कक्षाकक्ष, कार्यालय, प्रशासनिक भवन, प्रयोगशालाएँ, छात्रावास, खेल-मैदान तथा उनमें प्रयुक्त विभिन्न फर्नीचर व उपकरण इत्यादि का भी समय-समय पर पर्यवेक्षण आवश्यक है ताकि उचित रख-रखाव के साथ-साथ वर्तमान आवश्यकता पर भी ध्यान रखा जा सके । वर्ष में एक बार सभी भौतिक संसाधनों का अनिवार्यत: भौतिक सत्यापन होना भी आवश्यक है ।

9.10 शैक्षिक पर्यवेक्षण के सिद्धान्त (Principles of Educational Supervision)

शैक्षिक पर्यवेक्षण के निम्नलिखित सिद्धान्त होते हैं -

(1) **पर्यवेक्षण का कार्यकारिणी सम्बन्ध प्रशासन से होना चाहिए (Supervision should be functionally related to administration)-** प्रशासन अन्य व्यवस्थाओं के साथ-साथ शिक्षण संस्थाओं को भौतिक सामग्री जैसे भवन, उपकरण प्रदान करता है जो शिक्षण, अधिगम संस्थिति का निर्माण करते हैं और शैक्षिक व्यवस्था के एक भाग को निर्मित करते हैं ।

पर्यवेक्षण इस संस्थिति में सुधार से संबंधित होते हैं । गील्नू और लेनोर के अनुसार, 'हालांकि पर्यवेक्षण प्रशासन के क्षेत्र में प्रदत्त विशिष्ट कार्यों को करती है जो उनके अन्त:भाग माने जाते हैं । प्राथमिक रूप से पर्यवेक्षण सम्पूर्ण प्रशासनिक जिम्मेदारियों में से एक अप्रबन्धकीय सेवा है ।' इससे स्पष्ट होता है कि ये दोनों कार्य से और घनिष्ठता से संबंधित हैं । ये एक दूसरे के साथ समन्वय और (supplement) सहायक करती हैं । अच्छा प्रशासन और अच्छा पर्यवेक्षण दोनों का एक ही कार्य होता है । प्रभावी स्तर के लिए शैक्षणिक प्रक्रिया के लिए अनुकूल दशाओं का सृजन करना और उसे बनाए रखना । एक दूसरे के बिना चल नहीं सकते हैं । प्रशासन शैक्षिक व्यवस्था या शिक्षण-अधिगम संस्थिति प्रदान करता है और पर्यवेक्षण उसका अध्ययन करता है और उसकी कमियों को और अच्छाइयों का मूल्यांकन ओर सतत् विकास करता है । प्रशासन और पर्यवेक्षण दोनों को परिचालनात्मक (functionally) माना जाता है क्योंकि ये एक दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते हैं । ये दोनों समन्वित, सह सम्बन्धित (complementary) और कार्य दोनों के सहयोग से होता है ।

(2) **पर्यवेक्षण दर्शन आधारित होना चाहिए (Supervision should be based on Philosophy) -** नीतियों, योजनाओं, उद्देश्यों, मूल्यों और पर्यवेक्षण का अर्थ का निर्धारण किसी दर्शन या समाज के जीवन के तरीके पर आधारित होना चाहिए जिनको शिक्षा प्रदान करनी है । लक्ष्यों, उद्देश्यों, नीतियों और योजनाओं को दार्शनिक विधि के द्वारा परख लेना चाहिए । विशेषतौर पर यह देखना कि सम्पूर्ण समुदाय के जीवन के लिए वह प्रासंगिक है । इसके लिए मात्रात्मक, परिणात्मक दत्तों का समालोचनात्मक परीक्षण करना होता है जिससे उनका गुणात्मक (Quantative) उपयोग हो । लक्ष्यों और उपादेयता का आकलन समाज की आवश्यकताओं, विश्वासों और आकांक्षाओं पर आधारित होता है । अत: शैक्षिक पर्यवेक्षण में दर्शन का योगदान, समाज की संस्कृति, मूल्यों, संसाधनों, आकांक्षाओं उनकी समस्याओं, पर्यवेक्षण शैक्षिक उपलब्धि के मूल्यांकन करने की प्रक्रिया सम्मिलित होते हैं । शिक्षा और जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है । इस पर बल देना और विषयवस्तु और शिक्षण विधियों जो एक व्यक्ति को प्रभावित करती है और यह व्यक्ति, समाज और सम्पूर्ण समुदाय का निर्माण करता है ।

(3) **पर्यवेक्षण वैज्ञानिक होना चाहिए (Supervision should be scientific) -** सभी प्रवृत्तियाँ, योजनाएँ, प्रविधियाँ, प्रक्रियायें वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित होनी चाहिए और । पर्यवेक्षण को प्रयोगों, निरीक्षण, निष्कर्ष, वस्तुनिष्ठता, विश्वसनीयता पर बल देना चाहिए । पर्यवेक्षण मैं प्रमापीकृत परीक्षणों, सांख्यिकी विश्लेषण, शोध निष्कर्षों का उपयोग करना चाहिए । वैज्ञानिक विधि अधिक से अधिक शुद्धता प्रदान करती हैं । वैज्ञानिक पर्यवेक्षण लक्ष्यों को पुन: अर्थापन (re-interprets) नीतियों, विधियों और सामग्रियों को जनतंत्रीय-सामाजिक जीवन और शिक्षा के अनुरूप प्रदान करता है । वैज्ञानिक पर्यवेक्षण का आरम्भ विद्यालय से संबंधित सभी गतिविधियों अधिगम सामग्रियों और शिक्षण तकनीकों की शुद्ध जानकारी से होती है । यह विशिष्ट परिस्थिति का ज्ञान, अधिगामक को प्रेरणा, व्यक्तित्व और अधिगम प्रक्रिया की प्रकृति की जानकारी देती है । इससे समालोचनात्मक विचार और उद्देश्यों के विश्लेषण के द्वारा किसी

संस्थिति, छात्रों और शिक्षकों को सुधारा जा सकता है । पर्यवेक्षक को अपने स्टाफ के सदस्यों के व्यक्तित्व की आवश्यकताओं का सावधानीपूर्वक अध्ययन करना चाहिए । जो विशेष संस्थिति की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षक जिम्मेदारी के कार्य में लगे होते हैं । यहाँ तक कि विद्यार्थियों की प्रगति पत्र का मूल्यांकन भी सतत् होते रहना आवश्यक है ।

जहाँ पर वैज्ञानिक विधियों का दृढ़ता से पालन नहीं किया जाता है वहाँ पर पर्यवेक्षण कार्यकर्ता का विचार था कि वो व्यापक, निष्पक्ष, उद्देश्य और विशिष्ट निष्कर्ष और व्यवस्थित संगठित करके कार्य करने के सिद्धान्त पर ला सकता है ।

(4) पर्यवेक्षण जनतंत्रीय होने चाहिए (Supervision should be democratic)

पर्यवेक्षण एक सहकारी साहसिक कार्य होना चाहिए जिसमें प्रत्येक को अपना योगदान देने का अधिकार हो । हर एक शिक्षक को शिक्षण विधि और शिक्षण सामग्रियों के चयन में सहयोग से निर्णय लेने. का अधिकार हो । आधुनिक पर्यवेक्षक प्रत्येक व्यक्तिगत, छात्रों के व्यक्तित्व, शिक्षकों और अन्य शैक्षिक कार्यकर्ताओं का सम्मान करता है और उनकी वैयक्तिक विभिन्नता के आधार पर पहचानता है । कुर्टलीविन के अनुसार, "पर्यवेक्षक नेतृत्वकर्ता को अपने धैर्य को जब नहीं खोना चाहिए जब समूह उनके स्तर के अनुरूप नहीं हो । उसको वह सभी यत्न करने चाहिए जिससे वे उत्साहित हों । अच्छे व्यवसाय में कार्य करके अच्छा महसूस करना किसी भी अनुदेशन कार्यक्रम की पूर्व आवश्यकता होती हौर । यह सही प्रक्रिया के ज्ञान के बिना नहीं हो सकता है, इसका ज्ञान होना बहुत मूल्यवान होता है । जोश, अगवानी करने वाला और प्रवीणता शिक्षण के लिए अति आवश्यक होते हैं ।"

जनतंत्रीय पर्यवेक्षण स्वतंत्र विचारों के व्यक्त करने, परिचर्चा करने, अपने अभिमत देने के बहुत अवसर मद करता है, जिसमें लगे हुए सभी व्यक्तियों की सहभागिता का स्वागत होता है और उन सभी के योगदान को शिक्षण-अधिगम, संस्थिति और प्रक्रिया के सुधार में लिया जाता है । ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति में ऊर्जा, सृजनता, तर्क करने की योग्यता, वृद्धि और विकास करने की क्षमता होती है । अत: अगवानी करने का उद्दीपन, आत्मविश्वास, जिम्मेदारियों का ज्ञान प्रत्येक कार्यकर्ता के कार्य करने में आए । समूह को जो कार्य मिलकर करना है वह स्पष्ट होना चाहिए ।

(5) **पर्यवेक्षण सृजनात्मक होना चाहिए (Supervision should be creative).-** किसी समस्या के समाधान हेतु समूह परिचर्चा में प्रत्येक संभागी को स्वतंत्र अभिव्यक्ति देने के लिए प्रोत्साहित करने वाला पर्यवेक्षण हो । सृजकता का अर्थ है नवीन सुझाव देना, नवीन प्रक्रियाओं, नवीन वस्तुओं को सृजित करने वाला हो । अत: पर्यवेक्षण अन्तर्निहित शक्तियों का बोध कराने वाला हो । इसे मौलिकता के उपयोग तथा विलक्षण सहयोग के विकास के अवसरों को प्रदान करना चाहिए । इसके अतिरिक्त पर्यवेक्षण वातावरण को निर्मित कर स्वरूप देने वाला होना चाहिए ।

अत: पर्यवेक्षण सृजनात्मक या मौलिक अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करने वाला और समूह के सभी सदस्यों का उसमें योगदान निहित हो । इसी के द्वारा समूह की प्रगति और विकास हो सकेगा । अच्छा पर्यवेक्षण वातावरण को इस प्रकार निर्मित करता है जिसमें समूह को

अधिकतम लाभ होता है । सृजनात्मक-सहभागिता एक मन्द गति वाली प्रक्रिया है पर दीर्घकाल में सृजनात्मक और पहल करने वाले नेतृत्वकर्ता द्वारा पूर्णरूपेण जनतंत्रीय जीवन को प्राप्त करने में सफलता हासिल होती है ।

(6) **पर्यवेक्षण प्रगति करने वाला हो (Supervision should be professional)** - पर्यवेक्षण प्रगति करने वाला हो अर्थात् पर्यवेक्षण के द्वारा शिक्षकों, विद्यार्थियों की प्रोन्नोति व विकास हो, जिसके फलस्वरूप समाज में सुधार हो । पर्यवेक्षण को नेतृत्व प्रदान करने वाला होना चाहिए जिससे शैक्षिक योजनाओं, नीतियों, रीतियाँ, सहज क्रियाशील होकर अन्तिम लक्ष्य की ओर अग्रसर हो यह सुनिश्चित किया जा सके । इसके द्वारा इस प्रकार का भौतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक वातावरण का विकास हो जिसमे शिक्षण-अधिगम विधियों का विकास हो सके । पर्यवेक्षण को सभी उपलब्ध संसाधनों, सामग्रियों और प्रयासों में समेकित (Integrated) और समन्वित होना चाहिए ।

(7) **पर्यवेक्षण व्यावसायिक होना चाहिए (Supervision should be professional) -** पर्यवेक्षण स्वयं के लक्ष्यों और उद्देश्यों के साथ एक सेवा का कार्य है । एक व्यवसाय की तरह इसको भी स्वयं का सतत् मूल्यांकन लक्ष्यों और उद्देश्यों के प्रकाश में या आधार पर करते रहना चाहिए । इसको योजनाओं, प्रक्रियाओं, व्यक्तियों की प्रशंसा करनी चाहिए जो इनके प्रमापों और विशिष्ट ज्ञान, कौशलों और तकनीकियों का विकास करते हैं । मूल्यांकन के द्वारा केवल निदान और विकास होना चाहिए । पर्यवेक्षक को व्यावसायिक प्रशिक्षण, अकादमिक विशेषज्ञ के साथ-साथ स्वयं को नवीन शैक्षिक विकासों की जानकारी होना भी आवश्यक है । वह सतत्, स्व-अध्ययन, स्व-निर्देशन और स्व-मूल्यांकन के द्वारा स्वयं की जिम्मेदारी और कर्त्तव्यों के प्रति सजग हो सकता है ।

(8) **पर्यवेक्षण के कुछ सामान्य सिद्धान्त (Some General Principles of Supervision) -** ये सिद्धान्त पर्यवेक्षकों को दिशा निर्देश प्रदान करने वाले होते हैं, वास्तव में ये शैक्षिक पर्यवेक्षण के कुछ तथ्य हैं जिनको प्रत्येक पर्यवेक्षक को अपने मस्तिष्क में रखना चाहिए । वे निम्नानुसार हैं-

1. शैक्षिक जगत के क्षेत्रों में विभिन्न शोधों के निष्कर्षों 'के निर्देशन में पर्यवेक्षण होना चाहिए । शोधों के निष्कर्ष सभी शिक्षकों और अन्य व्यक्तियों को पर्यवेक्षकों द्वारा बताने चाहिए ।
2. पर्यवेक्षण की प्रभाविकता का पर्यवेक्षकों स्वयं के द्वारा अपने स्तर पर और अन्य व्यक्तियों जैसे शिक्षकों, अधिकारियों, परामर्शकों इत्यादि की सहायता से लगातार आंकलन होता रहना चाहिए ।
3. शैक्षिक पर्यवेक्षण के लिए नियोजन करना आवश्यक है । इसमें सभी संभागियों को हर प्रकार की सहायता मिलनी चाहिए ।
4. पर्यवेक्षण के द्वारा प्रत्येक शिक्षक की वैयक्तिक आवश्यकता के अनुरूप होनी चाहिए अर्थात् प्रत्येक शिक्षक को आवश्यकतानुसार दिशा-निर्देश प्राप्त हों । इसके द्वारा

विद्यालयों के व्यक्तियों की आवश्यकताओं और समाज व संगठनों की आवश्यकताओं की मूर्ति होनी चाहिए ।

5. शैक्षिक ध्येय और उद्देश्य सदैव पर्यवेक्षण को संदर्भ प्रस्तुत करते हैं । इसका अर्थापन (interpret) शिक्षकों को, पर्यवेक्षकों के द्वारा बताना चाहिए ।

9.11 पर्यवेक्षण कार्य के कुछ महत्वपूर्ण पहलू (Some important Aspects of Supervision work)

फेलिक्स ए. नीग्रो ने पर्यवेक्षण कार्य से संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं में को सम्मिलित किया -

1. कार्यकर्ताओं को नवीनतम एवं अद्यतन तथ्यों से सूचित रखना ।
2. कार्यकर्ताओं की मान्यता से संबंधित इच्छा को संतुष्ट करना ।
3. अधीनस्थों को अधिकतम सम्भव स्वतंत्र निर्णय लेने की स्वीकृति देना ।
4. अधीनस्थों के साथ परामर्श एवं वार्ता हेतु सदैव तैयार रहना ।
5. थोड़े बहुत अधीनस्थों में अलोकप्रिय होने की सम्भावना स्वीकार करना ।
6. अति आशावादिता से दूर रहना ।
7. आदेशों के सही अर्थ निकालने और सही क्रियान्वयन का आश्वासन प्रदान ।
8. निरर्थक नियमों को समाप्त करना ।
9. ऐसे वचन न देना जिनको पूरा नहीं किया जा सके ।
10. यह मानना कि कभी अधीनस्थ अथवा सहायक उनसे भी अधिक बुद्धिमान होंगे ।
11. मित्र के पक्ष में भी भेदभाव करने से बचना ।
12. निष्ठा की आशा करना और निष्ठा प्रदान भी करना ।
13. अनुचित दबावों को झेलना ।
14. अधीनस्थों के हित के लिए संघर्ष करना ।
15. विशेषज्ञों के कार्यक्षेत्र में अतिक्रमण करने से दूर रहना ।

9.12 पर्यवेक्षण के घटक (Component of Supervision)

समस्त पर्यवेक्षण कार्य मूलत: एक से होते हैं । पर्यवेक्षण के सामान्य निम्नलिखित हैं

1. पर्यवेक्षण में तकनीकी मामलों को हाथ में लिया जाता है ।
2. पर्यवेक्षण में अधीनस्थों के साथ व्यवहार किया जाता है ।
3. पर्यवेक्षण में उपक्रम / संस्था की अन्य इकाइयों या दिमागों के कार्यों के साथ स्थापित किया जाता है ।
4. पर्यवेक्षण में कार्यकर्ताओं / कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है ।
5. पर्यवेक्षण में कार्य करने की समुन्नत विधियों का विकास एवं प्रयोग किया जाता है ।
6. पर्यवेक्षण में कार्यकर्ताओं / अधीनस्थों का मनोबल ऊँचा बनाए रखने का प्रयास किया जाता है

9.13 पर्यवेक्षण का उत्तरदायित्व (Responsibilities of Supervision)

समस्त पर्यवेक्षण कार्यों में निम्नलिखित सामान्य उत्तरदायित्व होते हैं -

(1) **कार्य नियोजन (Planning the work) :** पर्यवेक्षण कार्य करते समय पर्यवेक्षक अपने अधिकार क्षेत्र में कार्य का नियोजन करते हैं ।

(2) **आदेशन (Issuing orders)** - कार्य को सर्वोत्तम ढंग से पूरा करवाने के लिए पर्यवेक्षक द्वारा आदेश निर्गमित किये जाते हैं ।

(3) **कार्य-समन्वय (Coordinating the work) -** पर्यवेक्षक अपने अधीनस्थों के कार्य की देखभाल करता है और उसका समन्वय करता है ताकि कार्य को संतोषप्रद ढंग से पूरा करवाया जा सके ।

(4) **कार्य-नियंत्रण (Controlling the work)** - पर्यवेक्षक द्वारा प्रशासकीय नियंत्रण का कार्य भी किया जाना चाहिए ।

9.14 शैक्षिक पर्यवेक्षण के प्रकार (Types of Educational Supervision)

शैक्षिक पर्यवेक्षण के प्रमुख प्रकारों का विवरण इस प्रकार है -

1. **व्यक्तिगत पर्यवेक्षण (Personal Supervision) -** यह पर्यवेक्षण प्राय: संगठन के अधिकारी द्वारा होता है । अत: विद्यालय में यह कार्य प्रधानाध्यापक के द्वारा सम्पन्न किया जाता है । इस प्रकार के पर्यवेक्षण को व्यक्तिगत पर्यवेक्षण कहा जाता है जिसमें प्रधानाध्यापक शिक्षकों के द्वारा क्रियान्विति विभिन्न गतिविधियों का पर्यवेक्षण करके उसे उचित मार्गदर्शन व परामर्श प्रदान करता है । इस प्रकार का पर्यवेक्षण प्रधानाध्यापक को स्वयं ही इसलिए करना पड़ता है क्योंकि अन्य व्यक्ति के द्वारा पर्यवेक्षण करने पर शिक्षक आपत्तियाँ उठाते हैं ।

2. **विषय विशेषज्ञों द्वारा पर्यवेक्षण (Supervision by Subject Experts) -** इस प्रकार का पर्यवेक्षण विषय-शिक्षकों के द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं । अत: जिन विद्यालयों में एक विषय के एक से अधिक शिक्षकों की उपलब्धता होने पर ही सम्भव हो पाता है । यह कार्य केवल उसी शिक्षक को प्रदत्त किया जाता है जो विषय का अध्यापक के साथ-साथ शैक्षिक दक्षता भी रखता हो । इस प्रकार के पर्यवेक्षण बड़े विद्यालयों में सम्भव हो पाते हैं । विषय-विशेषज्ञों द्वारा पर्यवेक्षण करने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है वह -

- विषय-विशेषज्ञों का आधुनिक पर्यवेक्षण तकनीकी के ज्ञान का अभाव ।
- विषय- विशेषज्ञों का नवीन ज्ञान से अवगत नहीं होना ।
- विषय- विशेषज्ञों द्वारा निर्देशित/परामर्श देने के तरीकों का उपयोग गलत करना ।
- विषय-विशेषज्ञों के चयन करने में कठिनाई का अभाव ।

उपरोक्त दोनों प्रकार के पर्यवेक्षणों में कई कमियां दृष्टिगत होती हैं जो इस प्रकार हो सकती हैं -

1. स्वयं प्रधानाध्यापक का पर्यवेक्षण के क्षेत्र में अयोग्य होना ।
2. प्रधानाध्यापक के पास अधिक प्रशासनिक कार्यों का होना - प्रो. जे. पी. वर्मा के शोध अध्ययन के अनुसार पर्यवेक्षण की मुख्य कठिनाइयां अधोलिखित पाई गईं -

अ. प्रशासनिक कार्यों की अधिकता से पर्यवेक्षण की आवृत्ति कम हो जाती है ।

ब. प्रधानाध्यापक को सभी विषयों का ज्ञान नहीं होने के कारण अपने आपको योग्य नहीं पाता।

स. जो सुझाव/परामर्श शिक्षकों को दिए जाते हैं वह अधिकांशत: अमल में नहीं आते । इसका कारण एक यह भी हो सकता है कि शिक्षकों को प्रतिदिन 7 से 8 कालांश प्रति दिवस लेने पड़ते हैं । ऐसी स्थिति में सुझावों पर ध्यान नहीं दे पाते हैं ।

द. शिक्षकगण पर्यवेक्षक का स्वागत नहीं करते, उनका सहयोगात्मक रुख नहीं होता ।

य. पर्यवेक्षण अधिकारियों का रूख बजाए सहयोग के आलोचनात्मक लेता है ।

र. प्रधानाध्यापक के अतिरिक्त कमेटी, पैनल अथवा अन्य किसी भी प्रकार के अन्य पर्यवेक्षण का विरोध होता है अत: प्रगतिशील पर्यवेक्षण की विधियाँ काम में नहीं आती हैं । प्रो. एस.एन. मुखर्जी एवं प्रो. वर्मा दोनों के अध्ययन इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि अकेला प्रधानाध्यापक प्रशासनिक कार्यों में उलझे रहने के कारण पर्यवेक्षण प्रभावशाली ढंग से नहीं कर पाता । इसी कारण से कई राज्य में सरकार द्वारा 10 कक्षाओं पर एक पर्यवेक्षक की नियुक्ति का मानदण्ड निर्धारित किया है । वास्तव में यदि हमें प्रभावपूर्ण पर्यवेक्षण करना है तो विद्यालयों में आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करना आवश्यक है और देश के शेष राज्यों में भी ऐसी प्रवृत्ति का अनुकरण करना होगा ।

3. शैक्षिक पर्यवेक्षण के अन्य प्रकार

इसको मुख्यत: दो भागों में विभक्त किया जा सकता है -

अ. शैक्षिक पर्यवेक्षण भूमिका एवं दृष्टिकोण के आधार पर

ब. व्यक्तियों की संख्या के आधार पर

अ. शैक्षिक पर्यवेक्षण भूमिका एवं दृष्टिकोण के आधार पर

शैक्षिक पर्यवेक्षण भूमिकाओं और दृष्टिकोणों के आधार पर निम्नलिखित पर्यवेक्षण के प्रकार होते हैं -

अ- 'क्लिनीकल' पर्यवेक्षण

ब- निरीक्षणात्मक पर्यवेक्षण

स- विरोधात्मक / नियंत्रणात्मक पर्यवेक्षक

द- लोकतंत्रीय / सहयोगी पर्यवेक्षण

य- वैज्ञानिक पर्यवेक्षण

र- रचनात्मक पर्यवेक्षण

(अ) 'क्लिनीकल ' पर्यवेक्षण : पर्यवेक्षण का यह सम्प्रत्यय 'मेडिकल साइन्स' से लिया गया है जिसमें एक कक्षा को 'क्लिनीक' माना जाता है । शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में क्लिनीकल पर्यवेक्षण की प्रक्रिया में मुख्यत: तीन पक्ष होते हैं -

1. पर्यवेक्षण की योजना

2. क्रियान्वयन
3. मूल्यांकन ।

1. पर्यवेक्षण की योजना : इसके अन्तर्गत शैक्षिक संस्था के लक्ष्यों और उनकी वरीयता तय करना जैसे : सशक्त नेतृत्व, स्वस्थ विद्यालयी वातावरण, प्रभावी शिक्षण अधिगम इत्यादि । इसके अतिरिक्त शिक्षक निष्पत्ति मानक के अंतर्गत यह पूर्व में तय करना कि छात्र-अधिगम व शिक्षण का क्या स्तर होगा, इसके लिए क्या शिक्षण सामग्री अपेक्षित है, कौन-कौन से शिक्षण कौशलों का विकास किया जाना है ?

2. क्रियान्वयन - क्रियान्वयन में लक्ष्यों के संदर्भ में शिक्षकों की निश्चित उत्कृष्ट शिक्षण के मानदण्ड के अनुरूप शिक्षण क्रियान्विति के अंतर्गत शिक्षक की भूमिका, शिक्षक निष्पत्ति मानक तय करना और उसके अनुसार ही शिक्षण व्यवहार करना । शिक्षक द्वारा अनुदेशन के समय निम्नलिखित छह बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए -

1. पाठ्यक्रम पूरा करने पर क्या परिणाम निकलेगा, उन लक्ष्यों का चयन करना ।
2. शिक्षार्थियों की तैयारी का निदान ।
3. कार्यक्रम निष्पादन की योजना ।
4. कक्षा-प्रबन्धन का निर्माण
5. अधिकाधिक अधिगम के लिए सुगम अनुदेशन
6. पर्यवेक्षण द्वारा पुनर्बलन प्राप्त करना ।

3. मूल्यांकन : अन्त में शिक्षक निष्पत्ति / उपलब्धि ज्ञात करना कि निश्चित मानदण्डों के अनुरूप क्रियान्विति सम्पन्न हुई है या नहीं ।

क्लिनिकल पर्यवेक्षण विधि को क्लिनिकल आब्जर्वेशन चक्र कहा जाता है जिसमें पांच चरण होते हैं-

1. पर्यवेक्षण से पूर्व विचार-विमर्श : इसके अंतर्गत पर्यवेक्षण से पूर्व पर्यवेक्षण के निश्चित लक्ष्यों के बारे में चर्चा करते हैं ।
2. पर्यवेक्षण : इसके अंतर्गत कक्षा शिक्षण के अन्तर्गत होने वाली क्रिया-प्रतिक्रिया सम्बन्धी दत्तों को एकत्रित किया जाता है ।
3. विश्लेषण व संव्यूहन निर्माण सत्र : इसके अंतर्गत एकत्रित दत्तों की समीक्षा एवं विश्लेषण किया जाता है तथा उन्हें शिक्षण सिद्धान्तों और अनुसंधानों की पृष्ठभूमि में देखा जाता है ।
4. विचार-विमर्श : इसमें निरीक्षण एवं प्राप्त तथ्यों के आधार पर प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है ।
5. निरीक्षण के बाद की समालोचना : इसके अंतर्गत पर्यवेक्षण की उपयोगिता पर अनुदेशन पर पड़ने वाले प्रभाव पर मिलकर चर्चा करते हैं ।

क्लिनिकल पर्यवेक्षण को विशेषताएं

1. अनुदेशन सुधार की तकनीकी है ।

2. यह लक्ष्य आधारित कार्यक्रम है जिसमें विद्यालय और पर्यवेक्षक के विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं को मिलाकर चलाया जाता है ।
3. शिक्षक और पर्यवेक्षक के मध्य परस्पर विश्वास की अपेक्षा की जाती है ।
4. पर्यवेक्षक व शिक्षकों के सम्पर्क के द्वारा एक कार्यकारी सम्बन्ध स्थापित किया जाता है ।
5. इस प्रणाली में लचीली तकनीकी का प्रयोग किया जाता है ।
6. इससे यह मानकर चला जाता है कि पर्यवेक्षक, शिक्षकों के अनुदेशन व अधिगम के संबंध में जानता है ।
7. इस प्रणाली में पर्यवेक्षक के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है ।

(ब) निरीक्षणात्मक पर्यवेक्षण

पर्यवेक्षण का परम्परागत स्वरूप निरीक्षणात्मक माना जाता है जिसमें पर्यवेक्षण अधिकारी सर्वज्ञाता होता है, उसका उद्देश्य केवल त्रुटियाँ / कमियों का पता लगाना होता है । अधिकारियों का दृष्टिकोण छिद्रान्वेषण होता है । अत: इसे अधिकारिक पर्यवेक्षण भी कहते हैं । इस पर्यवेक्षण में आज्ञा, निर्देश, नियमों पर विशेष बल दिया जाता है । इस प्रकार के पर्यवेक्षण की एक परम्परागत कार्यविधि होती है । इस प्रकार के पर्यवेक्षण में पूर्व नियोजित, निश्चित, विशेष शिक्षण विधियों के क्रियान्वयन पर अधिक जोर दिया जाता है इसलिए शिक्षक पर्यवेक्षण के समय उन्हीं विधियों को अपनाते देखे जाते हैं । पर्यवेक्षण के बाद पर्यवेक्षक निर्धारित मानदण्डों व विधियों के आधार पर शिक्षक की सफलता को आँकता है । निश्चित विधियों व कार्य प्रणालियों में दक्ष शिक्षकों की प्रशंसा की जाती हैं, उन कार्यविधियों की निन्दा की जाती है, जिन्हें पर्यवेक्षक अनुपयुक्त मानते हैं ।

इस प्रकार के पर्यवेक्षण की सर्वाधिक टीका-टिप्पणी होती है क्योंकि निरीक्षक शिक्षक के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं । इसके अतिरिक्त कक्षा स्तर की भिन्नता के आधार पर विषय-वस्तु के स्तर में भी भिन्नता होती है अत: उसके अनुरूप ही वैयक्तिक सुधार हेतु सुझाव देने चाहिए । पूर्व में तैयार विधियों या सुझावों को सभी स्तरों पर उपयुक्त नहीं माना जा सकता है । वास्तविकता तो यह है कि हर एक शिक्षक की अपनी शिक्षण विधि होती है, अपना व्यक्तित्व एवं क्षमताएँ होती हैं ऐसे में कोई भी एक विधि सभी के लिए उपयुक्त नहीं हो सकती है । यह पर्यवेक्षण विधि निम्नलिखित कारणों से उपयुक्त हो सकती है-

1. इस विधि में निश्चित कार्यविधि, कार्य-व्यवस्था होती है, इस दृष्टि से उपयुक्त है ।
2. समय एवं साधनों की बचत होती है ।
3. इस विधि से प्रणाली में सुधार शीघ्रता से होता है ।
4. अधिकारी के आने के भय से कार्यक्रम नियमित व विधिपूर्वक सम्पन्न होते हैं ।
5. उन्नति के अवसरों में विपरीत निरीक्षण रिपोर्ट के परिणामस्वरूप विकास में बाधा के कारण शिक्षक पूर्ण निष्ठा और लगन से कार्य करते हैं ।

निरीक्षणात्मक पर्यवेक्षण प्रकार के कुछ दोष निम्नानुसार हे -

1. यह छिद्रान्वेषी होता है ।

2. संकुचित मनोवृत्ति पर आधारित है ।
3. अविश्वास पर आधारित है ।
4. मानवीय मूल्यों के विपरीत है ।
5. वैयक्तिक सृजनशीलता में बाधक है ।
6. विद्यालय में नीरस वातावरण को विकसित करती है ।
7. इसमें शिक्षकों की मौलिकता व स्वत्व का हास होता है ।
8. शिक्षकों के मनोभावों को दबाया जाता है, उनकी अभिव्यक्ति में बाधक है ।
9. आत्मविश्लेषण, समालोचना का अभाव है ।
10. संकीर्ण मनोवृत्ति पर आधारित है ।
11. मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के विपरीत है ।
12. जनतंत्रीय मूल्यों-समानता, सहकार, स्वतंत्र अभिवृद्धि में बाधक है ।

(स) विरोधात्मक एवं नियंत्रणात्मक पर्यवेक्षण - यह पर्यवेक्षण शिक्षक एवं प्रधानाध्यापक और नेतृत्व की कठिनाइयों को जानने के लिए होता है और इसमें पर्यवेक्षण कठिनाइयों का निराकरण करवाता है । अत: पर्यवेक्षक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह अपने क्षेत्र में पर्याप्त अनुभवी हो । यह पर्यवेक्षण अधिकारिक पर्यवेक्षण के समान है अन्तर केवल इतना होता है कि इसमें पर्यवेक्षक शिक्षकों की कठिनाइयों को जानकर उनके अधिकार पर सुधार के लिए कार्य करता है । इस कार्य के लिए पर्यवेक्षक निश्चित उपकरणों का प्रयोग भी कर सकता है इसलिए पर्यवेक्षक न केवल अनुभवी परन्तु पर्यवेक्षण तकनीकों में भी दक्ष होना आवश्यक है ।

(द) लोकतंत्रीय पर्यवेक्षण (Democratic Supervision) - इस पर्यवेक्षण को सहयोगी पर्यवेक्षण भी कहा जाता है । इस प्रकार के पर्यवेक्षण में प्रधानाध्यापक, शिक्षक, विषय-विशेषज्ञ आदि सभी संबंधित व्यक्ति परस्पर सहयोग से योजनानुसार एक दूसरे को समस्या, निदान एवं सुलझाने में योग देते हैं । इसमें शिक्षक को यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि पर्यवेक्षण उसमें शैक्षिक एवं व्यावहारिक विकास के लिए है केवल त्रुटि निकालना उद्देश्य नहीं है इसलिए इस प्रकार का पर्यवेक्षण आधुनिक दर्शन के अनुरूप है जिसमें हर व्यक्ति को सम्मान से देखा जाता है तथा लोकतंत्रीय सिद्धान्तों के आधार पर आधारित होते हैं अत: इस प्रकार के पर्यवेक्षण में कुछ विशेषताएँ इस प्रकार होती हैं -

1. लोकतंत्रीय मूल्यों / सिद्धान्तों का सम्मान किया जाता है ।
2. शिक्षक के व्यक्तित्व, विचारों का सम्मान किया जाता है ।
3. अध्यापन संबंधी समस्याओं का निराकरण सम्भव होता है ।
4. इस पर्यवेक्षण में नेतृत्व के गुणों का विकास होता है ।
5. सामूहिक सहयोग से लिए गए निर्णयों की क्रियान्विति सम्भव होती है क्योंकि वे निर्णय स्वयं उनके होते हैं ।
6. इस प्रकार के पर्यवेक्षण में समस्त शिक्षण परिस्थितियों का व्यापक मूल्यांकन होता है ।

लोकतंत्रीय प्रकार का पर्यवेक्षण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है । इसमें मुख्य विशेषताएँ भी होती हैं, किन्तु फिर भी इसकी कुछ सीमाएँ निम्नलिखित हैं -

1. पर्यवेक्षकों का कम योग्य होना ।
2. अप्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या अधिक होना ।
3. अल्पकालीन प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापक
4. शिक्षकों की मौलिकता व ज्ञान में कमी होना ।
5. पर्यवेक्षकों की संख्या में अध्यापकों की संख्या का अधिक होना इत्यादि ।

(य) वैज्ञानिक पर्यवेक्षण (Scientific Supervision)- वैज्ञानिक पर्यवेक्षण उसे कहते हैं जो विश्वसनीय, वैध एवं क्रमबद्ध एवं सुनियोजित ढंग से किया जाता है । इस प्रकार का पर्यवेक्षण आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकी के उपकरणों के माध्यम से मापने योग्य वैज्ञानिक विधियों से किया जाता है । इन विधियों में बन्द परिपथ दूरदर्शन और कम्प्यूटर के अलावा शिक्षकों के व्यवहार के मापने के उपकरणों / विधियों के द्वारा सम्पन्न की जाती है जो विश्वसनीय, वैध होते हैं ।

1 नियोजन 2. लचीलापन 3. वस्तुनिष्ठता 4. मूल्यांकन

इन चारों आधारों पर वैज्ञानिक पर्यवेक्षण सम्पन्न किया जाना चाहिए । इस प्रकार के पर्यवेक्षण में कुछ विशेषताएँ इस प्रकार होती हैं -

1. इसमें क्रमबद्ध, व्यवस्थित, विश्वसनीय, वैध विधियों का प्रयोग होता है ।
2. इस प्रकार के पर्यवेक्षण प्रकार के निष्कर्ष / परिणाम सभी को मान्य होते हैं क्योंकि ये विश्वसनीय होते हैं ।
3. वैज्ञानिक पर्यवेक्षण के निष्कर्ष पर्यवेक्षण सिद्धान्तों में योग देते हैं ।
4. इसमें अविश्वास की स्थिति में प्रक्रिया की पुनरावृत्ति की जा सकती है ।

वैज्ञानिक पर्यवेक्षण की सीमाएं

वैज्ञानिक पर्यवेक्षण की कुछ सीमाएँ हैं जो इस प्रकार हैं -

1. वैज्ञानिक पर्यवेक्षण विधि में शिक्षकों व पर्यवेक्षकों का दक्ष मिलना मुश्किल होता है ।
2. इस विधि में उपयुक्त उपकरण जैसे सी.सी.टी.वी. कम्प्यूटर, वीडियो टेप इत्यादि का उपलब्ध न होना ।
3. कई परिस्थितियों में व्यवहार के बारे में निर्णय नहीं दे पाना ।

(र) रचनात्मक पर्यवेक्षण (Creative Supervision) - इस प्रकार का पर्यवेक्षण इसके नाम से स्पष्ट हो जाता है कि जिसमें वैयक्तिक सृजनता, मौलिकता को आधार माना जाता है इसलिए अधिकारी अपने अधीनस्थों में / स्टाफ के सदस्यों के उन गुणों का पता लगाता है जो किसी क्षेत्र विशेष में उल्लेखनीय हो, फिर उन विशेष गुणों के विकास के लिए समुचित सुविधाएँ, पर्यावरण तथा प्रोत्साहन प्रदान करते हैं ।

रचनात्मक पर्यवेक्षण यह स्वीकार करता है कि हर व्यक्ति में कुछ न कुछ श्रेष्ठ गुण होते हैं और उनको समुचित अवसर देने से उनका विकास किया जा सकता है । अत: पर्यवेक्षक अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से गुणों को परख कर आवश्यक प्रोत्साहन प्रदान करता है । इसमें पर्यवेक्षक

का व्यवहार सहयोगी होता है । इससे संस्था में अनेक मौलिक कार्यों का विकास होता है । यह पर्यवेक्षण लोकतांत्रिक विधियों का प्रयोग करता है और इसके मूल्यों पर विश्वास करता है ताकि वैयक्तिक समानता और सम्मान के आधार पर नवीन विकास कार्य अपनाएँ जा सके ।

रचनात्मक पर्यवेक्षण की विशेषताएँ-

1. इस प्रकार के पर्यवेक्षण में संस्था के सभी सदस्यों में सृजनशीलता के गुणों का विकास होता है ।
2. नवीन प्रयोग, विधियों, शिक्षक समुदाय तथा शिक्षा जगत के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं ।
3. नवीन कार्य के प्रति स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा की भावना का विकास होता है।
4. शिक्षकों को नवीन कार्यों को करने में संतुष्टि होती है, जब उनके कार्यों को प्रोत्साहन मिलता है ।
5. संस्था के सभी सदस्यों में सृजनशील गुणों का विकास होता है ।
6. ये पर्यवेक्षण की विधि शिक्षा जगत के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

रचनात्मक पर्यवेक्षण की सीमाएँ -

रचनात्मक पर्यवेक्षण को लागू करने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । अत: इसकी कुछ सीमाएं इस प्रकार हैं -

1. सृजनशीलता नेतृत्व के अभाव में इस प्रकार का पर्यवेक्षण सम्भव नहीं होता है ।
2. नवीन शिक्षा संबंधी प्रयोगों के लिए अवसर प्राप्त नहीं होते क्योंकि शिक्षा संस्थाओं में विभाग और बोर्ड के नियम और निर्देशों के अनुरूप कार्य सम्पन्न किया जाता है ।
3. नेतृत्व परिवर्तन के साथ नये प्रयोग समाप्त हो जाते हैं ।
4. प्रशासन से सहयोग का अभाव रहता है ।

(ब) व्यक्तियों की संख्या के आधार पर

व्यक्तियों की संख्या के आधार पर दो प्रकार का पर्यवेक्षण हो सकता है-

(अ) पैनल पर्यवेक्षण (ब) वैयक्तिक पर्यवेक्षण

(अ) पैनल पर्यवेक्षण - पैनल पर्यवेक्षण के अंतर्गत एक से अधिक संख्या में पर्यवेक्षक होते हैं, जिनकी पदस्थिति व कार्य निश्चित होते हैं । राजस्थान बोर्ड के द्वारा अपनाए गए पैनल में एक विषय विशेषज्ञ, दूसरा तकनीकी विशेषज्ञ, तीसरा विभागीय अधिकारी होता है जो विभागीय नियमों की अनुपालना की जाँच करता है । इस प्रकार का पर्यवेक्षण कक्षा अनुदेशन के लिए काम में लिया जाता है । इसमें विषय-विशेषज्ञ, विषय का वरिष्ठ व्यक्ति या पारी प्रभारी या प्रधानाध्यापक हो सकते हैं ।-

पैनल पर्यवेक्षण शिक्षण सुधार के साथ-साथ शिक्षा विभाग द्वारा विभिन्न गतिविधियों हेतु सम्पन्न किए जाते हैं वह है -

1. विद्यालयों के क्रमोन्नत करने के लिए ।
2. शिक्षा विभाग द्वारा विद्यालयों के त्रिवार्षिक वृहद् मूल्यांकन के लिए
3. विद्यालयों को सरकारी मान्यता देने के लिए ।

4. विद्यालयों को अनुदान एवं इसकी मात्रा निश्चित करने के लिए ।

5. श्रेष्ठ विद्यालयों के शिक्षकों के शैक्षिक एवं व्यावसायिक उन्नयन के लिए ।

इस प्रकार पर्यवेक्षण सुनियोजित, नियमित, व्यापक होने के कारण अत्यन्त उपयोगी होते हैं । इसका व्यावहारिक रूप में प्रचलन है ।

(ब) वैयक्तिक पर्यवेक्षण/व्यक्ति पर्यवेक्षण - विद्यालय पर्यवेक्षक में पैनल पर्यवेक्षण के बाद शिक्षण सुधार के लिए वैयक्तिक पर्यवेक्षण किया जाता है जिसमें वैयक्तिक कमियों और विशिष्टताओं के आधार पर कार्यक्रम बनाया जाता है और निरन्तर फोलोअप कार्यक्रम अपनाया जाना आवश्यक होता है अन्यथा वैयक्तिक पर्यवेक्षण का कोई लाभ नहीं होता है ।

उपरोक्त प्रकार के पर्यवेक्षण अत्यन्त उपयोगी हो सकते हैं, यदि वे सुनियोजित, नियमित तथा व्यापक हो । अभी तक वैयक्तिक और पैनल पर्यवेक्षण व्यवहार में प्रचलित तो हैं परन्तु नियमित एवं व्यापक नहीं हो रहे हैं ।

अन्त में, पर्यवेक्षण का संबंध शैक्षिक विकास से है । प्रभावी पर्यवेक्षण शैक्षिक गुणवत्ता विकास में सहायक है, परन्तु वर्तमान में पर्यवेक्षण की स्थिति संतोषजनक नहीं है । इसका प्रमुख कारण पर्यवेक्षण की पुरानी अवधारणा है जिसके अनुसार पर्यवेक्षण छिद्रान्वेषी माना जाता है । अत: कोई भी कार्यकर्ता इस प्रकार के पर्यवेक्षण का स्वागत नहीं करता है । आधुनिक पर्यवेक्षण जनतंत्रीय व सहयोगी है और उसका प्रमुख लक्ष्य शिक्षण या शिक्षण में विकास/सुधार लाना है । अत: विद्यालयी पर्यवेक्षण का अभिप्राय विद्यालय शैक्षिक संस्थितियों में सुधार करना है ।

9.15 शैक्षिक पर्यवेक्षण की तकनीकें (Techniques of Educational Supervision)

शैक्षिक पर्यवेक्षण की कतिपय महत्त्वपूर्ण तकनीकें निम्नलिखित हैं -

1. समझ (Understanding) : वैयक्तिक, सामूहिक एवं संगठनात्मक दृष्टिकोण को भली-भाँति समझाकर पर्यवेक्षण किया जाता है । अत: पर्यवेक्षक अधीनस्थों में उक्त समझ को विकसित करने पर पर्याप्त ध्यान देता है ।

2. प्रशिक्षण (Training) : अधीनस्थों को प्रशिक्षण प्रदान करके भी पर्यवेक्षण किया जाता है । प्रशिक्षण के द्वारा कार्यकर्ता कार्य को सर्वोत्तम ढंग से करना सीख जाते हैं । उनका स्वयं का भी विकास सम्भव होता है । इस प्रकार सर्वोत्तम श्रेणी का कार्य करवाया जा सकता है ।

3. कार्य नियोजन (Work Plans) - पर्यवेक्षण के लिए कार्य का नियोजन करना अनिवार्य होता है । पर्यवेक्षक अपने अधिकार क्षेत्र में संगठनात्मक योजनाओं एवं नीतियों को कार्य योजनाओं में बदलता है ताकि कार्य को अच्छे ढंग से पूरा करवाया जा सके ।

4. लिखित क्रिया विधियाँ या निर्देश (Written Procedures and Instructions) : लिखित क्रिया विधियाँ एवं निर्देश भी पर्यवेक्षण की महत्वपूर्ण तकनीकें हैं । पर्यवेक्षक कार्य-नियोजन को

अधीनस्थों को कार्य में प्रवृत करने हेतु लिखित निर्देश प्रदान करता है तथा लिखित क्रिया विधियाँ भी बतलाता है ताकि कार्य सही ढंग से पूरा करवाया जा सके ।

5. कार्यकर्ता बैठक (Staff Meeting) : कार्यकर्ताओं की बैठक आयोजित करके तथा उनकी समस्याओं को दूर करके कार्य अधिक अच्छी तरह करवाया जा सकता है । इस प्रकार बैठक या सभाएँ भी पर्यवेक्षण की महत्त्वपूर्ण तकनीक है ।

6. अनुशासन (Discipline) : अनुशासन भी पर्यवेक्षण की एक महत्वपूर्ण तकनीक है । इसके द्वारा उनको कार्य करना सीखाया जाता है तथा उनमें निष्ठा भावना उत्पन्न की जाती है । अनुशासन की तकनीक पर्यवेक्षक को अपने नीचे कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं को अपनी इच्छानुसार मोड़ने का अस्त्र प्रदान करती है ।

उपर्युक्त प्रमुख तकनीकों के अतिरिक्त निम्नलिखित सहायक तकनीकें भी पर्यवेक्षण को प्रभावी बनाने की दृष्टि से बहुत उपयोगी है -

(अ) एकीकरण एवं समन्वय (Integration and Co-ordination) : अधीनस्थों द्वारा किए जाने वाले व्यक्तिगत कार्यों का समूह में एकीकरण तथा अन्य व्यक्तियों अथवा विभागों द्वारा किए जाने वाले कार्यों के साथ समन्वय किए बिना भी पर्यवेक्षण कार्य को सर्वोत्तम ढंग से पूरा नहीं करवाया जा सकता है, इस दृष्टि से एकीकरण तथा समन्वय भी पर्यवेक्षण की महत्त्वपूर्ण तकनीकें हैं ।

(ब) उद्देश्य स्पष्टीकरण (Classification of Objectives) : अधीनस्थों को उनके व्यक्तिगत लक्ष्यों, समूह लक्ष्यों, विभागीय लक्ष्यों एवं संगठनात्मक उद्देश्यों को पृथक से एवं प्रणालीबद्ध रूप से भली-भाँति स्पष्ट करके भी उनसे काम अधिक अच्छे ढंग से करवाया जा सकता है । फलत: उद्देश्य स्पष्टीकरण भी पर्यवेक्षण की प्रभावी तकनीक है ।

(स) प्रशासकीय नीति निर्धारण (Determination of Administrative Policy) : प्रशासन द्वारा निर्धारित नीतियों की अधिकाधिक स्पष्ट व्याख्या एवं जानकारी प्रदान करके कार्यकर्ताओं से प्रभावी ढंग से करवाया जा सकता है । अत: प्रशासकीय नीतियों का निर्धारण भी पर्यवेक्षण का उपयोगी आधार होता है ।

(द) भावी नियोजन (Future Planning) : भावी कार्यक्रमों का वर्तमान में नियोजन कर लेने पर उससे संबंधित कार्यों को बहुत सुन्दर ढंग से पूरा कराया जा सकता है । अत: इस आधार पर भावी कार्यक्रम नियोजन भी पर्यवेक्षण की महत्त्वपूर्ण तकनीक मानी जाती है ।

9.16 शैक्षिक पर्यवेक्षण में मानवीय संबंध (Human Relation in Educational Supervision)

शैक्षिक पर्यवेक्षण में मानवीय सम्बन्धों का बड़ा महत्त्व है । आज कोई भी कार्यकर्ता केवल इस आधार पर सफल पर्यवेक्षक नहीं बन सकता है कि वह सर्वश्रेष्ठ कामगार है और कि वह अपने विभाग की कार्य प्रणाली को बहुत अच्छी तरह जानता है । आज एक पर्यवेक्षक के लिए अपने कार्य से संबंधित तकनीकी पहलुओं की विशेषज्ञ जानकारी के साथ मनुष्यों के साथ व्यवहार करने की तकनीकी में भी पारंगत होना अति आवश्यक है । क्या काम करना और उसे किस प्रकार करना है । ये दोनों पर्यवेक्षण संबंधी आसान कार्य हैं क्योंकि यहाँ पर्यवेक्षक कार्य के

वस्तुपरक पहलू में व्यवहार करता है। पर्यवेक्षण का मानवीय पक्ष सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं जटिल होता है । इस पक्ष का सीधा सम्बन्ध श्रेष्ठ किस्म का अधिकतम कार्य करवाने हेतु कार्यकर्ताओं को अभिप्रेरित करने एवं उनका मार्गदर्शन करने से है और साथ ही ऐसा करते समय उनको सन्तुष्ट एवं प्रसन्न रखने से है ।

इस प्रकार शैक्षिक पर्यवेक्षण में मानवीय घटक अहम् भूमिका निभाता है । डिमांक व डिमांक के शब्दों में, "मानवीय सम्बन्ध दर्शन 'श्रेष्ठतर पर्यवेक्षण की कुंजी है और 'पर्यवेक्षण' निर्देशन कार्य में नेतृत्व का ही दूसरा नाम है ।"

चूँकि व्यक्तियों के जीवन मूल्यों, पारिवारिक पृष्ठभूमि, सामाजिक पर्यावरण में अत्यधिक असमानता पाई जाती है, अत: उन सबका पर्यवेक्षण एवं नेतृत्व समान व्यवहारों से नहीं किया जा सकता है । मानवीय संबंधों से उत्पन्न होने के कारण पर्यवेक्षण कार्य अत्यधिक गत्यात्मक एवं जटिल है ।

9.17 पर्यवेक्षक की परिभाषा (Definitions of Supervisor)

सरल अर्थ में पर्यवेक्षण का कार्य करने वाला व्यक्ति 'पर्यवेक्षक' कहलाता है किन्तु तकनीकी अर्थ में, पर्यवेक्षक से आशय उस व्यक्ति से है, जो दूसरे व्यक्तियों (अधीनस्थों) की संचालनात्मक क्रियाओं (Operating activities) का निर्देशन करता है, उनको तकनीकी मार्गदर्शन प्रदान करता है तथा यह कार्य न्यूनतम अधिकार सत्ता एवं नगण्य नियोजनात्मक अथवा नियंत्रण संबंधी उत्तरदायित्वों के साथ पूरा करता है ।

9.18 पर्यवेक्षक को स्थिति (Position of Supervisor)

संगठन में पर्यवेक्षक की अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थिति होती है क्योंकि पर्यवेक्षक कर्मचारियों के सर्वाधिक निकट होता है और उनसे काम करवाता है, अत: उच्च प्रबन्ध तथा कर्मचारी दोनों की दृष्टि से उसका स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण होता है । पर्यवेक्षक प्रबन्ध तथा कर्मचारियों को जोड़ने वाली महत्त्वपूर्ण कड़ी होती है, वह इन दोनों समूहों से अच्छी तरह परिचित होता है । दोनों समूह पर्यवेक्षक की निष्ठा एवं प्रभाव को प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं तथा स्पर्धा करते हैं । जहाँ तक कर्मचारियों का सम्बन्ध है उनके लिए तो पर्यवेक्षक ही प्रबन्धक होता है । इसके अतिरिक्त कर्मचारियों के साथ नित्य प्रति अधिकाधिक व्यक्तिगत सम्पर्क तथा उपक्रम या संस्था की नीतियों को अपने ढंग से व्याख्या करने के कारण पर्यवेक्षक की स्थिति बहुत ही युद्ध नीतिक (Strategic) हो जाती है । पर्यवेक्षक ही वह महत्त्वपूर्ण माध्यम होता है, जिसके द्वारा कार्यकर्ता उच्च-प्रबन्ध से संचार कर सकते हैं । उच्च प्रबन्ध को भी कर्मचारियों तक अपनी बात पहुँचाने के लिए पर्यवेक्षक को विश्वास में लेना पड़ता है । इस प्रकार पर्यवेक्षक 'कुंजी मानव' (Key Man) होता है और उसकी स्थिति बड़ी सामरिक महत्त्व वाली एवं क्रान्तिक (Critical) होती है ।

9.19 पर्यवेक्षक के उत्तरदायित्व (Responsibilities of Supervisor)

पर्यवेक्षक के प्रमुख उत्तरदायित्वों को तीन शीर्षकों के अन्तर्गत विभक्त किया जा सकता है वे हैं -

1. उच्चतर प्रबन्ध के प्रति उत्तरदायित्व
2. समान पद वाले पर्यवेक्षकों के प्रति उत्तरदायित्व
3. अधीनस्थों के प्रति उत्तरदायित्व

1. उच्चतर प्रबन्ध के प्रति उत्तरदायित्व

(अ) प्रबन्ध जो कुछ चाहता है, उसका निश्चयन एवं वहन करना ।

(ब) उच्चाधिकारियों को अपने विभाग के कार्यों से सूचित रखना तथा सुधार हेतु सुझाव देना।

(स) उच्चाधिकारियों के ध्यान में लाने योग्य मामलों को अविलम्ब उनको बतलाना किन्तु उनको अनावश्यक रूप से परेशान नहीं करना ।

(द) कर्मचारियों की आवश्यकताएँ प्रबन्ध को तथा प्रबन्ध की आवश्यकताएँ कर्मचारियों को बतलाना ।

(य) अधिशासी स्तर पर पूर्ण गरिमा तथा राजनयिकता (dipolomacy) के साथ सम्पर्क करना ।

2. समान पद वाले पर्यवेक्षकों के प्रति उत्तरदायित्व

(अ) सहयोगी पर्यवेक्षकों के साथ उसी प्रकार सहयोग करना जैसा वह स्वयं उनसे अपेक्षा करता है ।

(ब) संस्था / उपक्रम के हित को ध्यान में रखते हुए अपने विभाग के कार्य का अन्य विभागीय कार्यों के साथ समन्वय स्थापित करने में सहायता करना ।

(स) सहयोगियों की समस्याओं को समझने की कोशिश करना ।

3. अधीनस्थों के प्रति उत्तरदायित्व

(1) नये कर्मचारियों के चयन में सहायता करना ।

(2) नये कर्मचारियों की सही ढंग से काम शुरू करने में सहायता करना ।

(3) अधीनस्थों को वृहत उत्तरदायित्वों को वहन करने हेतु प्रशिक्षित करना ।

(4) कर्मचारी को यह जानने में सहायता करना कि उसको क्या करना है सौर कैसे करना है?

(5) कर्मचारियों का सामयिक मूल्यांकन करना तथा उसके स्थानान्तरण, पदोन्नति, वेतन समायोजन आदि की सिफारिश करना ।

(6) अच्छी तरह किए गए कार्य के लिए प्रोत्साहन देना तथा श्रेय देना ।

(7) उत्तरदायित्वों का भारार्पण करना ।

(8) सहयोग, समरसता एवं टीम भावना का विकास करना ।

(9) परिवादों को शीघ्रता से एवं उचित ढंग से निपटाना तथा कर्मचारी मनोबल को बनाये रखना ।

(10) अनुशासन बनाये रखना, अनुपस्थिति को नियंत्रित करना तथा समय पाबन्दी का विकास करना ।

(11) पक्षपात रहित होकर कर्मचारियों में व्यक्तिगत रुचि लेना ।

(12) कर्मचारियों के साथ मानवीय आधार पर पर्यवेक्षणात्मक व्यवहार करना ।

9.20 प्रभावी एवं सफल शैक्षिक पर्यवेक्षण की कुंजी (Key to Effective and Successful Educational Supervision)

पर्यवेक्षण का सीधा संबंध कार्यकर्ता से होता है । दूसरे शब्दों में शैक्षिक पर्यवेक्षण कार्यकर्ता केन्द्रित होता है । अत: उसको प्रभावी एवं सफल बनाने के लिए मानवीय सम्बंधों पर विशेष ध्यान देना अनिवार्य होता है । शैक्षिक पर्यवेक्षण के मुख्य रूप से दो पहलू हैं -

1. **तकनीकी पहलू :** जो कार्य संबंधित होता है । क्या काम करना है, किस विधि से करना है आदि ।

2. **मानवीय पहलू-** जो कार्यकर्ता से संबंधित होता है । कार्यकर्ता को किस प्रकार संतुष्ट रखना है, किस प्रकार अभिप्रेरित करना है, किस प्रकार मार्गदर्शन करना है आदि ।

शैक्षिक पर्यवेक्षण को प्रभावी बनाने के लिए उपर्युक्त दोनों पहलुओं को ध्यान में रखकर निम्नलिखित कुछ विशेष वैयक्तिक गुणों का विकास करके ही पर्यवेक्षक सफलता प्राप्त कर सकता है ।

1. **तकनीकी गुण :** इन गुणों की आवश्यकता कार्य का निर्देशन करते समय पड़ती है । प्रमुख तकनीकी गुण निम्नानुसार हैं -

(1) किये जाने वाले कार्य के कुशल नियोजन एवं समय सारणीयन की क्षमता ।

(2) अधीनस्थों को कार्य संबंधी प्रशिक्षण प्रदान करने की क्षमता एवं योग्यता ।

(3) अधीनस्थों को कार्य से संबंधित आवश्यक सामग्री व उपकरण उपलब्ध की क्षमता ।

(4) कार्य को आरम्भ करने की योग्यता ।

(5) पर्याप्त तकनीकी पहलुओं पर निर्देशन प्रदान करने की योग्यता ।

2. मानवीय गुण : इन गुणों की आवश्यकता कार्य करने वाले कार्यकर्ता के साथ व्यवहार करते समय होती है । प्रमुख गुण निम्नानुसार है -

(1) पर्यवेक्षक मित्रतापूर्वक, सहायक एवं समर्थक होना चाहिए ।

(2) वह विनम्र किन्तु दृढ़ होना चाहिए

(3) वह अधीनस्थों की खुशहाली में समुचित रुचि रखने वाला होना चाहिए ।

(4) वह कार्यकर्ताओं के साथ संवेदनशील एवं विचार शक्ति व्यवहार करने वाला होना चाहिए।

(5) वह न्यायप्रिय होना चाहिए ।

(6) वह कार्यकर्ता एवं संस्था दोनों के हितों को पूरा करने के प्रति प्रयासरत होना चाहिए ।

(7) वह सन्देह एवं अविश्वास के स्थान पर कर्मचारियों की योग्यता क्षमता में विश्वास रखने वाला होना चाहिए ।

(8) वह प्रमाप (Standard) से नीचे काम करने वाले कार्यकर्ता को सहायता करने वाला होना चाहिए ।

(9) वह असंतोषप्रद काम करने वाले कार्यकर्ताओं के लिए उनके उपयुक्त स्थान खोजने एवं उनको वहाँ स्थानान्तरित करवाने हेतु प्रयासरत रहना चाहिए ।

(10) वह अधीनस्थों को उच्च पद पर पदोन्नति करवाने हेतु उसको आवश्यक प्रशिक्षण देने में रुचि रखने वाला होना चाहिए ।

संक्षेप में पर्यवेक्षक को अपने अधीनस्थों का इस प्रकार विकास करना चाहिए कि जिससे वे उच्च समूह निष्ठा के साथ टीम भावना से कार्य करें इसके लिए पर्यवेक्षक को समूह नेतृत्व व्यवहार (Group Leadership Practices) का उपयोग करना चाहिए और स्वयं को निम्नलिखित आधारभूत योग्यताओं से विभूषित करना चाहिए-

- भावनात्मक परिपक्वता की प्राप्ति ।
- मानवीय संबंध दर्शन की समझ ।
- कार्यकर्ता केन्द्रित/कार्यकर्ता-उन्मुख दृष्टिकोण का विकास ।
- स्वयं पर योग्य पर्यवेक्षक के रूप में आत्म विश्वास
- परिवादों को दूर करने तथा परिस्थिति के अनुरूप व्यवहार करने की योग्यता ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. भूमिका एवं दृष्टिकोण के आधार पर पर्यवेक्षण के छह प्रकार कौनसे हैं ? नाम लिखिए ।
2. भूमिका एवं दृष्टिकोण के आधार पर पर्यवेक्षण के प्रकार में से विद्यालय के लिए सर्वश्रेष्ठ पर्यवेक्षण कौनसा रहेगा और क्यों ?
3. प्रभावी और सफल पर्यवेक्षण के कौनसे पहलू हैं ? प्रकाश डालिये ।

9.21 सारांश (Summary)

शैक्षिक पर्यवेक्षण (Educational Supervision)

(1) शैक्षिक पर्यवेक्षण का सम्प्रत्यय (Educational Supervision) : शैक्षिक पर्यवेक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें शिक्षक और अधिकारी के मध्य सहयोग की भावना को महत्त्व दिया जाता है और छिद्रान्वेषण के दृष्टिकोण को उपयुक्ता नहीं समझा जाता है । वस्तुत: पर्यवेक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें शिक्षक का सर्वोन्मुखी विकास सन्निहित है ।

(2) शैक्षिक पर्यवेक्षण की आवश्यकता (Need of Educational Supervision) - विद्यालय के विभिन्न तथ्यों को पर्यवेक्षण के माध्यम से जाना जा सकता है जिनमें से मुख्य तथ्य निम्नलिखित हैं -

- विद्यालय में समुचित शिक्षण अधिगम होता है ।
- शिक्षक अध्यापन योग्य है ।
- अधिगम के लिए समुचित पर्यावरण है ।
- विद्यार्थियों की प्रगति पर समुचित ध्यान दिया जाता है ।
- विद्यालय के संसाधनों का समुचित विस्तार, विकास एवं उपयोग होता है ।

(3) शैक्षिक पर्यावरण के क्षेत्र (Scope of Educational Supervision)- शैक्षिक पर्यवेक्षण के क्षेत्र को मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है -

1. पर्यवेक्षण में निदानात्मक भूमिका
2. पर्यवेक्षण में मार्गदर्शन संबंधी भूमिका
3. पर्यवेक्षण के अन्य क्षेत्र जैसे- वित्तीय लेखा-जोखा, बजट, छात्र कोष, छात्रवृत्ति, गतिविधियों संबंधित लेखावली ।

(4) शैक्षिक पर्यवेक्षण के प्रकार : मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं -

1. व्यक्तिगत पर्यवेक्षण
2. विषय विशेषता द्वारा पर्यवेक्षण
3. पर्यवेक्षक के अन्य प्रकार - इसके अन्तर्गत -

(अ) भूमिका एवं दृष्टिकोण के आधार पर क्लिनिकल निरीक्षणात्मक, निरोधात्मक, वैज्ञानिक, रचनात्मक

(ब) व्यक्तियों की संख्या के आधार पर

1. पैनल पर्यवेक्षण 2. वैयक्तिक परीक्षण

(5) प्रभावी एवं सफल पर्यवेक्षण को कुँजी : शैक्षिक पर्यवेक्षण के प्रमुख रूप से दो पहलू होते हैं -

1. तकनीकी पहलू : जो कार्य से संबंधित होता है ।
2. मानवीय पहलू : जो कार्यकर्ता से संबंधित होता है ।

पर्यवेक्षक में निम्नलिखित वैयक्तिक गुणों का विकास करना चाहिए ताकि सफल एवं प्रभावी पर्यवेक्षण

(1) तकनीकी गुण

1. कुशल नियोजन एवं समय सारणीयन
2. कार्य संबंधी प्रशिक्षण प्रदान करने की योग्यता
3. कार्य संबंधी आवश्यक संसाधन जुटाने की योग्यता
4. कार्य को आरम्भ करने की योग्यता
5. पर्याप्त तकनीकी पहलुओं पर निर्देशन देने की योग्यता

(2) मानवीय गुण

1. पर्यवेक्षक मित्रतापूर्ण सहायक एवं समर्थक
2. संवेदनशील एवं विचारशील व्यवहार
3. न्यायप्रिय
4. संस्था व कार्यकर्ता दोनों के हितों की पूर्ति
5. सन्देह व अविश्वास का स्थान न हो ।
6. प्रमाप से नीचे कार्य करने वाले कार्यकर्ता की सहायता करना ।

7. असंतोष कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं का स्थानान्तरण करना ।

8. अधीनस्थों कों उच्च पद पर पदोन्नत करवाने के लिए प्रशिक्षण में रुचि लेना ।

संक्षेप में पर्यवेक्षक को निम्नलिखित आधारभूत योग्यताओं से विभूषित करना चाहिए-

(1) भावनात्मक परिपक्वता

(2) कार्यकर्ता केन्द्रित

(3) स्वयं पर योग्य पर्यवेक्षक के रूप में आत्मविश्वास

(4) परिवादों को दूर करने तथा परिस्थिति के अनुसार व्यवहार करने की योग्यता ।

अभ्यास प्रश्न (Exercises)

1. शैक्षिक पर्यवेक्षण के अर्थ, सम्प्रत्यय, उद्देश्य एवं महत्त्व को स्पष्ट करते हुए पर्यवेक्षण के क्षेत्रों की विस्तृत व्याख्या करिए ।
2. पर्यवेक्षण के प्रकार, तकनीकों तथा शैक्षिक पर्यवेक्षण में मानवीय संबंध पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए ।

9.22 संदर्भ (References)

1. ओड एल. के. एवं वर्मा, जे.पी. (1991), शैक्षिक प्रशासन : जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी
2. पोरवाल, एल. बी. एवं सक्सेना (1988), प्रबन्ध के सिद्धान्त एवं व्यवहार : जयपुर : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस
3. सिंघल, जे. पी. (1996): प्रबन्ध : जयपुर, अजमेरा बुक कम्पनी
4. वर्मा, जे. पी. एवं वर्मा मंजू (2002), विद्यालय प्रबन्धन, मेरठ, सूर्या पब्लिकेशन
5. वर्मा, जे. पी. (2001), शैक्षिक प्रबन्धन, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
6. गुप्ता, घनश्याम लाल (1980) प्रबन्ध के सिद्धान्त, मीनाक्षी प्रकाशन
7. मलैया एवं मलैया (1971), शिक्षा प्रशासन एवं पर्यवेक्षण, भोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
8. सुखिया, एस. पी. (2000), विद्यालय प्रशासन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
9. Agarwal, J.C.(1967) Supervisory Practices, Educational Administration, New Delhi, Agra Book Depot
10. Dubrin J.Andrew(1989),The Practices of Supervision,Achieving Results through people,New Delhi, Business Publications.
11. Verma J.P.,and Verma Manju(2007): School Management : Meerut, Lal, R.Book Depot.
12. Mathur,S.S(1990):Organization of School Inspection, The Indian publication Ambala, Cantt.
13. Rajput J.S(G.Editor) Encyclopedia of Indian Education, Vol.11(1to2) NCERT 2004.

14. Gropello di Emanuela : Monitoring Educational Performance in the Carribbean.The World Bank, The International Book for Reconstruction and Development-USA 2003.

इकाई 10

शैक्षिक प्रबन्धन में निर्णयन

(Decision Making in Educational Management)

इकाई की संरचना ।

10.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

10.2 निर्णयन का सम्प्रत्यय (Concept of Decision Making)

10.3 निर्णयन की परिभाषाएँ (Definitions of Decision Making)

10.4 निर्णयन के लक्षण एवं विशेषताएँ (Characteristics and Features of Decision Making)

10.5 शैक्षिक निर्णयन के आधार तथा सिद्धांत (Basis and Principles of Educational Decision Making)

10.6 शैक्षिक निर्णयन की आवश्यकता एवं महत्त्व (Need and Importance of Educational Decision Making)

10.7 निर्णयों के प्रकार (Types of Decisions)

- 10.7.1 कार्यक्रमिक एवं अकार्यक्रमिक निर्णय (Programmed and Non-Programmed Decision)
- 10.7.2 व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक निर्णय (Personal and Organisational Decision)
- 10.7.3 वैयक्तिक एवं सामूहिक निर्णय (Individual and Group Decision)
- 10.7.4 सामरिक एवं व्यूहरचना सम्बन्धी निर्णय (Tactical and Strategic Decisions)
- 10.7.5 उपक्रम, विभागीय एवं अन्तरविभागीय निर्णय (Enterprise, Departmental and Inter Departmental Decisions)
- 10.7.6 नीति, प्रशासनिक एवं कार्यकारी निर्णय (Policy, Administrative and Executive Decisions)
- 10.7.7 सरल एवं जटिल निर्णय (Simple and Complex Decision)
- 10.7.8 अन्य प्रकार (Other types)

10.8 निर्णय प्रक्रिया के चरण (Steps in Decision Making)

10.9 शैक्षिक संस्था में निर्णयन के स्तर (Levels of Decision in an Educational Institution)

10.10 निर्णयन प्रक्रिया के मॉडल्स व विचारधाराएँ (Models and Approaches to decision Making)
10.11 वैश्विक परिदृश्य में शैक्षिक प्रबन्ध में निर्णयन के बदलते परिप्रेक्ष्य (Changing Trends in Decision Making in Educational Management in Global Scenario)
10.12 निर्णयन में बाधाएँ (Problems in Decision Making)
10.13 निर्णयन प्रक्रिया सम्बन्धी अनुसंधान (Researches in Decision Making)
10.14 सारांश (Summary)
10.15 संदर्भ सूची (References)

10.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

1. निर्णयन का सम्प्रत्यय व परिभाषा जान सकेंगे ।
2. शैक्षिक निर्णयन के आधार तथा सिद्धांत से परिचित होंगे ।
3. शैक्षिक निर्णयन की आवश्यकता एवं महत्त्व समझ सकेंगे ।
4. निर्णयों के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या एवं तुलना कर सकेंगे ।
5. निर्णय प्रक्रिया के चरणों से अवगत होंगे ।
6. शैक्षिक संस्था में निर्णयों के स्तर व क्षेत्र जानकर निर्णयन के प्रकारों से सम्बन्धित कर पायेंगे।
7. निर्णय प्रक्रिया के मॉडल्स तथा विचारधाराओं के नाम जानेंगे ।
8. निर्णय प्रक्रिया को बदलते परिप्रेक्ष्य में समझ सकेंगे ।
9. प्रबन्धकीय निर्णयन में आने वाली बाधाओं को समझ सकेंगे ।
10. निर्णयन प्रक्रिया सम्बन्धी हुए अनुसंधानों व अनुसंधान के अन्य संभावित क्षेत्रों से अवगत हो सकेंगे ।

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की प्रत्येक गतिविधि में निर्णय लेना पड़ता है । निर्णय लेना अथवा निर्णयन मानव की स्वाभाविक आवश्यकता तथा विशेषता है । प्रत्येक व्यक्ति अपनी आयु, लिंग, वंश, परिवार, पद, भूमिका, दायित्वों इत्यादि के अनुरूप निर्णय लेता है, लेकिन निर्णयन की क्षमता सभी व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न होती है ।

निर्णयन आधुनिक प्रबन्धन का आवश्यक अंग है । वह निर्णय की गुणवत्ता ही है जो किसी संगठन को निर्मित या नष्ट करती है । वास्तव में प्रबन्धक अपने सभी कार्य-नियोजन, संगठन, निर्देशन, नियंत्रण आदि निर्णयन के माध्यम से ही पूरे करता है । शिक्षा के संदर्भ में शैक्षिक संगठन के लक्ष्य व कार्य, संगठन, संरचना का स्वरूप, शैक्षिक कर्मचारियों के आविष्कार

व दायित्व, शिक्षा के लक्ष्य व उद्देश्य, शैक्षिक विषयवस्तु, अधिगम की प्रक्रिया, स्वरूप, आदि से सम्बन्धित निर्णय प्रबन्धक को लेने पड़ते हैं । पीटर ड्रकर के अनुसार,

"प्रबन्धक जो कुछ भी करता है, वह निर्णयन के द्वारा ही करता है । वे निर्णय दैनिक कार्यप्रणाली से सम्बन्धित हो सकते हैं अथवा उपक्रम के भावी अस्तित्व को प्रभावित कर सकते हैं तथा इनमें वर्षो के व्यवस्थित विश्लेषण की आवश्यकता हो सकती है, किन्तु प्रबन्ध सदैव ही निर्णयन की एक प्रक्रिया है ।"

वास्तव में निर्णय कई विकल्पों में से किसी एक विकल्प का चुनाव करने का पर्याय है, लेकिन कौनसा विकल्प तत्कालीन परिस्थितियों, भावी संभावनाओं, उपलब्ध संसाधनों तथा संगठन के लक्ष्यों के अनुरूप सर्वाधिक उपयुक्त है, इसका निर्णय करना सरल नहीं है । कुशल निर्णय से ही कुशल नेतृत्व, नियंत्रण तथा समन्वय संभव है । श्रेष्ठ तथा व्यावहारिक निर्णय लेने के लिए निर्णयन का सम्प्रत्यय, प्रकार, चरण, विधियाँ आदि को समझना आवश्यक है तथा इसकी चर्चा इस अध्ययन में की जा रही है ।

10.2 निर्णयन का सम्प्रत्यय (Concept of Decision Making)

शिक्षा में भी हर स्तर पर कई समस्याएँ आती हैं । ये समस्याएँ लक्ष्य तक पहुँचने में बाधा उत्पन्न करती हैं । इन स्थितियों में हमें अपनी चिंतन क्षमता द्वारा समस्या का समाधान खोजना पड़ता है । इन बाधाओं के कारण हमें लक्ष्य तक पहुँचने की प्रक्रिया का विश्लेषण कर उसके वैकल्पिक मार्ग या तरीकों को अपनाना पड़ता है । उस समस्या को समझने और किसी निर्णय तक पहुँचने में अभिसारी (Convergent) तथा अपसारी (Divergent) दोनों प्रकार की चिंतन प्रक्रियाओं को अपनाना पड़ता है । अपसारी चिंतन में समस्या का विस्तार कर, उसे हर दृष्टि से अध्ययन कर, उस समस्या की विभिन्न तरह से रचना कर उसके कई समाधान सुझाए जाते हैं, जबकि अभिसारी चिंतन में इसके विपरीत समस्या को संकुचित कर किसी एक समाधान पर पहुँचना होता है । अत: निर्णयन किसी समस्या के सभी विभिन्न पक्षों को सावधानीपूर्वक अध्ययन कर, उनमें से उचित विकल्पों का विश्लेषण और मूल्यांकन करने के बाद सही विकल्प का चुनाव करना है ।

प्रशासनिक व्यवहार के चिंतक हरबर्ट साईमन ने माना है कि, "निर्णयन, प्रशासन का हृदय है।" उनके अनुसार. "प्रबन्धकों (प्रशासकों) का जीवन ही निर्णय लेना है ।" सभी प्रबन्धकीय कार्यों जैसे नियोजन, संगठन, निदेशन और नियंत्रण में प्रबन्धकों को निर्णय लेना पड़ता है ।

हरबर्ट साईमन के अनुसार प्रबन्ध एवं निर्णयन एक दूसरे के पर्यायवाची हैं । वस्तुत: प्रबन्ध का महत्त्वपूर्ण कार्य निर्णयन है जिसमें वैकल्पिक समाधानों में से सर्वश्रेष्ठ का चुनाव जाता है । कोई भी प्रबंधक जब निर्णय लेता है तो वह चयन करता है, उसके पारा विकल्प होते हैं तथा उसके मस्तिष्क में कोई लक्ष्य होता है । उपक्रम छोटा हो या बड़ा, प्रबन्धकों को आरम्भ से अंत तक कई निर्णय लेने पड़ते हैं । वास्तव में निर्णय, कई विकल्पों में से किसी एक विकल्प का चुनाव करने का पर्याय है ।

10.3 निर्णयन की परिभाषाएँ (Definitions of Decision Making)

निर्णयन एक चयन प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव करना है । इसकी प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं -

1. मेकफारलेन्ड (Mefarland) के अनुसार, "निर्णयन एक चयन क्रिया है जिसके अन्तर्गत एक अधिशाषी दी हुई परिस्थितियों में क्या किया जाना चाहिए, इसके सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है । निर्णय किसी व्यवहार का प्रतिनिधित्व करता है, जिसका चयन अनेक सम्भावित विकल्पों में से किया जाता है ।

A Decision in an act of choice wherein an executive forms a conclusion about what must be done in a given situation. A decision represents a course of behavior chosen from a number of alternatives.

2. जार्ज टैरी (George Terry) के अनुसार, "निर्णयन किसी मापदण्ड पर आधारित दो या अधिक विकल्पों में से किसी एक का चयन है ।"

"Decision making is the selection based on some criteria from two or more possible alternatives"

3. एलन (Allen) के अनुसार, "निर्णयन वह कार्य है जिसे एक प्रबन्धक किसी निष्कर्ष और निर्णय पर पहुँचने के लिए करता है ।"

"Decision making is the work which a manager performs to arrive at conclusions and Judgement."

4. अरनेस्ट डेल (Ernest Dale) के अनुसार, "प्रबन्धकीय निर्णय वे निर्णय होते हैं, जो सदैव सही प्रबन्ध क्रियाओं यथा नियोजन, संगठन, भर्ती, निदेशन, नियंत्रण, नव प्रवर्तन और प्रतिनिधित्व में से किसी एक के दौरान लिए जाते हैं ।"

"Management decision are those decisions which are always made in the course of one of the true management activities,i.e. planning,organising,staffing,directing,controlling,innovation and representation)"

निर्णयन की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि निर्णयन एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी कार्य को करने के सम्भावित विभिन्न विकल्पों में से किसी एक सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जाता है ।

10.4 निर्णयन के लक्षण एवं विशेषताएं (Characteristics and features of decision making)

प्रशासनिक संगठनों, जैसे - शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्धन में किए जाने वाले निर्णयों की प्रमुख विशेषताएँ तथा लक्षण इस प्रकार हैं -

1. एक निर्णयन का उद्देश्य संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति करना होता है ।
2. निर्णयन वैयक्तिक एवं सामूहिक दोनों प्रकार का होता है ।

3. निर्णयन प्रक्रिया किसी कार्य के सम्भावित विभिन्न विकल्पों में से किसी एक सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करती है ।
4. यह एक बौद्धिक प्रक्रिया है, क्योंकि निर्णय पर्याप्त विचार विमर्श एवं विश्लेषण के बाद लिया जाता है ।
5. निर्णयन मानवीय प्रक्रिया है, जिसके लिए बुद्धि, ज्ञान, विवेक तथा अनुभव आवश्यक है।
6. यह नियोजन का अंग है, अत: नियोजन प्रक्रिया मूलत: निर्णय पर आधारित होती है ।
7. निर्णयन एक प्रक्रिया है जो निरन्तर जारी रहती है ।
8. कोई भी निर्णय निर्णयकर्ता के ज्ञान, व्यवहार तथा संगठन की प्रकृति, वातावरण एवं संसाधनों से सर्वाधिक प्रभावित होता है ।
9. निर्णय अपने आप में साध्य (लक्ष्य) न होकर साध्य तक पहुँचने का एक साधन होता है ।
10. निर्णयन में 'समय-तत्व' महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि समय अपने आप में एक संसाधन तथा प्रभावकारी कारक है ।
11. निर्णयन मूल्यांकन तथा विश्लेषण पर आधारित होते हैं तथा निर्णयों का भी मूल्यांकन व विश्लेषण होता है ।
12. यह खोज व चुनाव (search and choice) की प्रक्रिया है ।
13. निर्णयन स्वतंत्र होता है । विकल्प का चुनाव विवेकपूर्ण इच्छा (rational choice) पर निर्भर करता है । दबाव या उत्पीड़न से किया गया चयन निर्णयन नहीं होता ।
14. निर्णयन निश्चयात्मक स्थिति को जन्म देता है ।
15. निर्णयन प्राय: कुछ मानदंडों व आधारों (measures and criteria) पर किया जाता है।
16. निर्णयन नकारात्मक भी हो सकता है । निर्णय न करना भी एक निर्णयन ही है ।
17. निर्णयन वास्तविक स्थिति (Actual situation) के समरूप होते हैं ।

अत: निर्णय एक घटना भी है, प्रक्रिया भी है तथा परिणाम भी है, निरन्तरता के रूप में किसी संगठन में दिखाई देती है ।

10.5 शैक्षिक निर्णयन के आधार तथा सिद्धांत (Basic and Principles of Educational Decision Making)

शैक्षिक संगठनों में लिए जाने वाले निर्णय केवल व्यक्तिगत मान्यताओं तथा क्षमता पर ही आधारित नहीं होते हैं बल्कि कुछ स्थापित सिद्धान्तों तथा आधार को ध्यान में रखकर लिए जाते है । इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं -

1. **वैधानिकता (Legality) -** शैक्षिक संगठनों का आधार कुछ नीति, नियम, मानदण्ड आदि होते हैं । अत: कोई भी निर्णय लेने से पूर्व चाहे वह वित्त, पाठ्यक्रम, नियुक्ति, आदि से सम्बन्धित हो, यह देखना आवश्यक है कि वह निर्णय निर्धारित नियमों तथा कानून की सीमाओं का उल्लंघन न करे । निर्णयकर्ता के पास उस निर्णय की सत्ता या वैधानिक सक्षमता होनी अनिवार्य है ।

2. **उद्देश्य (Aim)** - प्रत्येक निर्णय किसी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति के लिए लिया जाता है । यह उद्देश्य शिक्षा, शैक्षिक संस्था या संगठन के मूलभूत लक्ष्यों के अनुकूल होना चाहिए । इसलिए निर्णय के समय उद्देश्य की स्पष्टता तथा वस्तुनिष्ठता को ध्यान में रखना चाहिए।
3. **उचित समय (Timely)** - जल्दबाजी में अथवा देरी से लिए निर्णय घातक सिद्ध हो सकते हैं, हालांकि कुछ निर्णय तात्कालिक प्रकृति के होते हैं और कुछ दूरगामी परिणामों के आधार पर सोच-समझकर लिए जाते हैं । अत: निर्णय करते समय मामले की गंभीरता, तात्कालिकता, संगठन के संसाधनों की स्थिति तथा समय-सीमा को ध्यान में रखना चाहिए।
4. **पूर्णता (Totality)** - निर्णय लेते समय उस निर्णय से संबंधित सभी घटकों, तत्त्वों तथा आयामों पर स्पष्ट रूप से विचार कर लेने से उस निर्णय के क्रियान्वयन में सरलता हो जाती है ।
5. **व्यावहारिकता (Practicability).** - निर्णय शैक्षिक संस्था में उपलब्ध संसाधनों, नियमों, प्रक्रियाओं तथा सामाजिक आर्थिक परिवेश में क्रियान्वित हो सकना चाहिए ।
6. **स्वीकार्यता (Acceptability)** - निर्णय सम्बन्धित कारकों जैसे - शैक्षिक अधिकारियों, शिक्षकों, छात्रों आदि द्वारा स्वीकार्य होना चाहिए ।
7. **अधिकतम लाभ (Maximum Profit) -** शैक्षिक प्रबंधन में कम लागत, कम प्रयास से गुणवत्तायुक्त सेवाएँ देने वाला निर्णय संस्था के लिए हितकारी होता है ।
8. **तार्किकता (Logicality). -** व्यक्तिगत इच्छाओं, भावनाओं, मूल्यों तथा अभिमतों के स्थान पर तार्किक आधार पर लिया गया निर्णय औचित्यपूर्ण होता है । तथ्यों तथा तटस्थता का समावेश वाले निर्णय उसकी वैज्ञानिक प्रकृति सिद्ध करते हैं ।
9. **गतिशीलता (Dynamism)** - शैक्षिक संगठन के आन्तरिक तथा बाह्य वातावरण तथा संरचना में जाने वाले परिवर्तनों या सुधारों के अनुरूप निर्णयन भी गतिशीलता से युक्त होना चाहिए । परिस्थितियों के अनुसार निर्णय बदलना भी उपयुक्त रहता है ।
10. **प्रतिक्रियाओं का पूर्वानुमान (Assumption of Reactions) -** किसी भी स्तर अथवा व्यक्ति द्वारा लिए गए निर्णय की प्रतिक्रिया अवश्य होती है क्योंकि संगठनात्मक ' निर्णयों की प्रकृति 'सामूहिकता' को प्रभावित करती है, अत: अच्छे निर्णय में उन प्रतिक्रियाओं का पूर्वानुमान लगा लेना चाहिए । इस पूर्वानुमान द्वारा प्रतिक्रियाओं का उत्तर देना सरल हो जाता है तथा निर्णयन के समय श्रेष्ठ विकल्प का चयन आसान हो जाता है ।
11. **सीमाओं का ज्ञान (Knowledge of Limitations)-** निर्णय लेते समय संगठन के पास उपलब्ध संसाधनों का ज्ञान होना चाहिए । प्रशासक अथवा निर्णयकर्ता को यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होना चाहिए कि कोई भी निर्णय अपने आप में सम्पूर्ण, विशुद्ध तथा सर्व स्वीकार्य नहीं हो सकता, क्योंकि निर्णय करने वाले व्यक्ति, संगठन तथा परिस्थितियाँ बहुत सी सीमाओं से आबद्ध रहती हैं ।

उपर्युक्त वर्णित निर्णयन के आधार तथा सिद्धांत किसी पूर्णता के परिचायक नहीं हैं, बल्कि अच्छे निर्णय के लिए कुछ दिशा निर्देश ही हैं । निर्णयन को समय, स्थान, परिस्थितियाँ तथा कई अन्य कारक प्रभावित करते हैं ।

10.6 शैक्षिक निर्णय की आवश्यकता एवं महत्व (Need for Importance of Educational Decision Making)

प्रत्येक संस्था अपने निर्णयों के कारण बनती बिगड़ती हैं । हेल्गा डुंमड के अनुसार, "असफलता गलत निर्णयों से उत्पन्न होती हैं (Failure flows from bad decisions ।" यही कारण है कि निर्णयन को प्रबन्धकीय कार्यों के हृदय के रूप में स्वीकारा है । जार्ज टैरी ने लिखा है कि 'निर्णयन के अभाव मै प्रबन्ध के आधारभूत कार्यो का निष्पादन नहीं किया जा सकता है" शैक्षिक प्रबन्धन में निर्णयन का महत्त्व निम्नलिखित बिन्दुओं से प्रभावित होता है :-

1. **प्रशासन का हृदय (The Heart of Administration) -** शैक्षिक प्रशासन की समस्त प्रक्रिया निर्णयन पर आधारित है, चाहे वह शैक्षिक लक्ष्यों, नीतियों, पाठ्यक्रमों, वित्त, अधिगम प्रक्रियाओं, संसाधनों, आदि का निर्धारण हो अथवा क्रियान्वयन । समस्त प्रशासनिक कार्य निर्णयन द्वारा ही किए जाते हैं ।
2. **प्रबन्ध का पर्याय (Synonymous with Management)-** अधिकांश लेखकों ने प्रबन्ध को 'निर्णय लेने को कला' के रूप में परिभाषित किया है । एस. आर. डावर के मतानुसार, "एक प्रबन्धक का जीवन सतत् निर्णय लेने की कला है । अत: प्रबन्ध के समस्त कार्य प्रबन्धक की निर्णय क्षमता से ही पूरे किए जा सकते हैं । ये विभिन्न प्रबन्धकीय कार्य निम्नलिखित हो सकते हैं :-
   (1) प्रभावी शैक्षिक नियोजन (for effective planning)
   (2) सुदृढ़ संगठन के लिए (for sound organisation)
   (3) प्रभावी समन्वय के लिए (for effective coordination)
   (4) निर्देशन की सफलता के लिए (for the success of direction)
   (5) प्रभावी नियंत्रण के लिए (for effective control)
3. **निर्णयन को व्यापकता (Pervasineness)** - निर्णय प्रत्येक स्तर पर लिया जाता है । यद्यपि उच्च स्तर पर लिए जाने वाले निर्णय युद्धनीतिक (Strategic) तथा अत्यधिक महत्त्व के होते हैं तथा निचले स्तर पर निर्णय संचालकीय तथा दैनिक कार्यवाही से सम्बन्धित होते हैं । संस्था के प्रधानाचार्य से लेकर एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी तक निर्णयन का कार्य करता है । साथ ही एक प्रशासक को शैक्षिक नियोजन, संगठन, समन्वय, अभिप्रेरण तथा नियंत्रण से संबंधित क्षेत्रों में हर कदम पर निर्णय लेना होता है ।
4. **शैक्षिक लक्ष्यों व नीतियों का निर्धारण (Determination of Educational Goals and Policies) -** प्रबन्धक निर्णयन के माध्यम से ही शैक्षिक पाठ्यक्रम, मूल्यांकन, शिक्षा नीति, शैक्षिक संसाधनों, कर्मचारी विकास, आदि से सम्बन्धित उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं ।
5. **प्रबन्धकों का मूल्यांकन (Evaluation of Managers) -** प्रबन्धकों के निर्णय ही उनकी कार्यक्षमता एवं कौशल तथा उनकी उपयोगिता का निर्धारण करते हैं ।

6. **संस्था का निर्बाध संचालन (Smooth Running of the Institution) -** विवेकपूर्ण निर्णयों द्वारा संस्था की अनेक भौतिक एवं मानवीय समस्याओं को दूर किया जा सकता है, कार्य का श्रेष्ठ वातावरण निर्मित किया जा सकता है तथा समस्त गतिविधियों का निर्बाध संचालन किया जा सकता है ।
7. **तकनीकी नवाचार एवं परिवर्तनों हेतु (Technological Innovations and Changes)-** तकनीक विकास के कारण शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक बदलाव हो रहे हैं । शिक्षा में अनेक नवाचारयुक्त घटकों जैसे - कम्प्यूटर व इंटरनेट का प्रयोग, पाठ्यपुस्तकों का चयन, शिक्षकों की नियुक्ति, आदि से सम्बन्धित एक प्रधानाचार्य का निर्णय संस्था में शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करेगा ।
8. **समस्याओं का निवारण (Solutions of Problems) -** निर्णयन को अक्सर समस्या समाधान का पर्याय मानते हैं । प्रबन्धक अच्छे निर्णयों द्वारा समस्याओं का निराकरण प्रभावी ढंग से कर सकते हैं ।
9. **जोखिमों से सुरक्षा (Safety Against Risks) -** सुदृढ़ निर्णय, तथ्यों एवं पर्याप्त सूचनाओं पर आधारित, विवेकपूर्ण तथा वैज्ञानिक तरीकों पर आधारित होते हैं । इससे प्रबन्धन में जोखिमों से बचा जा सकता है ।
10. **संस्थागत लक्ष्यों को प्राप्ति (Achievement of Institutional Goals).** - अच्छे निर्णयों से कर्मचारी स्वयं भी संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति को प्रेरित होते हैं ।
11. **संसाधनों का पर्याप्त उपयोग (Optimum Utilisation of Resources)** - प्रभावकारी निर्णयों द्वारा संसाधनों का अपव्यय, अनुचित दिशा में बहाव, अपवर्तन (diversion) तथा रिसाव (leakage) को रोका जा सकता है ।
12. **प्रबन्धकों की विशिष्ट पहचान (Specific Mark of Managers) -** निर्णयन प्रबन्धकों के अस्तित्व की विशिष्ट पहचान है । मेसकन एवं अलबर्ट (Mescon and Albert) के अनुसार "एक बड़ी डेस्क के पीछे बैठने से व्यक्ति प्रबन्धक नहीं हो जाता । व्यक्ति प्रबन्धक तभी कहलाता है जबकि वह संगठनात्मक निर्णय ले अथवा दूसरे व्यक्तियों द्वारा उनका क्रियान्वयन करवाए ।"
13. **अनिश्चय कीं समाप्ति (Removal of Indecision) -** निर्णय के द्वारा संगठन में अनिश्चय की दुविधा, संदेही दृष्टिकोण, ढुलमुल नीति, भ्रम, संशय तथा अनिश्चितता की स्थिति को दूर किया जा सकता है ।
14. **सामाजिक मूल्यों का सर्जन (Creation of Social Values) -** शिक्षा में एक प्रबन्धकीय निर्णय कई लोगों, शिक्षकों, विद्यार्थियों, गैर शैक्षिक कर्मचारियों, शैक्षिक अधिकारियों, जन सामान्य, आदि को प्रभावित करता है । एक कुशल एवं पेशेवर प्रबन्धक अपने निर्णयों द्वारा न केवल संस्था में गुणवत्ता लाता है, वरन् सामाजिक मूल्यों को भी प्रभावित करता है ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

प्र.1 निर्णयन का उद्देश्य क्या है ?

प्र.2 निर्णयन की कोई चार विशेषताएँ बताइए ।

प्र.3 निर्णयन प्रबन्धन का पर्याय है । इस कथन पर संक्षिप्त टिप्पणी दीजिए ।

10.7 निर्णयों के प्रकार (Types of Decisions)

निर्णयों को अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है, जो व्यक्ति, संगठन, नीति, कार्य इत्यादि की प्रकृति पर निर्भर करते हैं । इन्हें निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है -

10.7.1 कार्यक्रमिक एवं अकार्यक्रमिक निर्णय (Programmed and Non Programmed Decisions) -

हरबर्ट साइमन (Herbart Simon) ने निर्णयों को दो श्रेणी - कार्यक्रमिक तथा अकार्यक्रमिक में विभक्त किया है ।

कार्यक्रमिक निर्णय (Programmed Decisions). - इन निर्णयों के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं-

1. ये निर्णय दिन-प्रतिदिन लिए जाते हैं तथा पुरावृत्तिक प्रकृति (Repetitive nature) के होते हैं ।
2. ऐसे निर्णय लेने के लिए पूर्व-निर्धारित नियम, नीतियाँ, कार्यविधियाँ, प्रमाप, मापदंड अथवा परम्पराएँ होती हैं । अत: ऐसे निर्णयों के लिए प्रत्येक बार नई विधि अपनाने की आवश्यकता नहीं होती ।
3. ये निर्णय सामान्य एवं संचालकीय समस्याओं के सम्बन्ध में लिए जाते हैं ।
4. ये निर्णय अधिकांशत: संगठन के निम्न स्तरों पर लिए जाते हैं ।
5. इनके द्वारा उच्च रूप से संरचित (Highly Structured) समस्याएँ हल की जाती हैं ।
6. ऐसे निर्णयों में अधिक विकल्प नहीं होते तथा बार-बार लेने से प्रबन्धक इन निर्णयों में दक्ष हो जाते हैं और उन्हें अधिक विवेक का प्रयोग नहीं करना पड़ता ।
7. ये निर्णय "स्थायी निर्णय (standing decisions)" होते हैं, जो दैनिक कार्यकलापों में प्रबन्धकों का मार्गदर्शन करते हैं ।"
8. इन निर्णयों से संबंधित प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों का कार्य वातावरण भी प्राय: अधिक परिवर्तनशील नहीं होता ।

शैक्षिक संगठनों के उद्देश्य, प्रमाप, कार्यपद्धतियाँ, कार्यविधियाँ, नीतियाँ, नियम, वेतन देना, अवकाश स्वीकृत करना, आदि कार्यक्रमिक निर्णय हैं ।

अकार्यक्रमिक निर्णय (Non-Programmed Decisions) - इनके प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं:-

1. ये निर्णय किसी नई, अनोखी, बेजोड़ (unique) अथवा अप्रत्याशित समस्या के सम्बन्ध में किए जाते हैं । इन निर्णयों का संस्था के दैनिक कार्यकलापों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता ।
2. ऐसे निर्णय लेने की कोई एक निश्चित प्रणाली नहीं होती क्योंकि समस्या ही पहली बार उत्पन्न हुई होती है ।
3. ये निर्णय सृजनात्मक प्रकृति के होते हैं तथा इनमें विशेष कल्पना शक्ति, अवलोकन क्षमता एवं अनुभव की आवश्यकता होती है ।
4. ये निर्णय परिस्थितिगत (situational) होते हैं, अर्थात् जैसी परिस्थिति वैसे निर्णय लेने होते हैं ।
5. ऐसे निर्णयों के प्रभाव गम्भीर तथा दीर्घकालीन होते हैं ।
6. ये निर्णय प्राय: उच्च अथवा मध्यवर्ती प्रबन्धकों द्वारा लिए जाते हैं ।
7. इन निर्णयों में प्रत्येक समस्या का समाधान एक 'नए दृष्टिकोण' से करना होता है ।

उपर्युक्त निर्णयों की मात्रा संगठन के प्रत्येक स्तर पर भिन्न होती है । संगठन के उच्च स्तर पर अकार्यक्रमिक निर्णय अधिक लिए जाते हैं जबकि निम्न स्तरों पर कार्यक्रमिक निर्णय अधिक लिए जाते हैं

जैसा कि चित्र सं. 1 में दिखा गया है ।

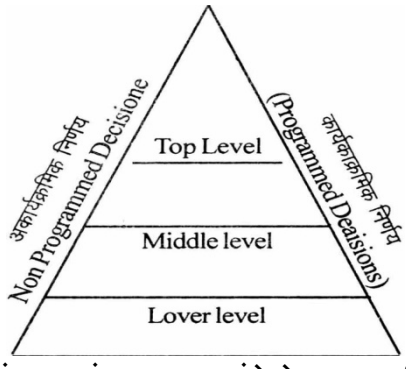

चित्र सं. 1 : संगठनात्मक ढांचे के अनुसार निर्णय

सामान्यत: एक प्रबन्धक का अधिकांश समय routine व अनुपयोगी निर्णयों में लग जाता है, जिससे उसके पास महत्त्वपूर्ण अकार्यक्रमिक निर्णयों के बहुत कम समय रहता है । । इसे **ग्रेशाम का नियम (Gresham's Law of Decision Making)** कहते हैं ।

10.7.2 व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक निर्णय (Personal and Organisational Decisions)

चेस्टर बर्नार्ड ने निर्णयों को व्यक्तिगत तथा संगठनात्मक श्रेणी में विभक्त किया है । उनके अनुसार व्यक्तिगत निर्णय वे होते हैं जो कोई अधिकारी अपनी व्यक्तिगत स्थिति में लेता है तथा इन निर्णयों में किसी का हस्तक्षेप नहीं होता और इन्हें अन्य व्यक्ति को भारार्पित **(delegate)** नहीं किया जा सकता है ।

संगठनात्मक निर्णय वे है जो एक प्रबन्धक अपनी अधिकारिक स्थिति (Authoritative position) के कारण लेता है और जिन्हें अन्य व्यक्ति को भारार्पित किया जा सकता है ।

10.7.3 वैयक्तिक व सामूहिक निर्णय (Individual and Group Decisions)

ऐसे निर्णय जो किसी एक व्यक्ति अथवा अधिकारी द्वारा बिना अधीनस्थों की भागीदारी के लिए जाते हैं **वैयक्तिक निर्णय (Individual Decisions)** कहलाते हैं । व्यक्तिगत निर्णय उस स्थिति में लिए जाते हैं, जहाँ समस्या रूटीन प्रकृति की हो तथा उसे हल करने के निश्चित तरीके पहले से ही विद्यमान हो । प्रशासक ही नहीं शिक्षक भी विद्यार्थियों के संबंध में कई निर्णय लेते हैं, जैसे- उनके ग्रहकार्य, प्रोजेक्ट, शिक्षण विधि, पाठ्यक्रम आदि । इसी प्रकार प्रशासक विभिन्न शिक्षकों को विभागीय कार्यो का आवंटन, पर्यवेक्षण कब करना, कहाँ करना आदि निर्णय व्यक्तिगत रूप से लेता है ।

जबकि **सामूहिक निर्णय (group decisions)** - एकाधिक व्यक्तियों या समूह द्वारा लिए जाते हैं । मेकफारलेन्ड के अनुसार, **"समूह निर्णय एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक समूह जिसमें अनेक व्यक्ति होते हैं, मिलकर किसी निर्णय पर पहुँचते हैं ।"** सामूहिक निर्णय क्रियान्वयन में सुगम होते है क्योंकि ये काफी विचार विमर्श एवं विभिन्न विकल्पों के मूल्यांकन के परिणाम होते हैं । क्योंकि सामूहिक निर्णयों में कर्मचारियों की संतुष्टि, विचारों की खुली अभिव्यक्ति, नवीन सुझावों को प्रोत्साहन, शिकायतों का समाधान आदि सम्मिलित होते हैं । अत: ये निर्णय ठोस तथा प्रकृति से जनतांत्रिक होते है ।

परंतु समूह निर्णय में अंतिम उत्तरदायित्व निश्चित नहीं होता है, समय अधिक लगता है, सभी की सहमति से निर्णय होना आवश्यक नहीं होता तथा निर्णय समूह में किसी के प्रभाव या वर्चस्व से भी हो सकता है । समूह निर्णयों में व्यक्तित्व परिवर्तन, अनावश्यक विवाद, मतभेद, समय की बर्बादी तथा निर्णय में विलम्ब जैसी समस्याएँ भी बनी रहती हैं ।

प्रशासक को चाहिए कि जो निर्णय पूरे शिक्षक समूह, विद्यालय समूह को प्रभावित करे वहाँ सामूहिक निर्णय आवश्यक है । उदाहरणार्थ - स्टाफ पिकनिक के स्थान का निर्णय, विद्यालय के सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजन तिथि, वार्षिक कैलेण्डर आदि का निर्णय ।

10.7.4 सामरिक एवं व्यूह रचना सम्बन्धी निर्णय (Tactical and Strategic Decisions)

प्रसिद्ध प्रबन्ध विद्वान पीटर ड्रकर (Peter F.Drucker) के अनुसार निर्णयों के दो प्रकार प्रमुख हैं - सामरिक एवं व्यूह रचना सम्बन्धी निर्णय ।

सामरिक निर्णय (Tactical Decisions) - ये निर्णय संगठन के लिए तुलनात्मक दृष्टि से कम महत्त्व के होते हैं । (ये संगठन में उच्च स्तर की उत्कृष्टता लाने के लिए जाते हैं ।) ये वर्तमान से ही सम्बन्धित होते हैं । इनमें मुख्य कार्य केवल एक विकल्प का चयन करना होता है तथा चयन का आधार एकमात्र समय एवं साधनों की मितव्ययता (economy) होता है । ड्रकर के अनुसार कुछ सामरिक निर्णय जटिल हो सकते हैं, किन्तु वे सदैव एक-आयामीय

(one dimensional) होते हैं । उदाहरणार्थ - दो शिक्षकों में से कौन पत्र व्यवहार का काम देखेगा ? कान्फ्रेंस, वर्कशॉप में कौन जाएगा, आदि ।

सामरिक सम्बन्धी निर्णय (Strategic Decisions) - ये निर्णय अत्यंत जटिल होते हैं तथा उपक्रम के भविष्य को गहन रूप से प्रभावित करते हैं । ये निर्णय पीटर ड्रकर दो अनुसार, **विशिष्ट रूप से प्रबन्धकीय निर्णय'** होते हैं । ये मात्र समस्या समाधान तक सीमित नहीं होते । ये निर्णय द्वि-आयमीय होते हैं, इनमें पहले 'सही समस्या' की पहचान करनी होती है तथा उसके बाद सही समाधान' ढूँढना होता है क्योंकि पीटर ड्रकर मानते हैं कि गलत समस्या का सही उत्तर ढूँढ लेना अर्थहीन होता है । ये निर्णय उच्च स्तर पर लिए जाते हैं क्योंकि ये लम्बे विचार-विमर्श तथा अधिक खर्च से पूरे होते हैं । उदाहरणार्थ- संस्था के शिक्षा के उद्देश्य, संसाधनों, कर्मचारियों के वेतन का निर्धारण आदि ।

10.7.5 उपक्रम, विभागीय एवं अन्तरविभागीय निर्णय (Enterprise,Departmental and Inter Departmental Decisions)

सम्पूर्ण उपक्रम के संबंध में उच्चाधिकारियों द्वारा लिए जाने वाले निर्णय उपक्रम (Enterprise) के निर्णय कहलाते हैं । **अन्तर विभागीय निर्णय (Inter departmental decisions)** विभिन्न विभागों के अधिकारियों द्वारा आपसी विचार-विमर्श से लिए जाते हैं, ताकि एकरूपता रह सके । जबकि किसी विशेष विभाग के अधिकारी द्वारा अपने विभागीय क्रियाकलापों के संबंध में लिए जाने वाले निर्णय विभागीय निर्णय (Departmental Decisions) कहलाते हैं ।

10.7.6 नीति, प्रशासनिक एवं कार्यकारी निर्णय (Policy,Administrative and Executive Decisions)

अर्नेस्ट डेल के अनुसार प्रशासन में तीन प्रकार के निर्णय होते हैं । संगठन के उच्च स्तर पर लिए जाने वाले निर्णय, वित्तीय व्यवस्था, विपणन, संरचना तथा सामान्य उद्देश्य से सम्बन्धित निर्णय, नीतिगत

निर्णय (Policy decisions) होते हैं । उदाहरणार्थ- शासन सचिवालय द्वारा लिए गए निर्णय । संगठन के मध्य स्तर पर प्रशासनिक निर्णय (Administrative decisions) लिए जाते हैं, जो नीति सम्बन्धी निर्णयों के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु आवश्यक है । जबकि कार्य को मूर्तरूप देने के लिए निम्न स्तर पर लिए जाने वाले निर्णय कार्यकारी (Executive decisions) हैं । ये निर्णय -प्रतिदिन अवसरानुसार लिए जाते हैं ।

10.7.7 सरल एवं जटिल निर्णय (Simple and Complex Decisions)

जब किसी समस्या के समाधान के लिए कम विकल्प उपलब्ध हों तो निर्णय सरल होता है, जब वे अधिक हों तो निर्णय जटिल होता है । जब हम इन दोनों प्रकार के निर्णयों को

उनकी उपलब्धि की उच्च व निम्न स्तर की निश्चितता के अनुसार सम्मिलित करते हैं तो निम्नलिखित चार प्रकार के निर्णय प्राप्त होते है -

1. यांत्रिकीय निर्णय (Mechanistic) - जिनमें समस्या सरल हो और समाधान की उच्च स्तर की निश्चितता हो । ऐसे निर्णय नियमित संचालन प्रक्रियाओं द्वारा लिए जा सकते हैं ।

2. निर्णयात्मक निर्णय (Judgemetal Decisions) - जिनमें समस्या तो सरल हो परन्तु समाधान की निश्चितता का स्तर न्यून हो ।

3. विश्लेषणात्मक निर्णय (Analytic decisions) - जिनमें समस्या। जटिल हो परन्तु उसका समाधान उच्च रूप से निश्चित हो ।

4. अनुकूलित निर्णय (Adaptive Decisions) - वे निर्णय जिनमें समस्या जटिल हो और समाधान की निश्चितता न्यून हो ।

इन चारों प्रकार के निर्णयों को निम्नलिखित चित्र-2 द्वारा दर्शाया जा सकता है -

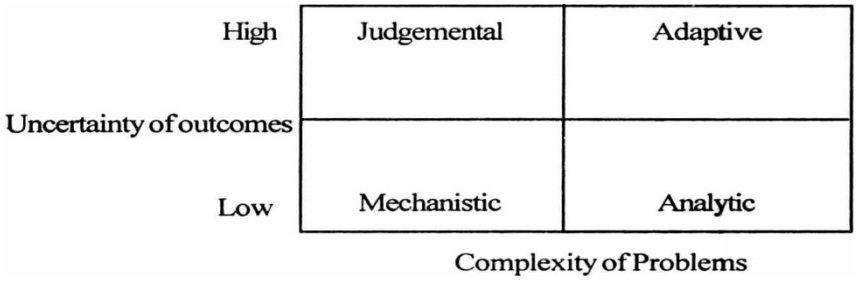

चित्र - 2

10.7.8 अन्य प्रकार के निर्णय (Other Types of Decisions)

अन्य कई प्रकार से भी निर्णयों का वर्गीकरण किया गया है जो निम्नलिखित हैं -

1. आधारभूत एवं नैत्यक निर्णय (Basic and Routine Decisions)
2. अनियोजित एवं नियोजित निर्णय (Off-the-cut and Planned Decisions)
3. नीतिगत एवं परिचालन संबंधी निर्णय (Policy and operating Decisions)
4. संकट. अन्तर्दशी बनाम शोध निर्णय (Crisis, Intuitive versus Research decisions)
5. पहल बनाम निर्दिष्ट निर्णय (Intiative versus Referred Decisions)
6. समस्या बनाम अवसर निर्णय (Problems versus Opportunity Decisions)
7. स्वचालित, मूर्ति एवं संज्ञानात्मक निर्णय (Automatic, Memory and Cognitive decisions)
8. तकनीकी, प्रबन्धकीय तथा संस्थागत निर्णय (Technical,Managerial and Institutional)
9. निश्चितता. जोखिम एवं अनिश्चितता के अंतर्गत निर्णय (Decisions under Certainty,Risk and Uncertainty)

10.8 निर्णय-प्रक्रिया के चरण (Steps in Decision Making)

प्रक्रिया से तात्पर्य "किसी परिणाम तक पहुँचाने वाली विभिन्न कार्यों अथवा कार्यवाहियों की एक श्रृंखला से है ।" निर्णय के स्तरों या चरणों को विभिन्न विद्वान जैसे - पीटर ड्रकर. हरबर्ट साईमन. मिन्जयर्ग, निसफिल्ड आदि अपनी-अपनी दृष्टि से देखते हैं । निर्णय प्रक्रिया को चाहे किसी भी आधार पर विश्लेषित किया जाए उसमें संगठन से संबंधित लक्ष्य तथा उद्देश्य, नीतियाँ, नेतृत्व, प्रशासनिक परिस्थितियाँ, विकल्पों का मूल्यांकन तथा अंतिम चयन - ये तत्त्व महत्त्वपूर्ण रहते हैं । संक्षेप में निर्णय प्रक्रिया में निम्नलिखित चरण होते हैं -

1. समस्या की पहचान एवं व्याख्या (Identifying and Defining the Problem)

सर्वप्रथम प्रबन्धक को समस्या का बोध अथवा अभिज्ञान होना चाहिए । हरबर्ट **साईमन** इसे **अन्वेषण क्रिया (Intelligence Activity)** कहते हैं । इसके लिए समस्या के कारणों को जानना आवश्यक है । समस्या उत्पत्ति के कारण - पूर्व अनुभवों से विचलन (deviation), योजना से विचलन, किसी अन्य व्यक्ति द्वारा समस्या बताना, प्रतिस्पर्धा आदि हो सकते हैं ।

समस्या की पहचान के पश्चात् उसे परिभाषित करना है । समस्या की व्याख्या तथा परिभाषा करना तभी संभव है, जबकि उसके मूल या समालोचक तत्व को ढूँढ लिया जाए । समस्या को स्पष्ट रूप से परिभाषित करने के लिए पीटर ड्रकर ने ये तीन चरण : (1) **समस्या के महत्वपूर्ण घटक (critical factor)** तथा सहो प्रश्न' (right question) का पता लगाना (2) **निर्णय के उद्देश्य** तथा (3) **समस्या से संबंधित उन नियमों का पता लगाना** जिसके अन्तर्गत निर्णय लिया जाता है, बताए हैं ।

2. समस्या का विश्लेषण करना (Analysing the Problem) - समस्या का विश्लेषण करने के लिए यह ज्ञात किया जाता है कि निर्णय किसे लेना चाहिए, निर्णय में किससे परामर्श लिया जाना चाहिए तथा किसे निर्णय की सूचना दी जानी चाहिए । समस्या के विश्लेषण के लिए आवश्यक तथ्य, आकड़े, सूचनाएँ तथा पूर्व निर्णय सहायक सिद्ध होते हैं । **पीटर ड्रकर** ने समस्या के विश्लेषण के लिए चार घटक दिए हैं **निर्णय को भविष्यता (degree of futurity), निर्णय का प्रभाव** (impact), **गुणात्मक घटक** (qualitative considerations). जैसे नैतिक मूल्य, मानवीय तत्व आदि तथा निर्णय की बारम्बारता (Periodicity) । इनके आधार पर प्रत्येक समस्या का सूक्ष्म तथा समग्र विश्लेषण कर लेना चाहिए ।

3. वैकल्पिक समाधानों का विकास करना (Develope Alternatives) - प्रत्येक समस्या के कई वैकल्पिक समाधान होते हैं । विकल्पों की तलाश "वैज्ञानिक विधि" का मुख्य तत्त्व है । विकल्पों के विकास के लिए निर्णयकर्ता में सृजनात्मकता, दूरदृष्टि, कल्पनाशक्ति आदि का होना आवश्यक है । विकल्पों का विकास समस्या की प्रकृति, उद्देश्य, व्याख्या तथा विश्लेषण के आधार पर तथा उपलब्ध आँकडों एवं सूचनाओं की सहायता से हो सकता है । वास्तव में निर्णय एक चयन एवं फैसला (Judgement) है जिसके लिए विकल्पों का होना आवश्यक होता है ।

4. वैकल्पिक समाधानों का मूल्यांकन (Evaluate Alternative) -विभिन्न विकल्पों का चुनाव करने के पश्चात् उनका मूल्यांकन एवं तुलना करनी चाहिए, जिससे प्रभावी विकल्प की पहचान की जा सके । विकल्पों की उपयुक्तता (feasibility)., स्वीकार्यता (acceptality) गुणवत्ता (quality), बजट (budget), विपरीतता (reversibility), समय (time), जोखिम (risks) व्यावहारिकता (practicalibility), आदि पर विचार कर मूल्यांकन करना चाहिए । वैकल्पिक समाधानों का मूल्यांकन विकल्पों की लागत, उपयुक्तता और उद्देश्य प्राप्ति में-योगदान के आधार पर भी होना चाहिए ।

5. श्रेष्ठ विकल्प का चयन (Selection of the Best Alternative) - निर्णय प्रक्रिया के इस चरण में उपलब्ध तथा मूल्यांकित किए गए विकल्पों में से किसी एक सर्वश्रेष्ठ विकल्प को समस्या के समाधान या निर्णय के रूप में चुना जाता है । सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करने में निर्णयकर्ता की पद स्थिति, अनुभव, अनुसंधान एवं विश्लेषण, विकल्पों की संख्या, समस्या की प्रकृति तथा उपलब्ध 'सूचनाएँ आदि निर्णायक भूमिका निभाते हैं । पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार, सामान्यत: सर्वश्रेष्ठ विकल्प चयन में निम्नलिखित तथ्य ध्यान में रखे जाते हैं-

(1) अधिकाधिक लाभ तथा न्यूनतम हानि
(2) कम प्रयत्नों तथा संसाधनों से समाधान
(3) समयानुकूल समाधान
(4) संसाधनों की सीमाएँ

6. निर्णय का क्रियान्वयन (Implementation of the Decision) - इस चरण में निर्णय को कार्यवाही में बदला जाता है । इसके लिए सम्बन्धित अधिकारियों को निर्णय लागू करने का दायित्व सौंपा जाता है, निर्णयों को प्रभावी तरह से सम्प्रेषित करना होता है, निर्णय के प्रति प्रबन्ध की प्रतिबद्धता जाहिर करनी होती है, निर्णय को भागीदारी आधारित बनाया जाता है ताकि सम्बन्धित व्यक्तियों की आलोचना का विषय नहीं बने तथा उनमें उत्तरदायित्व की भावना का विकास हो और क्रियान्वयन में सभी का सहयोग मिले । निर्णय का क्रियान्वयन ऐसा हो जो शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक हो, शिक्षकों व कर्मचारियों के निष्पादन में सुधार लाए तथा उनमें उपलब्धि की भावना का संचार करे । सफल क्रियान्वयन में संसाधनों का उचित उपयोग, अच्छा प्रबन्धन कौशल, नेतृत्व क्षमता, प्रोत्साहन (reward) संरचना, समूह गत्यात्मकता (dynamics) का ज्ञान तथा उपयोग होना चाहिए ।

7. प्रत्युत्तर या अनुसरण (Feedback or Follow Up)

किए गए निर्णय का प्रत्युत्तर प्राप्त करना या अनुसरण करना भी आवश्यक है । इससे निर्णय लेने वाले व्यक्तियों की कुशलता एवं निर्णय की व्यावहारिकता का पता लगाया जा सकता है । आज का निर्णय भावी निर्णयों का आधार बनता है । इस चरण में ही निर्णय पर नियंत्रण किया जा सकता है । पर्यवेक्षण के माध्यम से त्रुटियों व कमियों का पता लगाकर निर्णय के क्रियान्वयन में आ रही बाधाओं को दूर किया जाता है तथा अधीनस्थों में किसी प्रकार की गलतफहमी को दूर किया जा सकता है । भावी निर्णयन को सुदृढ़ करने के लिए सूचनाओं व आकड़ों को निर्णय प्रक्रिया के प्रत्येक स्तर पर पुन: प्रेषित किया जाना चाहिए । इस

प्रकार निर्णयन के अंतिम चरण में निर्णय के प्रभावों, क्रियान्वयन, दुर्बलताओं एवं अन्य कमियों का अध्ययन करके आवश्यक संशोधन व सूचनाओं का पुनर्निवेश किया जाता है । निर्णय प्रक्रिया के सम्पूर्ण चरणों को चित्र संख्या 3 में दिखा गया है ।

निर्णयन प्रक्रिया

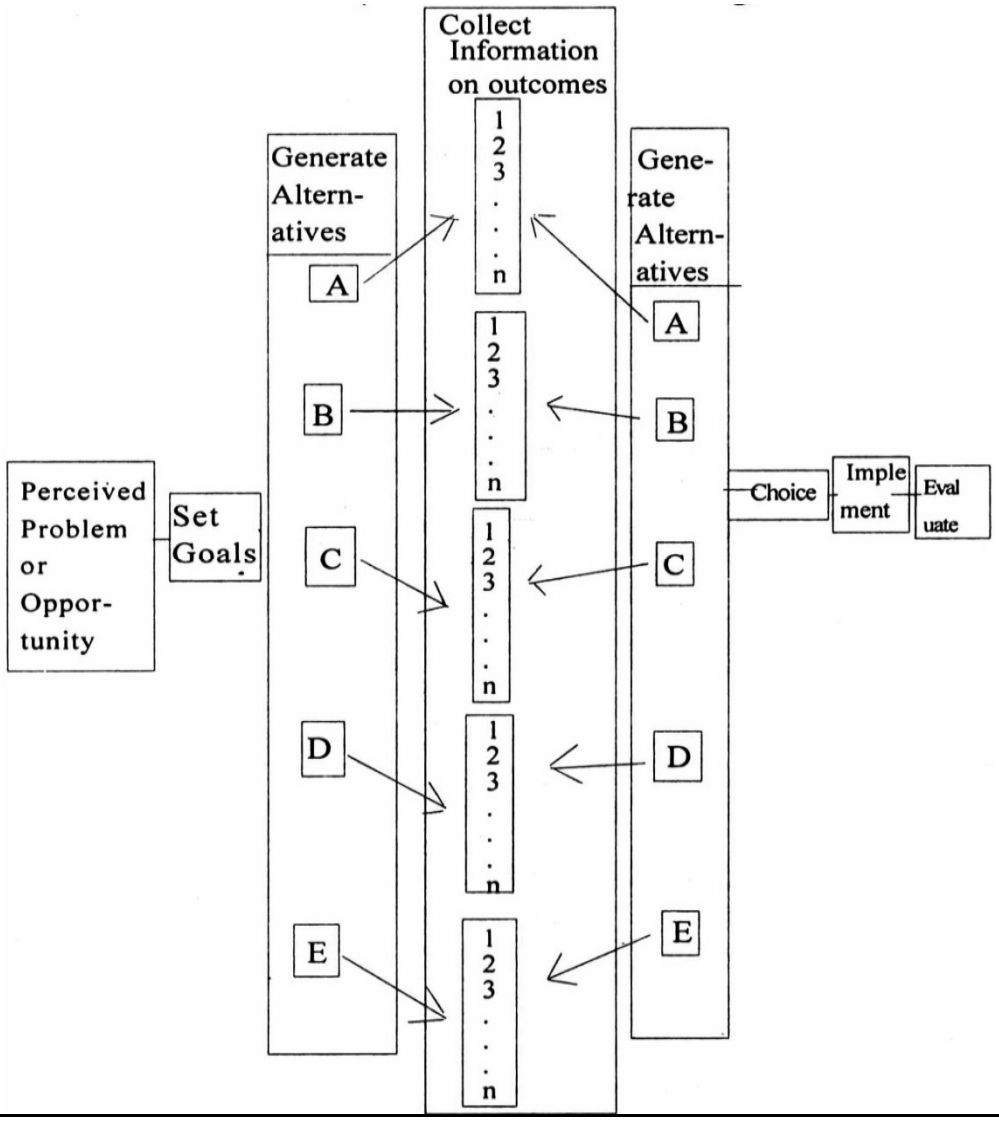

10.9 शैक्षिक संख्या में निर्णयन के स्तर (Levels of Decision in an Educational)

विद्यालय स्तर की किसी शैक्षिक संस्था में प्राय: तीन स्तरों पर निर्णय लिए जाते हैं, जैसा कि निम्नलिखित सारणी में प्रदर्शित किया गया है -

स्तर	निर्णयकर्ता	क्षेत्र
उच्च स्तर	विभागीय स्तर	शिक्षा विभाग लक्ष्य
	1. राज्य स्तर	उद्देश्य, नीति आदि

	2. शिक्षा विभाग 3. शिक्षा परिषद् (बोर्ड)	सम्बन्धी निर्णय
मध्यम स्तर	प्रधानाध्यापक, शिक्षक	उपरोक्त नीतियों उद्देश्यों को लागू करने के लिए निर्णय लेना
निम्न स्तर	व्यक्तिगत रूप से निर्णय	निर्णय की क्रियान्वयन के लिए प्रत्येक स्तर पर भूमिका निश्चित करना,नीतियों को लागू करना

10.10 निर्णयन प्रक्रिया के मॉडल व विचारधाराएँ (Models and Approaches to Decision Making)

निर्णयन के संबंध में विचारकों ने अनेक मॉडल्स व विचारधाराएँ प्रस्तावित की हैं । पाठ की शब्द सीमा को देखते हुए यही इन मॉडल्स व विचारधाराओं के केवल नाम दिए जा रहे हैं । विस्तार से अध्ययन हेतु कृपया संदर्भ सूची में लिखी पुस्तकें देखें ।

निर्णयन प्रक्रिया के मॉडल्स (Models of Decision Making Process)

निर्णयन का कार्य प्राय: जटिल एवं अव्यवस्थित होता है जिसमें अत्यंत विवेक की आवश्यकता होती है । मॉडल्स इस प्रक्रिया को व्यवस्थित एवं सरल बनाने में सहायक होते हैं । ये निर्णयन में एक क्रमबद्ध व तर्कयुक्त दृष्टिकोण उत्पन्न कर देते हैं ।

निर्णयन के संबंध में अनेक विद्वानों ने अपने निर्णयन मॉडल्स निर्मित किए वे जो प्रबन्धकों के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं । यहाँ कुछ प्रमुख निर्णयन मॉडल्स अर्थात् प्रतिरूप के नाम दिए जा रहे हैं जो निम्नलिखित हैं -

1. अविवेकशील व्यक्ति मॉडल (Irrational Person Model)
2. सृजनात्मक / आत्मविकास व्यक्ति मॉडल (Creative / Self Actualising Person Model)
3. विवेकशील-आर्थिक व्यक्ति मॉडल (Rational / Economic Person Model)
4. दृष्टिकोण द्वारा विलोपन मॉडल (Elimination by Aspects Model)
5. प्रशासनिक व्यक्ति मॉडल (Administrative Man Model)
6. अव्यक्त चहेता मॉडल (Implicit Favourite Model)
7. अन्तर्दशी मॉडल (Intuitive Model)
8. अन्तर्द्वन्द्व मॉडल (Conflict Model)

निर्णयन की विचारधाराएँ (Approaches to Decision Making)

निर्णयन से संबंधित कुछ विचारधाराएँ हैं जो प्रबन्धकों को किसी निर्णय तक पहुँचने में सूझ प्रदान करती हैं । इस संबंध में सामान्य रूप से निम्नलिखित विचारधाराएँ महत्वपूर्ण हैं -

1. विवेकपूर्ण-व्यापक विचारधारा (Rational Comprehensive Approach)
2. क्रमिक सीमित तुलना विचारधारा (Successful Limited comparison Approach)

3. मिश्रित पर्यावलोकन विचारधारा (Mixed Scanning Theory)

4. मानवतावादी विचारधारा (Humanistic Approach)

5. एकीकृत विचारधारा (Integrated Approach)

6. प्रणाली विचारधारा (Systems Approach)

7. अन्य विचारधाराएँ - सृजनात्मकता (Creativity), वैज्ञानिक विधि (Scientific Method), सक्रिया अनुसंधान (Operations Research), परिकलन (Computational Approach), निर्णायक (Judgemental), समझौता (Compromise Approach) तथा उत्प्रेरणात्मक विचारधारा (Inspirational)

स्व - मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

प्र.1 कार्यक्रमिक व अकार्यक्रमिक निर्णयों में तीन अंतर स्पष्ट कीजिए ।

प्र.2 निर्णय प्रक्रिया के चरण लिखिए ।

प्र.3 व्यक्तिक व सामूहिक निर्णय लेने सम्बन्धी एक-एक उदाहरण शैक्षिक प्रबन्धन से दीजिए ।

व्यक्तिक निर्णय (2) सामूहिक निर्णय

10.11 वैश्विक परिदृश्य में शैक्षिक प्रबन्ध में निर्णय के बदलते परिदृश्य (Changing Trends of Decision Making in Educational Management in Global Scenario)

वैश्वीकरण के इस युग में शिक्षा के क्षेत्र में कई बदलाव आए हैं । ज्ञान के क्षेत्र में विस्फोट हुआ है और शिक्षा की विषयवस्तु, सीखने की प्रक्रिया व शिक्षण विधियों, उद्देश्यों, नीतियों में बदलाव आया है । तकनीकी विकास व सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के विकास से संस्थाओं के संसाधनों में बदलाव अपेक्षित हैं । इनसे संस्था के कर्मियों में सम्प्रेषण तीव्रगामी व आसान हो गया है । वैश्विक उदारीकरण के प्रभाव से शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में भी तटस्थता (rigidity) में कमी हुई है । मानव सम्बन्धों (Human Relations) से संगठन के विभिन्न पक्षों पर पड़ने वाले प्रभाव पर व्यापक रूप से ध्यान दिया जा रहा है जिससे कि संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति सुनिश्चित हो । इन वैश्विक बदलावों के प्रभाव से प्रबन्धन को नवाचारों को समय पर क्रियान्वित करने के लिए समय-समय पर निर्णय लेने पड़ते हैं ।

समय के साथ-साथ प्रबन्ध एवं निर्णय की प्रक्रिया, तकनीक व उपकरणों में भी भारी परिवर्तन आया है । आज कोई भी प्रबन्धक केवल अपने सामान्य ज्ञान, अन्तर्दृष्टि, भावनाओं, अज्ञात निर्देशन, वैयक्तिक मत आदि घटकों के आधार पर निर्णय लेकर सफल नहीं हो सकता । समय की जटिलता के साथ निर्णय की प्रक्रिया में 'सामान्य समझ' के स्थान पर विज्ञान, तर्क, विश्लेषण, सूचना, समक, मॉडल, परिमाणात्मक विधियों आदि का प्रयोग बढ़ रहा है ।

शैक्षिक प्रबन्ध में प्रबन्धकों, शिक्षकों, आदि को शिक्षा के विभिन्न पक्षों जैसे नीति, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, मूल्यांकन, शिक्षण व्यूह रचनाओं, अधिगम के तरीकों, संसाधनों, समुदाय की सहभागिता, अभिभावकों की ' संतुष्टि, विद्यार्थियों की उपलब्धि, उपस्थिति शिक्षकों की नियुक्ति, वेतन, वित्त आदि से सम्बन्धित ठोस एवं वैज्ञानिक निर्णय लेने होते हैं । आज प्रबन्धक को अपने निर्णयों के लिए सुदृढ़ परिणात्मक आधार उत्पन्न करना होता है ।

अत: वर्तमान में निर्णयन में निम्नलिखित बदलाव आ रहे हैं :-

1. निर्णयन की प्रक्रिया में विवेकशीलता, तर्क, विश्लेषण, तथ्यों, आँकडों व सूचनाओं का महत्त्व एवं प्रयोग बढ़ा है ।
2. समस्याओं का निदान एवं निर्धारण भी वैज्ञानिक तकनीकों के आधार पर जाने लगा है।
3. निर्णयन की समस्त प्रक्रिया तर्कयुक्त व व्यवस्थित होती जा रही है ।
4. निर्णय समस्या को प्रभावित करने वाले घटकों को परिमाणात्मक रूप में व्यक्त किया जा रहा है ।
5. निर्णयन में मानवीय तत्त्व तथा अन्तर्दृष्टि का महत्त्व अपेक्षाकृत कम हुआ है ।
6. निर्णय की अनेक सांख्यिकीय एवं वैज्ञानिक विधियाँ विकसित हो रही है, जैसे सेम्पलिंग, परिकल्पना, परीक्षण, रेखीय कार्यक्रम, क्रियात्मक अनुसंधान, सिम्यूलेशन, कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनर्निरीक्षण विधि (PERT) आदि । आज गणितीय साधन, क्रियात्मक अनुसंधान, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण, कम्प्यूटर सिम्यूलेशन द्वारा अकार्यक्रमिक निर्णय लिए जा सकते हैं ।
7. वर्तमान में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार के साथ निर्णयन में अधीनस्थों की सहभागिता भी बढ़ी है ।
8. लूथर गुलिक जैसे शास्त्रीय प्रबन्धक विचारकों ने व्यक्ति को मशीन के रूप में माना था । उस समय व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले कार्यो में उसकी सामाजिक और संवेगात्मक संवेदनशीलता को प्राय: नकारा जाता था । लेकिन वर्तमान में जब से समाज विज्ञान और मनोविज्ञान में हुए शोधों का उपयोग प्रबंधन में बढ़ा है, मानवीय सम्बन्धों (Human Relation) एवं उत्पादन कार्यों को महत्त्व दिया जाने लगा है । मानव सम्बन्ध प्रबन्धन मानवीय सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में निर्णय को महत्त्व देता है ।

10.12 निर्णयन में बाधाएँ (Problems in Decision Making)

प्रशासनिक संगठनों में निर्णयों को विवेकशील बनाने तथा व्यावहारिक रूप में क्रियान्वित करने के संबंध में अनेक समस्याएँ एवं बाधाएँ विद्यमान हैं । इन्हें हम मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त कर सकते है।

1. प्रक्रिया अथवा तकनीकी कारण (Process or Technical reasons)

जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है कि प्रभावी निर्णयन के लिए प्रक्रिया अपनानी चाहिए । कई निर्णय, प्रक्रिया की व्यवस्था में दोष अथवा तकनीक कारणों से रह जाते हैं । ये कारण निम्नलिखित हो सकते हैं -

(1) समस्या का उपयुक्त व स्पष्ट परिभाषीकरण न होना ।

(2) समस्या के सम्बन्ध में निर्णय लेने से पूर्व समुचित तथा विश्वसनीय तथ्यों; का अभाव होना।

(3) निर्णयकर्ता को निर्णय संबंधित तकनीक ज्ञान का अभाव होना ।

(4) निर्णयकर्ता को निर्णय करने की क्रियान्विति के आवश्यक चरणों का अस्पष्ट होना ।

(5) निर्णय प्रभाव का समुचित मूल्यांकन न होना ।

(6) निर्णय लेने में विलम्ब होना ।

(7) अपरिपक्व निर्णयों का लिया जाना ।

(8) निर्णय का सम्प्रेषण अप्रभावी रूप से होना ।

(9) सूचनाओं की शुद्धता (accuracy of informations) की जाँच न करने से प्रबन्धक द्वारा वास्तविकता जानने में असफल रहना ।

(10) कारण के स्थान पर तत्त्वों पर ध्यान ।

(11) सूचना विश्लेषण की दोषपूर्ण प्रक्रिया

(12) निर्णयन के लिए आवश्यक विकल्पों का न मिलना अथवा सूचनाओं की कमी

2. संगठन अथवा प्रशासन सम्बन्धी कारण (Organisational or Administrative reasons)

(1) निर्णय लेने वाली सक्षम अधिकृतियों के अधिकारों के सम्बन्ध में अनिश्चितता ।

(2) विभिन्न अधिकृतियो के मध्य उचित सम्प्रेषण का अभाव

(3) निर्णय को क्रियान्वित करने वाले अधिकारी की अपेक्षा

(4) निर्णय के समुचित व नियमित मूल्यांकन का अभाव

(5) निर्णय लेने में अधीनस्थों पर अविश्वास एवं निर्णय की अस्पष्टता ।

3. भौतिक कारण (Physical reasons)

(1) तथ्यात्मक सामग्री का न होना

(2) निर्णय के लिए आवश्यक सामग्री के संकलन व विश्लेषण

(3) निर्णय प्रक्रिया के मूल्यांकन सम्बन्धी तथ्यों का अभाव

(4) किसी संगठन का भौतिक तथा संगठनात्मक वातावरण का सही न होना ।

4. मानवीय कारण (Human reasons)

(1) बाह्य दबाव के कारण पक्षपातपूर्ण निर्णय लेना ।

(2) वैयक्तिक रूझान, हठधर्मिता व पूर्वाग्रहों के कारण सही निर्णय का न लिया जाना ।

(3) वैयक्तिक स्वार्थ अथवा किसी प्राप्ति के कारण निष्पक्ष निर्णय न लिया जाना ।

(4) प्रबन्धक द्वारा निर्णय का स्थगन

(5) प्रबन्धक में सक्षमता व आत्मविश्वास का अभाव हो तो वह निर्णय लेने से डरेगा तथा सदैव अनिर्णय की स्थिति में रहेगा ।

प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक पारिवारिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि होती है । उसकी आयु, जाति, धर्म, नस्ल, लिंग, भाषा, देश, काल, बुद्धि तथा चरित्र निर्णयन को व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं । इनके अलावा प्रशासन में निर्णय तंत्र को प्रभावित करने वाले कारकों में सत्ता, वित्त, मापदण्ड, समय, कानून, मूल्य तथा नियंत्रण इत्यादि की सीमाएँ एवं राजनीतिक दल, दबाव समूह, सामाजिक परिवेश, अर्थव्यवस्था, भौगोलिक परिस्थितियाँ सांस्कृतिक प्रतिमानों की प्रकृति निर्णायक भूमिका निभाती हैं । इन बाध्यताओं का घेरा निर्णयन को प्रभावित करता है ।

इनके अतिरिक्त सेक्लर-हडसन के अनुसार यदि निम्नलिखित तत्त्वों -लोकाचार तथ्य, इतिहास, मनोबल अनुमानित भविष्य, उच्चाधिकारी, स्टाफ सदस्य, कार्यक्रम की प्रकृति तथा कार्मिक की अवहेलना की जाए तो निर्णयन बाधित होता है ।

स्व मूल्यांकन (Self Evaluation Question)

प्र.1 किसी विद्यालय में निर्णयन के प्रमुख कार्यकारी क्षेत्र बताइए ।

प्र.2 वैश्विक परिप्रेक्ष्य को देखते हुए एक शिक्षक द्वारा कक्षा-कक्ष अनुदेशन हेतु लिए जानेवाले चार निर्णयों का उल्लेख करे ।

प्र.3 एक प्रधानाध्यापक द्वारा विद्यालय में निर्णयन संबंधी अनुभव की गई, प्रमुख बाधाओं का उल्लेख करे ।

10.13 निर्णय प्रक्रिया सम्बन्धी अनुसंधान (Researches in Decision Making)

निर्णयों का आकलन सही हो इस दिशा में काफी कार्य हुआ है । निर्णय प्रक्रिया सम्बन्धी अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि -

1. निर्णय के परिणामों के संबंध में भविष्यवाणी करने में वे ही विधियाँ उपयुक्त है जिनका गणितीय आधार पर आकलन किया जा सकता है अथवा दत्तों का परिमाणन (Quantification of data) किया जा सकता है ।
2. विद्यालयों में जिस सीमा तक शिक्षक निर्णयों में भाग लेते हैं, उसी सीमा से उन्हें संतोष प्राप्त होता है, कार्य करने का उत्साह बढ़ता है तथा प्राचार्य के प्रति सार्थक अभिवृत्ति विकसित होती है ।
3. परन्तु शिक्षकों की निर्णयों में सहभागिता की आधिक्यता प्रशासक के विरोध को भी जन्म देती है ।
4. चेस्टर बर्नार्ड ने निर्णय में कुछ क्षेत्रों को 'असहमति के क्षेत्र' की संज्ञा दी है, जहाँ प्रशासकों के निर्णयों को बिना प्रश्न किए हुए मान लेना चाहिए । परंतु जब निर्णयों के अधिक क्षेत्र असहमति के क्षेत्र बन जाएँ और महत्त्वपूर्ण विषयों पर शिक्षकों की उपेक्षा हो तो स्वाभाविक है कि शिक्षक समुदाय की ओर से इस दृष्टिकोण का विरोध हो ।

5. ब्रिजेस (Bridges) के अनुसार जब निर्णयों का सीधा सम्बन्ध शिक्षकों के वैयक्तिक हित से जुड़ा हो तब निर्णयों में शिक्षकों की सहभागिता आवश्यक है ।
6. जहाँ किसी क्षेत्र विशेष में निर्णय लेना हो तो संबंधित विशेषज्ञ शिक्षक को निर्णयों में सम्मिलित करना चाहिए ।

उपरोक्त के अतिरिक्त निर्णय प्रक्रिया से संबंधित निम्नलिखित क्षेत्रों में अनुसंधान किए जा सकते हैं-

1. विद्यालयों में परिवर्तन और नवाचारों के क्षेत्र में निर्णय प्रक्रिया का अध्ययन ।
2. निर्णय लेने की जनतांत्रिक प्रक्रिया का अध्ययन ।
3. निर्णय प्रक्रिया का शिक्षा प्रणाली पर प्रभाव ।
4. निर्णय प्रक्रिया में शिक्षकों की भागीदारी का अध्ययन ।
5. निर्णय प्रक्रिया का संगठन के पर्यावरण पर प्रभाव
6. संगठनों में प्रचलित निर्णय शैलियों का अध्ययन
7. संगठन की संरचना व निर्णय प्रक्रिया
8. नेतृत्व शैली व निर्णय प्रक्रिया
9. संस्था में निर्णयन को प्रभावित करने वाले तत्त्वों का अध्ययन

उपरोक्त के अतिरिक्त सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व वैज्ञानिक क्षेत्र में हो रहे विकास के संदर्भ में शैक्षिक निर्णय की गतिशीलता तथा इसका समय प्रबन्धन, मानव सम्बन्ध प्रबन्धन, तनाव प्रबन्धन, आपदा प्रबन्धन तथा जीवन प्रबन्धन से सम्बन्धों इत्यादि जैसे आयाम शोध के लिए समसामयिक संदर्भ निर्मित करते है ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. निर्णय के प्रकारों को शैक्षिक प्रबन्धन के उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए ।
2. एक शैक्षिक संस्था के प्रशासक को निर्णयन में किन बाधाओं का सामना करना पड़ता है उनकी सूची बनाइए ।

10.14 सारांश (Summary)

प्रबन्धन में निर्णयन का अत्यन्त महत्त्व है । प्राय: निर्णयन को प्रबन्ध का पर्याय मानते हैं । निर्णयन कई विकल्पों में से श्रेष्ठ विकल्प का चयन करने की एक प्रक्रिया है, अच्छे निर्णयन के लिए निर्णयन के कुछ स्थापित सिद्धांतों जैसे- वैधानिकता, समय तत्व, पूर्णता, व्यावहारिकता, गतिशीलता, सीमाओं का ज्ञान आदि को दृष्टिगत रखना पड़ता है ।

निर्णयन को विभिन्न प्रकारों से वर्गीकृत किया गया है । उदाहरण के तौर पर कार्यक्रमिक व अकार्यक्रमिक निर्णय, व्यक्तिगत व संगठनात्मक निर्णय, सामरिक व व्यूह रचना सम्बन्धी निर्णय, सरल व जटिल निर्णय, उपक्रम, विभागीय एवं अन्तरविभागीय निर्णय आदि । इसी प्रकार निर्णय प्रक्रिया के विभिन्न मॉडल्स व विचारधाराएँ भी प्रचलित हैं ।

निर्णयन प्रक्रिया कुछ चरणों से होकर सम्पन्न होती हैं :- (1) समस्या की पहचान एवं व्याख्या (2) समस्या का विश्लेषण (3) वैकल्पिक समाधानों का विकास (4) वैकल्पिक समाधानों का मूल्यांकन (5) श्रेष्ठ विकल्प का चयन (6) निर्णय का क्रियान्वयन तथा (7) प्रत्युत्तर या अनुसरण।

वैश्वीकरण, तकनीकी विकास, ज्ञान के विस्फोट, उदारीकरण आदि बदलावों से निर्णयन का महत्त्व बढ़ गया है । निर्णयन की प्रक्रिया तर्कयुक्त व व्यवस्थित होती जा रही है । परंतु निर्णयन में मानवीय तत्व तथा अन्तर्दृष्टि का महत्व अपेक्षाकृत कम हुआ है । निर्णयन में प्रक्रिया अथवा तकनीकी कारण, संगठन अथवा प्रशासन सम्बन्धी कारण, भौतिक कारण, मानवीय कारण तथा अन्य कई कारणों से बाधा उत्पन्न होती है । अत: वर्तमान में निर्णयन के महत्व के कारण कई क्षेत्रों - निर्णयन प्रक्रिया, संगठनात्मक वातावरण, नेतृत्व शैली से निर्णयन का सम्बन्ध आदि में अनुसंधान की आवश्यकता है ।

अभ्यास प्रश्न (Exercises)

1. शैक्षिक प्रबन्धन में निर्णयन के सम्प्रत्यय, लक्षण, इसकी विशेषताओं, आधार तथा सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करिए ।
2. शैक्षिक निर्णयन के प्रकारों तथा निर्णय प्रक्रिया के चरण को स्पष्ट करते हुए निर्णयन के बदलते परिप्रेक्ष्य, बाधाओं तथा निर्णय प्रक्रिया संबंधी अनुसंधान पर एक समालोचनात्मक निबन्ध लिखिए ।

10.15 संदर्भ (References)

1. Tripathi PC & Reddy PN (1997) Principles of Management (SE), Delhi : Tata McGraw Hill Publishing Company Limited.
2. कटारिया, सुरेन्द्र (2000) प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबन्ध, उदयपुर : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस
3. Marmar Mukhopadhyay (2001) New Delhi : Total Quality Management in Education, NIEPA (NUEPA)
4. सोडाणी कैलाश, बांगड़ आर. एस. (1998-99) प्रबन्धकीय निर्णय, उदयपुर : अरावली प्रकाशन.
5. सुधा जी.एस (2001) प्रबन्ध तकनीक : एक निर्णयन दृष्टिकोण जयपुर : राज पब्लिशिंग हाऊस
6. ओड एल. के. (1991) शैक्षिक प्रशासन जयपुर : राजस्थान हिन्दी गन्थ अकादमी
7. Mukherjee S.S. (1979) Theory and Practice of Management, Delhi : Surjeet Publications
8. Naik S.P. (1989) Ed. Theory of Teacher Training, New Delhi : Anmol Publications Private Limited

इकाई 11

शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय

(Co-ordination in Educational Management)

इकाई की सरंचना

11.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

11.2 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय : अर्थ एवं सम्प्रत्यय (Co-ordination in Educational Management : Concept and Meaning)

11.2.1 शैक्षिक प्रबन्ध (Educational Management)

11.2.2 समन्वय (Co-ordination)

11.2.3 शैक्षिक प्रबन्ध और समन्वय (Educational Management and Coordination) 11.3 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय के क्षेत्र (Scope of Co-ordination in Educational Management)

11.4 समन्वय की विशेषताएँ (Characteristics of Coordination)

11.5 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय का महत्व (Importance of Coordination in Educational Management)

11.6 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय की आवश्यकता (Need of Coordination in Educational Management)

11.7 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय के सिद्धान्त (Principles of Coordination in Educational Management)

11.8 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय के प्रकार (Types of Co-ordination in Educational Management)

11.9 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय की तकनीक (Techniques of Coordination in Educational Management)

11.10 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय की प्रक्रिया (Effective Co-ordination in Educational Management)

11.11 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय की सीमाएँ (Limitations of Co-ordination in Educational Management)

11.12 सारांश (Summary)

11.13 संदर्भ (References)

11.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

(1) शैक्षिक प्रबन्ध तथा समन्वय का अर्थ समझ सकेंगे ।

(2) शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय के महत्त्व को समझ सकेंगे ।

(3) शैक्षिक प्रबन्ध के सम्प्रत्यय को स्पष्ट कर सकेंगे ।

(4) यह सामान्यीकरण कर सकेंगे कि शैक्षिक समन्वय शैक्षिक प्रबन्ध का प्रमुख आधार है ।

(5) शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे ।

(6) शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय की आवश्यकताओं व महत्त्व को जानकर समन्वयात्मक दृष्टिकोण विकसित कर सकेंगे ।

(7) शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर शिक्षा प्रबन्ध के समन्वय में अपनी भूमिका को निर्धारित कर सकेंगे ।

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

जिस प्रकार विश्व, देश, राज्य एवं स्थान के कार्य एक व्यवस्थित क्रम का अनुसरण करते हुए अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अग्रसर रहते हैं उसी प्रकार मानव समाज में व्यक्ति अपनी वैयक्तिक व सामाजिक आवश्यकताओं को, लक्ष्यों को, उद्देश्यों को सामूहिक प्रयासों के फलस्वरूप प्राप्त करने हेतु प्रयासरत रहता है । वह नियोजित, संगठित, निर्देशित, समन्वित व नियंत्रित रूप में अपने प्रयासों को सफल बनाता है । उसके यही व्यक्तिगत प्रयास संगठित रूप में प्रबन्ध कहे जाते हैं । ऐसे में मानव से जुड़े सभी पक्षों में एक व्यवस्थित प्रबन्ध का होना आवश्यक है । प्रबन्ध उद्योग क्षेत्र में हो, व्यापार क्षेत्र में हो या फिर शिक्षा के क्षेत्र में । प्रबन्ध हर उपक्रम का महत्त्वपूर्ण आधार है । शिक्षा से जब इसका जुड़ाव हो जाता है तो यह शैक्षिक प्रबन्ध कहा जाता है । शैक्षिक प्रबन्ध में लक्ष्य तक पहुँचने के लिए शिक्षा क्षेत्र से जुड़ी व्यवस्थाओं का समन्वय, निर्देशन, संगठन व नियंत्रण आदि गुणों का होना आवश्यक हो जाता है ।

समन्वय प्रबन्ध का प्रमुख आधार है । बिना समन्वय के प्रबन्ध की प्रगति संदेहास्पद ही रहती है । अत: शैक्षिक प्रबन्ध भी समन्वय के अभाव में व्यवस्थित प्रगति नहीं कर सकता । शैक्षिक प्रबन्ध में भी समन्वय का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है अर्थात् शैक्षिक प्रबन्ध से जुड़े सभी व्यक्ति अपने उद्देश्यों व लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सहयोग व समन्वय के साथ प्रगति करते रहे ।

11.2 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय : अर्थ एवं सम्प्रत्यय (Co-ordination in Educational Management : Meaning and Concept)

11.2.1 शैक्षिक प्रबन्ध (Educational Management)

मानव के व्यवहार परिवर्तन की प्रक्रिया का प्रमुख आधार शिक्षा है । जीवन भर चलने वाली इस प्रक्रिया की सफलता उत्तम प्रबन्ध पर निर्भर है । यदि प्रबन्ध निरंकुश है तो शिक्षा की प्रक्रिया में अवरोध आयेंगे । यदि वह अधिनायकवादी हो तो एक व्यक्ति या संस्था का वर्चस्व रहेगा । यदि मुक्त है तो अराजकता की संभावना बढ़ेगी । इसलिये शिक्षा उद्योग अर्थात्

शिक्षा संस्थाओं की सफलता उसके प्रबन्ध पर निर्भर करती है । विश्व-विख्यात प्रबन्ध विशेषज्ञ पीटर एफ. ड्रूलर के शब्दों में, "प्रबन्ध प्रत्येक व्यवसाय का गतिशील एवं जीवनदायक तत्त्व है उसके नेतृत्व के अभाव में उत्पादन के साधन केवल साधन मात्र रह जाते हैं कभी उत्पादक नहीं बन पाते ।"

जिस प्रकार बिना आत्मा के मानव शरीर अस्थियों व माँस का लौंदा है उसी प्रकार बिना प्रबन्ध के संस्थान भूमि, श्रम व पूँजी आदि का निष्क्रिय समूह मात्र है यही कारण है आज प्रबन्ध के महत्त्व को स्वीकार किया जा रहा है ।

An Cyclopedia of Education (1913) by Paul Monroe states

"शैक्षिक प्रबन्ध शैक्षिक सिद्धान्त का महत्वपूर्ण अंग है जो अपने अन्दर सफल शिक्षकों के प्रयासों द्वारा विशाल रूप से चलाए गए कक्षा कक्ष प्रक्रिया की तकनीक से प्राथमिक रूप से सम्बन्धित है तथा शिक्षाप्रद व कई शिक्षा सिद्धान्तों को अपने में समाविष्ट किए हुए हैं ।"

"School Management as a body of educational doctrine, comprises a number of principles and precepts, relating primarily to the technique of classroom procedure, and derived largely from the practice of successful teachers".–An Cyclopedia of Education (1913)

शैली उमान्स के अनुसार - "प्रबन्ध विचारों के क्रमबद्ध तरीके से अन्तर्निहित किए हुए है । इसका 'सक्रियात्मक' शब्द में वर्णन है, क्या किया जाता है, कैसे किया जाना है, और यह हम कैसे जाने कि हम उसे कब करें । प्रबन्ध कोई गुढ़ रहस्य नहीं है, यह तो संक्रिया की एक विधि है । एक अच्छे प्रबन्ध का परिणाम शिक्षा व समाज का व्यवस्थित एवं एकीकृत रूप है ।"

Management implies an orderly way of thinking. It describes in operational terms.what is to be done,how it is done,and how we know when we have done. Management is not an arcane mystique. It is a method of operation.Good Management should result in an orderly intergration of education and society.

(Shelley Umans 1972)

कुन्टज - "औपचारिक समूहों में संगठित लोगों से काम कराने का नाम ही प्रबन्ध है ।"

स्टेनलेवेन्स - "प्रबन्ध सामान्य रूप से निर्णय लेने एवं मानवीय क्रियाओं पर नियंत्रण रखने की विधि है जिससे पूर्व निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके ।"

इस दृष्टि से शैक्षिक प्रबन्ध के आयाम (Dimentions) इस प्रकार हैं :-

1. शैक्षिक प्रबन्ध एक समन्वयकारी संसाधन है ।
2. शैक्षिक प्रबन्ध एक समूह वाचक संज्ञा है ।
3. प्रबन्ध मूल रूप से क्रिया है ।
4. प्रबन्ध एक उद्देश्यपूर्ण क्रिया है ।
5. प्रबन्ध एक सामाजिक क्रिया है ।

6. प्रबन्ध का दायित्व काम कराना है ।

7. प्रबन्ध एक सार्वभौमिक क्रिया है ।

11.2.2 समन्वय (Coordination)

अर्थ (Meaning)

पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रबन्ध में कार्यरत व्यक्तियों के प्रयासों में सामंजस्य स्थापित करके सफलता प्राप्ति समन्वय से ही समन्वय है । समन्वय प्रबन्ध का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, जिसका अर्थ निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपने सहयोगी कर्मचारियों को एक टीम की भावना से कार्य करने हेतु प्रेरित करें ।

परिभाषाएँ (Definitions)

मेकफारलेण्ड के अनुसार - "समन्वय वह प्रक्रिया है जिसमें एक प्रबन्धक अपने अधीनस्थों के सामूहिक प्रयासों में एक सुव्यवस्थित स्वरूप का विकास करता है और सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु क्रियाओं में एकरूपता लाता है ।"

"Co-ordination is the essence of management for the achievement of harmony of individual efforts towards the accomplishment of group goals."

पीटरसन एवं प्लोमेन के अनुसार - "समन्वय उच्च प्रबन्ध का एक अविच्छिन्न कार्य है ताकि लक्ष्य प्राप्ति की जा सके ।"

"Co-ordination is the distinctive task of top Management to accomplish the desired results"

क्रुन्टज तथा डोनल के अनुसार, "समन्वय समूह लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रबन्ध का सार है ।"

"Co-ordinations is the essence of Management for the accomplishment of group goals."

हेनरी फेयोल के अनुसार "एक उपक्रम के कार्य संचालन को सुविधाजनक एवं सफल बनाने के लिए उसकी समस्त क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करना ही समन्वय है ।"

"Co-ordination is to harmonize all the activities of a concern in order to facilitate its working and its success."

जेम्स डी मूने के अनुसार - 'किन्हीं सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु की जाने वाली क्रियाओं में एकता बनाये रखने के लिए सामूहिक प्रयासों की सुव्यवस्था को समन्वय कहते हैं।"

"Co-ordination is an orderly arrangement of group effort to provide unite of action in pursuit of a common purpose."

जार्ज टैरी के अनुसार - "समन्वय निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति हेतु प्रयासों का क्रमानुसार संयोजन है जिससे निष्पादन की उपयुक्त मात्रा, समय और निर्देशन से क्रियाओं में सामंजस्य एवं एकता स्थापित हो जाए ।"

"Co-ordination is the orderly synchronization of efforts to provide the proper amount of timing and directing of execution resulting in harmonious and unified actions to a stated objectives."

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर देखा जाए तो समन्वय का अर्थ स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि -

1. समन्वय उच्च प्रबन्ध का अविभाज्य अंग है ।
2. समन्वय के अन्तर्गत प्रबन्धक अपने प्रयासों से कार्य करने वाले अर्थात प्रबन्ध के सहभावों को
3. व्यवस्थित स्वरूप में विकसित करता है ।
4. समन्वय लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक है ।
5. समन्वय एक सामूहिक प्रयास है ।
6. समन्वय प्रबन्ध के उद्देश्यों व लक्ष्य को किये जाने वाले प्रयासों का क्रमबद्ध संयोजन है
7. यह गतिशील निरन्तर प्रक्रिया है ।

11.2.3 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय (Co-ordination in Educational Management)

शैक्षिक प्रबन्ध व समन्वय के अर्थ को अलग-अलग रूप से स्पष्ट करने के पश्चात् यदि सम्मिलित रूप से इसे समझने का प्रयास करें तो हम देखते हैं कि समन्वय एवं शैक्षिक प्रबन्ध एक-दूसरे के पूरक सिद्ध होते हैं क्योंकि कोई भी प्रबन्ध उचित समन्वय के अभाव में व्यवस्थित रूप से संचालित नहीं हो सकता है ।

किसी भी संगठन में अनेक व्यक्ति निश्चित उद्देश्य के लिए संलग्न होते हैं । प्रत्येक व्यक्ति इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक-दूसरे का सहयोग करता है । परन्तु यह सहयोग तभी संभव है जब कोई व्यक्ति संगठन के उद्देश्य पूर्ति के लिए उन्हें विविध कार्यकलापों में एक साथ मिलाकर लगाता है, कर्त्तव्य निश्चित करता है और निर्देशन देता है ताकि वे अपने संगठन को अपनी अधिकाधिक देन दे सकें । इस प्रकार वह संगठन के मानवीय और भौतिक साधनों को संगठन के लक्ष्य की प्राप्ति में लगाता है । यही व्यक्ति एक समन्वय कर्ता (Co-ordination) या प्रशासक कहलाता है । इस प्रकार प्रशासनिक प्रक्रिया में समन्वयकारी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

अच्छे समन्वय के लिए विविध प्रशासनिक स्तरों का भी निर्माण आवश्यक है । ये स्तर संगठन के विस्तार के साथ-साथ बढ़ते जाते हैं । संगठन और स्तरों के विस्तार से बढ़ने वाले विभागों की प्रशासनिक समस्या भी बढ़ती जाती है । इनका समाधान तभी संभव है जबकि विविध स्तरों के बीच ठीक से समन्वय हो । समन्वयकर्ता का सदैव यह प्रयास रहता है कि संगठन के सदस्य अपनी शक्ति के अनुसार स्वेच्छा से सर्वाधिक संगठन के प्रति समर्पित हो ।

डी. एन. गेड तथा आर.पी. शर्मा के अनुसार - "व्यवस्था का सम्बन्ध शिक्षा सम्बन्धी सामग्री एवं साधन आदि के एकत्रित करने तथा उनके समायोजन करने से है ।"

डा. एस. एस. माथुर के अनुसार - 'अच्छे संगठन से हमारा तात्पर्य यही है कि संगठन ऐसा हो जिसके द्वारा विद्यालय के विभिन्न अंग प्रत्यंग मिलकर अचित्र शिक्षा प्रदान करने में सक्रिय रहें।"

आर.टी. ग्रेग के अनुसार - "संगठन से अभिप्राय समान लक्ष्य की पूर्ति हेतु संलग्न व्यक्तियों के समूह को समन्वित क्रियाओं से है ।"

जॉन वाल्टन - "संगठन कार्यरत व्यक्तियों का वह समूह है जो समान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए साथ-साथ मिलकर कार्य करते हैं । कार्यरत व्यक्ति को समन्वित रूप से उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जिस प्रभावी ढंग से लगाया जाएगा उसी के अनुसार संगठन के प्रभावशाली परिणाम प्राप्त होंगे ।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर देखें तो ज्ञात होता है कि प्रबन्ध प्रशासन प्रक्रिया में समन्वयकारी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है । किसी संगठन में अनेक व्यक्ति उद्देश्य के लिए संलग्न होते हैं । प्रत्येक व्यक्ति उद्देश्य प्राप्ति के लिए सहयोग करता है परन्तु यह तभी संभव है जब कोई व्यक्ति संगठन की उद्देश्यपूर्ति के लिए उन्हें विविध कार्यकलापों में एक साथ मिलकर लगाता है । कर्त्तव्य निश्चित करता है और निर्देशन देता है । इस प्रकार वह संगठन के मानवीय और भौतिक साधनों को संगठनों के लक्ष्यों की प्राप्ति में लगाता है ।

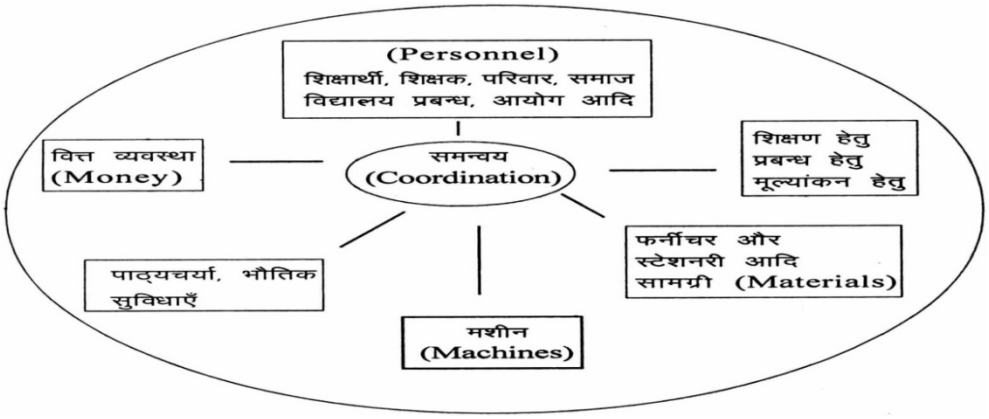

चित्र संख्या 111

यह शैक्षिक प्रशासन की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है । यह सुनिश्चित करती है कि संगठन के सभी कार्यों जैसे- कार्मिक एवं वांछित परिणामों के उत्पादन के मध्य आपसी घनिष्ट सम्बन्ध एवं एकीकरण हो । इस प्रकार का समकालन केवल संगठन की संरचना में नहीं अपितु कर्मचारियों की अभिवृत्तियों एवं प्रयासों में भी आवश्यक है । जिससे कि उन सभी को वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में लगाया जा सके ।

11.3 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय के क्षेत्र (Scope of Coordination in Educational Management)

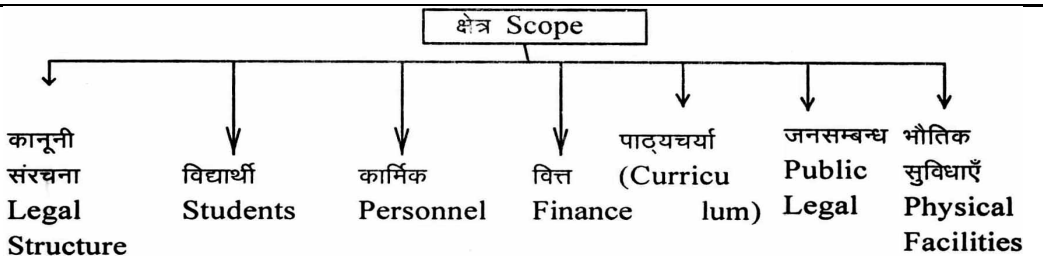

(1) कानूनी संरचना (Legal Structure)

इसका तात्पर्य उन कानूनों को पारित करने तथा उन विषयों एवं परिनियमों को बनाने से है । जिनके द्वारा शिक्षा के अभिकरणों तथा उनके प्रकारों, शैक्षिक संस्थानों को चलाने के लिए शक्तियों एवं स्तर को निश्चित किया जा सके, सत्ता एवं नियंत्रण का निर्धारण किया जा सके, उत्तरदायित्वों को सौंपा जा सके, प्रबन्ध तंत्र के विकेन्द्रीयकरण के प्रश्न के सम्बन्ध में निश्चय किया जा सके तथा संगठनात्मक एवं प्रशासनात्मक तंत्र को स्थापित किया जा सके ताकि शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय करने में सहायता मिल सके ।

(2) विद्यार्थी (Students)

विद्यार्थी शैक्षिक उद्योग के केन्द्र बिन्दु हैं । उन्हीं के लिए शिक्षा के विभिन्न अंगों एवं पूर्ण प्रक्रिया का अस्तित्व है । इसलिए यह आवश्यक है कि उनकी शिक्षा के व्यक्तिगत एवं सामाजिक उद्देश्यों तथा प्रविधियों को उनकी आवश्यकताओं, रुचियों, क्षमताओं तथा समाज की माँग के अनुरूप निर्धारित किया जा सके । उनके प्रवेश उन्नयन एवं अनुशासन सम्बन्धी नियमों को भी निर्धारित करना एवं कार्यान्वित करना आवश्यक है ताकि समन्वय को मजबूत आधार प्रदान हो सके ।

(3) कार्मिक वर्ग (Personnel)

शैक्षिक क्रियाओं के समन्वयात्मक परिचालन के लिए उपयुक्त मानव शक्ति का मिलना एवं उसको कार्य में लगाना आवश्यक है । शिक्षा प्रबन्ध में कार्मिक वर्ग की मुख्य भूमिका है । यह शैक्षिक तंत्र का गतिशील पहिया (fly wheel) एवं चालक बल (driving force) है । कर्मचारियों पर पर्याप्त ध्यान देना आवश्यक है । पुरुष एवं महिला कर्मचारियों का चुनाव एवं प्रशिक्षण तथा उनकी शैक्षिक योग्यता एवं स्तर को निर्धारित करना आवश्यक है । श्रेष्ठतम व्यक्तियों को शिक्षा के क्षेत्र में लाने के लिए अच्छी सेवा दशा, आकर्षक वेतनमान, पदावधि की सुरक्षा, कल्याणकारी सेवायें एवं सेवानिवृति लाभ की योजना प्रदान करना आवश्यक है । उनकी दिशा प्रदान करने, निर्देशन एवं पर्यवेक्षण के लिए योजनाओं का बनाना आवश्यक है । इसके साथ ही कर्मचारियों के निरन्तर विकास एवं व्यावसायिक उन्नति के लिए पुनर्बोध (reorientation) एवं सेवाकालीन के शिक्षा कार्यक्रम बनाना आवश्यक है । कार्मिक वर्ग के साथ उचित समन्वय स्थापित करने, हेतु इन सभी क्रियाओं का किया जाना आवश्यक है ।

(4) वित्त (Finance)

शैक्षिक प्रबन्ध के साथ-साथ यह क्षेत्र शिक्षा में समन्वय लाने हेतु भी महत्तपूर्ण रहा है । अत: यह शिक्षा का वह महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है जिसमें आय एवं व्यय की समस्याएँ तथा उनके लेखा एवं लेखा-परीक्षा शामिल हैं । इस सम्बन्ध में यह निर्णय लेना आवश्यक है कि शिक्षा के व्यय का कितना कितना भार केन्द्र राज्य एवं स्थानीय निकायों पर होगा । कर नीति एवं शुल्क आदि को निर्धारित करने के लिए भी नीति निर्धारण करना होगा । निधि एवं संसाधनों का बजट बनाने, उनको व्यय करने एवं उन पर नियंत्रण रखने के लिए नियम परिनियमों का बनाना भी आवश्यक है तभी समन्वय के इस पक्ष को मजबूत बनाया जा सकता है ।

(5) पाठ्यचर्या (Curriculum)

पाठ्यचर्या शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक साधन है । शैक्षिक प्रशासन का कार्य पाठ्यचर्या, निर्माण एवं उनके दिन प्रतिदिन के विकास से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करना भी है । इसके लिए उन शैक्षिक कार्यक्रमों का निरन्तर मूल्यांकन एवं निरन्तर सुधार भी आवश्यक है, जो निरन्तर होते हुए वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी एवं सामाजिक परिवर्तनों को दृष्टि में रखते हुए अत्यन्त आवश्यक है । प्रशासन का कार्य अध्यापन अधिगम की प्रक्रिया तथा कार्यक्रमों की ओर पाठ्यपुस्तकों तथा अन्य अनुदेशन सामग्री को तैयार करने, उनके चुनाव एवं सम्पूर्ति की ओर ध्यान देना है । विद्यार्थियों के लिए महत्त्वपूर्ण सेवायें जैसे - स्वास्थ्य, मनोरंजन, परीक्षण एवं रिकार्ड की मनोवैज्ञानिक सेवाएँ, निर्देशन, परामर्श एवं पाठ्यानुवर्ती क्रियाओं आदि को संगठित करना एवं प्रशासित करना भी आवश्यक है ।

(6) भौतिक सुविधाएँ (Physical Facilities)

इसके अन्तर्गत समस्त भौतिक सुविधाएँ जैसे विद्यालय भवन तथा अन्य सामग्री प्रदान करने, उनके अनुरक्षण तथा उनके उत्पादन, खरीद एवं लेखा कार्य सम्बन्धी कार्य आते हैं ।

(7) जन सम्बन्ध (Public Relation)

शिक्षा एक सामाजिक उद्योग है जिसका परिचालन विद्यार्थी, अध्यापकों तथा अभिभावकों एवं समुदाय के सहयोग से होता है । शैक्षिक प्रशासन का कार्य प्रत्येक को उद्योग की सफलता में अपना योगदान देने के योग्य बनाना है इसलिए प्रभावशाली जन-सम्बन्ध बनाये रखना आवश्यक है ताकि समन्वय का कोई पक्ष कमजोर न रह जाए । इसके अन्तर्गत अभिलेख तैयार करना, सामयिक रिपोर्ट, अतीत की उपलब्धि एवं भविष्य की योजनाओं के सम्बन्ध में सूचनाएँ एवं बुलेटिन निकालना आता है । प्रशासन के लिए यह आवश्यक है कि वह सामुदायिक निरीक्षण को प्रोत्साहित करें । सामुदायिक संसाधनों का उपयोग करके तथा इसके कल्याण के लिए उपयोगी सुविधाएँ प्रदान करें उनसे सहयोग प्राप्त करें तथा शैक्षिक प्रक्रिया में उसकी साझेदारी को महत्त्व दें ।

उपरोक्त सूची व विभाजीकरण केवल सुझावपूर्ण दृष्टिकोण मात्र है । यह किसी वरीयता क्रम के सूचक नहीं हैं, प्रत्येक का अपना महत्त्व है । अत: यदि प्रबन्ध को मजबूत करना है तो इन सभी क्षेत्रों में समन्वयात्मक दृष्टि से कार्य कर इनका उपयोग करना होगा । तभी शिक्षा प्रबन्ध व प्रशासन अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर पाने में सक्षम हो सकेगा ।

11.4 समन्वय की विशेषताएँ (Characteristics of Coordination)

(1) प्रयासों की एकता पर बल (Unity of Efforts)

विभिन्न विभाग, समूह और व्यक्ति एक उपक्रम में कार्य करते हैं, उनकी अलग-अलग भूमिकाएँ होती हैं । अत: उन सबके प्रयासों में एकता स्थापित करके लक्ष्य प्राप्ति को संभव बनाया जाता है। शिक्षा प्रबन्ध, प्रशासन एवं विद्यालय संगठन का केन्द्र बिन्दु विद्यार्थी है जिसके विकास हेतु विद्यालय के सभी पक्षों को सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित किया जाता है । शिक्षा संगठन अथवा प्रबन्ध के सभी कार्यकर्ताओं एवं संबद्ध व्यक्तियों को उसके संगठन के उद्देश्यों का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए तथा प्रयासों की एकता पर बल देते हुए निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु प्रयासरत होने पर ही उचित समन्वय की दिशा निर्धारित की जा सकती है ।

(2) एक गतिशील निरन्तर प्रक्रिया (Dynamic & Continuous Process)

एक गतिशील प्रबन्ध ही आज की इन जटिल व्यवस्थाओं में समन्वय स्थापित कर सकता है । व्यवहारवादी अधिगम के परिणामस्वरूप प्रबन्ध तकनीकें चुनौतीपूर्ण हुई हैं । इसी के साथ यह कभी समाप्त न होने वाली निरन्तर प्रक्रिया है जिसके बिना उपक्रम निष्प्राण हो सकता है । शैक्षिक प्रबन्ध में लक्ष्यों का निर्माण, मूल्यांकन प्रक्रिया, उपलब्ध सामग्री,आंकड़ों को एकत्र करने के लिए विधियों को विकसित करना, कार्यरत वर्ग सभी में निरन्तर गतिशील समन्वय होगा तभी शिक्षा प्रबन्ध की प्रगति सुनिश्चित हो सकती है ।

(3) उद्देश्यों की एकता (Integration of Objectives)

शिक्षा प्रबन्ध के सभी कार्यकर्ताओं एवं सम्बन्धित व्यक्तियों को उसके संगठन के उद्देश्यों का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए । यह समन्वय की सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है । इन उद्देश्यों का निर्धारण देश, समाज की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं के अनुरूप होना चाहिए । अत: उद्देश्यों की एकता होना आवश्यक है जो संगठन के सभी सदस्यों उपकरणों, प्रक्रियाओं, विधियों आदि के परस्पर समन्वय द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं । अत: प्रबन्ध में समन्वय उद्देश्यों की पूर्ति का प्रमुख साधन बन जाता है ।

(4) सार्वभौमिक क्रिया (Universal Activity)

शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय एक सार्वभौमिक क्रिया है । जीवन तथा समाज का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें प्रबन्ध की आवश्यकता न हो, चाहे व्यवसाय का क्षेत्र हो, उद्योग का या शिक्षा का । इसमें अन्तर्निहित सभी पक्षों में समन्वय होना आवश्यक है ।

(5) सहकारिता पर आधारित (Based on Co-operation)

यह सहयोग एवं सहकारिता पर आधारित है, परन्तु सहकारिता से समन्वय अधिक है । यह एक दूसरे के पर्यायवाची नहीं हैं । सहकारिता समन्वय की प्रभावकारिता को प्रभावित करती है ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. समन्वय का क्या अर्थ है ?
2. शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय से आप क्या समझते हैं ? संक्षेप में समझाइए ।

3. "शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय एक गतिशील निरन्तर प्रक्रिया है ।" बताइये ।
4. शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय के प्रमुख क्षेत्र कौन-कौन से हैं ? विस्तार से लिखिए।
5. शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय की प्रमुख विशेषताएँ बताइये ।

11.5 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय का महत्त्व (Importance of Coordination in Educational Management)

प्रबन्ध विद्वान कुन्टज एवं ओडोनल के अनुसार, 'समन्वय' प्रबन्ध का एक प्रकार्य मात्र ही नहीं है, अपितु प्रबन्ध का एक सार भी है । मुने तथा रेल के अनुसार समन्वय संगठन की सम्पूर्ण योजना का सारतत्त्व है ।

किसी भी संगठन की सफलता उसकी संरचना पर निर्भर होती है और संगठन की सफलता समन्वय की किस्म और मात्रा पर निर्भर होती है । अत: निःसंदेह सत्य है कि समन्वय प्रबन्ध का सार है । समन्वय की महत्ता न केवल व्यावसायिक जगत् में सर्वाधिक है अपितु शिक्षा प्रबन्ध में भी इसका स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है । समन्वयकर्ता का सदैव यह प्रयास रहता है कि संगठन के सभी सदस्य अपनी शक्ति के अनुसार स्वेच्छा से सर्वाधिक संगठन के प्रति समर्पित हो लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि प्रशासक / प्रबन्ध केवल संगठन के उद्देश्यों की ही पूर्ति न करें अपितु कार्यकर्ताओं की आकांक्षाओं को भी स्थान देवें । जिसका कि आज सर्वथा अभाव देखा जा सकता है । अत: समन्वय को मजबूत बनाने व इसके महत्त्व को निम्न आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है-

(1) शैक्षिक प्रबन्ध के उद्देश्यों की अधिकतम सीमा तक प्राप्ति हेतु (For the maximum accomplishment of the objectives of educational management)

किसी प्रबन्ध के उद्देश्यों व लक्ष्यों की प्राप्ति व्यक्तियों के सम्मिलित प्रयासों द्वारा संभव होती है । अत: समूह प्रयासों में सामंजस्य अत्यन्त आवश्यक है । शिक्षा के क्षेत्र में भी शिक्षा प्रबन्ध के निर्धारित लक्ष्यों को अधिकतम सीमा तक तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब शैक्षिक प्रबन्ध के तत्त्वों में उचित समन्वय हो, व्यक्तिगत प्रयासों से उपलब्धि पाना संदिग्ध रहता है ।

जार्ज आर. टैरी के शब्दों में, "किसी समूह के अन्तर्गत समन्वय व्यक्तिगत प्रयासों की कुल उपलब्ध में वृद्धि की तुलना विभाग के छ: कर्मचारी जो आपस में समन्वित हैं, की कुछ उपलब्धि अधिक होगी ।"

(2) शिक्षा की प्रशासनिक समस्या के समाधान के विकल्प के रूप में (As an option for solving the management problem of education)

समन्वय का अत्यधिक महत्त्व है । अच्छे समन्वय के लिए विविध प्रशासनिक स्तरों का भी निर्माण आवश्यक है । ये स्तर, संगठन के विस्तार के साथ बढ़ते जाते हैं । संगठन और स्तरों के विस्तार से बढ़ने वाले विभागों की प्रशासनिक समस्या भी बढ़ती जाती है । इनका समाधान तभी संभव है जब विविध स्तरों के बीच ठीक समन्वय हो ।

(3) शैक्षिक कर्मचारी के मनोबल को बढ़ाने में (For increasing of management functions)

विद्यालय संगठन, प्रधानाचार्य, शिक्षकों, छात्र, कर्मचारियों एवं प्रबन्ध समितियों के उच्च मनोबल का विकास समन्वय करता है । यह कर्मचारियों में कार्य सन्तुष्टि उत्पन्न करता है । कुशल नेतृत्व और समूह भावना के कारण की जाने वाली क्रमबद्ध क्रियाएँ जहाँ शिक्षा जगत से जुड़े व्यक्तियों को कार्य सन्तुष्टि प्रदान करती हैं वहीं दूसरी ओर सामाजिक संतुष्टि भी प्रदान करती है। यह पारस्परिक समझ और विश्वास का सृजन करती है ।

जार्ज टैरी ने लिखा है कि "प्रभावी समन्वय संगठन में कर्मचारियों की संख्या को बढ़ाता है और उनको बनाए रखता है ।"

(4) अन्य प्रबन्ध कार्यो के लिए प्रेरणा के रूप में (As motivation for other management functions)

प्रबन्ध विद्वान एम. बनर्जी के अनुसार समन्वय अधिक नियमित बनाता है ।

"Co-ordination makes planning more purposefully organization more well knit and control more regulative."

अन्य प्रबन्धकीय कार्यों की सफलता समन्वय पर आश्रित है । यह प्रबन्ध प्रक्रिया का अन्तिम चरण है । समन्वय में एक से अधिक व्यक्तियों की क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं और वास्तव में जहाँ व्यक्ति अनेक जटिल तकनीकों, विधियों, व्यवस्थाओं में उचित समन्वय द्वारा ही प्रबन्ध को सफल बनाते हैं ऐसे में सभी सह-तत्त्वों का आपसी समन्वय आवश्यक हो जाता है जो एक दूसरे को प्रेरणा देते रहते हैं ।

(5) विविधताओं में एकता की स्थापना (Establishment of unity in diversity)

जार्ज टैरी के अनुसार - "अनेकता को बिना प्रभावित किए हुए एकता की स्थापना का प्रयास करना समन्वय का प्रबन्धकीय कार्य है ।"

"The Management function of coordination strives for the desired degree of unity, without hurting diversity."

किसी भी निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति में यदि एक से अधिक कारक सम्मिलित हैं तो उन सभी कारकों में परस्पर तालमेल जरूरी हो जाता है । शिक्षा तो एक ऐसा सामूहिक प्रयास है जो विविध कारकों से प्रभावित होता है । शिक्षा से जुड़े विविध पक्षों, कर्मचारी, प्रबन्धक, प्रशासक, समाज, अध्ययन अध्यापन सामग्री सभी में उचित समन्वय ही एकता को स्थापित करता है, जो एक होकर शैक्षिक प्रबन्ध के लक्ष्य को प्राप्त करने में अधिकतम सहयोग देते हैं । अत: समन्वय विविधता में एकता स्थापित करता है ।

एडम्स ब्रूक के अनुसार, "प्रशासन वह क्षमता है जो अनेक का समन्वय इस प्रकार करती है कि संर्घषात्मक प्रवृत्तियाँ, सामाजिक ऊर्जा एक अवयव में समा जाती है और उससे एकता का निर्माण होता है ।"

(6) बेहतर मानवीय सम्बन्धों को महत्ता (Importance to better human relationships)

प्रबन्ध के समन्वय प्रकार्य में सर्वाधिक महत्ता मानवीय आधारों की है । मानवीय आधारों पर प्रबन्धकों का यह प्रमुख कार्य है कि व्यक्तिगत उद्देश्यों एवं कार्यों में तालमेल रखे ताकि संघर्षों को टाला जा सके और सफलता का मार्ग प्रशस्त हो ।

(7) असमानताओं में समन्यय बनाने के लिए (For co-ordinating dis- similarities)

शैक्षिक प्रबन्ध में अच्छे कार्मिकों की भर्ती एवं उन्हें बनाए रखने में समन्वय का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

जार्ज टैरी के अनुसार - "एक अच्छा संगठन व्यवसाय में अच्छे कार्मिक को ग्रहण व चयन कर सार्थक प्रभाव को बनाता है ।"

"Sound organization has a significant effect on the recruitment and retention of good personnel in business."

शिक्षा की विभिन्न उप-व्यवस्थाएँ जैसे शिक्षाकर्मी, शैक्षिक विधियाँ, शैक्षिक मूल्यांकन, पर्यवेक्षण, शैक्षिक संगठन आदि में संतुलन की स्थापना समन्वय द्वारा की जाती है । उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए 'सन्तुलन की स्थापना जरूरी है । कुछ व्यक्ति अधिक योग्य होते तो कुछ कम । कुछ तीव्र गति से कार्य करते हैं तो कुछ मन्द गति से । समन्वय इन सभी व्यक्तियों की क्रियाओं में संतुलन स्थापित करता है और न्यूनतम लागत पर अधिकतम परिणामों की प्राप्ति को संभव बनाता है । इस प्रकार स्पष्ट है कि असमानताओं में संतुलन स्थापित करने के लिए समन्वय की नितान्त आवश्यकता होती है ।

(8) शैक्षिक प्रबन्ध की प्रसिद्धि में सहायक (Helpful in popularity of educational management)

समन्वय के परिणामस्वरूप उत्पादन और उत्पादकता बढ़ती है और लाभदायकता को प्रोत्साहन मिलता है । जो कि उचित समन्वय का परिणाम है अत: शैक्षिक प्रबन्ध अथवा संगठन के सभी पक्षों में उचित समन्वय से शिक्षा व्यवस्था को बल मिलता है तथा साथ ही निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों अधिकतम सीमा तक प्राप्त करने में सफलता मिलती है और सफलता जब चरम सीमा तक होती है तो प्रबन्ध की प्रसिद्धि भी होती है और वह प्रबन्ध गति भी करता है ।

11.6 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय की आवश्यकता (Need of coordination in educational management)

(1) मानवीय सम्बन्धों के विकास हेतु (For the development of human relationships)

शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय का कार्य मानव सम्बन्ध है । छात्रों, शिक्षकों तथा प्रशासनिक कर्मचारियों के उचित समन्वय द्वारा शिक्षा के लक्ष्य प्राप्त करने में शिक्षा प्रशासन सदा क्रियाशील रहता है । डॉ. एस. एन. मुकर्जी के अनुसार - "शैक्षिक प्रशासन वस्तुओं के

साथ-साथ मानवीय सम्बन्धों की व्यवस्था से सम्बन्धित है अर्थात् व्यक्तियों के मिलजुलकर और अच्छा कार्य करने से सम्बन्धित है । वास्तव में इसका सम्बन्ध मानवीय सजीवों से अपेक्षाकृत अधिक है तथा अमानवीय वस्तुओं से कम ।"

(2) शैक्षिक प्रबन्ध प्रयासों के एकीकरण के लिए आवश्यक (Necessary for the unification of the efforts of educational management)

शिक्षा प्रशासन शिक्षा सम्बन्धी किये जा रहे प्रयासों को स्वीकृत तथा एकीकृत करता है । किन्तु यह प्रयास तभी सफल होते हैं जब व्यवस्थाओं के अन्तर्गत परस्पर समन्वय व सहयोग है । जब शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था व व्यक्तियों में आपसी समन्वय होगा तभी शिक्षा के प्रयासों का एकीकरण संभव हो सकता है ।

जेम्स डी. मुने के अनुसार - "किन्हीं सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु की जाने वाली क्रियाओं में एकता बनाए रखने के लिए सामूहिक प्रयासों की सुव्यवस्था को समन्वय कहते हैं ।"

"Coordination is an orderly arrangement of group effort to provide unity of action in pursuit of a common purpose"

(3) लक्ष्य प्राप्ति हेतु आवश्यक (Necessary for the accomplishment of aims)

किसी भी प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य लक्ष्य की प्राप्ति करना है । इस हेतु प्रबन्ध विभिन्न व्यवस्थाओं का निर्धारण करता है लेकिन केवल निर्धारण अथवा व्यवस्था मात्र से लक्ष्य की प्राप्ति संभव नहीं है । आवश्यक है कि उन व्यवस्थाओं के मध्य उचित समन्वय हो । तभी लक्ष्य को उचित सीमा तक प्राप्त किया जा सकता है ।

पीटरसर एवं प्लोमेन के अनुसार - "समन्वय उच्च प्रबन्ध का एक अविच्छिन्न कार्य है ताकि लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके ।"

"Co-ordination is the distinctive task of top management to accomplish the desired results."

(4) शैक्षिक प्रक्रिया की निरन्तर गतिशीलता बनाए रखने हेतु (For mobality of the constant Educational process)

कोई भी प्रबन्ध अपने गतिशील स्वरूप के कारण ही प्रगतिशील रहता है । शिक्षा निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है अत: गतिशील शिक्षा के अबाध गति से संचालन हेतु गतिशील प्रबन्ध की आवश्यकता है, किन्तु यह गतिशीलता समन्वय पर आधारित है अर्थात् शिक्षा के स्वरूप, उसके ढाँचे, उसके कार्मिकों में समन्वय जितना प्रगाढ़ होगा वह शिक्षा व्यवस्था उतनी ही अधिक गतिशील होगी ।

(5) **विरोधों एवं कुसमायोजन को दूर करने हेतु (For removing barriers and maladjustment)**

प्रशासनिक प्रक्रिया के प्रारम्भ में समन्वय का प्रयोग संगठन में गतिरोध को रोकने के लिए एवं प्रक्रिया के दौरान विरोधों एवं कुसमायोजन को दूर करने के लिए किया जाता है । इसकी आवश्यकता कुसमायोजन रहित तंत्र में एकत्व स्थापित करने के लिए होती है तथा जब

भी प्रक्रिया में किसी प्रकार की बाधा आने की सम्भावना उत्पन्न होती है तो समन्वय एकता को बनाए भी रखता है ।

(6) नियोजन एवं व्यवस्थापन हेतु आवश्यक (Necessary for planning & executions)

यह अनेक क्रियाओं जैसे - नीति निर्धारण, बजट बनाने, कार्मिक वर्ग के चुनाव एवं पाठ्यचर्या के विकास आदि के उद्देश्य समय एवं स्थान आदि के नियोजन एवं व्यवस्थापन हेतु समन्वय आवश्यक है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय का क्या महत्त्व है ? संक्षेप में समझाइये ।
2. शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय की क्या आवश्यकता है ?
3. एक प्रबन्ध की सफलता के लिए समन्वय किस प्रकार महत्त्वपूर्ण है । एक अच्छे प्रबन्ध के लिए इसकी आवश्यकताओं पर प्रकाश डालिए ।

11.7 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय के सिद्धान्त (Principles of coordination in educational management)

मेरी पार्कर फोलेट के समन्वय के सिद्धान्तों को शिक्षा प्रबन्ध के क्षेत्रों में रखकर देखा जाए तो सिद्धान्तों का विश्लेषण निम्न प्रकार से किया जा सकता है -

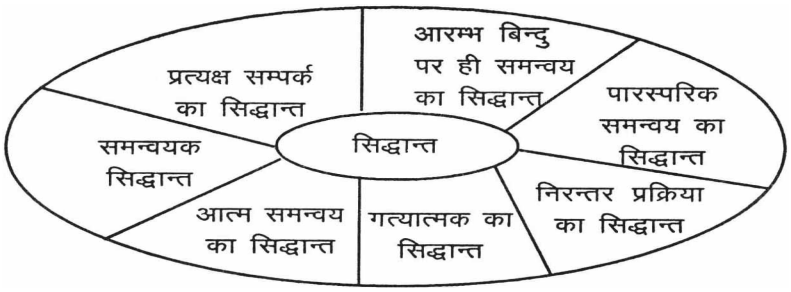

चित्र संख्या 11.3

(1) प्रत्यक्ष सम्पर्क का सिद्धान्त (Principle of direct contact)

प्रत्यक्ष सम्पर्क समन्वय की आत्मा है, जिसके आधार पर व्यक्तियों को विचारों एवं लक्ष्यों के बारे में मार्गदर्शन किया जाता है तथा भ्रम व अस्पष्टताओं का निवारण किया जाता है । चूँकि शिक्षा कार्मिक वर्ग शिक्षा प्रबन्ध का प्रमुख आधार है । ऐसे में इस वर्ग के व्यक्तियों अर्थात् शिक्षक, शिक्षार्थी, अभिभावक, समाज, विद्यालय प्रबन्ध, आयोग आदि से प्रत्यक्ष सम्पर्क व संप्रेषण होना ही समन्वय को दृढ़ आधार प्रदान करता है । सम्प्रेषण के माध्यम से सोच एवं समझ का आदान-प्रदान करके सामान्य एवं व्यक्तिगत लक्ष्यों की प्राप्ति की जाती है तथा उद्देश्यों एवं कार्यविधियों को प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा आसानी से स्पष्ट किया जा सकता है । अगर प्रत्यक्ष सम्पर्क असंभव है तो समतल प्रबन्ध सम्पर्क विकसित किये जा सकते हैं ।

(2) आरम्भ बिन्दु पर ही समन्वय का सिद्धान्त (Principle of coordination at early stage)

किसी भी उपक्रम का आरम्भ बिन्दु नियोजन और नीति निर्धारण होता है । अत: समन्वय की स्थापना इस प्रारम्भिक स्तर पर ही होना चाहिए । अर्थात् शिक्षा प्रबन्ध को शिक्षा प्रशासन स्तर पर ही समन्वय का निर्धारण कर लेना चाहिए, ताकि शिक्षा प्रशासन को अपने क्षेत्रों में यथा कर्मचारी, विद्यार्थी, वित्त-व्यवस्था, शिक्षण क्रियाएँ आदि का सहयोग प्रारम्भ से ही सकारात्मक रूप से प्राप्त होते रहें । इससे क्रिया चयन कार्य सुगम हो जाएगा तथा कर्मचारियों की सहभागिता प्रारम्भ से ही होने से सम्पूर्ण तंत्र शिक्षा प्रबन्ध के लक्ष्यों को एकीकृत रूप से प्राप्त करने का प्रयास करेंगे ।

(3) पारस्परिक सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of reciprocal relationship)

सभी घटकों में पारस्परिक सम्बन्ध होता है जो एक दूसरे को प्रभावित करते हैं । अर्थात् प्रशासक के सहायक के रूप में कार्मिक समूह, कार्मिक समूह में अध्यापक, कर्मचारी, उनके सहायक शिक्षण सामग्री विधियाँ, नियम आदि यह सभी एक दूसरे को अपने प्रभाव से सदैव प्रभावित किए हुए रहते हैं । इस प्रकार एक वर्ग के लिए निर्णय अन्य विभागीय वर्गों को भी प्रभावित करेगा । अत: प्रबन्धक को समन्वय की स्थापना करते समय पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में सचेत रहना चाहिए जब उसके द्वारा समन्वय की स्थापना की जाती है ।

(4) निरन्तर प्रक्रिया का सिद्धान्त (Principle of continuous process)

समन्वय एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो सारे समय चलती रहती है । इसलिए प्रबन्ध का दायित्व है कि उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निरन्तर सजग रहे और समूह निष्पादन में तत्परता बरतें और वांछित सामंजस्य रखें । समन्वय एक दो दिन में स्थापित नहीं किया जा सकता है और न ही इसे अवसरों पर छोड़ा जा सकता है । क्योंकि प्रबन्ध की प्रगति उसके तंत्रों के निरन्तर गतिवान रहने पर ही होती है और चूँकि शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है । अत: शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वयात्मक दृष्टिकोण भी निरन्तर चलते रहना चाहिए ।

(5) गत्यात्मकता का सिद्धान्त (Principles of dynamism)

प्रबन्ध संगठनों के शिक्षा प्रबन्ध एक गतिशील संगठन है । अत: इसके लिए गतिशीलता परम आवश्यक हो जाती है । शिक्षा सदैव सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन, स्थितियों में परिवर्तन तथा परिस्थितियों में परिवर्तन का अनुसरण करती है । समय के अनुसार शिक्षा के सिद्धान्तों, प्रयोगों, विधियों, नियमों, तकनीकों आदि में भी परिवर्तन किया जाना चाहिए ताकि बदली हुई स्थितियों में भी संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके । शिक्षा प्रबन्ध का गत्यात्मक होना उसके गत्यात्मक समन्वय को प्रदर्शित करता है ।

(6) आत्म-समन्वय का सिद्धान्त (Principles of Self Coordination)

यह सिद्धान्त प्रत्येक उपक्रम के विभिन्न विभागों के मध्य पाये जाने वाले पारस्परिक सम्बन्धों का परिणाम है । किसी भी उपक्रम में प्रत्येक विभाग की सफलता अन्य अनेक विभागों की सफलता पर निर्भर होती है । उदाहरण के लिए शिक्षा विभाग की सफलता शिक्षा प्रशासन, शिक्षा कार्मिकों के नियोजन, वित्त विभाग, भौतिक विभाग, प्रशिक्षण विभाग, तकनीकी

विभाग की सफलता पर निर्भर करती है । इन सभी विभागों में आपस में पारस्परिक सम्बन्ध होते हुए भी किसी को एक दूसरे को निर्देश देने का अधिकार नहीं होता । ऐसी स्थिति में आत्म समन्वय की आवश्यकता होती है । आत्म समन्वय में अधिकारी और अधीनस्थ के मध्य प्रभावी सम्प्रेषण स्थापित होता है । अधिकारी अधीनस्थों की सुविधानुसार अपनी योजना, कार्य पद्धति आदि में परिवर्तन करने का किसी न किसी रूप में विरोध करता है । अत: योग्य नेतृत्व द्वारा करने का किसी न किसी रूप में विरोध करता है । अत: योग्य नेतृत्व द्वारा आत्म-समन्वय की स्थापना की जानी चाहिए ।

(7) समय का सिद्धान्त (Principles of Timing)

इस सिद्धान्त की मान्यता यह है कि प्रत्येक कार्य सही समय (Appropriate time) पर किया जाना चाहिए । समय पर सही कदम उठाने से संगठन को नुकसान से बचाया जा सकता है । समस्या समाधान के लिए समय पर कदम उठाकर संसाधनों की बर्बादी और असफलता को विराम दिया जा सकता है । इससे कुशलतापूर्वक पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकती है ।

11.8 शैक्षिक प्रबन्ध मे समन्वय के प्रकार (Types of Coordination in Educational Management)

समन्वय प्रबन्ध का एक प्रकार्य मात्र ही नहीं अपितु प्रबन्ध का सार भी है इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है । इसमें आंतरिक प्रणालियों एवं उप प्रणालियों को ही समन्वित नहीं करना होता बल्कि बाह्य पर्यावरण के विभिन्न घटकों को भी दृष्टिगत रखना होता है । अत: समन्वय को निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

(1) आंतरिक एवं बाह्य समन्वय
(2) लम्बवत् एवं समतल समन्वय
(3) कार्यविधिक एवं स्वायत्त समन्वय

(1) आंतरिक एवं बाह्य समन्वय (Internal and external coordination)

ऐसा समन्वय जो कि प्रबन्ध के विभागों, आंतरिक क्रियाओं तथा मानवीय प्रयासों (कर्मचारी, प्रबन्धक तथा संचालकों), शाखाओं और भागों के मध्य हो, आंतरिक समन्वय कहलाता है । पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए संसाधनों और उद्देश्यों में तालमेल जरूरी है । अत: नियोजन की सफलता समन्वय पर आधारित है । संगठन का मुख्य उद्देश्य ही विभागों और व्यक्तियों की क्रियाओं में तालमेल स्थापित करना है । निर्देशन, नेतृत्व और प्रभावी सम्प्रेषण तथा मानवीय सम्पदा का प्रभावी उपयोग सभी को एक सामंजस्य चाहिए जो कि समन्वय प्रदान करता है । इसलिए स्पष्ट है कि एक उपक्रम की प्रबन्ध प्रक्रिया में आंतरिक समन्वय महत्त्वपूर्ण है । शिक्षा प्रबन्ध में आंतरिक समन्वय के अन्तर्गत व्यवस्थापिका या प्रधानाध्यापक, शिक्षक, शिक्षार्थी, कार्यालय, अभिभावक आदि में एक समन्वय होना चाहिए । जनतंत्रीय प्रशासन परस्पर मधुर सम्बन्ध, परस्पर विश्वास, सहयोग तथा स्वतंत्रता के आधार पर चलता है । अत: प्रबन्धक /प्रशासक के लिए विद्यालयी क्रियाकलापों में इन सिद्धान्तों को अपनाने की आवश्यकता होती है ताकि उचित समन्वय द्वारा लक्ष्यों व उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके ।

बाह्य समन्वय से तात्पर्य उपक्रम के बाहरी रूप से प्रभावित करने वाले अभिकरणों के मध्य होने वाले समन्वय से है । कोई भी प्रबन्ध बाद पर्यावरण घटकों की उपेक्षा नहीं कर सकता । चूँकि शिक्षा प्रबन्ध एक सामाजिक इकाई है अत: सामाजिक उत्तरदायित्व शिक्षण प्रबन्ध की सफलता पर निर्भर करती है । अत: समाज के इन विभिन्न शिक्षा व्यवस्था के वर्गों के साथ प्रभावपूर्ण सामंजस्य एक ज्वलंत आवश्यकता है, जो कि बाहरी समन्वय प्रदान करता है जैसे - (1) सरकार- केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार (2) शिक्षा सम्बन्धी शिक्षा विभाग राज्य बोर्ड (3) समुदाय - स्थानीय समुदाय (4) राजनैतिक दबाव समूह - स्थानीय विधायक अथवा संसद सदस्य (5) विविध संघ - राजनैतिक पार्टियाँ, स्थानीय नेतृत्व- शिक्षक संघ, विद्यार्थी संघ (6) अन्य पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें आदि ।

(2) लम्बवत् एवं समतल समन्वय (Vertical and Horizontal Coordination)

एक उपक्रम में संगठन के विभिन्न स्तरों पर अधोगामी और ऊर्ध्वगामी (downward and upward) उच्चाधिकारियों एवं अधीनस्थों के मध्य स्थापित किया गया समन्वय लम्बवत् समन्वय कहलाता है । जैसे - प्रबन्ध संचालक, विभागीय प्रबन्धक, उप प्रबन्धक, फोरमेन पर्यवेक्षण और श्रमिक के मध्य समन्वय लम्बवत् समन्वय कहलाता है । इससे आदेश की एकता के सिद्धान्त की प्रभावी क्रियान्विति होती है । साथ ही व्यक्तिगत स्तर पर लक्ष्यों की प्राप्ति की प्रगति और समीक्षा की जानकारी आसानी से हो जाती है । शिक्षा प्रबन्ध के अन्तर्गत लम्बवत एवं समतल समन्वय निम्न है -

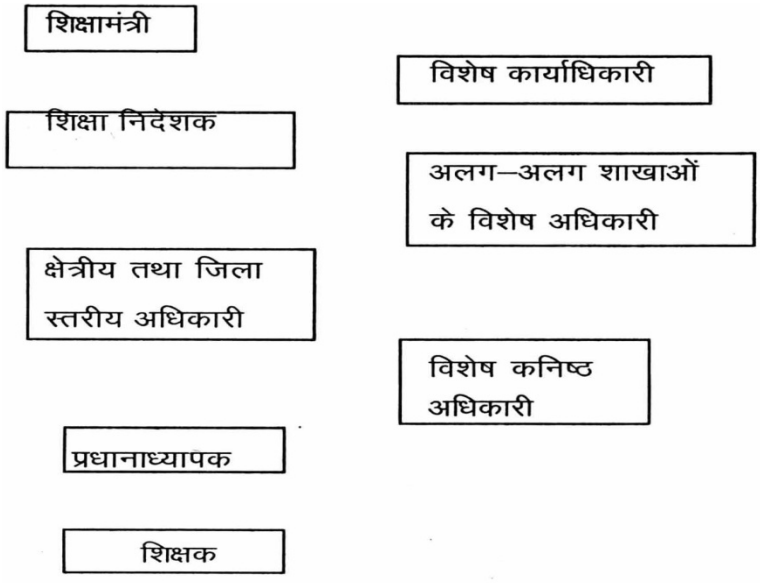

लम्बवत समन्वय चित्र सं. 11.5

समतल समन्वय एक उपक्रम में विभिन्न समान स्तर के विभागों में स्थापित किया जाता है । संगठनात्मक मामले में समान स्तरीय अधिकारी आपसी तालमेल एवं आदरभाव रखते हुए प्रबन्धकीय कार्यों का निष्पादन करते हैं । उदाहरण के लिए शिक्षा विभाग - विश्वविद्यालय स्तर -- उच्च माध्यमिक स्तर - माध्यमिक स्तर - प्राथमिक स्तर के मध्य स्थापित होने वाला समन्वय समतल समन्वय कहलाता है ।

(3) कार्य विधिक एवं स्वायत्त समन्वय (Procedural and substantive coordination)

व्यक्तियों की निर्णय क्षमता के अनुसार समन्वय कार्यविधिक और स्वायत्त हो सकता है । इस बात का उल्लेख प्रबन्ध चिन्तक हरबर्ट साइमन ने "Administrative Behaviour's" नामक पुस्तक में किया । संगठन के प्रत्येक स्तर पर अधिकारी और दायित्व स्पष्ट विभाजक रेखा तय कर दी जाती है और प्रत्येक अधिकारी कर्मचारी इससे पूर्ण परिचित होता है ।

अत: लक्ष्य प्राप्ति हेतु प्रयासों की एकता रहती है । कार्यविधिक समन्वय का अच्छा उदाहरण संगठन संरचना है । प्रत्येक अधिकारी और कर्मचारी उच्च प्रबन्धकों के निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए अपनी सीमाओं में कार्य करता है । जैसे विद्यालय संगठन में प्रधानाचार्य, शिक्षक, छात्र, कर्मचारी तथा शैक्षिक सुविधायें इन सभी में सहयोग तथा समन्वय कार्यविधिक समन्वय कहलाता है ।

स्वायत्त समन्वय संगठन की क्रियाओं की अनुक्रमणिका (index-or contents) है । संगठन की प्रत्येक क्रिया इसके आधारभूत सिद्धान्तों द्वारा अनुप्राणित होती है । जो व्यक्ति जिस तरह का कार्य करता है, वह अपने क्षेत्र का विशेषज्ञ होता है । अत: वह अपने कार्य का निष्पादन बेहतर ढंग से कर सकेगा । जैसे कार विशेषज्ञ कार के इंजन के विभिन्न भागों में प्रभावी समन्वय रख सकेगा क्योंकि वह मेकेनिक और इंजीनियर है जो कि अपने विषय का विशेषज्ञ है । यह स्वायत्त समन्वय (substantive co-ordination) कहलाता है ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय के 'प्रत्यक्ष सम्पर्क' सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं?
2. शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय कितने प्रकार का होता है ? आन्तरिक एवं बाह्य समन्वय क्या है ? समझाइये ।
3. शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय के सिद्धान्त बताइये ।
4. शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय को कितने प्रकार से प्रभावी बनाया जा सकता है? विस्तार से बताइये ।

11.9 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय की तकनीक (Techniques of coordination in educational management)

प्रत्यक्ष सम्पर्क समन्वय की श्रेष्ठ तकनीक है । इसी के साथ समन्वय विभिन्न तकनीकों में प्रभावी सन्तुलन से ही समन्वय स्थापित हो सकता है । इसकी निम्नलिखित तकनीके हैं -

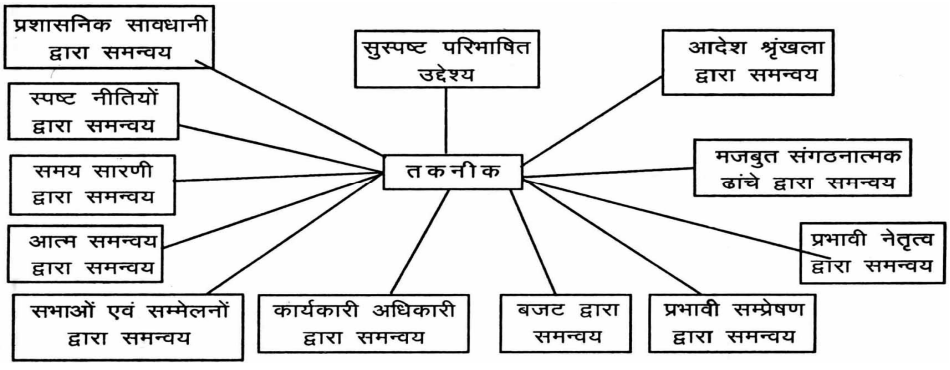

(1) सुस्पष्ट परिभाषित उद्देश्य (Clearly defined objectives)

संगठन में कार्यरत सभी व्यक्ति और विभाग अपने उद्देश्यों के बारे में स्पष्ट होने चाहिए तथा उन सभी को संगठनात्मक उद्देश्यों की भी जानकारी होनी चाहिए । प्रयासों की एकता के उद्देश्यों में समानता होनी चाहिए ।

(2) आदेश श्रृंखला द्वारा समन्वय (Co-ordination by effective leadership)

अधिकारी अपने अधीनस्थों को आदेश देने का अधिकारी रखता है । अत: इन आदेशों के माध्यम से सुगमतापूर्वक निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति की जा सकती है । मेक्स ब्रेवर के अनुसार आदेश श्रृंखला संगठन का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है यह समन्वय की प्रभावी तकनीक है ।

(3) प्रभावी नेतृत्व द्वारा समन्यय (Co-ordination by effective leadership)

प्रभावी समन्वय नेतृत्व की देन है । अच्छे प्रबन्धक अपनी नेतृत्व क्षमता और कौशल द्वारा कर्मचारियों के मध्य समूह भावना पैदा कर लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में उनके प्रयासों को मोड़ते हैं और कार्य संस्कृति निर्मित करने में सफल रहते हैं । कुशल प्रबन्धक कर्मचारियों को

दिशा-निर्देश प्रदान कर समस्याओं का निराकरण करते हैं । अत: नेतृत्व के प्रभावी गुणों से भी समन्वय स्थापित किया जाता है ।

(4) मजबूत संगठनात्मक ढाँचे द्वारा समन्वय (Co-ordination by sound organizational structure)

एक उपक्रम में अच्छा संगठन सफलता का आकार होता है । संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के अधिकारी उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों की सीमाएँ स्पष्ट करता है और उनकी क्रियाओं में सामंजस्य बनाये रखता है । संगठन में चाहे जटिल हो अथवा साधारण, हमेशा मानवीय समन्वित यत्नों की अवैयक्तिक प्रणाली होती है । संगठन का सदैव कोई उद्देश्य होता है तथा इसमें व्यक्तियों में समन्वय एवं एकजुट करने के नियम होते हैं । इसमें सदैव सम्प्रेषण की प्रभावी योग्यता होती है तथा इसमें करने वाले व्यक्ति संगठन के प्रति निष्ठावान रहते हुए निरन्तर संगठन को योगदान करते रहते हैं ।

हरबर्ट साइमन के अनुसार - "बिना अच्छे संगठन के विभिन्न क्रियाओं में समन्वय संभव नहीं होती और बिना समन्वय के संगठन प्रभावी नहीं होता ।"

(5) प्रभावी सम्प्रेषण द्वारा समन्वय (Co-ordination by effective communication)

समन्वय की स्थापना के लिए सम्प्रेषण श्रृंखलाएँ आवश्यक हैं । पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष सर्वाधिक लाभदायक है । अर्नेस्ट डेल के अनुसार - "समूह निर्णयन तकनीकें और समितियाँ समन्वय की स्थापना के प्रभावी उपकरण हैं ।"

(6) बजट द्वारा समन्वय (Coordination by budgets)

किसी भी उपक्रम की सफलता समय, पूँजी और कच्चे माल के अनुकूलतम उपयोग पर निर्भर करती है । यह अनुकूलतम उपयोग ही बजट कहलाता है । व्यक्तियों और विभागीय स्तर पर उद्देश्यों की प्राप्ति बजट पूर्वानुमानों के माध्यम से सुगमतापूर्वक की जा सकती है । यह किसी उपक्रम के आय और व्यय का पूर्वानुमान है जो अनेक तथ्यों पर आधारित होता है । अत: बजट समन्वय का अच्छा साधन है ।

(7) कार्यकारी अधिकारी द्वारा समन्वय (Coordination by Executive Officer)

अधिशाषी अधिकारी अपने अनुभव, निरीक्षण और जाँच पड़ताल के द्वारा उपक्रम के सभी विभागों की क्रियाओं में समन्वय स्थापित करते हैं । वृहत् संस्थाओं में विभागीय प्रबन्धक अपने विभाग की क्रियाओं को समन्वित कर सकते हैं । आंतरिक और बाहरी समन्वय कार्यकारी अधिकारी स्थापित कर सकते हैं ।

(8) सभाओं एवं सम्मेलनों दारा समन्यय (Coordination by meeting and conferences)

समन्वय स्थापना का एक प्रभावी तरीका सभाओं, सम्मेलनों और सेमीनारों का आयोजन करना भी है ताकि स्वतंत्रतापूर्वक अधिकारी और कर्मचारी विभिन्न मामलों के सम्बन्ध में विचार-विमर्श कर सके । इसके परिणामस्वरूप शिक्षा प्रबन्ध, समाज, शिक्षक, शिक्षार्थी, शिक्षण अधिगम परिस्थितियाँ आदि के बीच उचित सामंजस्यपूर्ण वातावरण का विकास होता है । इन

सम्मेलनों और सेमीनारों में शिकायतों, परिवेदनाओं तथा सुझावों की व्यापक समीक्षा हो जाती है और समन्वय सुगम हो जाता है' ।

(9) आत्म-समन्यय हारा समन्यय (Co-ordination by self coordination)

अन्य व्यक्तियों के हितों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए समायोजन करना आत्म-समन्वय कहलाता है । इससे अन्य व्यक्तियों पर अनुचित प्रभाव नहीं पड़ता और उनके कार्य प्रभावित नहीं होते ।

(10) समय-सारणी चारा समन्यय (Coordination by time schedule)

सही समय पर समन्वय की क्रियाएँ सम्पन्न की जानी चाहिए । क्रियाओं का क्रम और दूसरे उपक्रम समन्वय के लिए किये जा सकते हैं । समयबद्ध कार्यक्रम सफलता की कुँजी है । उसी के अनुरूप लक्ष्य तय किये जाते हैं ।

(11) स्पष्ट नीतियों द्वारा समन्यय (Co-ordination by express policies)

नीतियाँ सामान्य कथन होती है । जो व्यावसायिक क्रियाओं के लिए मार्गदर्शन का कार्य करती है । एक उपक्रम में निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु अनेक नीतियाँ एवं कार्यक्रम 'तैयार किये जाते हैं । जैसे - शिक्षा व्यवस्था कैसी हो, कौन-सी उपयुक्त नीतियाँ लागू की जाएँ, समायोजित शिक्षा का स्वरूप क्या होना चाहिए, शिक्षण विधियाँ, शिक्षण अधिगम संस्थितियाँ, शिक्षण तकनीक, कार्मिक समूह, उनकी वेतन व्यवस्थाएँ आदि सभी क्रियाएँ उपक्रम को एकसूत्र में बाँधे रखती है और उद्देश्य की 'प्राप्ति को सुगम बनाती है ।

(12) प्रशासनिक सावधानी से समन्यय (Co-ordination by administrative awareness)

प्रशासन द्वारा प्रयुक्त तरीके जैसे निरीक्षण, पर्यवेक्षण, मूल्यांकन, पूछताछ आदि के द्वारा नियंत्रण रखा जाता है । अनेक विभागों और व्यक्तियों तथा समूहों के प्रयासों को नियोजित किया जाता है । प्रत्येक कार्य की सावधानी हेतु प्रशासन द्वारा यथोचित प्रयास किये जाते हैं।

11.10 प्रशासनिक सावधानी से समन्वय की प्रक्रिया (Effective co-ordination in educational management)

समन्वय की प्रक्रिया में समन्वय कार्य का नियोजन, संगठन और नियंत्रण सम्मिलित किया जाता है ताकि तालमेल स्थापित हो सके और उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके । कुन्ट्ज एवं डोनल के अनुसार - 'समन्वय प्रबन्ध का सार है जो निर्धारित सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए वैयक्तिक प्रयत्नों में एकरूपता लाता है ।" प्रभावी समन्वय की स्थापना के लिए निम्न बातें आवश्यक हैं -

(1) आतंरिक एवं बाहम पर्यावरण का विश्लेषण (Analysis of Internal and External Environment)

आंतरिक संगठन संरचना पर बाहरी पर्यावरण का क्या प्रभाव पड़ता है और मानवीय प्रयास किस सीमा तक इन बाहय घटकों से प्रभावित होते हैं । इनकी विस्तृत व्याख्या निहायत

जरूरी है। आंतरिक पर्यावरण जिसमें प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों का व्यक्तित्व तथा व्यवहार सम्मिलित है, का विश्लेषण भी प्रयासों को लक्ष्य प्राप्ति की ओर मोड़ने में कारगर साबित होते हैं । आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी और राजनैतिक घटक समन्वय प्रयासों को प्रभावित करते हैं।

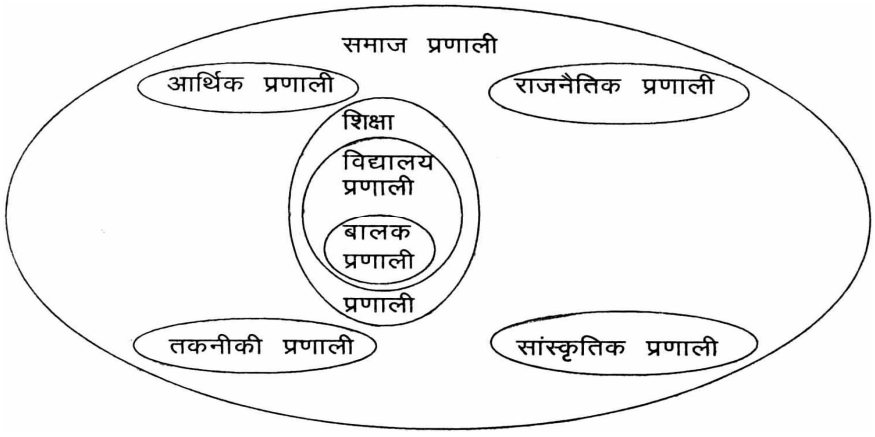

चित्र सं. व 1 .7

(2) उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या (Determination of the Object)

जार्ज टैरी ने लिखा है कि "प्रयासों में एकता लाने के लिए उद्देश्यों में समानता होनी चाहिए।" जब भी कोई विशिष्ट समन्वय योजना लागू की जाए उसका उद्देश्य स्पष्ट परिभाषित होना चाहिए। ताकि उपक्रम का प्रत्येक विभाग और प्रत्येक व्यक्ति निर्धारित लक्ष्यों से अवगत हो और समझता हो इसके लिए समन्वय समितियाँ स्थापित की जा सकती हैं ।

(3) समन्यय प्रणाली का विकास (Developing system of coordination)

एक अच्छी संगठन संरचना उपक्रम में समन्वय स्थापना करने में सहायक होता है । अर्ल पी. स्ट्रोंग के अनुसार, "विभागों से दूसरे विभाग को आसानी से मिलते रहे, इसके अतिरिक्त अत्यधिक मात्रा में विशिष्टीकरण का परिणाम समन्वय की समस्याओं को अनावश्यक रूप से बढ़ावा देना होता है ।" इस हेतु समन्वय योजना और उद्देश्य स्पष्ट हो, प्रबन्धकीय स्तरों पर अधिकार दायित्व की स्पष्ट व्याख्या हो, संगठन में स्वतंत्र सम्प्रेषण प्रणाली हो तथा समूह भावना से कार्य सम्पादन अत्यावश्यक है । इस प्रकार इन आधारों पर सामंजस्य बेहतर ढंग से स्थापित किया जा सकता है।

(4) समन्यय की उचित तकनीक का चयन (Selection of proper technique of coordination)

समन्यय की उचित तकनीक का चुनाव उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए । जैसे समतल, लम्बवत, आंतरिक बाहरी, स्वायत्त या कार्यविधिक किसी प्रकार का समन्वय वांछनीय है । समन्वय की जटिलता को देखते हुए उचित और उपयुक्त तकनीक का चुनाव किया जाना चाहिए ताकि निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके ।

(5) सामान्य नामकरण (Common nomenclature)

औद्योगिक क्रान्ति और प्रौद्योगिकी विकास ने प्रबन्ध जगत् में प्रयुक्त शब्दावली में काफी परिवर्तन और वृद्धि की है । कई समानार्थक शब्दों का प्रयोग । अत: एक उपक्रम में

आवश्यक है कि समान प्रकार के कार्य के लिए समान शब्दों एवं नामों का प्रयोग किया जाये । इससे समन्वय स्थापना सुगम हो जाती है ।

(6) प्रभावों सम्प्रेषण व्यवस्था (Effective Communication System)

अर्नेस्ट डेल द्वारा प्रतिपादित समितियाँ और सामूहिक निर्णयन तकनीकें समन्वय के आधारभूत मापदण्ड हैं । किन्तु इसी के साथ-साथ वैयक्तिक सम्पर्क, प्रतिवेदन, अभिलेखन जैसी तकनीकों तथा इन्टकॉम जैसी तकनीकों का भी समन्वय में प्रयोग कर समन्वय को सरल बनाया जा सकता है । इससे त्वरित समस्या समाधान और उद्देश्य प्राप्ति को बल मिलता है । व्यक्तिगत संपर्क समप्रेषण का श्रेष्ठ माध्यम है, जो प्रभावी समन्वय की स्थापना में अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है ।

(7) समूह कार्यभावना (Team sprit)

समन्वय एक अंतरंग क्रिया है जो स्वैच्छिक आधारों पर ज्यादा निर्भर करती है । पारस्परिक सहयोगात्मक भावना और मिलकर कार्य की इच्छा भावना जहाँ लक्ष्य प्राप्ति सुगम बनाती है, वहीं मधुर मानवीय सम्बन्धों (Good-Human Relations) की स्थापना करती है ।

(8) समन्यय योजना का मूल्यांकन (Appraisal of Coordination System)

प्रबन्धक को चाहिए कि वह समन्वय योजना का सामयिक मूल्यांकन करें तथा लागत लाभ विश्लेषण के आधार पर समन्वय की प्रभावशीलता का आकलन करे । अगर उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो रही है तो समन्वय तकनीकों की समीक्षा आवश्यक है । समन्वयकर्ता के व्यवहार का अध्ययन और विश्लेषण जरूरी है साथ ही अच्छे समन्वयकों को अभिप्रेरित किया जाना चाहिए । समन्वय में कमियों को दूर करने के लिए व्यक्तियों या तकनीकों में सुधार हेतु प्रयास कर नयी समन्वय तकनीक इजाद की जानी चाहिए ।

प्रबन्ध चिन्तक रेन्सिस लिकर्ट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "The Human Organization" में बताया है कि प्रभावी समन्वय की स्थापना के लिए अधिकारी, अधीनस्थों में सहयोगात्मक व्यवहार, आपसी मतभेदों और परिवेदना निवारण के लिए एक तंत्र, आपसी विश्वास एवं सामंजस्य, अभिप्रेरणात्मक कार्य प्रणालियाँ तथा श्रेष्ठ एवं भागीदारी निर्णयन प्रणालियाँ होना आवश्यक हैं, ताकि निर्धारित उद्देश्यों को सुगमता से पूरा किया जा सके ।

11.11 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय की सीमाएं (Limitations of coordination in educational management)

समन्वय प्रबन्ध का सारांश है । प्रबन्ध के सभी कार्य बिना समन्वय के बेकार साबित हो सकते हैं । साथ ही समन्वय की स्थापना एक कठिन कार्य भी है जो कि कार्य से ज्यादा एक कौशल है । इसे एक योग्य एवं चतुर प्रबन्धक ही सफलतापूर्वक कर सकता है । कई समस्याएँ भी उपस्थित होती है, अहम टकराते हैं तथा समन्वय मानवीय होने के कारण कुछ सीमाएँ भी हैं। इन सभी कारणों के आधार पर कह सकते हैं कि समन्वय की निम्नलिखित समस्याएँ एवं सीमाएँ हैं -

(1) मानवीय व्यवहार की परिवर्तनशील प्रकृति के कारण इसको समझना और भावनात्मक होने के कारण इसका अध्ययन और विश्लेषण एक जटिल कार्य है ।

(2) कर्मचारी स्वहित को ज्यादा प्रोत्साहन देते हैं तथा संगठनात्मक उद्देश्यों को कम । जिससे प्रबन्ध और श्रम के बीच टकराव और संघर्ष की स्थिति पैदा होती है । जब तक इन दोनों में एकीकरण और टकराव दूर न हो तब तक समन्वय जटिल रहता है ।

(3) कुशल प्रबन्धकों एवं समन्वयकों का अभाव भी समन्वय की स्थापना में बाधा है । अनुभवी और सन्तुलित प्रबन्धक समवय हेतु चाहिए क्योंकि समन्यय एक कार्य के ,बजाय कौशल ज्यादा है ।

(4) समन्वय विशिष्ट समस्या, परिस्थितियों, संसाधनों की उपलब्धता एवं अंतिम लक्ष्य पर निर्भर करता है । एक प्रशासक में विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों के मध्य सामंजस्य स्थगित करने का कौशल होना चाहिए । इसके अभाव में समन्वय में बाधा उत्पन्न होती है ।

(5) समन्वय की सीमा प्रबन्धकों का मानवीय ज्ञान, मनुष्य और उसके व्यवहार के सम्बन्ध में अपूर्ण होना भी है ।

(6) समन्वय की सार्वभौमिक तकनीकें और सर्वमान्य पद्धतियाँ विकसित नहीं हो पायी है इससे भी समन्वय एक समस्याग्रस्त विषय बन गया है ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. शैक्षिक प्रबन्ध मे समन्वय स्थापित करने के लिए आन्तरिक एवं बाह्रा पर्यावरण का विश्लेषण आवश्यक है । क्यों ?
2. कौन - कौन सी प्रमुख तकनीकों द्वारा शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय को प्रभावी बनाया जा सकता है । किन्ही तीन तकनीकों को समझाइये ।
3. शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय को प्रभावी बनाने वाली प्रक्रियाओं को बताइये ।
4. शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय को प्रभावी करने वाली कौन - कौन से प्रमुख सीमाएँ है । समझाइये ।
5. शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय की तकनीकों को विस्तार से समझाइये ।

11.12 सारांश (Summary)

शिक्षा प्रबन्ध शिक्षा के व्यवस्थित संचालन एवं शिक्षा के लक्ष्यों व उद्देश्यों की प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण आधार है । जिस तरह शिक्षा प्रबन्ध शिक्षा के लक्ष्य व उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रमुख आधार है उसी तरह एक कुशल समन्वय ही शिक्षा प्रबन्ध के व्यवस्थित संचालन को सफल बनाता है ।

शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय न केवल मानव समूह का समन्वय है अपितु वित्त व्यवस्था, भौतिक सुविधाएँ, सामग्री आदि सभी के मध्य एक व्यवस्थित सामंजस्य से है । किन्तु यह समन्वय जन समूह के कुशल सम्बन्धों पर निर्भर करता है । शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय एक निरन्तर गतिशील प्रक्रिया है जो शिक्षा की प्रशासनिक समस्या के समाधान के विकल्प के रूप में तथा अन्य प्रबन्ध कार्यों के लिए प्रेरणा के रूप में शिक्षा प्रबन्ध को प्रभावित किए हुए है । शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय मानवीय सम्बन्धों के विकास हेतु, शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति, विरोधों एवं कुसमायोजन को दूर करने तथा शिक्षा के व्यवस्थित नियोजन हेतु आवश्यक है । किन्तु यह समन्वय शैक्षिक कार्मिकों के प्रत्यक्ष सम्पर्क से, आत्म समन्वय की भावना को

विकसित कर तथा पारस्परिक मजबूत सम्बन्धों के विकास के फलस्वरूप ही प्राप्त किया जा सकता है ।

शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय का क्षेत्र बहुत व्यापक रहा है । यह प्रबन्ध के विभागों, आंतरिक क्रियाओं तथा मानवीय प्रयासों के मध्य आन्तरिक समन्वय तथा बाह्य पर्यावरण के मध्य बाह्य समन्वय द्वारा, उच्च अधिकार एवं अधीनस्थों के मध्य बाह्य समन्वय द्वारा प्राप्त किया जा सकता है । साथ ही उच्च अधिकारियों एवं अधीनस्थों के मध्य प्रबन्ध संचालक, विभागीय प्रबन्ध, उप प्रबन्ध आदि के मध्य लम्बवत व समतल समन्वय पर तथा कार्यविधिक व स्वायत्त समन्वय पर शैक्षिक समन्वय की सफलता अवलम्बित है । उद्देश्यों की स्पष्टता, प्रभावी नेतृत्व, मजबूत संगठन, प्रभावी सम्प्रेषण आदि के द्वारा आंतरिक व बाह्य परिस्थितियों का विश्लेषण कर, समन्वय को मजबूत आधार प्रदान किया जा सकता है किन्तु एक योग्य एक योग्य एवं कुशल प्रबन्धक पर ही समन्वय की सफलता निर्भर करती है ।

अभ्यास प्रश्न (Exercises)

1 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय के अर्थ, सम्प्रत्यय, क्षेत्र, विशेषताओं, महत्त्व स्पष्ट करते हुए इसके सिद्धान्तों की उदाहरण सहित व्याख्या करिए ।

2 शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय के प्रकार, तकनीक, प्रक्रिया तथा इसकी प्रक्रिया पर एक समालोचनात्मक निबन्ध लिखिए ।

11.13 संदर्भ (References)

1. ओड, एल. के. : शैक्षिक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1991
2. Aggarwal J.C: Educational Administration Management and] Supervision.Arya Book Depot,Delhi,1994
3. बघेला, एच. एस. : शैक्षिक प्रबन्ध एवं विद्यालय संगठन, अ- प्रकाशन, जयपुर, 2008
4. भटनागर एवं अग्रवाल : शैक्षिक प्रशासन, लॉयल बुक डिपो, मेरठ, 1994
5. Bhatt K.S : Administration of Education,

Ravi Shankar : Seema Publication, Delhi,1985

6. Bhatnagar S.S. : Educational Management

Gupta P.K. : R.Lall Book Depot,Meerut

7. भटनागर, विशिष्ट एवं : शैक्षिक प्रबन्ध एवं शिक्षा की समस्याएँ आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, 2003
8. Encyclopaedia of Education,1913
9. सिडान एवं शर्मा : शैक्षिक प्रबन्ध एवं विद्यालय संगठन शिक्षा प्रकाशन, जयपुर, 2007
10. Tripati P.C. and Principles of Management Second Edition, Tala

11. Reddy P.N. Me Graw Hill Publication Company Limited,Delhi,1997

इकाई 12

शैक्षिक प्रबन्धन में दबाव एवं नियंत्रण (Control and Pressure in Educational Management)

इकाई की सरंचना

12.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

12.2 दबाव क्या है (What Is Pressure ?)

12.3 शिक्षा में दबाव (Stress in Education)

12.4 दबाव के दुष्प्रभाव (Bad Effects of Pressure)

12.5 दबाव पर नियंत्रण (Control on Pressure)

12.6 शैक्षिक दबाव कम करने के उपाय (Measures to Reduce Educational Pressure)

12.7 नियंत्रण का अर्थ (Meaning of Control)

12.8 नियंत्रण की आवश्यकता (Need for Control)

12.9 नियंत्रण की प्रक्रिया : नियंत्रण चक्र (Process of Control : The Control System)

12.10 नियंत्रण तंत्र के गुण (Requirements of an Effective Control System)

12.11 नियंत्रण के सिद्धान्त (Principles of Control)

12.12 नियंत्रण के प्रकार (Types of Control)

12.13 सारांश (Summary)

12.14 संदर्भ (References)

12.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं -

1. शैक्षिक प्रबन्धन में दबाव एवं नियंत्रण का अर्थ स्पष्ट करना ।
2. शैक्षिक प्रबन्धन में दबाव को बढ़ाने वाले कारकों का विश्लेषण करना ।
3. शैक्षिक प्रबन्धन में दबाव को बढ़ाने वाले कारकों के नियंत्रण के बारे में जानकारी प्रदान करना ।

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

आधुनिक युग में शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया है । शिक्षा पर सम्पूर्ण राष्ट्र के विकास का उत्तरदायित्व है । शैक्षिक प्रशासन को आज केवल शिक्षा की व्यवस्था करना ही नहीं अपितु विद्यालय के विधिवत संचालन के वे सभी कार्य करने होते हैं जिनमें प्रबन्धन, नियंत्रण, व्यवस्था, पर्यवेक्षण एवं निर्देशन आदि शामिल हैं । शैक्षिक प्रशासन के अंतर्गत योजना बनाना, प्रशासकीय कार्यवाही को निश्चित करना, सम्बन्धित कार्यकर्ताओं तथा विद्यार्थियों को आवश्यक सुविधाएँ एवं प्रोत्साहन उपलब्ध कराना, आवश्यक अभिलेख (records) रखना, विद्यार्थी-स्वशासन का संचालन करना, योग्यता के अनुसार कार्य का विभाजन करना, उनके कार्य आदि का समायोजन करना, विद्यालय और समाज के मध्य सहयोगपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना आदि प्रवृत्तियों का समावेश होता है । इतने विस्तृत कार्यक्षेत्र होने की वजह से और राष्ट्र के विकास का उत्तरदायित्व होने के कारण शैक्षिक प्रबन्धन के अंतर्गत आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को कई चुनौतियों और दबावों का सामना करना पड़ता है । इन चुनौतियों के दबाव में न आकर तनाव मुक्त कार्य करना अत्यन्त दुष्कर होता है ।

12.2 दबाव क्या है ? (What Is Pressure ?)

अपनी स्वास्थ्य एवं सुरक्षा नीति के अन्तर्गत ब्रिटिश खुला विश्वविद्यालय (British Open University) ने दबाव को इस प्रकार परिभाषित किया है - "जब हमसे किसी कार्य की मांग या अपेक्षा की जाती है और उस वक्त अगर हम यह महसूस करें कि इस मांग या अपेक्षा की पूर्ति करने में हम असक्षम है तो हम दबाव में होते हैं । सभी कार्यों का अपना अलग प्रकार का दबाव होता है और अलग-अलग प्रकार के दबावों को सहन करने की क्षमता भी अलग-अलग होती है । जो दबाव हमें प्रोत्साहित करते हैं और जिसे हम आसानी से सहन कर लेते हैं वे दबाव हमें संतोष प्रदान करते हैं । इसके विपरीत बहुत कम दबाव या अत्यधिक दबाव को हम सहन नहीं कर सकते । अल्पदाब या अत्यधिक दाब के कारण तनाव पैदा होता है । जब तनाव ज्यादा या लगातार हो तो स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है ।"

"Stress is what we experience when we feel we cannot cope with the pressure and demands placed upon us. All work has its different pressures and we may vary in our capacity and ability to cope with different type of pressures. Some levels of pressure can be motivating and a challenge and pressure that we respond to effectively are likely to lead to job satisfaction.However,pressures at a level we cannot cope with, or in some cares too little pressure or challenge are likely to result in stress for the individual. When stress is intense, repeated or continuous, ill health can result."

12.3 शिक्षा में दबाव (Stress in Education)

आज अन्य क्षेत्रों की तरह ही शिक्षा के क्षेत्र में भी दबाव बढ़ रहा है जिसके कई सारे कारण हैं । ये कारक ना सिर्फ सभी तरह के शिक्षकों को, अपितु विद्यार्थियों और प्रबन्धकों को भी प्रभावित कर रहे हैं । शिक्षा के क्षेत्र में दबावों को हम निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं-

(1) शिक्षकों पर दबाव डालने वाले कारक

(2) विद्यार्थियों पर दबाव डालने वाले कारक

(3) प्रबन्धकों पर दबाव डालने वाले कारक

12.3.1 शिक्षकों पर दबाव डालने वाले कारक (Factors related to stress on teachers)

वर्तमान युग प्रतिस्पर्धा का युग है, तकनीकी श्रेष्ठता का युग है । इस प्रतिस्पर्धा के चलते हर विद्यालय की यह कोशिश रहती है कि वह अपने आपको अन्य विद्यालयों से श्रेष्ठतर साबित करें । इस अपेक्षा पर खरा उतरने के लिए शिक्षकों से कई गुना अपेक्षाएँ बढ़ गई है जिससे शिक्षक वर्ग दबाव महसूस करता है । शिक्षकों पर बेहतर परिणाम देने के लिए दबाव डालने वाले कारक निम्नलिखित हैं -

1. अत्यधिक कार्य (Excessive workload) - आज शिक्षकों को सिर्फ कक्षा-कक्ष में जाकर पढ़ाना ही नहीं होता, उन्हें छात्रों को उत्कृष्ट बनाने के लिए तकनीकी रूप से दक्ष (techno-savvy) होना होता है, साथ ही साथ पाठ्यक्रम सहगामी-क्रियाओं का निर्वहन करते हुए पूरा पाठ्यक्रम भी समय सीमा के भीतर समाप्त करना होता है । निजी विद्यालयों में शिक्षक हर माह होने वाली परीक्षा, कॉपी जाँचना और परिणाम तैयार करने में अपने आपको असहाय पाते हैं वहीं सरकारी विद्यालय के शिक्षक कभी जनगणना, कभी पशु गणना करने, कभी चुनाव कराने और कभी छात्रों को मिड डे मील खिलाने के बाद पाठ्यक्रम पूरा करने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं।

2. कम तनख्वाह (Low Salary) - भारत में आज भी स्थिति ऐसी है कि अन्य व्यवसायों की अपेक्षा शिक्षक को सम्मान तो अधिक मिलता है परन्तु उसे पैसा उस अनुपात में नहीं मिलता । इसी कारण श्रेष्ठ विद्यार्थी शिक्षा के व्यवसाय में आने से भी कतराते हैं ।

3. लालफीताशाही (Redtapism) - शिक्षकों के कई सारे कार्य जैसे प्रोमोशन, शिक्षा संबंधी सुविधाएँ, यात्रा भत्ता, महंगाई भत्ता एवं वेतन बिल आदि लालफीताशाही में अटककर रह जाते हैं । उन्हें अपने कार्य करवाने के लिए कई प्रशासनिक अड़चनों का सामना करना पड़ता है ।

4. राजनीतिक हस्तक्षेप (Political Interference) - शिक्षकों को किसी विद्यालय में अपनी सेवाएँ देने के लिए राजनीतिज्ञों की दया दृष्टि पर निर्भर रहना पड़ता है । शिक्षकों का स्थानान्तरण राजनेताओं की मनमर्जी पर होता है जिससे राजनीतिक पहुँच वाले लोग कई वर्षों तक शहर के विद्यालयों में नौकरी करते हैं और जिन शिक्षकों की पहुँच राजनेताओं तक नहीं है वे आजीवन सुदूर क्षेत्रों में नौकरी करते हैं और अनेक समस्याओं का सामना करते हैं ।

5. अभिभावकों द्वारा उपेक्षा (Lack of Parental Support) - शिक्षकों को अक्सर कई मामलों में अभिभावकों की ओर से अपेक्षित सहयोग नहीं मिल पाता । ज्यादातर अभिभावक अपने बच्चों को विद्यालय भेजकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं । बच्चा रोज विद्यालय जा रहा है या नहीं, अपना कार्य कर रहा है या नहीं, उसकी कोई शिकायत तो नहीं आ रही है या अन्य कोई समस्या तो नहीं है- इन सारी बातों से अभिभावक सरोकार नहीं रखते । यहाँ तक कि शिक्षक द्वारा विद्यालय में बुलाए जाने के बावजूद भी वो या तो विद्यालय में नहीं जाते अथवा सारी जिम्मेदारी शिक्षकों पर ही डालकर आ जाते हैं ।

6. असहयोगी छात्र (Uncooperative Pupil) - कई बार शिक्षकों को ऐसे छात्रों का भी सामना करना पड़ता है जो किसी भी तरह शिक्षक के साथ सहयोग करने को तैयार नहीं होते । ऐसे छात्र ना तो प्यार-दुलार से मानते हैं, ना ही डाँट-फटकार से । इस तरह के छात्र असहयोग से शिक्षक दबाव महसूस करते हैं । वे अन्य छात्रों पर भी उचित ध्यान नहीं दे पाते और उनका सम्पूर्ण शिक्षण कार्य प्रभावित होता है ।

7. छात्र हित नियम (Child Protection Issues) - कई बार शिक्षक बड़ी अजीबोगरीब स्थिति में फँस जाता है । कई बार विद्यार्थी किसी भी प्रकार समझने को तैयार नहीं होता तो मार ही एक आसरा होता है जिससे वह विद्यार्थी को ठीक राह पर चलने को कह सकता है । परन्तु इसमें भी छात्र हित के नियम आड़े आ जाते हैं । आज तो विद्यार्थी इतने सजग हो गए हैं कि मारने पर वे अध्यापक को भी न्यायालय में घसीटने की धमकी दे देते हैं । ऐसी स्थिति में शिक्षक का कक्षा को नियंत्रित रख पाना अत्यन्त दुष्कर कार्य होता है जिसके परिणामस्वरूप वह तनाव ग्रस्त रहता है ।

8. प्रबन्धन से असहयोग (Unsupporting Management) - कई मामलों में शिक्षक अपने प्रबन्धन से सहयोग पाने में भी असफल रहता है । ऐसा कोई भी कार्यक्रम जिसमें छात्रों के विकास के लिए पैसों की जरूरत हो, प्रबन्धन मना कर सकता है । कई बार अनुशासन संबंधी मामलों पर भी शिक्षक को प्रबन्धन का सहयोग नहीं मिल पाता है ।

उपरोक्त वर्णित कारकों के कारण शिक्षक अपने आपको दबाव में महसूस करते हैं । इस दबाव के कारण वे कई बार अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतर पाते और अपेक्षित परिणाम नहीं दे पाते जिसका सीधा असर शिक्षा के स्तर पर होता है ।

12.3.2 विद्यार्थियों पर दबाव डालने वाले कारक (Factors exerting pressures on students)

वैश्वीकरण (Globalization) और भौतिकवाद ने हर व्यक्ति की आकांक्षाओं को अत्यधिक ऊँचा उठा दिया है । इसका असर ना सिर्फ शिक्षकों पर पड़ा है अपितु छात्र भी इससे अछूते नहीं रहे हैं जिससे छात्र पर अपेक्षाओं का दबाव अत्यधिक बढ़ गया है । विद्यार्थियों पर दबाव डालने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्न प्रकार से हैं -

1. परीक्षा का दबाव एवं उत्तेजना (Exam pressure and anxiety) - परीक्षा को अच्छे अंकों से उत्तीर्ण करने का अत्यधिक दबाव छात्रों पर रहता है । अभिभावक भी एक को देख अपने बच्चों से अधिक से अधिक अंक लाने की मांग करते हैं और उसमें थोड़ा भी असफल पर

छात्र को भला-बुरा कहा जाता है । इससे विद्यार्थियों पर परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने का अत्यधिक दबाव रहता हैं ।

2. साथियों का दबाव (Peer pressure) - विद्यार्थियों पर अपने सहपाठियों का भी दबाव रहता है । विद्यार्थी पर अपने सहपाठी से ना सिर्फ पढ़ाई में अपितु अन्य गतिविधियों में भी बेहतर-प्रदर्शन करने का दबाव रहता है । कई बार सहपाठी भी किसी विद्यार्थी पर कोई कार्य करने या ना करने का दबाव डालते हैं जिससे होनहार छात्र भी अपने मार्ग से भटक सकता है ।

3. पारिवारिक झगड़े (Family Problems) - अपने परिवार का वातावरण भी विद्यार्थी के प्रदर्शन पर प्रभाव डालता है जिससे वह दबाव महसूस करता है । यदि किसी विद्यार्थी को उसके परिवार से प्यार और सहानुभूति नहीं मिलती है अथवा यदि उसके माता-पिता आपस में झगड़ते हैं या उनमें तलाक की नौबत आ जाती है तो इसका अत्यधिक दबाव छात्र पर पड़ता है । ऐसे पारिवारिक पृष्ठभूमि का विद्यार्थी गलत राह पर आसानी से अग्रसर हो जाता है ।

4. परिवार की आर्थिक स्थिति (Financial Conditions of Family) - विद्यार्थी के परिवार की आर्थिक स्थिति का भी विद्यार्थी पर दबाव पड़ता है । यदि किसी विद्यार्थी के परिवार की माली हालात कमजोर है तो उसमें अन्य सहपाठियों को देखकर हीन भावना का विकास हो सकता है । दूसरे सहपाठियों की तरह रहन-सहन या खान-पान नहीं रख पाने का एक विद्यार्थी पर दबाव पड़ना स्वाभाविक क्रिया है ।

5. बीमारी (Illness). - खराब स्वास्थ्य किसी भी विद्यार्थी पर दबाव डाल सकता है । बीमारी के कारण विद्यालय ना जा पाने पर उस पर काम का बोझ बढ़ जाता हे । यदि बीमारी लम्बी चली तो उस पर काम का अत्यधिक बोझ बढ़ जाता है । वह चिंताग्रस्त हो सकता है और पढ़ाई में पिछड़ सकता है ।

6. शिक्षक से असामंजस्य (Maladjustment with Teachers) - कई बार विद्यार्थी अपने शिक्षक के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते हैं । शिक्षक उन्हें समझ नहीं पाते हैं और उनका तिरस्कार करते हैं । शिक्षक के साथ यदि छात्र अपने आपको स्थापित नहीं कर पाता तो उसे कई की मुश्किलों का सामना करना पड़ता है और वह दबाव में रहता है ।

12.3.3 प्रबन्धकों पर दबाव डालने वाले कारक (Factors exerting pressure on management)

शैक्षिक प्रबन्धकों को भी समय-समय पर कई प्रकार के दबावों का सामना करना पड़ता है ।

1. सामाजिक दबाव (Social Pressure) - शैक्षिक प्रबन्धकों से समाज यह अपेक्षा करता है कि समय के साथ हो रहे परिवर्तनों के साथ प्रबन्धन भी अपने विद्यालयों में उचित परिवर्तन करेगा जिससे कि छात्र न सिर्फ संस्कारित हों, उन्हें आधुनिक तकनीक का भी ज्ञान हो । राष्ट्र के निर्माण के उत्तरदायित्व का दबाव हमेशा प्रबन्धन पर रहता है ।

2. आर्थिक दबाव (Economic Pressure) - समय के साथ अपने मूलभूत ढाँचे में परिवर्तन करने के लिए विद्यालय प्रबंधकों को हमेशा धन की जरूरत पड़ती है जिसका समय पर प्रबन्ध करना शैक्षिक प्रशासकों के लिए आसान नहीं होता । सरकार से ग्रांट पास करना या

दानदाता से दान लेना अथवा विद्यार्थियों से समय पर शैक्षिक शुल्क वसूल करना प्रबन्धन के लिए अत्यन्त दुष्कर कार्य होता है । चाहे प्रशासकों के पास किसी भी स्रोत से पैसों की व्यवस्था हो या ना हो, उन पर हर माह के नियमित खर्चों के अतिरिक्त समय पर वेतन देने का दबाव हमेशा रहता है ।

3. राजनीतिक दबाव (Political Pressure) - शैक्षिक प्रबन्धकों पर राजनेताओं से अच्छे संबंध रखने का दबाव रहता है जिससे कि उनके कार्य आसानी से हो सकें । उन्हें कई बार राजनेताओं के मिलने वालों को नौकरी पर रखना पड़ता है अथवा उनके किसी मिलने वाले विद्यार्थी को ना चाहते हुए भी दाखिला देना पड़ता है ।

4. स्टाफ का दबाव .(Staff Pressure) - प्रबन्धन पर स्टाफ का कई तरह का दबाव रहता है । पूरा स्टाफ रखने, अगर कोई स्टाफ सदस्य किसी कारणवश अनुपस्थित है तो उसकी भरपाई करने, स्टाफ सदस्यों में आपस में सामंजस्य रखने, स्टाफ से पूरा काम लेने, उन्हें नियंत्रित करने, उनका वेतन समय पर देने आदि बातों का दबाव रहता है ।

5. शिकायतों के उचित समाधान का दबाव (Proper Disposal of Complaints)- प्रबन्धन को विद्यार्थियों की तरफ से, अभिभावकों की तरफ से और स्टाफ सदस्यों की तरफ से कई प्रकार की शिकायतें मिलती हैं और उन शिकायतों का उचित समाधान निकालने का दबाव हमेशा प्रबन्धन पर होता है । यदि इन शिकायतों का उचित समाधान सही समय पर नहीं होता है तो असंतोष भड़कता है जिसके दूरगामी दुष्परिणाम होते हैं ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. 'दबाव' शब्द से क्या अभिप्राय है ?
2. शिक्षकों पर कौन-कौन से कारक दबाव डालते हैं ? संक्षेप में बताइए ।
3. विद्यार्थियों पर दबाव किन कारणों से पड़ता है ?
4. प्रबन्धक किन दबावों का सामना करते हैं ?

12.4 दबाव के दुष्परिणाम (Bad Effects of Pressure)

जब किसी व्यक्ति पर दबाव पड़ता है तो उसकी कार्यक्षमता एवं कार्यकुशलता में वृद्धि होती है । परन्तु यदि यह दबाव अत्यधिक एवं लम्बे समय तक रहे तो व्यक्ति को मानसिक व शारीरिक रूप से कमजोर कर देता है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति का स्वास्थ्य बिगड़ने का खतरा रहता है । दूसरी ओर यदि दबाव कम है या नहीं है तो उस परिस्थिति में व्यक्ति अपना सर्वोत्कृष्ट कार्य नहीं कर सकता है । यहाँ तक कि दबाव के अभाव में वह व्यक्ति आलसी हो जाएगा और धीरे-धीरे उसकी कार्यक्षमता कम होती जायेगी ।

यह कहा जा सकता है कि अत्यधिक या अत्यल्प दबाव दोनों ही परिस्थितियां व्यक्ति के लिए हानिकारक होती हैं । वस्तुत: आज वर्तमान युग में सामान्यत: परेशानी का कारण अत्यधिक दाब ही बनता है । दाब के कारण होने वाली परेशानियों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है -

1. शारीरिक (Physical) - अधिक दबाव से हमारे शरीर में तनाव पैदा होता है जिसके कारण ऐसे हार्मोन (Hormones) बनते हैं जो हमारे शरीर के अंगों को नुकसान पहुँचाते हैं ।

अत्यधिक कार्य के कारण आज कमर दर्द, स्लीप डीस्क आदि रीढ़ की हड्डियों से जुड़ी बीमारियाँ काफी आम हो गई है ।

2. मानसिक (Mental) - दबाव से व्यक्ति की मानसिक क्षमता पर भी प्रभाव पड़ता है । उसके सोचने की क्षमता कम हो जाती है । काम की अधिकता और नींद की कमी के कारण उसे सिरदर्द रहता है एवं उसमें चिड़चिड़ापन आ जाता है । इसका असर उसके स्वास्थ्य पर भी पड़ता है ।

3. आर्थिक (Economical) - दबाव के कारण व्यक्ति की आर्थिक स्थिति पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है । यदि दबाव के कारण उसे कोई शारीरिक या मानसिक परेशानी होती है तो एक तरफ उसे अपने इलाज पर धन खर्च करना पड़ेगा वहीं दूसरी ओर कार्यालय में उपस्थिति न देने के कारण उसे अवैतरिक अवकाश पर भी रहना पड़ सकता है ।

4. सामाजिक (Social)- जब व्यक्ति पर कार्य का अत्यधिक दबाव होगा तो वह शारीरिक और मानसिक रूप से थक जाएगा । उसे कार्य के उपरान्त जो भी समय मिलेगा वह आराम करने में लगाएगा । वह ना तो समाज के अन्य लोगों से मिलेगा ना ही यह पसंद करेगा कि कोई उससे मिलने आए । धीरे-धीरे वह समाज से पूरी तरह कट जाता है ।

12.5 दबाव पर नियंत्रण (Control on Pressure)

दबाव से होने वाली परेशानियों और नुकसानों को ध्यान में रखते हुए यह अत्यन्त आवश्यक है कि शिक्षा से जुड़े सभी लोगों पर दबाव को एक सीमा के बाद नियंत्रित कर लिया जाए । यहाँ नियंत्रण से यह तात्पर्य है कि कुछ ऐसी रूपरेखा बनाई जाए, कुछ ऐसे उपाय अपनाएँ जाए जिनकी सहायता से एक सीमा तक ही व्यक्ति पर दबाव पड़ सके । यह कोशिश की जाए कि कार्य का अत्यधिक दबाव व्यक्ति पर ना बने और यदि किसी व्यक्ति पर कार्य के दबाव का प्रभाव दिखाई दे तो तुरन्त ही उस पर दबाव हटाने के उपाय किये जायें । दबाव को नियंत्रित करने के तीन प्रमुख चरण इस प्रकार हैं -

1. प्राथमिक बचाव (Primary Prevention) - प्राथमिक बचाव का मुख्य लक्ष्य है कि जो कारक तनाव पैदा करते हैं, ऐसे कारकों को हटा देना या उनकी प्रगाढ़ता कम कर देना जिनके कारण दबाव बढ़ता है । उदाहरण के लिए विद्यालय के भौतिक वातावरण में सुधार करना जैसे कक्षा-कक्षों का उचित रख-रखाव, साफ सफाई व रंग-रोगन करवाना, हरियाली बढ़ाना, बैठने लिखने की उचित सुविधाएँ मुहैया कराना आदि, विद्यालय के प्रत्येक व्यक्ति के कार्य का बुद्धिमतापूर्ण विभाजन करना जिससे कि एक दूसरे पर डालने की प्रवृत्ति ना हो आदि उपाय शामिल किए जा सकते हैं ।

2. द्वितीय बचाव (Secondary Prevention) - इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि तनाव के शुरुआती लक्षणों को चिन्हित कर स्टाफ सदस्यों को उन तकनीकों से रूबरू कराया जाए जिससे कि वो तनाव के साथ समायोजन बिठा सके । ऐसी तकनीकों में ध्यान (Meditation), आराम (Relaxation) आदि शामिल हैं । इन तकनीकों की सहायता से दबाव ग्रस्त व्यक्ति अपने कार्य के साथ बेहतर सामंजस्य स्थापित कर सकता है ।

3. उच्च दबाव (Tertiory Prevention). - ये उपाय उन सदस्यों के लिए उपयोगी हैं जो कि दबाव के कारण ग्रस्त हैं । ऐसे व्यक्तियों के लिए कार्यस्थल काऊंसलिंग (Workplace Counselling) या एम्पलोई सहायता कार्यक्रम (Employee Assistance Programme) काफी सहायक सिद्ध हो सकते हैं । इन कार्यक्रमों के तहत विशेषज्ञ किसी भी सदस्य के दबावग्रस्त होने के कारणों का पता लगाकर उनकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं के अनुसार कार्य देने की कोशिश करते हैं जिसके सकारात्मक परिणाम देखे जा सकते हैं ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. 'नियंत्रण' शब्द से क्या अभिप्राय है?
2. दबाव के कारण किसी व्यक्ति को कौन-कौन सी परेशानियाँ हो सकती हैं? विस्तार से बताइये
3. दबाव को नियंत्रित करने वाले उपायों का विस्तार से वर्णन करिए ।

12.6 शैक्षिक दबाव कम करने के उपाय (Measures to Reduce Educational Pressure)

रोजमर्रा के जीवन में शिक्षा से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी प्रकार से दबाव महसूस करता है । दबाव मुक्त रहकर या दबाव से हताश न होकर अपना कार्य सुचारू रूप से कर सके, इसके लिए शैक्षिक जगत से जुड़े व्यक्तियों के लिए निम्नलिखित सुझाव मददगार हो सकते हैं -

12.6.1 शिक्षकों के लिए (For Teachers) -

शिक्षक दैनिक जीवन में कई प्रकार के दबावों का सामना करते हैं । कभी उन्हें प्रबन्धकों की तरफ से दबाव झेलना होता है तो कभी विद्यार्थियों की तरफ से तो कभी अभिभावकों की तरफ से । शिक्षकों को दबाव रहित रहकर अपना कार्य श्रेष्ठता से करने के लिए निम्न बातों / सुझावों को ध्यान में रखना चाहिए -

- शिक्षक अपनी विषयवस्तु पर अच्छी पकड़ बनाए रखे और सामान्य ज्ञान एवं रोचक जानकारी का सम्मिश्रण कर अपने अध्यापन को विद्यार्थियों के लिए रुचिपूर्ण बनाए ।
- कुछ समय योग और ध्यान के लिए निकालें जिससे कि वो शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रह सके ।
- यदि उसे विद्यार्थियों के लिए या अपने शिक्षण के लिए प्रबन्धन से वित्त की आवश्यकता है तो वह अपनी बात अच्छी तरह से प्रबन्धन के सामने रखे । साथ ही यह भी ध्यान रखें कि कम से कम खर्च में वह अपना काम कैसे चला सकता है ।
- शिक्षक को चाहिए कि वह बाल मनोविज्ञान को अच्छी तरह समझे और बालकों के साथ मित्रवत व्यवहार रखें जिससे कि उसे बालकों से सहयोग प्राप्त हो ।

- यदि कोई विद्यार्थी परेशानी का कारण बनता है तो उसे उस विद्यार्थी के बारे में प्रबन्धन को सूचित करना चाहिए । साथ ही साथी शिक्षकों से भी परामर्श कर उस विद्यार्थी के व्यवहार परिवर्तन की कोशिश करनी चाहिए ।
- शिक्षक को चाहिए कि वह प्रत्येक कार्य के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखें तभी वह तनाव मुक्त रह पाएगा

2.6.2 विद्यार्थियों के लिए (For Students) -

आधुनिक युग में विद्यार्थी भी कई प्रकार के दबावों का सामना करते हैं । विद्यार्थियों को दबाव मुक्त रहने के लिए निम्न सुझावों का पालन करना चाहिए -

- नियमित व्यायाम, योग और ध्यान करने से शारीरिक स्वास्थ्य उत्तम रहता है एवं मानसिक तनाव नहीं बढ़ता है ।
- विद्यार्थी को चाहिए कि वह अपने अन्दर अच्छे संस्कारों का विकास करें ।
- स्वयं का चिन्तन विकसित करे और अन्य छात्रों की बातों से दबाव में न आए ।
- धूम्रपान या अन्य तरह के व्यसनों से अपने आपको दूर रखें ।
- बडों का कहना, मानें और अपना काम नियमित रूप से करें ।
- अपनी क्षमताओं को पहचानें और उसका विकास करें ।

12.6.3 शैक्षिक प्रबन्धकों के लिए (For Education Managers)-

शैक्षिक प्रबन्धक विद्यालयों के समस्त कार्यों के लिए जिम्मेदार होता है । सभी पक्षों का ध्यान रखते हुए कार्य करना पड़ता है । प्रबन्धकों को दबाव मुक्त रहने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए -

- अपने उद्देश्य के अनुसार कार्यक्रम की रूपरेखा पहले से बना कर रखें और उसे पूर्णरूपेण कार्यान्वित करने का प्रयास करें ।
- समय की जरूरत के अनुसार शैक्षिक संरचना में परिवर्तन हेतु अपने को तैयार रखें । कुछ पैसा बचाने के लिए गुणवत्ता से समझौता ना करें ।
- यह ध्यान रखें कि किसी स्टाफ सदस्य पर अत्यधिक कार्य बोझ ना हो इतना कम कार्य भी न हो कि वह दूसरों के कार्यों में हस्तक्षेप करता फिरे ।
- हर स्टाफ सदस्य के कार्य का आवंटन ठीक प्रकार से करे । यह सुनिश्चित करें कि वह स्टाफ सदस्य अपना कार्य अच्छे ढंग से और समय पर पूर्ण करके दें ।
- प्रबन्धन को कान का कच्चा नहीं होना चाहिए । किसी एक सदस्य की बात सुनकर निर्णय करना और दूसरे की नहीं सुनना या पूर्वाग्रह पालना प्रबन्धन के लिए सिरदर्द साबित हो सकता है
- प्रबन्धन को चाहिए कि वे प्रत्येक शिकायत चाहे वो स्टाफ सदस्यों की हो या छात्रों की या अभिभावकों की, प्रत्येक शिकायत पर गहनता पूर्वक विचार करे, आवश्यक हो तो दोनों पक्षों से परामर्श करे और उचित निर्णय ले ।
- प्रबन्धन को चाहिए कि समय-समय पर विभिन्न विषयों के ऊपर कार्यशाला (Workshop) का आयोजन करे या अन्य स्थान पर हो रही कार्यशाला में अपने शिक्षकों

को भेजें । इससे उनके यहाँ कार्यरत शिक्षक अपने विषय में नई जानकारियाँ जुटाकर आयेंगे जो विद्यालय के लिए महत्त्वपूर्ण साबित हो सकती है ।

- प्रबन्धन को स्टाफ व विद्यार्थियों के मनोरंजनपूर्ण शिक्षण के लिए भी कुछ व्यवस्था करनी चाहिए जिसमें वार्षिक उत्सव, गोष्ठी, पिकनिक आदि शामिल हैं । वर्ष में एक-दो ऐसे कार्यक्रम करने से रोजमर्रा के कार्यों में कुछ बदलाव होता है और सभी लोग फिर जोश-खरोश के साथ अपने कार्यो में लग जाते हैं ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. शिक्षक अपने ऊपर से दबाव कम करने के लिए क्या उपाय कर सकते हैं?
2. विद्यार्थी किन सुझावों को ध्यान में रखकर अपने ऊपर दबाव कम कर सकते हैं ?
3. प्रबन्धन को दबाव कम करने के लिए आप क्या सुझाव देंगे ?

12.7 नियंत्रण का अर्थ (Meaning of Control)

विधिवत रूप से नियंत्रण प्रबन्धन का अंतिम कार्य है और नियंत्रण के साथ ही प्रबन्धन की क्रिया का चक्र पूर्ण हो जाता है । परन्तु प्रबन्धन अनवरत रूप से चलने वाली प्रक्रिया है अत: यह कहा जा सकता है कि नियंत्रण प्रबन्धन प्रक्रिया का मुख्य हिस्सा है । नियंत्रण द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि निर्धारित की गई गतिविधियों की सहायता से अपेक्षित लक्ष्य और परिणामों की प्राप्ति की जाए नियंत्रण का मतलब है अपना ध्यान आगे बढ़ने पर लगाना, कार्य को सुनिश्चित करना, परिणाम प्राप्त करना, व्यवधानों को हटाना और अप्रत्यक्ष बलों पर विजय प्राप्त करना । नियंत्रण का अर्थ जाँचना और व्यवस्थित करना - किसी घटनाक्रम अथवा व्यक्ति के व्यवहार को स्वरूप प्रदान करना, अवांछित इच्छाओं या गतिविधियों पर लगाम कसना, कुछ आदर्शों की अनुपालना करवाना, तंत्र की प्रगति का मापन करना और यह सुनिश्चित करना कि जो योजना बनाई थी, उसकी परिणति वांछित परिणामों में हो, यह ध्यान रखना कि संसाधनों का उपयोग उचित तरीके से हो, सम्पत्ति की सुरक्षा रखना आदि ।

12.8 नियंत्रण की आवश्यकता (Need for Control)

मनुष्य गलतियों का पुतला होता है । मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है राह से भटक जाना, गलतियाँ करना । यदि किसी सामूहिक कार्य को स्व-नियंत्रण पर छोड़ दिया जाए तो वह कार्य अपनी मूल राह से भटक जाएगा, कार्य पूरा नहीं होगा या अपेक्षा के अनुरूप नहीं होगा । किसी नियंत्रण के अभाव में समूह अपने उद्देश्यों से विचलित हो जाएगा और संसाधनों का दुरुपयोग करेगा । समूह सही रूप से कार्य कर सके इसके लिए एक ऐसे तंत्र की आवश्यकता रहती है जो कि घटनाक्रम का अवलोकन (Observation), मापन (Measures), मूल्यांकन (evaluation) और सुधार (correction) कर पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति करने की ओर अग्रसर कर सके ।

नियंत्रण अपनाने का मूल उद्देश्य है - अल्पगामी (short range) और दूरगामी (long range) लक्ष्यों की प्राप्ति के मध्य सामंजस्य स्थापित करना । नियंत्रण द्वारा अल्प एवं बहुमूल्य संसाधनों का समुचित (efficient) उपयोग संभव हे । संसाधनों का दुरुपयोग रोकने और कम से कम लागत में उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नियंत्रण आवश्यक है । किसी भी संस्था के लिए एक तरफ स्थायित्व प्राप्त करने और दूसरी तरफ हो रहे आर्थिक -सामाजिक बदलावों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में नियंत्रण एक महत्त्वपूर्ण कारक की भूमिका अदा करता है ।

12.9 नियंत्रण की प्रक्रिया : नियंत्रण चक्र (Process of Control : The Control System)

नियंत्रण की प्रक्रिया को जब तर्कसंगत रूप से व्यवस्थित किया जाता है तो नियंत्रण चक्र का निम्न रूप सामने आता है -

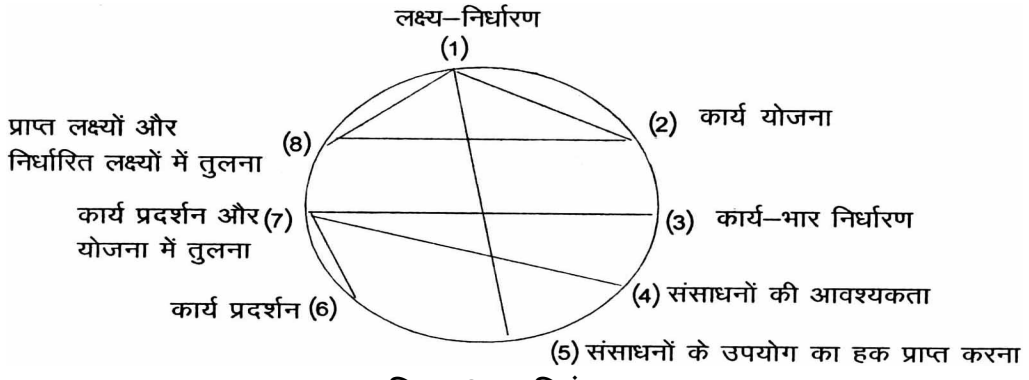

चित्र 12.! : नियंत्रण चक्र

नियंत्रण चक्र के मुख्य तत्त्वों को संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है -

1. लक्ष्य निर्धारित करना (Determination of Goals) - प्रबन्धकों जिनमें शैक्षिक प्रबन्धक भी शामिल है, के लिए आवश्यक है कि समयावधि के आधार पर मूल्य (Cost) और गुणवत्ता (Quality) का ध्यान रखते हुए उद्देश्यों का निर्धारण किया जाए ।

2. योजना बनाना (Formulation of Plan) - लक्ष्यों के आधार पर कार्य योजना बनाई जाती है जिस पर चलकर लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके । जैसे एक शैक्षिक सत्र में निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति कैसे की जा सकती है, उसे कार्य योजना का भाग बनाया जाता है ।

3. कार्य-भार निर्धारित करना (Determination of Workload) - कार्य योजना के सफल क्रियान्वयन के लिए यह आवश्यक है कि जो भी कार्य हैं उसे व्यक्ति की क्षमता एवं पद के अनुरूप निर्धारित किया जाए जिससे कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जिम्मेदारी एवं जवाबदेही का अहसास रहे और वो अपने कार्य को व्यवस्थित ढंग से पूर्ण कर सके । जैसे सभी शिक्षकों को कक्षाओं और कार्य का बँटवारा संतुलित रखने का प्रयास करना ।

4. आवश्यक संसाधनों का निर्धारण करना (Estimation of Required Resources) - किसी भी कार्य योजना के क्रियान्वयन में भौतिक (Physical), आर्थिक (Financial) और

मानव (Human) संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है । संसाधनों के निर्धारण में काफी समझदारी एवं दूरदर्शिता की आवश्यकता होती है ।

5. कार्य-प्रदर्शन (Work Performance) - नियंत्रण चक्र की अगली कड़ी है कार्य-प्रदर्शन । इस कड़ी द्वारा यह ध्यान रखा जाता है कि दी गई जिम्मेदारियों का एवं कार्य का संबंधित व्यक्ति किन संसाधनों, प्रक्रियाओं, तकनीकों और गतिविधियों के सहारे निर्वहन कर रहा है । शिक्षकों द्वारा कराए जा रहे कक्षा कक्ष कार्य का समय-समय पर अवलोकन करना शामिल है ।

6. मूल्यांकन (Evaluation) - नियंत्रण-चक्र में दिखाई गई संख्या 7व 8 कार्य के मूल्यांकन की ओर इंगित करती है । इसके तहत निर्धारित लक्ष्यों, कार्य योजना और कार्यक्रमों का प्राप्त लक्ष्यों और कार्यक्रमों से तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है । परिणामों के आधार पर विचलन (deviation) में सुधार किया जाता है, कार्ययोजना में फेरबदल किया जाता है, कार्य-भार में बदलाव किया जाता है और संसाधनों का पुन: निर्धारण किया जाता है जिससे कि निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके । जैसे यदि अवलोकन करने पर यह लगता है कि कोई शिक्षक अपना कार्य ठीक ढंग से नहीं कर पा रहा है तो उसे उचित मार्गदर्शन देना ।

12.10 नियंत्रण तंत्र के गुण (Requirements of an Effective Control System)

किसी भी नियंत्रण तंत्र को प्रभावकारी बनाने के लिए कुछ खास गुणों की आवश्यकता रहती है । प्रभावी नियंत्रण तंत्र के गुण निम्न प्रकार हैं -

(1) किसी भी संस्था में कार्य के प्रकार और नियंत्रण तंत्र में समरूपता आवश्यक है । नियंत्रण तंत्र उसी प्रकार का होना चाहिए जिस प्रकार के कार्य की प्रकृति है ।

(2) नियंत्रण तंत्र इतना संवेदनशील (sensitive) होना चाहिए कि निर्धारित लक्ष्यों से विचलन (deviation) होते ही वह यह संकेत दे सके जिससे कि तुरन्त सुधारात्मक कदम उठाए जा सकें और नुकसान से बचा जा सके ।

(3) नियंत्रण तंत्र को योजना तंत्र की तरह ही लचीला (flexible) और उन्नति की ओर अग्रसर होने वाला (forward looking) होना चाहिए ।

(4) नियंत्रण तंत्र का ध्यान (focus) मुख्य क्रियाओं पर केन्द्रित होना चाहिए ।

(5) नियंत्रण तंत्र ऐसा होना चाहिए कि प्रबन्धक अपने समय और कौशल का उपयोग योजना से मुख्य विचलनों पर केन्द्रित कर उन्हें नियंत्रित कर सके ।

(6) नियंत्रण तंत्र औपचारिक (formal) और उद्देश्यपरक (objective) होना चाहिए ।

(7) नियंत्रण तंत्र को आर्थिक रूप से व्यावहारिक होना चाहिए (economical & cost effective)

(8) नियंत्रण तंत्र ऐसा हो जो कार्य के सभी बिन्दुओं/आयामों का मापन (Measures) और मूल्यांकन (evaluate) कर सके ।

(9) नियंत्रण तंत्र ऐसा होना चाहिए जो उस व्यक्ति को भी समझ में आ सके जिसके कार्य प्रदर्शन की समीक्षा की जा रही है ।

12.11 नियंत्रण के सिद्धान्त (Principles of Control)

नियंत्रण के निम्नलिखित सिद्धान्त है -

(1) **उद्देश्य प्राप्ति के विश्वास का सिद्धान्त (Principle of assurance of objectives)** : नियंत्रण द्वारा यह देखा जाता है कि कार्य की प्रगति किस दिशा में हो रही है, किन उद्देश्यों की प्राप्ति हो रही है और जिन उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो रही है, उसमें आए व्यवधानों (obstacles) अथवा विचलनों (deviations) का अध्ययन कर सुधार कार्य (corrective measure) किया जाता है । इस प्रकार नियंत्रण तंत्र मूल उद्देश्यों की प्राप्ति के प्रति विश्वास जगाता है ।

(2) **भविष्य-निर्धारित नियंत्रण का सिद्धान्त (directed controls-Principles of future)** - नियंत्रण तंत्र भविष्य को निर्धारित करने वाला, उन्नति की ओर अग्रसर करने वाला है । वह गलतियों को इंगित कर व्यवस्थाओं को सही दिशा में अग्रसर करने वाला होता है ।

(3) जिम्मेदारी का सिद्धान्त (Principles of responsibility)- किसी भी कार्य की जिम्मेदारी जिन व्यक्तियों पर होती है, वे उस कार्य को सुचारू रूप से कर रहे हैं या नहीं, इसका पता नियंत्रण द्वारा लगाया जा सकता है ।

(4) **नियंत्रण की दक्षता का सिद्धान्त (Principle ofeffcientlyof control**) - नियंत्रण तंत्र कम से कम लागत में योजना में आए भटकाव का निर्धारण कर उसे वापस पटरी पर लाने वाला होना चाहिए । नियंत्रण के परिणाम आर्थिक एवं मानवीय रूप दोनों से मूल्यपरक होने चाहिए ।

(5) **मापदण्डों का सिद्धान्त(Principle of standards)** - प्रभावी नियंत्रण के लिए उद्देश्यपरक. अर्थपूर्ण एवं अचूक मापदण्डों की आवश्यकता होती है ।

(6) **लचीलेपन का सिद्धान्त (Principle of flexibility)** - असफलता या परिस्थितिजन्य कार्य योजना में बदलाव के बावजूद भी यदि नियंत्रण को प्रभावी बनाए रखना है तो उसे लचीला बनाना होगा । जिस प्रकार कार्य योजना का लचीला होना आवश्यक है उसी प्रकार नियंत्रण का लचीला होना भी आवश्यक है ।

12.12 नियंत्रण के प्रकार (Types of Control)

समय के आधार पर नियंत्रण को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) पश्च नियंत्रण (Post-control).

(2) सामयिक-नियंत्रण (Current-control)

(3) पूर्व-नियंत्रण (Pre-control)

तीनों प्रकार के नियंत्रण की संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है -

1. पश्च नियंत्रण (Post-control) -

इसे पुनर्चलन नियंत्रण (feedback control) के नाम से भी जाना जाता है । इसमें प्राप्त परिणामों का विश्लेषण कर यह पता लगाया जाता है कि किन कारणों से अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हुए । इसी के आधार पर सुधारात्मक कार्य किया जाता है और भविष्य में

विचलन पैदा करने वाले कारकों की पुनरावृत्ति न हो इसका ध्यान रखा जाता है । पश्च नियंत्रण इस सिद्धान्त पर आधारित होता है कि जो हो चुका है वह अब नहीं बदला जा सकता परन्तु जो कार्यक्रम अब होते हैं, उन्हें स्थिति को ध्यान में रखते हुए बदला जा सकता है ।

पश्च नियंत्रण तभी लाभदायक होता है जब मूल्यांकन और विश्लेषण त्वरित रूप से पूर्णरूपेण सम्पन्न कर उससे उचित निष्कर्ष निकाले जाए और उन निष्कर्षों के आधार पर भविष्य के कार्यों की रूपरेखा निश्चित की जाए । देरी से विश्लेषण करने पर नियंत्रण प्रभावी नहीं रहता है । शैक्षिक प्रबन्धन में पश्च-नियंत्रण के दौरान यह अध्ययन किया जाता है कि किसी सत्र के दौरान निर्धारित कितने लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकी है, कौनसा लक्ष्य पूर्णरूपेण प्राप्त नहीं हो पाए और ऐसे कौनसे कारण और व्यवधान रहे जिससे अपेक्षित लक्ष्य की प्राप्ति न हो सकी । जैसे किसी कक्षा के अकादमिक स्तर में वृद्धि लक्ष्यों के अनुरूप हुई या नहीं, किस विषय में सर्वाधिक वृद्धि दर्ज की गई, किस विषय में न्यूनतम परिणाम रहा और उसके क्या कारण रहे, कौनसे शिक्षक का कार्य प्रशंसनीय रहा और कौन अपनी जिम्मेदारी का निर्वाहन ठीक ढंग से नहीं कर सका आदि बिन्दुओं का अध्ययन एवं विश्लेषण किया जा सकता है । पश्च-नियंत्रण द्वारा इस बात पर मंथन किया जा सकता है कि शाला में नए प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या अपेक्षानुरूप रही या नहीं, विद्यालय छोड़कर जाने वाले छात्र कितने हैं और उनका विद्यालय छोड़ने का क्या कारण है, खेलकूद व पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं में छात्रों का प्रदर्शन कैसा रहा, दैनिक कार्यों में कोई परेशानी तो नहीं आ रही आदि । इस अध्ययन और विश्लेषण के आधार पर भविष्य की योजना बनाई जा सकती है ।

2. सामयिक-नियंत्रण (Current-control) -

इसे उपयुक्त या सही नियंत्रण (real time control) भी कहा जाता है । इसके द्वारा किए जा रहे कार्यों का तत्काल विश्लेषण एवं मूल्यांकन कर तुरन्त सुधारात्मक कार्य किया जाता है जिससे की पूरी व्यवस्था का संतुलन (balance or equilibrium) कायम रखा जा सके । इसमें विचलन (deviation) और सुधार (correction) में समय सीमा बहुत कम होती है जिससे कि भटकाव की स्थिति नहीं बनती और अपेक्षित लक्ष्यों की प्राप्ति आसान हो जाती है ।

छात्रों के व्यवहार के अनुरूप शिक्षक छात्रों को पुरस्कार या दण्ड देकर प्रभावी ढंग से छात्रों से अपेक्षित व्यवहार करवा सकता है । समय-समय पर ली जाने वाली परीक्षाओं और उनका उचित मूल्यांकन कर भी छात्रों को अकादमिक वृद्धि को नियंत्रित किया जा सकता है । प्राचार्य या प्रबन्धक समय-समय पर बालकों की कॉपियाँ जाँचकर और उनके परीक्षा परिणामों पर नजर रखकर छात्रों की अकादमिक वृद्धि पर नियंत्रण रख सकते हैं । साथ ही वह अध्यापकों के कार्य का विश्लेषण कर उसे भी उचित मार्गदर्शन देकर नियंत्रित कर सकते हैं । कार्यों के संपादन में आ रही बाधाओं के बारे में छात्रों एवं अध्यापकों से जानकारी प्राप्त कर वह उन बाधाओं को पार करने के लिए उचित समाधान ढूँढ सकते हैं और लक्ष्यों की प्राप्ति पर अपना ध्यान लगा सकते हैं । शैक्षिक प्रबन्धकों के लिए सामयिक नियंत्रण सर्वोत्तम नियंत्रण है क्योंकि शिक्षा के क्षेत्र में अधिकाधिक कार्य सामयिक नियंत्रण माँगते हैं जिनके अभाव में स्थिति अनियंत्रित हो जाती है जिसका खामियाजा विद्यार्थी या शिक्षक या पूरे शिक्षा तंत्र को भुगतना पड़ता है ।

3. पूर्व नियंत्रण (Pre Control) -

इसे बचाव नियंत्रण (Preventive control) भी कहा जाता है । इस तरह के नियंत्रण में इस बात पर बल दिया जाता है कि व्यवस्था को एक सीमा से अधिक अनियंत्रित होने से पहले ही उसका बचाव कर लिया जाए । पूर्व नियंत्रण के लिए कार्य के व्यवहार और उसके वातावरण की भविष्यवाणी की दक्षता की जरूरत पड़ती है । पूर्व नियंत्रण इस मायने में सर्वश्रेष्ठ है कि इसमें विचलन पैदा करने वाले कारकों की पहले से पहचान कर इन्हें शुरू में ही नियंत्रित कर लिया जाता है ।

शैक्षिक परिदृश्य में भी पूर्व नियंत्रण महत्त्वपूर्ण है । दैनिक जीवन में आने वाली समस्याओं या बाधाओं की पहले से पहचान कर ऐसे प्रयास किए जाएं कि वे समस्याएँ या तो आए ही नहीं या फिर हम शारीरिक एवं मानसिक रूप से उन समस्याओं का सामना करने को तैयार रहें जिससे कि हम पर अतिरिक्त दबाव ना बने ।

अध्यापक अध्यापन कार्य में आ रही कई सारी समस्याओं का पूर्वानुमान लगा सकता है और उनका उचित समाधान भी ढूँढ सकता है । किसी भी गतिविधि या प्रतियोगिता को सम्पन्न कराने के लिए आवश्यक साजो-सामान को पहले से मँगवाकर रखने से वह उस प्रतियोगिता / कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकेगा । इसी तरह प्रबन्धक भी आवश्यक सामग्री समय पर उपलब्ध करवाकर समस्या से बच सकते हैं । अपवादी बालकों (Exceptional Children) के लिए विशेष कार्ययोजना बनाकर उन्हें भी नियंत्रित किया जा सकता है ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. 'नियंत्रण' शब्द से क्या तात्पर्य है ? हमें नियंत्रण की आवश्यकता क्यों है ?
2. नियंत्रण चक्र कैसे कार्य करता है ? समझाइए ।
3. एक प्रभावी नियंत्रण तंत्र में कौन-कौन से गुण होने चाहिए ?
4. नियंत्रण के सिद्धान्त कौन-कौन से हैं ?
5. नियंत्रण के प्रकारों का शिक्षा प्रबन्धन में क्या उपयोग है ? विस्तार से बताइए ।

12.13 सारांश (Summary)

वर्तमान युग प्रतिस्पर्धा का युग है । वैश्वीकरण **(Globalization)** की आँधी ने समस्त विश्व को एक वैश्विक गाँव (Global Village) में तब्दील कर दिया है । इसके कारण हमारे शैक्षिक परिदृश्य में भी कई बदलाव आए हैं और आने वाले समय में कई और बदलाव देखने को मिलेंगे । तेजी से बदलती व्यवस्थाओं के साथ सामंजस्य स्थापित कर शिक्षा के स्तर को बरकरार रखना या प्रगति की ओर अग्रसर करना आज शैक्षिक प्रबन्धन के समक्ष बहुत बड़ी चुनौती है । शैक्षिक जगत से जुड़े समस्त व्यक्तियों चाहें वो शिक्षक हों या विद्यार्थी, प्रबन्धक हो या ऑफिस कर्मचारी, सभी को कार्य का दबाव झेलना पड़ता है परन्तु उचित प्रबन्धन से दबाव को एक चुनौती के रूप में स्वीकार कर उत्कृष्ट परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं ।

अभ्यास प्रश्न (Exercises)

1. दबाव के अर्थ, दुष्प्रभाव एवं इस पर आने वाले नियंत्रण को स्पष्ट करते हुए शैक्षिक दबाव कम करने के उपाय स्पष्ट करिए ।
2. नियंत्रण के अर्थ, आवश्यकता, प्रक्रिया, गुण, सिद्धान्तों को स्पष्ट करते हुए इसके प्रकारों का विस्तृत वर्णन करिए ।

12.14 संदर्भ (References)

1. Ahluwalia, Lt Gen. J.S (2001).Total Quality Management: Creating a Quality Environment of the Next Millennium. New Delhi : Vanity Books International.
2. Balsara,Maitrya (2002).Administration and Reorganization of Teacher Education. New Delhi : Kanishka Publishers.
3. Chandras Karan,P.(1994) Educational Planning and Management. New Delhi : Sterling Publishers Private Limited.
4. Chester,Barnard (1954).The Functions of Executive. Cambridge : Harvard University Press.
5. Choudhary,Namita Roy (2001). Management in Education.New Delhi :S.B.Nangia, A.P.H. Publishing Corporation.
6. जी.एस. सुधा (2003). प्रबन्ध अवधारणा, चिन्तन एवं व्यवहार जयपुर: रमेश बुक डिपो.
7. Goens, George A. and Clover, Sharon I.R. (1984) Mastering School Reform.Singapore :Allyn and Bacon.
8. Kumar,K.L.(2001)Educational Technology.New Delhi: New AGE International (p) Limited, Publishers.
9. Mukhopadhyay,M.(2001).Total Quality Management in Education.New Delhi :National Institute of Education Planning and Administration.
10. Organization and Management Intermediate Course Study Material. Paper-6A, Board of Studies, The Institute of Chartered Accountants of India.
11. Pandya,S.R.(2001).Administration and Management of Education. Mumbai: Himalaya Publicating House.
12. शर्मा, आर.एस. (1995) विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन । मेरठ : सूर्या पब्लिकेशन.
13. शर्मा, डॉ. आर.ए.(2004), शिक्षा तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन । मेरठ : सूर्या पब्लिकेशन इन्टर कॉलेज के समीप ।

14. Tripathi, P.C. and Reddy,P.N.(1997). Principles of Management. Second Edition. New Delhi : Tata Mc Graw - Hill Publishing Company Limited.
15. वर्मा, जे.पी. (2002) शैक्षिक प्रबन्धन (Educational Management) जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी.

Websites-

1. Buzzle.com intelligent life of the web. Why Today's Education System Needs Time Management Tips for Classroom.htm.
2. www._wikipedia.org/wiki/change_mangement.
3. http://bctf.ca/social/globalization.
4. http://enwikipedia.org/wiki/SWOT_analysis.
5. Globalization and Education.ed.uiue.edu
6. www.smart teaching.org.
7. Wikipedia.the Free Encyclopedia
8. 8.www.globalization.wikipedia.
9. www.wharton.upenn.edu/faclty/innovation/-21k
10. www.businessballs.com/swotanalysisfreetemplete.
11. www.boloji.com/analysis/068.htm.
12. Wikipedia:To-dolist

इकाई 13

स्वोट (SWOT)

इकाई की संरचना

13.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

13.2 SWOT का अर्थ एवं अवधारणा (Meaning and Concept of SWOT)

13.3 शिक्षा संस्थानों में SWOT विश्लेषण (SWOT Analysis in Educational Institutions)

13.4 SWOT विश्लेषण के आधारभूत तत्त्व (Basic Principles of SWOT Analysis)

13.5 SWOT विश्लेषण विधि (The Method of SWOT Analysis)

13.6 SWOT मूल्यांकन के रूप (Forms of SWOT Evaluation)

13.7 उत्तरदाता के प्रकार (The Types of Respondents)

13.8 उत्तरदाता चयन की प्रक्रिया (The Process of Respondent's Selection)

13.9 उपकरण प्रशासन विधि (The Method of Tool Administration)

13.10 संख्यात्मक व गुणात्मक विश्लेषण (Quantitative and Qualitative Analysis)

13.11 SWOT विश्लेषण प्रक्रिया सोपान (Steps of SWOT Analysis Process)

13.12 विश्लेषण से प्राप्त तथ्यों की उपयोगिता (The Use of Assessment Data)

13.13 स्वोट विश्लेषण में ध्यान देने योग्य बिन्दु (Important Points for SWOT Analysis)

13.14 सारांश (Summary)

13.15 संदर्भ (References)

3.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई को पढ़कर आप निम्नांकित समझ सकेंगे -

1. स्वोट का अर्थ एवं अवधारणा
2. शिक्षा संस्थानों में SWOT विश्लेषण
3. SWOT विश्लेषण के आधारभूत तत्त्व
4. SWOT विश्लेषण विधि
5. SWOT मूल्यांकन के प्रकार
6. उत्तरदाता के प्रकार
7. उत्तरदाता चयन की प्रक्रिया
8. उपकरण प्रशासन विधि
9. संख्यात्मक एवं गुणात्मक विश्लेषण

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

हम जब भी कोई कार्य करते हैं तो उस कार्य की समाप्ति पर उसकी उपलब्धि के सन्दर्भ में सम्पूर्ण कार्य का औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से सिंहावलोकन व मूल्यांकन करते हैं । यह मूल्यांकन कभी अनौपचारिक रूप से किया जाता है तो कभी औपचारिक रूप से विधिवत् इसकी रूपरेखा तैयार की जाती है । इसी प्रकार किसी भी संगठन द्वारा अपने लक्ष्य प्राप्ति हेतु किए गए कार्यो, उनकी प्रक्रियाओं, और उनकी सफलता और असफलता में प्रयुक्त किए गए भौतिक एवं मानवीय संसाधनों के गुणात्मक प्रयोग के सन्दर्भ में मूल्यांकन किया जाना चाहिए । विभिन्न संस्थाओं में मूल्यांकन के प्रकार भिन्न हो सकते हैं किन्तु यह मूल्यांकन उस संस्था के कार्यो की गुणात्मकता एवं उन्नयन के सन्दर्भ में ही किया जाता है ताकि वह संस्था, संशोधन, परिवर्तन एवं प्रगति करते हुए अपनी पहचान बनाए रख सके । शिक्षण संस्थानों में भी गुणात्मकता वृद्धि हेतु संस्थागत तथा शासकीय दोनों स्तर पर पर्यवेक्षण, निरीक्षण एवं मूल्यांकन सम्बन्धी कार्य सम्पन्न किए जाते हैं, जिससे उस संस्था को अपनी स्थिति ज्ञात होती है तथा लक्ष्य प्राप्ति हेतु मार्गदर्शन भी प्राप्त होता है ।

औद्योगिक एवं व्यावसायिक संगठनों की गुणात्मकता का मापन और मूल्यांकन शत-प्रतिशत किया जा सकता है, क्योंकि उनके उत्पाद, वस्तुएं होती हैं किन्तु शैक्षिक निकायों की गुणवत्ता, सजीव-निर्जीव, भूत-भविष्य, जीवन के विभिन्न क्षेत्र आदि ऐसे कई दृश्य-अदृश्य तत्वों से जुड़ी होती है, जिसका शत-प्रतिशत मापन नहीं किया जा सकता । तथापि SWOT विश्लेषण जो वर्षो से औद्योगिक संस्थानों की गुणवत्ता के मूल्यांकन में प्रयुक्त किया जाता रहा है, वह अब शैक्षिक संस्थानों में भी प्रयुक्त किया जाने लगा है । शैक्षिक प्रबन्धन के अन्तर्गत संस्थागत मूल्यांकन में वर्तमान समय में SWOT विश्लेषण को अत्यधिक महत्व दिया जाने लगा है । विशेषकर वैश्विक परिदृश्य में बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा, नए प्रतिभागियों, नई तकनीक तथा लोगों की अपेक्षाओं आदि के बीच किसी संस्थान को अपनी उत्कृष्टता स्थापित करने के लिए स्वयं का सतत मूल्यांकन व निर्धारण करना अनिवार्य हो गया है । इसे समझने के लिए सर्वप्रथम हम SWOT के अर्थ एवं अवधारणा को जानेंगे ।

13.2 SWOT का अर्थ एवं अवधारणा (Meaning and Concept of SWOT)

'SWOT' यह शब्द निम्नांकित चार शब्दों द्वारा निर्मित किया गया एक लघु नाम (Short term) है जो एक साथ चार अर्थो के लिए प्रयुक्त किया जाता है ।

S- Strengths (विशेषताएँ, शक्तियाँ, ताकत, सकारात्मक पक्ष)

W- Weaknesses (कमजोरियाँ, कमियाँ)

O- Opportunities (अवसर / संभावनाएँ)

T- Threats (खतरे / चुनौतियाँ)

SWOT किसी संस्थान के गुणात्मक विश्लेषण का एक महत्त्वपूर्ण तरीका है । वस्तुत: यह गुणात्मक विश्लेषण की एक सहभागितापूर्ण तकनीक है, जिसमें किसी संस्थान के सभी सदस्य मिलकर सामूहिक निर्णय से संस्थान के SWOT की पहचान करते हैं । SWOT विश्लेषण द्वारा संस्थान के परिप्रेक्ष्य में निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर खोजने के प्रयास किए जाते हैं ।

SWOT सम्बंधी प्रश्न-

1. संस्थान की शक्तियाँ क्या हैं, जिन पर विश्वास किया जा सके तथा उन्हें आगे बढ़ाते हुए सुदृढ़ किया जा सके ।
2. संस्थान की कमियाँ क्या हैं, जिन पर ध्यान दिया जा सके तथा उनमें सुधार किया जा सके।
3. संस्थान के पास अपनी शक्तियों का उपयोग करने तथा कमियों को दूर करने में क्या-क्या सम्भावनाएँ व अवसर हैं जिनका उपयोग किया जा सके तथा उन्हें संस्थान की शक्तियों में बदला जा सके ।
4. संस्थान के समक्ष मुख्यत: चुनौतियाँ व खतरे हैं जिन पर तुरन्त ध्यान देकर उन चुनौतियों का सामना किया जा सके तथा उनसे संस्थान को होने वाले नुकसान से बचाया जा सके ।

किसी संस्था के SWOT मूल्यांकन हेतु अनेक तरीके हैं किन्तु सबमें सरल व सीधा तरीका है कि SWOT सम्बन्धी एक प्रपत्र (sheet) तैयार किया जाए तथा प्रत्येक सदस्य को उसमें संक्षेप में एक-एक वाक्य में क्रमानुसार संख्या में सूचना देने हेतु कहा जाय । इस प्रकार की SWOT विश्लेषण प्रक्रिया में संस्थान अपने सामर्थ्य के प्रति एकाग्र होता है, अपनी कमियों को स्वीकार करता है, उन्हें दूर करके गुणात्मकता बढ़ाने के अवसरों पर दृष्टिपात करता है तथा मार्ग में आने वाली चुनौतियों व बाधाओं की खोज करके उन्हें दूर करने का प्रयास करता है । इस समस्त कार्य को ही SWOT विश्लेषण कहा जाता है । उपर्युक्त विधि हेतु SWOT सम्बन्धी निम्नांकित शीट तैयार करके कर्मचारियों को दी जा सकती है ।

SWOT Sheet

S _____	W _____
O _____	T _____

Wikipidia website के अनुसार SWOT विश्लेषण को निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया गया है-

H – Strengths, attributes of the organization that are helpful in achieving the objectives.

W – Weaknesses : attributes of the organization that are harmful in achieving the objectives.

O – Opportunities : external conditions that are helpful in achieving the objectives.

T – Threats : external conditions that are obstacles in achieving the objectives.

SWOT विश्लेषण व्यूह बद्ध व योजनापूर्ण एक उपकरण है, जो किसी व्यावसायिक संगठन के सामर्थ्य, कमियों, उन कमियों को दूर करने के अवसरों तथा चुनौतियों के मूल्यांकन एवं विश्लेषण हेतु एक साहसिक कार्य के लिए प्रयुक्त किया जाता है । यह उपकरण (SWOT)उस व्यवसाय या संस्था के उद्देश्यों के सन्दर्भ में विभिन्न कार्यो का विशेष रूप से एक-एक करके विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत करता है तथा उद्देश्य प्राप्ति में आन्तरिक एवं बाह्य रूप से प्रभावी रहते हुए सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के कारकों की पहचान करता है ।

SWOT तकनीक को आरम्भ करने का श्रेय अलबर्ट हम्फ्रे (Albert Humphrey) को दिया जाना चाहिए जिन्होंने 1960-1970 में स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी में एक रिसर्च प्रोजेक्ट में 500 व्यक्तियों पर इस उपकरण को सर्वप्रथम प्रशासित किया तथा SWOT सम्बन्धी तथ्य प्राप्त किए और इसकी प्रभाविता से विश्व को अवगत कराया ।

इस प्रकार (SWOT) व्यापक एवं वृहद् अर्थ में प्रयुक्त होने वाला एक विश्लेषणपरक अर्थ है किन्तु इस अध्याय में हम इसके चारों शब्दों के स्थान पर SWOT इस संक्षिप्त पद का ही बार-बार प्रयोग करेंगे । आगे हम शिक्षण में स्वोट हेतु प्रशासनिक परिषद तथा स्वोट के आधारभूत तत्वों को जानेंगे ।

13.3 शिक्षा संस्थान में SWOT विश्लेषण (SWOT Analysis in Educational Institutions)

भारत देश में उच्च शिक्षा के प्रशासनिक संगठन 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' (UGC) द्वारा पूरे देश में उच्च शिक्षा में गुणात्मकता की निरन्तर वृद्धि हेतु राष्ट्रीय स्तर की एक समिति बनाई गई है जिसका नाम 'राष्ट्रीय प्रत्यायन एवं मूल्यांकन परिषद' National Assessment And Accreditation Council (NAAC) है । यह कमिटी देश के समस्त विश्वविद्यालय एवं उनसे सम्बन्धित महाविद्यालयों में पाँच वर्ष के अन्तराल में विजिट करती है तथा उनकी गुणात्मकता एवं प्रगति का प्रत्यायन व मूल्यांकन करके ग्रेड प्रदान करती है । साथ ही भविष्य में उस संस्था के उन्नयन हेतु सुझाव भी प्रदान करती है । उपर्युक्त कमिटी द्वार प्रत्यायन व मूल्यांकन की समस्त प्रक्रिया (SWOT) आधारित होती है ।

13.4 (SWOT) विश्लेषण के आधारभूत तत्व (Basic Elements of SWOT Analysis)

स्वोट विश्लेषण (SWOT Analysis) प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व उसके आधारभूत तत्त्वों की जाँच की जानी चाहिए । आधारभूत तत्वों से तात्पर्य विश्लेषण से पूर्व की तैयारी की

आवश्यक बातों या शर्तों से है, जिनके पूर्ण होने पर ही SWOT विश्लेषण आरम्भ किया जाना चाहिए । इस सन्दर्भ में कुछ आधारभूत शर्तों का निम्नानुसार उल्लेख किया जा रहा है । विश्लेषणकर्ता विश्लेषण से पूर्व यह जाँच कर ले कि इन शर्तों को पूर्ण कर लिया गया है । जैसे-

1. उद्देश्य निर्धारण कर लिया गया है ।
2. उपर्युक्त सहभागियों का चयन कर लिया गया है ।
3. सूचनात्मक एवं शोधात्मक कार्यो का निश्चयन कर लिया गया है ।
4. तथ्य प्राप्ति एवं प्रक्रिया हेतु कार्यशाला के समान ही वातावरण तैयार कर लिया गया है ।
5. संस्था की शक्तियों व सामर्थ्य की सूची के स्वरूप का निर्माण कर लिया गया है ।
6. संस्था की कमियों की सूची के स्वरूप का निर्माण कर लिया गया है ।
7. शक्तियों के सदुपयोग एवं कमियों के निवारण हेतु अवसरों एवं संभावनाओं की सूची का निर्माण कर लिया गया है ।
8. कार्य में आने वाली बाधाओं एवं चुनौतियों की सूची का निर्माण कर लिया गया है।
9. लक्ष्यों के विरोधी विचारों का मूल्यांकन कर लिया गया है ।
10. प्राप्त परिणामों को आगे तक ले जाया गया है ।

उपर्युक्त समस्त कार्य हो जाने पर SWOT विश्लेषण आरम्भ किया जाता है । स्वोट विश्लेषण की जो विधियाँ प्रचलित हैं उनकी जानकारी आगे दी जा रही है-

13.5 SWOT विश्लेषण विधि (The Methods of SWOT Analysis)

SWOT विश्लेषण कई प्रकार से किया जा सकता है किन्तु अधिक प्रचलित विधियाँ निम्नानुसार है:-

13.5.1. प्रपत्र पूर्ति विधि-

इस विधि में निम्नस्थ कार्य किये जाते हैं-

1. SWOT से सम्बन्धित एक प्रपत्र या प्रश्नावली तैयार की जाती है तथा सम्बन्धित संस्थान के प्रत्येक सदस्य के विचार लिखित रूप से प्राप्त किए जाते हैं ।
2. इस प्रकार से प्राप्त सूचना या जानकारी का संकलन कर सभी सदस्यों के किसी बिन्दु पर समान विचार एवं असमान विचारों को अलग-अलग वर्गीकृत किया जाता है ।
3. प्राप्त जानकारी या विचारों से पुन: सभी सदस्यों को अवगत कराया जाता है तथा यह बताया जाता है कि किन मुद्दों (issues) पर विभिन्न लोगों के विचार समान रूप से केन्द्रित हैं तथा किन मुद्दों पर विरोध है, अथवा असमानता है ।
4. इस स्तर पर आकर संगठन के सभी सदस्यों को एक साथ मिलकर SWOT सम्बन्धी एक सर्वमान्य विचारधारा तैयार की जाती है, जो सर्वसम्मति से पूर्ण होती है ।

5. SWOT सम्बन्धी विचारधारा वस्तुत: गहन व गम्भीर चिन्तन तथा विचार-विमर्श के पश्चात् तैयार की जाती है तथा इसमें संगठन के सभी सदस्यों की सहभागिता रहती है।

उपर्युक्त विधि के कई लाभ हैं, किन्तु इसमें कुछ सक्रिय वाचाल तथा वाक्पटु सदस्यों के प्रभावी रहने की सम्भावना भी बनी रहती है तथा कम बोलने वाले या संकोची सदस्यों के विचारों का समावेश कई बार नहीं हो पाता है । जबकि वास्तविकता में उनकी विश्लेषण क्षमता अन्य सदस्यों की तुलना में अच्छी भी हो सकती है । इस बात को ध्यान में रखते हुए SWOT विश्लेषण हेतु वर्तमान समय में गुणात्मक तकनीकों के साथ-साथ संख्यात्मक विश्लेषण पर भी जोर दिया जा रहा है जिससे प्राप्त परिणाम को आकड़ों के माध्यम से ज्यादा अच्छी तरह से दर्शाया जा सके ।

13.5.2. संस्थागत मूल्यांकन में साझेदारी (Participation Assessment)

संस्थान या संगठन के मूल्यांकन में सहभागी कारक (Participants) की भूमिका एक बहुत ही नाजुक स्थिति वाली होती है तथा विशेषकर भारत जैसे बहु-आयामी, बहु-भाषी व बहु-संस्कृति वाले देश में स्थिति संवेदनशील होती है शिक्षण संस्थानों में विशेष रूप से इसका ध्यान रखना होता है । संस्थान के मूल्यांकन में संस्था की पदानुक्रम संस्कृति (Hierarchic Culture) भी कभी बाधक बन जाती है एवं कई बार इसके आधार पर किया गया SWOT विश्लेषण संस्थान के पदानुक्रम संस्कृति (hierarchic culture) के लिए एक खतरा बन जाता है । अत: संस्थागत SWOT के मूल्यांकन व विश्लेषण में सबकी सहभागिता प्रत्येक स्तर पर आवश्यक मानी जाती है । इसलिए संस्थान की पहचान, विकास, वृद्धि तथा गुणात्मकता के मूल्यांकन में उस संस्थान के सभी सदस्यों की सहभागिता SWOT विश्लेषण के आवश्यक कारक माने जाते हैं ।

जिस संस्थान में प्राचार्य का प्रत्यक्षण (Perception) मुख्य रूप से प्रभावी होता है, उस संस्था का मूल्यांकन प्राय: नहीं के बराबर ही होता है, किन्तु यदि संस्थान का वैज्ञानिक मूल्यांकन करना है तो अन्य कर्मचारियों का प्रत्यक्षण (perception) भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है । इस विधि से तथ्यात्मक जानकारी विस्तृत एवं बहुआयामी होती है ।

13.5.3 जौहरी विण्डो द्वारा

संस्था का सही मूल्यांकन, प्राचार्य एवं स्टाफ के सामान्यत: ज्ञात मुद्दों पर तो निर्भर करता है तथापि संस्था के मूल्यांकन व विश्लेषण की विधि को समझने के लिए प्रो. मुखोपाध्याय ने 'जौहरी विण्डो के प्रयोग का उल्लेख किया है । 'जौहरी विण्डो के अनुसार शिक्षण संस्थाओं में प्राचार्य एवं स्टाफ सदस्यों को जो ज्ञात व अज्ञात तत्व हैं उनका विश्लेषण करके निदान या निर्णय निकाला जाता है जो निम्नानुसार है:-

JOHARI WINDOW ON A SCHOOL

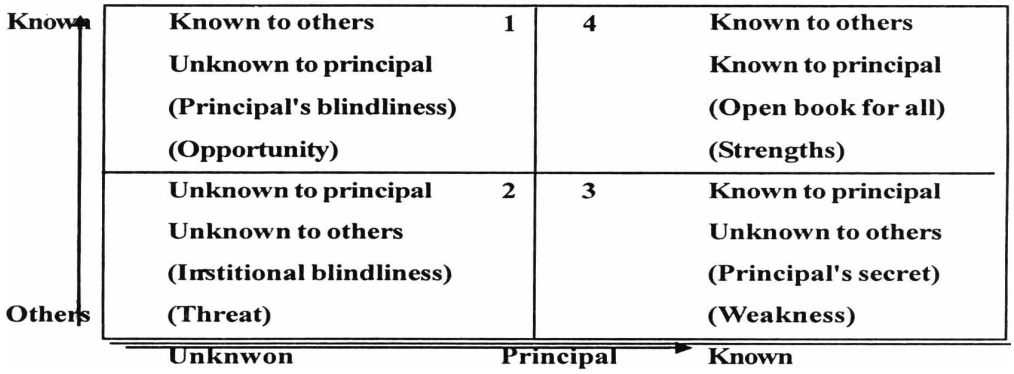

उपर्युक्त जौहरी विण्डो में SWOT के चारों तत्वों के परस्पर सम्बन्ध को जिन चार झरोखों में विशेष सन्दर्भों में दर्शाया गया है, उसे हम निम्नानुसार स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं-

1. प्रथम झरोखा - संस्था के अन्य सदस्य जिन बातों को जानते हैं और यदि संस्था प्रधान नहीं जानता है, तो यह संस्था प्रधान की अन्धकारिता है, किन्तु संस्था प्रधान. की अज्ञानता को संभावना में बदल। जा सकता है क्योंकि सामूहिक निर्णय, विचार-विमर्श द्वारा उन्हें उन बातों से अवगत कराकर उनका निदान किया जा सकता है । इससे गुणात्मकता वृद्धि के अवसरों की सम्भावना बन जाती है और वे उस संस्था की शक्ति में परिवर्तित हो सकती हैं।

2. द्वितीय झरोखा - दूसरी स्थिति में यदि संस्था प्रधान की भी जिन बातों के प्रति अज्ञानता होती है तथा अन्य कर्मचारी भी जिनको नहीं जानते ऐसी स्थिति को संस्था की अन्धता कहते हैं, जो उस संस्था के लिए हानिकारक होती है । ऐसी स्थिति संस्था को उन्नयन की ओर अग्रसर करने में कोई मदद नहीं कर सकती ।

3. तृतीय झरोखा - में यदि संस्था प्रधान को जो बातें मालूम रहती हैं, किन्तु अन्य कर्मचारी उन्हें नहीं जानते तथा संस्था प्रधान जिसे गुप्त रखता है, इसे संस्था की भेदता कहा जाता है, जो उस संस्था की कमजोरी कही जाती है । ऐसे में यदि संस्था प्रधान रहस्य से सबको अवगत करा देता है तो संस्थागत कमजोरी को दूर करके उसे शक्ति में परिवर्तित किया जा सकता है ।

4. चतुर्थ झरोखा -में जहाँ सभी बातें संस्था प्रधान तथा अन्य सभी लोगों को मालूम होती है ऐसी स्थिति एक खुली किताब के समान कहीं जाती है और यह स्थिति संस्था शक्ति होती है । जो संस्था के गुणात्मक उन्नयन में सदैव सहायक होती है ।

जौहरी विण्डों की उपर्युक्त चारों खिड़कियों (विण्डो) को खोलकर परस्पर विचार-विमर्श एवं विचारों के आदान-प्रदान से ज्ञात और अज्ञात का अन्तर कम किया जा सकता है तथा ज्ञात-ज्ञात का विस्तार किया जा सकता है । यह विधि संस्था में सुधार एवं प्रगति की अनेक सम्भावनाएँ उपलब्ध कराती है । इस प्रकार कई विधियों से स्वोट विश्लेषण किया जाता है । विश्लेषण में मूल्याकन महत्वपूर्ण होता है जिसका आगे वर्णन किया जा रहा है ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. स्वोट (SWOT) से क्या तात्पर्य हैं ?
2. स्वोट के आधारभूत तत्त्व कौनसे हैं ?
3. स्वोट विश्लेषण की प्रमुख विधियाँ कौनसी हैं ?

13.6 SWOT के रूप (Forms of SWOT Evaluation)

फ्रेजर (Frazier 1997) का मानना है कि जब शिक्षण संस्थाओं का मूल्यांकन सम्पूर्ण गुणात्मकता के सन्दर्भ में किया जाता है तब मूलभूत रूप से केन्द्र बिन्दु छात्र रहता है । साथ ही मूल्यांकन आन्तरिक बाह्य तथा आन्तरिक व बाह्य दोनों रूप से भी किया जाता है । SWOT मूल्यांकन के तीन रूप माने गए हैं, जो निम्नानुसार हैं-

1. आन्तरिक मूल्यांकन में शिक्षक, कार्यालय, कर्मचारी अन्य स्टाफ सदस्य, कार्यकारी सदस्य, पर्यवेक्षक स्टाफ आदि सदस्यों को सम्मिलित किया जाता है तथा उनसे प्राप्त सूचनाओं व तथ्यों को मूल्यांकन का आधार बनाया जाता है ।

2. बाह्य मूल्यांकन के अन्तर्गत नियोक्ता, अन्य महाविद्यालय, कर दाता, व आम जनता को सम्मिलित किया जाता है तथा उनसे प्राप्त सूचनाओं व तथ्यों के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है ।

3. आन्तरिक एवं बाह्य - मूल्यांकन में विद्यार्थियों को सम्मिलित किया जाता है । इस प्रकार के मूल्यांकन में आन्तरिक एवं बाह्य दोनों दृष्टि से विद्यार्थियों का चयन महत्वपूर्ण माना गया है। आन्तरिक रूप में उन विद्यार्थियों को सम्मिलित किया जाता है जो उस समय पढ़ रहे होते हैं । वे वस्तु स्थिति की जानकारी प्रदान करते हैं तथा बाह्य रूप में वे विद्यार्थी होते हैं, जो भविष्य में उस संस्थान में पढने के लिए आने वाले होते हैं । ऐसे विद्यार्थियों से उस संस्था की ख्याति, प्रतिष्ठा, आलोचना आदि के बारे में सूचना या तथ्य प्राप्त किए जाते हैं।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के मूल्यांकन में आन्तरिक एवं बाह्य लाभार्थियों (छात्रों) की सूची बनाकर चयन करके इनके द्वारा दिए गए उत्तर ज्ञात करके हम अपनी संस्था का मूल्यांकन कर सकते है । उपर्युक्त तीनों प्रकार के मूल्यांकन में तीनों रूपों के सभी सदस्यों की राय सही मूल्यांकन में हमारी मदद करती है ।

4. नियोक्ता द्वारा मूल्यांकन - एक विद्यालय के सन्दर्भ में SWOT विश्लेषण हेतु विद्यार्थियों को रोजगार देने वाले नियोक्ता को भी उत्तरदाता के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए । क्योंकि एक शिक्षण संस्थान विद्यार्थियों को तैयार करता है और वे उसके उत्पाद के रूप में होते हैं । वे शिक्षा प्राप्ति के बाद रोजगार प्राप्त करते हैं; अत: जो रोजगार देने वाले (नियोक्ता) हैं उन्हें भी मूल्यांकन प्रक्रिया में उत्तरदाता के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए जिससे यह ज्ञात हो कि सम्बन्धित संस्थान के विद्यार्थियों की क्षमता व कार्यकुशलता कितनी है तथा जहाँ वे तैयार किए गए संस्था की गुणात्मकता, ख्याति तथा प्रतिष्ठा में कितनी वृद्धि करती है ।

इसी प्रकार शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय से प्रशिक्षित होकर छात्राध्यापक जब शिक्षक बनकर जिन विद्यालयों में अध्यापन कार्य करते हैं वे विद्यालय यह बता सकते हैं कि अमुक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान या महाविद्यालय ने कैसे शिक्षक तैयार किए हैं । SWOT मूल्यांकन में, विशेषकर शैक्षिक संस्थानों में इस प्रकार की प्रक्रिया अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होती है, क्योंकि विद्यार्थी और शिक्षक ही इन संस्थानों के लाभार्थी होते हैं जो जीवन्त तत्त्व होते हैं । उनकी तुलना अन्य किसी औद्योगिक उत्पाद से नहीं की जा सकती । शिक्षा संस्थानों व इनके कार्यो में प्रयुक्त होने वाले संसाधनों के मूल्यांकन की प्रक्रिया विशेष सावधानी के साथ करनी होती है । यह उत्तरदाताओं (कार्यकर्ताओं) की भूमिका पर भी निर्भर करता है । आगे हम उत्तरदाता के प्रकार एवं चयन प्रक्रिया को समझेंगे ।

13.7 उत्तरदाता के प्रकार (The Types of Respondents)

SWOT के मूल्यांकन हेतु जिन उत्तरदाताओं का चयन किया जाता है वे दो प्रकार के हो सकते हैं-

1. विविध प्रकार के उत्तरदाता, जो विभिन्न वर्ग, विभिन्न श्रेणी (category) के होते हैं । जैसे- शैक्षिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि ।
2. दूसरे प्रकार के विभिन्न उत्तरदाता एक ही वर्ग (category) के होते हैं । जैसे किसी महाविद्यालय के मूल्यांकन हेतु उसी स्तर के अन्य महाविद्यालयों के उत्तरदाता जो एक ही बर्ग या श्रेणी. के कहे जा सकते हैं, उनका चयन किया जाता है अथवा एक ही संस्थान में कार्य करने वाले विभिन्न विभाग के कर्मचारी हो सकते हैं ।

13.8 उत्तरदाता चयन की प्रक्रिया (The Process of Respondent's Selection)

SWOT मूल्यांकन में उत्तरदाता की संख्या आदि का संस्थान के आकारादि के आनुपातिक परिप्रेक्ष्य में चयन किया जाता हैं। वैसे उत्तरदाता को हम न्यादर्श भी कह सकते हैं जिनके चयन में निम्नांकित बातों को ध्यान में रखा जाता है:

1. यादृच्छिक विधि द्वारा चयन
2. वर्गानुसार चयन
3. आयु के आधार पर चयन
4. अनुभव के आधार पर चयन
5. विषय-विशेषज्ञता के आधार पर चयन
6. कार्य की प्रकृति के अनुसार चयन
7. समानुपातिक चयन (जैसे- यदि 60 छात्राएँ और 40 छात्र हैं और उनमें से 30 का चयन करना है तो 18 छात्राएँ और 12 छात्रों का चयन करना होगा)

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए उत्तरदाताओं का चयन प्राप्त तथ्यों यो विश्वसनीयता प्रदान करने में मदद करता है, किन्तु चयनित उत्तरदाताओं पर उपकरण प्रशासन की विधि को भी समझना आवश्यक है जिसका आगे उल्लेख किया जा रहा है ।

13.9 उपकरण प्रशासन की विधि (The Methods of Tools Administration)

सूचना संग्रहण के लिए दो विधियों से प्रश्नावली प्रशासित की जाती है ।

1. **प्रथम विधि** में प्रश्नावली उत्तरदाताओं को व्यक्तिगत रूप से पूर्ण करने हेतु दे दी जाती है जिसे वे कहीं भी किसी भी समय पूर्ण करके निर्धारित अवधि में पुन: लौटा देते हैं ।

2. **द्वितीय विधि** में सभी उत्तरदाताओं को एक साथ, एक स्थान पर, एक ही समय में एकत्रित करके प्रश्नावली पूर्ण करने हेतु कहा जाता है ।

प्रश्नावली पूर्ति हेतु निम्नांकित निर्देश दिए जाने चाहिए-

निर्देश :-

1. किसी भी प्रश्न पर अधिक समय न लगाएँ ।
2. जो उत्तर मस्तिष्क में तुरन्त आते हैं, उन्हें अंकित करें ।
3. एक-दूसरे से परामर्श न करें ।
4. स्वयं का नाम प्रश्नावली में अंकित करें अथवा न करें ।
5. प्रत्येक प्रश्न पर निर्भीकता से उत्तर लिखें ।

उत्तरदाताओं से प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण ही संस्थान की स्वोट संबंधी स्थिति को स्पष्ट करने में मदद करता है । अत: अब हम स्वोट विश्लेषण के प्रकार को समझेंगे ।

13.10 संख्यात्मक व गुणात्मक विश्लेषण (Quantitative and Qualitative Analysis)

उत्तरदाताओं से प्राप्त तथ्यों का प्राय: दो प्रकार से, संख्यात्मक एवं गुणात्मक विश्लेषण किया जाता है । प्रत्येक प्रश्नावली के साथ अंकतालिका होती है जिसका उपयोग करते हुए किसी संस्था के कर्मचारियों के प्राप्त उत्तरों के औसत अंक ज्ञात कर तालिका बनाई जाती है तथा ग्राफ बनाया जाता है । इसके द्वारा उस संस्थान के कर्मचारियों या अन्य कार्यो का व्यक्ति चित्र (Profile) ज्ञात होता है । यह व्यक्तिचित्र (Profile) संस्था की शक्तियों तथा कमियों को दर्शाता है ।

SWOT विश्लेषण का विवरण प्रत्येक शीर्षक या SWOT के अन्तर्गत तालिका बनाकर दर्शाया जा सकता है । इसके एक ओर तो प्रत्येक शीर्षक की आवृत्ति बताई जाती है तथा साथ ही दूसरी ओर प्रत्येक शीर्षक के अन्तर्गत विस्तृत विश्लेषण कर उसके रूझान को ज्ञात किया जाता है ।

यदि प्रथम विश्लेषण पर गहनापूर्वक विचार-विमर्श से एक सर्वमान्य निर्णय हो जाता है, तो अन्य किसी विश्लेषण या प्रतिवेदन की आवश्यकता नहीं होती ।

मुख्य रूप से SWOT विश्लेषण निम्नानुसार किया जाना चाहिए:-

13.11 SWOT विश्लेषण प्रक्रिया सोपान (Steps of SWOT Analysis Process)

SWOT विश्लेषण में प्रक्रियाओं का क्रम (Sequence of Activities in SWOT Analysis)

1. SWOT सम्बन्धी प्रश्नावली की अंकतालिका का निर्माण करना ।
2. SWOT सम्बन्धी प्रश्नावली का प्रशासन करना ।
3. SWOT अंकों को तालिकाबद्ध कर औसत ज्ञात करना ।
4. प्रोफाईल का ग्राफ बनाना ।
5. ग्राफ स्वयं के समक्ष प्रस्तुत करना कि हम इस प्रकार से दिखाई देते हैं । अर्थात् प्रोफाईल में अपना या संस्था का प्रतिबिम्ब देखना ।
6. चिन्तन, अनुचिन्तन एवं विचार-विमर्श द्वारा यह निर्णय लेना कि क्या यह वास्तविक चित्र है या है या बढा-चढाकर अथवा विकृतरूप में दर्शाया गया है ।
7. विचार-विमर्श करके एक सर्वमान्य बिन्दु (Point) पर आना कि हम कहाँ हैं? अथवा तात्पर्य यह कि कमियाँ तो हैं पर बहुत नीचे के स्तर तक की तो नहीं हैं ।
8. विचार-विमर्श द्वारा SWOT के बिन्दुओं का पता लगाना ।

SWOT विश्लेषण में उपर्युक्त क्रमानुसार व्यक्ति चित्र (Profile) ग्राफ बनाने तक यह विश्लेषण संख्यात्मक कहलाता है, किन्तु इसके बाद के समस्त विश्लेषण गुणात्मक रूप से किए जाते हैं; अत: उसे गुणात्मक विश्लेषण कहा जाता है । संख्यात्मक विश्लेषण, गुणात्मक विश्लेषण को वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है तथा उसकी विश्वसनीयता को स्थापित करता है । गुणात्मक विश्लेषण में विचार-विमर्श करते हुए निष्कर्ष एवं परिणाम तक पहुँचा जाता है तथा संस्था की उत्कृष्टता को उन्नत करने सम्बंधी सुझाव प्रदान किए जाते हैं ।

अब आगे हम देखेंगे कि स्वोट विश्लेषण की उपयोगिता क्या है?

13.12 विश्लेषण से प्राप्त तथ्यों की उपयोगिता (The Use of Assessment Data)

SWOT विश्लेषण से प्राप्त तथ्यों के कई उपयोग किए जा सकते हैं किन्तु विशेषज्ञों द्वारा मुख्य रूप से प्रारम्भिक उपयोग तीन प्रकार के माने गए हैं:-

1. संस्था के विभिन्न तत्त्वों की स्थिति पर आधारभूत कार्यो की रूपरेखा तैयार करना ।
2. विभिन्न क्षेत्रों का पता लगाकर उनमें सुधारात्मक हस्तक्षेप हेतु कार्य योजना बनाना ।
3. भविष्य के विकास हेतु लक्ष्य निर्धारित करना ।

उपर्युक्त तीनों बिन्दुओं को हम एक उदाहरण से समझ सकते है । जैसे-

1. हिन्दी माध्यम विद्यालय को अंग्रेजी माध्यम का विद्यालय बनाना है, तो यह आधारभूत कार्य की रूपरेखा होगी ।

2. हिन्दी माध्यम वाले विद्यालय के विद्यार्थियों की अँग्रेजी को अच्छा कर देना ही सुधारात्मक हस्तक्षेप कहलाएगा ।

3. इस विद्यालय के विद्यार्थी अध्ययनोपरान्त किसी भी प्रकार की प्रतिस्पर्धात्मक रोजगारोन्मुखी परीक्षा में सफल हो सकें, यह उस संस्था का भविष्य के विकास का लक्ष्य कहा जाएगा ।

13.13 SWOT विश्लेषण में ध्यान देने योग्य बिन्दु (Important Points for SWOT Analysis)

SWOT विश्लेषण करते समय विश्लेषक दल को निम्नांकित बिन्दुओं का ध्यान रखते हुए विश्लेषण करना चाहिए । इसमें कुछ कार्य सचेतन रहकर करें तथा कुछ न करें । करने योग्य एवं न करने योग्य कार्य निम्नानुसार हैं- '

1. करें (Dos)

(i) समालोचनात्मक एवं स्पष्टवादी बनें ।

(ii) SWOT सम्बन्धी सभी विचारों को अंकित करें ।

(iii) अन्तिम मूल्यांकन में चयनात्मक एवं वर्णनात्मक बनें ।

(iv) इस अभ्यास कार्य हेतु उपयुक्त व्यक्ति का चयन करें ।

(v) SWOT के लिए एक उपयुक्त सुविधा प्रदाता या नेता (leader) का चुनाव करें ।

(vi) आन्तरिक सामर्थ्य को बाह्य सम्भावनाएँ दिग्भ्रमित कर सकती हैं, अत: उन्हें अलग से स्वीकार करें ।

(vii) SWOT विश्लेषण कभी-कभी संभावित योजनाओं से विचलित हो जाता है । ऐसा विश्लेषण स्थितियों का वर्णन मात्रा होता है । यह त्रुटि विशेष रूप से अवसरों के, विश्लेषण के सन्दर्भ में हो जाती है; अत: इस त्रुटि से बचें तथा अच्छी स्थितियों के सन्दर्भ में अवसरों के बारे में सोचें ।

2. न करे (Don'ts)

(i) अपनी कमियों व कमजोरियों को छिपाने का प्रयास न करें ।

(ii) केवल त्रुटियों व गलतियों की सूची ही न बनाएँ ।

(iii) बाह्य प्रभावों एवं प्रवृत्तियों की उपेक्षा न करें ।

(iv) SWOT को दोषारोपण का शस्त्र न बनाएँ ।

(v) बाद में करने के लिए छोड़ दिए जाने वाले कार्यो की उपलब्धि की अवहेलना न करें ।

(vi) SWOT विश्लेषण की क्रिया संक्षेप में न करें ।

(vii) यदि अपेक्षाओं को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया हो और कारण प्रतिभागियों के विचारों में आने वाली संभावित भिन्नता जो परिणाम को प्रभावित सकती है, तो ऐसी स्थिति की अवहेलना न करें ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. स्वोट के प्रमुख रूप कौनसे हैं? ।
2. उत्तरदाता के प्रकार बताइए ।
3. उत्तरदाता चयन प्रक्रिया में किन बातों का ध्यान रखा जाता है ।
4. संख्यात्मक एवं गुणात्मक विश्लेषण में अन्तर बताइए ।
5. स्वोट विश्लेषण के सोपानों की व्याख्या कीजिए ।

13.14 सारांश (Summary)

निष्कर्षत: SWOT विश्लेषण किसी भी संस्था की गुणात्मक स्थिति के मूल्यांकन की एक विधि है जो उस संस्था की गुणात्मकता की वृद्धि के लिए एक आधारभूत मानदण्ड निर्धारित करती है । इसके द्वारा संस्था की प्रगति एवं वृद्धि बढ़ी है या नहीं, इसे मापा जा सकता है । यह विश्लेषण संस्था के आधारभूत स्तर, प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक विषय तथा समस्त भौतिक एवं मानवीय संसाधनों की शक्ति; एवं कमियाँ आदि को दर्शाता है । संस्था की शक्ति व कमजोरी ज्ञात होने पर तत्सम्बन्धी कार्यो की प्राथमिकता निश्चित की जाती है । उसके पश्चात् उन कार्यो में हस्तक्षेप की प्राथमिकता एवं उनके क्रियान्वयन की विधियाँ निश्चित की जाती हैं । जैसे किसी संस्था के सन्दर्भ में निम्नानुसार प्रक्रिया समझी जा सकती है । जैसे-

1. विज्ञान विषय में छात्र कमजोर है ।
2. विज्ञान विषय की स्थिति को सुदृढ़ करना है?
3. विज्ञान विषय को सुदृढ़ करने के तरीके क्या हो सकते हैं?
4. निम्नांकित विभिन्न तरीके हो सकते हैं:-
   - शिक्षक अतिरिक्त प्रयास करें ।
   - छोटे समूह (Tutorial) में अध्यापन करें (समस्या सुलझाएँ)
   - विषय-वस्तु में वांछित परिवर्तन किए जाएँ ।
   - पढ़ाने की विधि परिवर्तित की जाय ।
   - विज्ञान विषय के कालांश अधिक लगाए जाएँ ।
   - निदानात्मक एवं उपचारात्मक कक्षाएँ लगाई जाएँ इत्यादि ।
5. भविष्य में विज्ञान विषय में किए गए इन प्रयासों का परिणाम 100 प्रतिशत रहे ।
6. विज्ञान विषय में 50 प्रतिशत विद्यार्थी विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण हों ।

इस प्रकार संस्थागत मूल्यांकन हेतु SWOT विश्लेषण संस्था की शक्ति, कमियाँ, अवसर एवं चुनौतियों (Strength,Weakness,Opportunity and Threats) के सन्दर्भ में गुणात्मकता परखने वाला एक विश्लेषणात्मक कार्य है ।

यह विश्लेषण प्रत्येक संस्था में एक निश्चित अवधि के पश्चात् किया जाता है । शैक्षिक संस्थाओं में प्राय: SWOT विश्लेषण पाँच वर्ष के अन्तराल में किया जाता है । यह एक विस्तृत विश्लेषण होता है; तथा इसे व्यापक रूप से क्रियान्वित किया जाता है ।

अभ्यास प्रश्न (Exercises)

1 स्वोट के अर्थ, अवधारणा, तत्त्व तथा मूल्याकंन के रूप को उदाहरण सहित स्पष्ट करिए ।

2 स्वोट विश्लेषण प्रक्रिया के सोपानों तथा इसमें ध्यान देने योग्य मुख्य बिन्दुओं की विस्तृत व्याख्या करिए ।

13.15 संदर्भ (References)

1. Ahluwalia,Lt Gen. J.S. (2001). Total Quality Management: Creating a Quality Environment for the Next Millennium. New Delhi : Vanity Books International.
2. Balsara, Maitrya (2002).Administration and Reorganisation of Teacher Education. New Delhi : Kanishka Publishers.
3. Chandras Karan, P.(1994) Educational Planning and Management. New Delhi : Sterling Publishers Private Limited.
4. Chester, Barnard (1954). The Functions of Executive.Cambridge : Harvard University Press.
5. Choudhary, Namita Roy (2001). Management in Education. New Delhi : S.B.Nangia, A.P.H. Publishing Corporation.
6. जी.एस सुधा (2003)ए. प्रबन्ध अवधारणा, चिन्तन एवं व्यवहार जयपुर: रमेश बुक डिपो.
7. Goens, George A. and Clover, Sharon I.R. (1984) Mastering School Reform.Singapore : Allyn and Bacon.
8. Kumar, K.L. (2001) Educational Technology. New Delhi :New AGE International (P) Limited, Publishers.
9. Mukhopadhyay, M. (2001). Total Quality management in Education.New Delhi : National Institute of Education Planning and Administration.
10. Organization and Management Intermediate Course Study Material. Paper-64, Board of Studies, The Institute of Chartered Accountants of India.
11. Pandya, S.R. (2001). Administration and Management of Education. Mumbai : Himalaya Publicating House.
12. शर्मा, आर.एस. (1995) विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन । मेरठ : सूर्या पब्लिकेशन.
13. शर्मा, डी. आर.ए. (2004). शिक्षा तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन । मेरठ : सूर्या पब्लिकेशन राजकीय इन्टर कॉलेज के समीप ।

14. Tripathi,P.C. and reddy, P.N. (1997). Principles of Management. Second Edition. New Delhi : Tata Mc Graw - Hill Publishing Company Limited.
15. वर्मा, जे.पी. (2002) शैक्षिक प्रबन्धन (Educational Management) जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी.

Websites

1. Buzzle.com intelligent life of the web. Why Today's Education System Needs Time Management Tips for Classroom. htm.
2. www._wikipedia.org/wiki/change_management.
3. http://bctf.ca/social/globalization.
4. http://enwikipedia.org/wiki/SWOT_analysis.
5. Globalization and Education.ed.uiue.ed.uiue.edu
6. www.smart teaching.org
7. Wikipedia.the Free Encyclopedia
8. www.globalization.wikipedia
9. www.wharton.upenn.edu/faclty/innovation/-21k
10. www.businessballs.com/swotanalysisfreetemplete.

इकाई 14

शैक्षिक प्रबन्धन में सम्प्रेषण

(Communication in Educational Management)

इकाई की संरचना

14.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

14.2 सम्प्रेषण का सम्प्रत्यय व परिभाषा (Concept and Definitions of Communication)

14.3 सम्प्रेषण प्रक्रिया (The Process of Communication)

14.4 प्रभावी सम्प्रेषण के सिद्धान्त (Principles of Effective Communication)

14.5 सम्प्रेषण का महत्त्व एवं आवश्यकता (Need and Importance of Communication)

14.6 सम्प्रेषण के प्रकार (Forms of Communication)

- 14.6.1 संगठनात्मक संरचना के अनुसार (According to Organisational Structure)
  - 14.6.1.1 औपचारिक सम्प्रेषण (Formal Communication)
  - 14.6.1.2 अनौपचारिक सम्प्रेषण (Non-formal communication)
- 14.6.2 अभिव्यक्ति के आधार पर (On the basis of expression)
  - 14.6.2.1 मौखिक सम्प्रेषण (Cral Communication)
  - 14.6.2.2 लिखित सम्प्रेषण (Written Communication)
  - 14.6.2.3 अशाब्दिक सम्प्रेषण (Non-Verbal Communication)
- 14.6.3 प्रवाह की दिशा के अनुसार (According to Direction of Flow)
  - 14.6.3.1 ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण (Upward Communication)
  - 14.6.3.2 निम्नगामी सम्प्रेषण (Downward Communication)
  - 14.6.3.3 क्षैतिज सम्प्रेषण (Horizontal Communication)
- 14.6.4 सम्प्रेषण तंत्र (Communication Networks)

14.7 शिक्षा प्रबन्धन में सम्प्रेषण श्रृंखलाएँ (Communication Channels in Education Management)

14.8 सम्प्रेषण में बाधाएँ (Barriers to communication)

14.9 शैक्षिक प्रबन्धन में सम्प्रेषण से सम्बन्धित शोध (Researches related to Communication in Educational Management)

14.10 वैश्विक दृश्य में सम्प्रेषण के बदलते परिप्रेक्ष्य (Changing Trends of Communication in Global Scenario)
14.11 सारांश (Summary)
1412 संदर्भ (References)

14.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

1. सम्प्रेषण का अर्थ समझ सकेंगे ।
2. सम्प्रेषण प्रक्रिया को समझ सकेंगे ।
3. सम्प्रेषण के सिद्धान्त व प्रकारों को स्पष्ट कर सकेंगे ।
4. सम्प्रेषण (Communication) तथा संस्थागत सम्प्रेषण (Organizational Communication) को स्पष्ट कर सकेंगे ।
5. सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को व्यक्त कर सकेंगे ।
6. सम्प्रेषण के मुख्य तत्त्वों व उसके महत्त्व को वर्णित कर सकेंगे ।
7. सम्प्रेषण के प्रकारों तथा विधियों व उसकी प्रक्रिया, बाधाओं, प्रमुख तत्त्वों आदि को शैक्षिक प्रबंधन से सम्बन्धित कर सकेंगे ।
8. शैक्षिक प्रबन्ध में सम्प्रेषण से सम्बन्धित शोधों से तथा वैश्विक में सम्प्रेषण के बदलते परिप्रेक्ष्य से अवगत हो सकेंगे ।

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

सम्प्रेषण मानव जीवन की अभिन्न आवश्यकता है क्योंकि मानव एक समाजिक प्राणी है । मनुष्य द्वारा अपने विचारों, भावों, अभिवृत्तियों आदि को एक दूसरे तक पहुँचाने की आवश्यकता रहती है और यह विनिमय वह कई तरह से करता है । यह विनिमय निर्बाधित व अपरिवर्तित रूप से होना चाहिए, अन्यथा दुविधापूर्ण स्थिति उत्पन्न हो सकती है । अत: सूचनाओं को एक व्यक्ति से दूसरे तक पहुँचना ही सम्प्रेषण नहीं है वरन् उस सूचना की सही समझ उत्पन्न करना सम्प्रेषण है ।

किसी संगठन द्वारा अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उसमें विभिन्न स्तरों पर कार्यरत विभिन्न व्यक्तियों के मध्य उचित सम्प्रेषण आवश्यक है, क्योंकि प्रत्येक संगठन एक सामाजिक प्रणाली है जिसमें उन व्यक्तियों की अन्तःक्रिया सम्मिलित है । सम्प्रेषण किसी संगठन के जम से लेकर उसके सम्पूर्ण जीवन तक के अस्तित्व का आधार है । जब सम्प्रेषण समाप्त होता है तो उस संगठन की क्रियाएँ भी समाप्त हो जाती हैं चाहे वह शैक्षिक संगठन ही क्यों न हो।

किसी भी संस्था में सम्प्रेषण कई प्रकारों से हो सकता है, जौ उस संस्था को प्रभावित करता है । उस संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति विभिन्न प्रकार की सम्प्रेषण शृंखलाओं के उपयोग से प्रभावित होता है । सभी सम्प्रेषण प्रकारों, तंत्रों, माध्यमों के अपने लाभ व दोष हैं और सम्पूर्ण सम्प्रेषण प्रक्रिया में कई बाधाएँ भी उपस्थित होती हैं जो उस सम्प्रेषण के प्रवाह व तीव्रता को

बाधित कर सकते हैं । अत: प्रभावी सम्प्रेषण को समझने के लिए सम्प्रेषण प्रक्रिया, प्रकारों, उनके लाभ व दोष, उनमें बाधाएँ आदि को जानना आवश्यक है ।

14.2 सम्प्रेषण का सम्प्रत्यय व परिभाषा (Concept and definitions of Communication)

सम्प्रेषण दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य विचारों, सूचनाओं, भावना से, राय, दृष्टिकोण, अभिवृत्तियों आदि का विनिमय और उनकी समझ की प्रक्रिया है । यह मात्र सूचना भेजने से सम्बन्धित नहीं है । यदि हम सम्प्रेषण शब्द को देखें तो यह शब्द अंग्रेजी शब्द 'कम्यूनिकेशन (Communication) का पर्यायवाची है । कम्यूनिकेशन शब्द की व्युत्पति लेटिन शब्द 'कन्यूनीस' (Communis) से मानी जाती है, जिसका अर्थ है कॉमन या सामान्य ।

इस प्रकार सम्प्रेषण में व्यक्ति परस्पर सामान्य समझ स्थापित करने व उसके आदान-प्रदान करने का प्रयास करते हैं अर्थात सम्प्रेषण में अर्थ का हस्तानान्तरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति की समझ के रूप में होता है । सम्प्रेषण का अर्थ निम्नलिखित परिभाषाओं से और अधिक स्पष्ट होगा:-

"संचार सभी मानवीय कार्यों और अंतः क्रियाओं का मूलाधार है । इसका सम्बन्ध ज्ञानेंद्रिय तत्त्वों के माध्यम से विचारों, सूचनाओं व आदेशों का सम्प्रेषण करने से है । यह संदेश निर्बाधित व अपरिवर्तित रूप में पहुँचना चाहिए ।"

(Communication is basic to all human performance and interaction. It refers to the transmission of thought, information and commands by employing the sensory channels. The message should ideally be conveyed undiminished and without distertion.

कुमार के. एल. (Kumar K.L.)

"सम्प्रेषण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने ज्ञान, हाव भाव, विचारों आदि का परस्पर आदान-प्रदान करते हैं तथा इस प्रकार प्राप्त संदेशों को समान अर्थों में समझने और प्रेषण करने में उपयोग करते हैं ।"

(Communication is a process by which two or more people exchange facts,ideas,fellings, impressions and the like in a manner that the receiver gains a clear understanding of the meaning, input and the use of the message)

पॉल लीगन्स (Paul Legans)

"सम्प्रेषण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत सूचनाओं, निर्देशों तथा निर्णयों द्वारा लोगों के विचारों, मतों तथा अभिवृत्तियों में परिवर्तन किया जाता है।"

(Communication is a process in which the thoughts, beliefs and attitudes can be changed through informations, instruction and decisions under social arrangement)

लूगीस एवं वीगल (Lougis and Wegal)

अत: सम्प्रेषण में सूचनाओं, संदेशों आदि का विनिमय इस प्रकार से होता है कि सभी लोग प्राप्त संदेशों को सामूहिक रूप से समझ सकें । व्यक्ति शब्दों द्वारा, मौन रहकर, शारीरिक हावभाव, संगीत, कलाकृति या अन्य किसी सृजनात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से सम्प्रेषण करता है । सम्प्रेषण द्वारा परस्पर विश्वास जागृत करना, परस्पर समन्वय स्थापित करना अथवा अभिवृत्तियों में परिवर्तन करना भी सम्मिलित होता है ।

शैक्षिक संगठन में व्यक्तियों को जोड़े रखने में और संदेशों, भावनाओं एवं विचारों के आदान-प्रदान द्वारा समझ और समान दृष्टि बिन्दु के साथ संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति में सम्प्रेषण शक्ति महत्वपूर्ण सहयोग करती है । सम्प्रेषण वह माध्यम है जिसके द्वारा प्रबंधक अपने निर्णयों को परिचालन स्तर तक पहुँचा सकता है । हालांकि प्रभावी सम्प्रेषण सुनने की योग्यता और सूचना देने की योग्यता पर निर्भर करता है । सम्प्रेषण किसी संगठन में द्विमार्गीय विचार विनिमय की प्रक्रिया को जन्म देता है ।

14.3 सम्प्रेषण प्रक्रिया (The Process of Communication)

सम्प्रेषण एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें दो या अधिक व्यक्ति सूचना तथा अर्थ का विनिमय करते हैं । यह द्विमार्गी प्रक्रिया है जो क्षणिक न होकर अपना समय लेती है । किसी भी प्रकार के सम्प्रेषण में निम्नलिखित मुख्य पद होते हैं -

1. संवाद या विचार का विकास (Ideation)

सम्प्रेषण प्रेषक (Sender) के मस्तिष्क में प्रारम्भ, होता है । प्रेषक के पास एक विचार होता है जिसे वह ग्राहक (Receiver) तक भेजना चाहता है । प्रेषक किसी व्यक्ति के स्थान पर समूह या संस्था भी हो सकती है तथा ये सभी स्रोत (Source) कहलाते हैं । अत: स्रोत कोई व्यक्ति, समूह अथवा संस्था है जो अन्य पार्टी को कुछ सम्प्रेषित करने में रुचि रखती है । उदाहरण स्वरूप - संस्थागत सम्प्रेषण में प्रेषक के रूप में प्राय: संस्था प्रधान शिक्षकों, विद्यार्थियों, कर्मचारियों, सरकार या अभिभावकों को संदेश भेजता है ।

2. संकेतन (Encoding)

यह एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रेषक अपने विचार या भाव को संकेतों की सहायता से संदेश के रूप में तैयार करता है । आवश्यक तथ्य एकत्रित करने के पश्चात उनका मूल्यांकन कर उचित संदेश तैयार किया जाता है । संदेश में प्रयुक्त ये संकेत शब्द,चित्र संख्या, हाव-भाव, गतिविधि (movements) अथवा ध्वनि के रूप में हो सकते हैं । इस स्तर पर भाषा कौशल की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि संदेश का संकेतन इस प्रकार होना चाहिए कि स्रोत तथा ग्राहक उसे समान अर्थ में ले । यह संदेश आदेश, निर्देश, सुझाव, शिकायत आदि के रूप में हो सकता है ।

3. प्रेषण (Transmission)

यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा संदेश ग्राही तक प्रेषित होता है । इस हेतु लिखित, मौखिक, सांकेतिक (Symbolic) तथा दृश्य-श्रव्य माध्यमों को अपनाया सकता है । अत: इस स्तर पर तैयार संदेश को ग्राहक के पास विभिन्न माध्यमों (Channels/medium) द्वारा पहुँचाया जाता है। केवल हँसकर, सर हिलाकर आदि अशाब्दिक तरीकों से भी यह प्रेषण संभव है।

4. विसंकेतन (decoding)

यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा ग्राही स्रोत द्वारा सम्प्रेषित संदेश अर्थ निकालकर ग्रहण करता है। वह संदेश का अर्थ उसी रूप में समझ लेता है जिस रूप में ने संदेश भेजा है । ग्राहक इसके लिए अपना ज्ञान, अनुभव या अन्य स्रोतों की सहायता से संदेश को समझता है । यदि वह अलग तरह से उसे लेता है तो सम्प्रेषण टूट जाता है और नासमझी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है ।

5. प्राप्तकर्ता अथवा ग्राही (Receiver)

एक बार प्रेषित होने के बाद संदेश ग्राहक द्वारा प्राप्त किया जाता । ग्राहक वह समूह अथवा व्यक्ति संस्था है जिसके पास प्रेषित संदेश पहुँचता है । इसके अभाव में सम्प्रेषण प्रक्रिया अपूर्ण है।

6. पृष्ठ-पोषण (Feedback)

यह ग्राहक द्वारा प्रेषक को संदेश के फलस्वरूप भेजा गया प्रत्युत्तर या प्रतिक्रिया है । पृष्ठ-पोषण मौखिक, लिखित या अशाब्दिक हो सकता है तथा इसके अभाव में प्रेषक संदेश के सही अर्थ में पहुँचने की प्रतिपुष्टि नहीं कर सकता । इसके आधार पर प्रेषक में विरूपण (distortion) को सुधार सकता है ।

7. शोर या बाधा (Noise)

जो कुछ भी सम्प्रेषण प्रक्रिया को बाधित कर देता है, जिससे संदेश विरूपित या विमंदित (destort or diminish) हो जाता है शोर या बाधा कहलाता है ।

सम्पूर्ण सम्प्रेषण श्रृंखला को शेनोन (Shannon) के सरल - ट्रांसमिटर - रीसीवर - डेस्टीनेशन (Source - Transmitter-receiver-destination) मॉडल द्वारा इस तरह से व्यक्त किया जा सकता है -

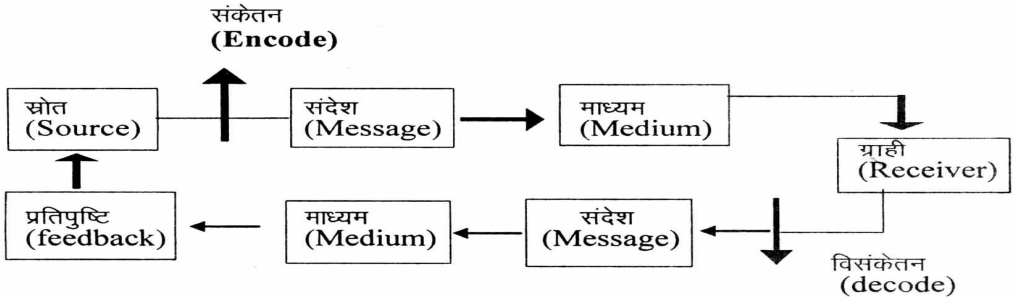

चित्र 2 : शेनोन का सम्प्रेषण प्रक्रिया मॉडल

इस प्रकार प्रेषक जो किसी शैक्षिक संस्था में प्राचार्य हो सकता है, के मस्तिष्क में कोई विचार जन्म ले सकता है जिसे वह संदेश के रूप में संकेतन (encode) करता है । यह संदेश वह विभिन्न माध्यमों से जैसे - लिखित, मौखिक, हाव-भाव या अन्य दृश्य, श्रव्य माध्यमों से प्रेषित कर सकता है । दूसरे सिरे पर ग्राही के रूप में शिक्षक यदि है तो वह उस संदेश को समझने के लिए उसे अपने मस्तिष्क में विसंकेतिक (decode) करता है, परन्तु यह संदेश कई कारणों से विमंदित (diminished) या विरूपित (disort) हो जाता है । ग्राही को चाही गई प्रतिक्रिया (feedback) देनी होती है, जो संदेश के रूप में उसने समझी है

प्रभावी सम्प्रेषण सीधे ही विशेष व्यक्ति या समूह के सरोकार से होता है । उदाहरण स्वरूप, कोई महाविद्यालय अपने विद्यार्थियों की पहचान करना चाहेगा जिससे कि उनके लिए उनकी आवश्यकतानुसार सूचनाएँ प्रदान कर सके । जबकि अभिभावक शैक्षिक खर्च व फेकल्टी की गुणवत्ता में रुचि रखेंगे और विद्यार्थी पाठ्यक्रम, सामाजिक गतिविधियों, उनके अनुभवों के मूल्यांकन आदि में रुचि रखेंगे । इस प्रकार संस्था को प्रत्येक लक्ष्यित दर्शक (target audience) के लिए सम्प्रेषण कार्यक्रम बनाना होगा ।

14.4 प्रभावी सम्प्रेषण के सिद्धान्त (Principle of Effective Communication)

किसी भी प्रबंधक की सफलता उसके प्रभावी सम्प्रेषण पर निर्भर करती है । अत: सम्प्रेषण अत्यन्त आवश्यक प्रबंधन उपकरण है । प्रभावी सम्प्रेषण के होने के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त ध्यान में रखने चाहिए-

1. स्पष्टता (Clarity) - प्रेषककर्ता के मस्तिक में संदेश स्पष्ट होना चाहिए । संदेश की विषयवस्तु को सरल और सीधी भाषा में संकेतन करना चाहिए । इसके लिए अपने संदेश का उद्देश्य स्पष्टता से उसके मस्तिष्क में होना चाहिए ।

2. उचित भाषा (Suitable language) - सरल, अर्थपूर्ण और बिना तकनीकी भाषा के उपयोग के, उचित भाषा व गति के प्रयोग से भाषायी बाधा दूर हो जाती है ।

3. ग्राही को जानना (Knowing the Receiver) - सूचना प्रेषक को ग्राही अथवा प्राप्तकर्ता की क्षमता, पृष्ठभूमि, बौद्धिकता का स्तर, सामाजिक वातावरण, ग्रहण क्षमता (receptive) की प्रकृति, अभिवृति आदि की समझ होनी चाहिए क्योंकि संदेश की विषयवस्तु ग्राही की आवश्यकताओं को पूरी करने वाली होनी चाहिए ।

4. सम्प्रेषण की पूर्णता (Completeness of Communication) - अधूरा सम्प्रेषण लोगों को अनुमान लगाने का मौका देगा जिससे प्राप्तकर्ता गलत निष्कर्ष पर पहुँचेगा ।

5. माध्यम का उचित चयन (Proper selection of media) - माध्यम का चयन व उपयोग विषयवस्तु, सम्प्रेषण की शीघ्रता, स्थिति आदि पर निर्भर करती है ।

6. उद्देश्यों के अनुरूप (Intune with the Objectives) - सम्प्रेषण संस्था के उद्देश्यों और सम्बन्धित नीतियों के अनुरूप होना चाहिए उसके विरूद्ध नहीं ।

7. अर्तवैयक्तिक सम्बंध (Inter Personal Relationship) - संगठन में यदि मानव सम्बन्धों में खुलापन और परस्पर विश्वास हो तो अधीनस्थ अपने अधिकारियों से सम्प्रेषण आसानी से कर सकेंगे और सुझाव दे सकेंगे ।

8. कार्य और कर्म (Actions and Deeds) - कार्य और कर्म द्वारा, प्रभावी सम्प्रेषण का सिद्धान्त है । जो कहा है, यदि वह किया नहीं जाता तो वर्तमान संदेश के साथ आगे वाले संदेश भी विकृत हो जाते हैं ।

9. अच्छा सुनना (Good Listening) - यदि संदेश बिना सहानुभूतिपूर्वक श्रवण के होगा तो प्रतिक्रिया व प्रत्युत्तर संभव नहीं होगा । अत: दो-तरफा सम्प्रेषण के लिए अच्छी तरह सुनना चाहिए ।

10. अनौपचारिक सम्प्रेषण का उपयोग (Use of Grapevine) - कई बंधनों के बाद भी अनौपचारिक सम्प्रेषण संस्थाओं में चलता रहता है । कई बार संदेश ग्रेपवाईन से ही पड़ते हैं । अत: सम्प्रेषण को सुधारने में ग्रेपवाईन .(grapevine) का उद्देश्यपूर्ण उपयोग स्वीकृत है, ।

11. प्रशिक्षण (Training) - सभी सदस्यों को लेखन, वक्तव्य, व्याख्यान, साक्षात्कार लेना और श्रवण कौशल में प्रशिक्षित करना चाहिए ।

12. पृष्ठपोषण (Feedback) - पृष्ठपोषण द्वारा संदेश के प्रति प्राप्तकर्ता की समझ का पता चलता है तथा सम्प्रेषण दो-तरफा होता है । संदेश की स्वीकृति- अस्वीकृति का शीघ्रता से पता चल जाता है ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. सम्प्रेषण द्वारा व्यक्तियों के मध्य किसका आदान प्रदान होता है ?
2. सम्प्रेषण प्रक्रिया में सम्मिलित मुख्य पदो के नाम बताइए ।
3. एक प्रबन्धन के रूप में आप प्रभावी सम्प्रेषण के कौनसे चार प्रमुख सिद्धांतों

14.5 सम्प्रेषण का महत्व एवं आवश्यकता (Importance and Need for Communication)

किसी भी संस्था में व्यक्तियों व समूहों के मध्य सम्प्रेषण महत्वपूर्ण होता है । सम्प्रेषण के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

1. **मानव सम्बन्ध (Human Relations)** - मानव सम्बन्धों में आपसी समझ सम्प्रेषण से ही संभव है । राबर्ट डी. बर्थ (Robert De Birth) के अनुसार मानवीय सम्बन्ध संस्था की आत्मा है, जिसके बिना संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं की जा सकती ।
   (It is impossible to have human relations without communication and communication without human relations)

2. **समन्वय (Co-ordination) -** इसका-मुख्य उद्देश्य किसी संस्था के विभिन्न भागों में समन्वित क्रियाएँ (Co-ordinated actions) लाना है ।
3. **सूचनाओं (Information Sharing)** - संस्था में शिक्षकों को दिशा-निर्देश देने और उद्देश्यपूर्णता की भावना (Sense of purpose) लाने में सम्प्रेषण महत्त्वपूर्ण है ।
4. **पृष्ठ पोषण देना (Provide Feedback)** - संस्था में संकाय को अपने कार्य के परिणाम बताने में सम्प्रेषण महत्त्वपूर्ण है ।
5. **निर्णय लेने में (Decision Making)** - समस्या को परिभाषित करने में, विकल्प ढूँढने और मूल्यांकित करने में, निर्णय के क्रियान्वयन, नियंत्रण और परिणामों के मूल्यांकन में सूचना का आदान-प्रदान आवश्यक है ।
6. **अभिव्यक्ति (Expression)** - भावनाओं और अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में सम्प्रेषण सहायक है ।
7. **प्रबंधकीय प्रभावित (Managerial Efficiency)** - यह प्रबंधकीय प्रभाविता चाहे वह नियोजन, संगठन, निर्देशन, नेतृत्व एवं समन्वय कोई भी हो, को बढ़ावा देता है ।
8. **प्रभावी नेतृत्व (Effective Leadership) -** यह प्रभावी नेतृत्व का आधार बनता है ।
9. **संस्था के कुशल संचालन (Efficient Operation of an institute)** - प्रभावी सम्प्रेषण व्यवस्था पर संस्था का कुशल संचालन निर्भर करता है ।
10. **निष्ठा एवं कार्य प्रेरणा (Induce Action and Dedication)** - अर्नेस्ट डेल और माइकल (Ernest Dale and Michael) ने कहा है कि, "सम्प्रेषण कर्मचारी मनोबल और निष्ठा, सहयोग तथा समझ बढ़ाता है तथा उनके प्रयासों को सामान्य लक्ष्यों की ओर मोड़ता है ।" (Communication is to induce action, increase employee morale and to promote dedication, cooperation and understanding and it is a method of persuading people towards the achievement of common goal)
11. व्यावसायिक संतुष्टि (Job Satisfaction)- प्रबंधन द्वारा पहचान और स्वीकृत अधीनस्थों में व्यावसायिक संतुष्टि उत्पन्न करती है । इसके लिए संस्थान में खुलापन व खुली अभिव्यक्ति आवश्यक है ।

12.उत्पादन में वृद्धि (Increases Productvity) - अच्छे सम्प्रेषण द्वारा कम समय व कम खर्च में अधिक उत्पादन संभव है । सम्प्रेषण द्वारा संस्था प्रधान अपने संस्था को संस्था की कार्यप्रणाली, लक्ष्यों, शिक्षा के नवीन आयामों से सुसूचित रख सकता है ।

14.6 सम्प्रेषण के प्रकार (Types of Communication)

सम्प्रेषण औपचारिक व अनौपचारिक दोनों हो सकता है । संदेश प्रेषण लिखित, मौखिक तथा अशाब्दिक रूप में हो सकता है । किसी संस्था में सूचना का प्रवाह नीचे से ऊपर, ऊपर से नीचे तथा क्षैतिज रूप में हो सकता है । साथ ही किसी कार्यकारी समूह में कई तरह के सम्प्रेषण तंत्र बन सकते हैं । इन सभी तरह के सम्प्रेषणों का वर्णन आगे दिया गया है ।

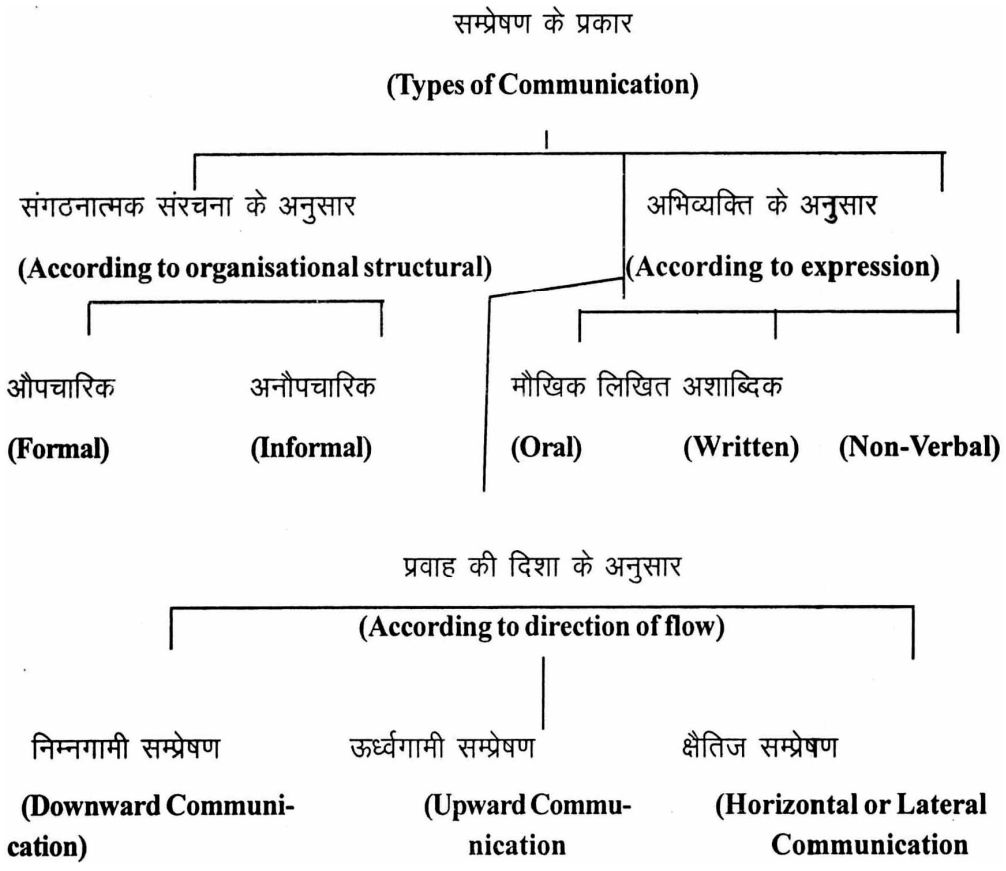

14.6.1 संगठनात्मक संरचना के अनुसार (According to Organisational Structure)

14.6.1.1 औपचारिक सम्प्रेषण (Formal Communication)

सम्प्रेषण औपचरिकता व अनौपचारिक दोनों हो सकता है । परन्तु संस्थाओं अधिकांशत: जो सम्प्रेषण होता है वह औपचारिक होता है । यह सम्प्रेषण औपचारिक रूप से स्थापित श्रृंखलाओं (Channels) में प्रवाहित होता है और संस्था के कार्यों से सम्बन्धित होता है । यहाँ प्रेषक और प्राप्तकर्ता के मध्य औपचारिक सम्बन्ध होते हैं । यह सम्प्रेषण प्राय: लिखित में होता है ।

औपचारिक सम्प्रेषण के गुण (Advantage of Formal Communication)

1. आदेश की एकता का पालन (Follows Unity of Command)
2. प्रभावी अनुशासन और नियंत्रण (Effective Control and Discipline)
3. सूचना की विकृति कम (Less Chances of Information distortion)
4. निश्चित संरचना और अधिकार पर आधारित (Based on Hierarchy and Power)

औपचारिक सम्प्रेषण के दोष (Disadvantages of Formal Communication)

1. अत्यधिक वाहिकाओं के कारण देरी (Delay due to Multi Level Channels)

2. सही एवं स्वतंत्र संवाद में बाधा (Destacle in free and Accurate Communication)
3. ऊपर की ओर संवाद प्रेषण में त्रुटि एवं छुपाव (Distortion of Facts in Upward Communication)
4. अवैयक्तिक और यांत्रिक होने की प्रवृत्ति (Tends to be Impersonal and Mechanical)

14.6.1.2 अनौपचारिक सम्प्रेषण (Informal Communication)

जब प्रेषक और प्राप्तकर्ता के मध्य अनौपचारिक सम्बन्ध होते हैं तब उनके मध्य संवादों के आदान-प्रदान को अनौपचारिक सम्प्रेषण कहते हैं । इनमें सूचना का प्रवाह प्रेषक और प्राप्तकर्ता के मध्य आपसी सम्बन्धों के आधार पर होता है । संस्था प्रधान और कार्मिकों के मध्य सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध उपक्रम की कार्यकुशलता को बढ़ाते हैं । यह संस्था में स्वाभाविक और स्वत: ही लोगों के मध्य अंतःक्रिया के कारण उभरता है । औपचारिक सम्प्रेषण के साथ मिलकर ये दोनों सम्प्रेषण की कार्यपरक सूचना प्रणाली निर्मित करते हैं । यह प्राय: मौखिक रूप में होती है ।

अनौपचारिक सम्प्रेषण के लाभ (Advantage of informal system of communication)

1. सम्प्रेषण का शीघ्र, सशक्त एवं उद्देश्यपूर्ण माध्यम (Fast, powerful and purposeful and purposeful Channel of Communication)
2. प्रतिक्रिया का ज्ञान (Knowledge of employee reaction)
3. खुली चर्चा से नवाचारों को प्रोत्साहन (Open discussions foster innovation)
4. सहयोग एवं मित्रवत भावों का विकास (develops felling of co-operation and friendliness)

अनौपचारिक सम्प्रेषण के दोष (Disadvantages of Informal Communication)

1. कोई निर्धारित संरचना नहीं (No Fixed Structure)
2. गलत व्याख्या और अपूर्ण सूचनाएँ असामंजस्य पैदा करते हैं (misinterpretation and inaccurate information's lead to confusion)
3. सम्प्रेषण के नियंत्रण के औपचारिक नियम नहीं (No formal rules to control the communication)
4. अंगूरलता के उपयोग से अफवाहों, गपशप, गलत सूचनाओं और बदलाव के विरोध को उत्पन्न करती है (It uses grapevine and results in rumours, gossips, false information and resistance to change)

14.6.2 अभिव्यक्ति के आधार-पर (according to expression)

सम्प्रेषण के संदर्भ में अभिव्यक्ति का अर्थ है - सम्प्रेषण को व्यक्त करने के उपकरण (tools) । सम्प्रेषण माध्यमों से आशय सम्प्रेषण की उन विधियों अथवा तरीकों से है जिसमें संदेश भेजा जाता है । यह माध्यम मौखिक, लिखित या अशाब्दिक कोई भी रूप ले सकता है।

14.6.2.1 मौखिक सम्प्रेषण (Oral Communication)

मौखिक सम्प्रेषण सर्वाधिक प्रचलित सम्प्रेषण का तरीका है । इसमें सूचनादाता (Sender) और प्राप्तकर्ता (Receiver) आमने-सामने होते हैं । पीटर ड्रकर के अनुसार मौखिक सम्प्रेषण में अनेक साधनो का प्रयोग किया जाता है - जैसे प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, साक्षात्कार, संयुक्त विचार-विमर्श, सभाएँ, सम्मेलन, प्रदर्शन, रेडियो, टेलीफोन, टेलीग्राम, सार्वजनिक सभा, सम्बोधन, मिटिंग, इन्टरकॉम आदि । किसी शैक्षिक संस्थान में यह सम्प्रेषण अनौपचारिक वार्तालाप, स्टाफ मिटिंग, औपचारिक भाषण द्वारा होता है ।

मौखिक सम्प्रेषण के लाभ (Advantages of Oral Communication)

मौखिक सम्प्रेषण का शैक्षिक प्रबन्धन में महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसके द्वारा प्रबंधक कार्य करने वालों से व्यक्तिगत एवं सामूहिक भेंट करके उपयुक्त वातावरण तैयार करते हैं तथा परिवेश को प्रजातांत्रिक बनाते हैं । इसके निम्नलिखित लाभ हैं-

1. समय, श्रम एवं धन की बचत (Save time,labour and money)
2. व्यक्तिगत सम्बन्ध की भावना का विकास (Develops on element of personal touch)
3. आपसी भ्रम या सन्देह का तत्काल निवारण (On the spot clarification of doubts)
4. सम्प्रेषण के प्रभाव की जानकारी (Knowledge of reaction)
5. महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर जोर संभव (Importance points can be emphasized)
6. अधिक लचीलेपन का अवसर (Provides for greater flexibility)

सम्प्रेषण का यह तरीका आपातकालीन स्थिति में सहज रूप से होता है, क्योंकि प्रबन्धन के क्षेत्र में कई ऐसे अवसर होते हैं, जिनमें शीघ्र सम्प्रेषण की आवश्यकता होती है ।

मौखिक सम्प्रेषण के दोष (Disadvantages of Oral Communication)

इसके निम्नलिखित दोष हैं -

1. सम्प्रेषण के औपचारिक रेकार्ड का अभाव
2. लम्बे संदेशों और दूरस्थ प्राप्तकर्ता प्राप्तकर्ता के लिए अनुपयुक्त
3. पक्षकारों की उपस्थिति अनिवार्य
4. यदि सम्प्रेषण कमजोर हैं तो मौखिक सम्प्रेषण का गलत समझ व गलत होगा ।
5. कभी-कभी मौखिक सम्प्रेषण के प्रति प्राप्तकर्ता गंभीर नहीं ।

किसी शैक्षिक संस्था में मौखिक सम्प्रेषण का वातावरण अधिकतर संस्था के प्राचार्य द्वारा स्थापित किया जाता है ।

14.6.2.2 लिखित सम्प्रेषण (Written Communication)

लिखित सम्प्रेषण का अर्थ है किसी संवाद को लिखित रूप में प्रेषित करना । यह पत्र, पेम्पलेट (Pamphlets), बुकलेट्स ऑफिस आर्डर, निर्देश, मेन्युअल (Manuals), सर्कुलर (Circular), अखबार, पोस्टर, फार्म, बुलेटिन.(Booklets), मेमोरेन्डम (Memorandum), नोट (Note), मेमो (Memo), ब्रोशर. (Brochures), जर्नल (Journal), हेंडबुक्स (Handbooks), हेड आऊट (handout), आदि के रूप में हो सकता है । लिखित सम्प्रेषण भविष्य के लिए एक स्थायी रिकार्ड होता है इसलिए, इसे सावधानीपूर्वक लिखना चाहिए इसलिए यह सही, आकर्षण, शुद्ध, संक्षिप्त तथा स्पष्ट होना चाहिए ।

लिखित सम्प्रेषण के लाभ (Advantages of Written Communication)

1. भविष्य के संदर्भ के लिए उपयोगी
2. परस्पर अविश्वास के समय उपयुक्त
3. एक साथ अधिक व्यक्तियों को सूचना
4. विस्तृत एवं जटिल सूचनाओं के लिए उपयोगी
5. संदेश की अवहेलना करने वालों के प्रति कार्यवाही करने का मजबूत आधार

लिखित सम्प्रेषण के दोष (Disadvantages of Written Communication)

इनके प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं -

1. समय, श्रम व धन की खपत ।
2. तुरन्त प्रतिक्रिया की जानकारी नहीं ।
3. गोपनीयता का अभाव
4. व्यक्तिगत भावनाओं को प्रकट करने में असफल
5. लचीलेपन का अभाव
6. गलत लिखित संदेश से दुविधा की स्थिति

14.6.2.3 अशाब्दिक सम्प्रेषण (Non Verbal Communication)

इस सम्प्रेषण के अन्तर्गत मानव सम्प्रेषण से संबंधित वे तत्त्व जो मौखिक या लिखित रूप से व्यक्त नहीं होते हैं, सम्मिलित हैं । इसमें विभिन्न प्रकार के संवेगात्मक व्यवहार तथा भावात्मक अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने का उचित प्रयत्न किया जाता है । यह शाब्दिक संकेतों (जैसे आहा, ओह ! आदि), मुद्राओं (gestures) और शारीरिक संचालन (body movements) अथवा शारीरिक भाषा (body movement) द्वारा व्यक्त किया जाता है ।

किसी संदेश की शाब्दिक विषयवस्तु से अधिक प्रभाव उसकी अशाब्दिक विषयवस्तु जैसे - मुस्कुराना, क्रोध करना, आँखें दिखाना, सर झुकाना, आश्चर्य दिखाना आदि मुख मुद्राओं का होता है । शारीरिक भाषा जैसे - पीठ थपथपाना, बार-बार घड़ी देखना, दृष्टि सम्पर्क करना, हाथ

मिलाना आदि सम्प्रेषण में सम्मिलित व्यक्तियों की भावनाओं को व्यक्त करते हैं । इस प्रकार अशाब्दिक संकेत (cues) हमारे दैनिक सम्प्रेषण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।

14.6.3 प्रवाह की दिशा के अनुसार (According to Direction of Flow)

कोई भी शैक्षिक संस्था तभी प्रभावी हो सकती है जब उसमें सम्प्रेषण का प्रवाह खुले रूप में न केवल ऊपर से नीचे - संस्था के प्रबन्धक / ट्रस्टी (trustees) से शिक्षकों तक वरन् ऊपर की ओर शिक्षकों से प्रबन्धक तक हो । किसी संस्था के सतत् प्रभावशीलता की कुंजी उसका बेहतर आंतरिक सम्प्रेषण है ।

संस्थागत सम्प्रेषण तंत्र के तीन प्रमुख माध्यम (medium) निम्नलिखित हैं-

14.6.3.1 ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण (Upward Communication)

किसी संगठन में सूचना का निम्न स्तर से उच्च स्तर तक प्रवाह ऊपर की ओर सम्प्रेषण कहलाता है । संवाद का प्रवाह अधीनस्थों से सहायकों और सहायकों से उच्चाधिकारियों की ओर होता है ।

प्रबन्धक के सिद्धांतविद् (Theorist) काटज और कान्ह (Katz and Kahh) ने उन चार प्रकार की जॉब संबंधित (Job related) सूचनाओं की पहचान की है जिन्हें अधीनस्थों को स्वेच्छा से या संस्था के चाहने पर ऊपर की ओर प्रेषित करनी होती है -

अ. आवंटित कार्य सम्बन्धी प्रदर्शन और समस्याएँ

ब. साथी शिक्षक और उनकी समस्याएँ

स. संस्था के क्रियाकलाप और नीतियाँ

द. कार्य जो करने हैं ।

यह सम्प्रेषण औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों तरह का होता है । जैसे अधिकारियों (जैसे प्रबन्धक, संस्था प्रधान आदि) की कर्मचारियों के साथ मीटिंग, प्रतिवेदन, संघ प्रकाशन व्यक्तिगत पत्र, प्रत्यक्ष विचार-विमर्श आदि । यह तकनीक नवाचारों एवं सुधार के लिए सुझाव, संस्था के विकास, समस्याओं के निराकरण और कार्य की प्रगति की जानकारी के लिए अपनाई जाती है । अधिनस्थों से पृष्ठपोषण हेतु यह सम्प्रेषण प्रक्रिया प्रबन्धकों द्वारा अपनाई जाती है । उदाहरण के तौर पर स्कूल परिस्थिति में जब विद्यार्थी या शिक्षक अपनी कठिनाई या प्रार्थना उच्च अधिकारी के पास भेजते हैं ।

ऊर्ध्वर्गामी सम्प्रेषण के लाभ (Merits of Upward Communication)

1. उच्च स्तरीय प्रबन्ध को अधीनस्थ कर्मचारियों की परिचालन स्तर पर कार्य प्रगति की जानकारी नियमित रूप से होती रहती है ।
2. जिन मामलों में वरिष्ठ अधिकारियों का सहयोग एवं मार्गदर्शन चाहिए मांगा जा सकता है ।
3. कार्य इकाई को प्रभावित करने वाले नये विकास से संबंधित सूचनाएँ उच्च प्रबन्ध को देकर समय पर निदान प्रस्तुत किया जा सकता है ।
4. कर्मचारी सहभागिता और सुझाव के लाभों की प्राप्ति संगठन को होती है ।

ऊर्ध्वर्गामी सम्प्रेषण के दोष (Disadvantages of Upward Communication)

इसके निम्नलिखित दोष हैं -

1. अनुकूल सूचनाएँ ही भेजना (Transmitting only good message) - कर्मचारियों द्वारा प्रतिकूल सूचनाएँ कई कारणों से उच्च स्तर पर नहीं भेजी जाती है ।
2. प्रबन्धन की उपेक्षा (Negligence from the management side) - प्रबन्धन का दृष्टिकोण, खुलापन, उसकी आसानी से उपलब्धता आदि के अभाव में यह सम्प्रेषण बाधित हो जाता है ।
3. प्रबन्धक का दृष्टिकोण, खुलापन, उसकी आसानी से उपलब्धता आदि के अभाव में यह सम्प्रेषण बाधित हो जाता है ।

14.7.3.2 निम्नगामी सम्प्रेषण (Downward Communication)

यह सम्प्रेषण उच्चाधिकारियों से सहायकों और सहायकों से अधीनस्थों की ओर प्रवाहित होता है। सभी संस्थाओं में यह सम्प्रेषण आवश्यक है । यह सम्प्रेषण लिखित आदेशों, प्रतिवेदनों, नियमों, निर्देशों, मेन्युअल आदि द्वारा होता है । नीचे की ओर सम्प्रेषण मौखिक व लिखित दोनों माध्यमों से हो सकता है । मौखिक माध्यमों में अनौपचारिक सम्प्रेषण, साक्षात्कार, मीटिंग, कॉन्फरेन्स अथवा यंत्र जैसे - टेलीफोन, प्रत्यक्ष संवाद आदि द्वारा संभव है । लिखित प्रतिवेदन हेंडआऊट, फोल्डर, रिपोर्ट, बुलेटिन, पोस्टर, पत्र, मेमो, निर्देश, आदेश, स्पष्टीकरण आदि रूप में हो सकता है । इस प्रकार का सम्प्रेषण प्राय: प्रबन्धकों द्वारा सूचनाओं, संस्था के मुख्य उद्देश्यों तथा नीतियों को संचालन स्तर (operational level) पर पहुँचाने के लिए किया जाता है । इसमें प्रशासक को निर्देश शिक्षकों की रुचि, शारीरिक व क्षमता के अनुसार व उन्हें विश्वास में लेकर देने चाहिए ।

निम्नगामी सम्प्रेषण के लाभ (Advantages of Downward Communication)

1. यह संस्था के प्रबन्ध के विभिन्न उद्देश्यों और नीतियों को प्रेषित करने में है ।
2. इसमें दोनों लिखित व मौखिक माध्यमों का प्रयोग किया जा सकता है अक्सर लिखित
3. माध्यम का प्रयोग किया जाता है ।
4. अनुवर्तन (feedback) द्वारा उच्च स्तरीय सम्प्रेषण को लाभदायक बनाया जा सकता है।
5. इसके क्रियान्वयन में कार्यालयी (official) सहायता प्राप्त है ।

निम्नगामी सम्प्रेषण के दोष (Disadvantages of Downward Communication)

1. सम्प्रेषण में देरी इसका प्रमुख दोष है ।
2. इसमें अनुवर्तन का स्थान नहीं है ।
3. प्रबन्ध सामान्यतया एक-तरफा सम्प्रेषण करते हैं ।
4. कई बार बिना उच्च अधिकारियों की जानकारी के कार्य को शीघ्रता से करवाने के लिए सीधे ही सम्बन्धित अधीनस्थों को सूचना भेज दी जाती है, जिससे सम्प्रेषण में रिक्तता आ जाती है ।

नीचे के सम्प्रेषण को प्रभावी बनाने हेतु अधिकारी को अधिक ज्ञानी होना चाहिए । अपने अधीनस्थों का विश्वास जीतकर, सही शब्दों, भाषा और शैली जो अधीनस्थों के अनुकूल हो अपनाकर और सकारात्मक दृष्टिकोण द्वारा अधिकारी नीचे के सम्प्रेषण को अधिक प्रभावी बना सकता है ।

14.6.3.3 क्षैतिज सम्प्रेषण (Horizontal or Lateral Communication)

किसी संगठन में एक ही स्तर के व्यक्तियों के मध्य सम्प्रेषण क्षैतिज सम्प्रेषण अथवा समतल सम्प्रेषण कहलाता है । क्षैतिज सम्प्रेषणों में सम्प्रेषण का प्रवाह एक ही उच्चाधिकारी के नीचे कार्यरत विभिन्न अधीनस्थों या विभागों के मध्य होता है ।

इस तरह का सम्प्रेषण प्राय: अनौपचारिक होता है और मीटिंग, सेमीनार, कोन्फ्रेंस में दिखाई देता है । ऐसा सम्प्रेषण विभिन्न संस्थाओं, संस्था के विभागों की गतिविधियों व व्यक्तिगत प्रयासों के समन्वय में सहायक है । इसमें बिना प्रबन्धक या संस्था प्रधान को सम्मिलित किए सीधे ही शिक्षक या विभिन्न विभागाध्यक्ष परस्पर मिलकर अपने प्रयासों से संस्था के कार्यों को सम्पन्न करने में योगदान देते हैं । एक अच्छा क्षैतिज सम्प्रेषण प्रयासों की पुनरावृति को रोकेगा, सिस्टम में समस्याओं की पहचान व हल करवाएगा, शीघ्र निर्णय लेने के लिए आधार प्रदान करेगा तथा सहयोगियों में सहभागिता, आत्मनिर्भरता व स्वनिर्णय की भावना का विकास करेगा ।

क्षैतिज सम्प्रेषण में भी कई प्रकार के मौखिक तथा लिखित माध्यमों का उपयोग होता है ।

क्षैतिज सम्प्रेषण के लाभ (Advantage of Horizontal Communication)

1. यह एक कार्य-इकाई के कार्यों में समन्वय लाता है ।
2. एक कार्य-इकाई के अन्तर्गत समस्या समाधान का मार्ग प्रशस्त करता है ।
3. एक संगठन की विभिन्न इकाइयों के मध्य सूचना प्रबन्ध को सुगम बनाता है ।
4. एक संगठन की विभिन्न इकाइयों के मध्य द्वन्द्व का प्रबन्ध (Conflict Management) करता है ।

क्षैतिज सम्प्रेषण के दोष (Disadvantages of Horizontal communication)

1. आपसी मनमुटाव के कारण व्यक्ति सूचनाएँ छिपा सकता है जो कि उनको तथा कार्य-इकाई को नुकसान पहुँचा सकती है ।
2. यदि अधिनस्थों के मध्य क्षैतिज सम्प्रेषण का कोई मुद्दा नहीं हो या आवश्यकता नहीं हो तो
3. इस प्रकार के सम्प्रेषण से अनावश्यक और खाली गपशप और अफवाह फैलाने का कार्य होगा । अत: इस तरह से यह सम्प्रेषण संस्था के लिए नुकसानदायक होगा ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1 किसी भी संस्था में व्यक्तियों व समूहों के मध्य सम्प्रेषण क्यों है? कोई चार कारण बताइए ?

2	सम्प्रेषण के प्रकारों को वर्गीकृत कीजिए ।
3	औपचारिक तथा अनौपचारिक सम्प्रेषण में अन्तर स्पष्ट कीजिए.
4	एक शैक्षिक संस्था में ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण के उपयोग के क्या लाभ हैं?

14.6.4 सम्प्रेषण तन्त्र (Communication Networks)

सम्प्रेषण व्यक्ति और समूह को एक सामाजिक प्रणाली से जोड़ता है । किसी संगठन की प्रभावशीलता उन अनेकों छोटे समूह की कार्यप्रणाली पर निर्भर करते हैं जो उस सम्पूर्ण संगठनात्मक प्रणाली में कार्यरत है व उससे अंतःक्रिया करते हैं । इन छोटे समूहों की गतिविधियाँ काफी हद तक उनके सूचना प्रवाह पर निर्भर करती है । अत: सम्प्रेषण तन्त्र अथवा सम्प्रेषण माध्यम (Channels) की अवस्था महत्वपूर्ण हो जाती है ।

एक सम्प्रेषण तन्त्र उन विशिष्ट क्षेत्रों वाले व्यक्तियों से बना होता है, जो सम्प्रेषण प्रवाह में कड़ी की तरह अंतर्सम्बन्धित हैं । ये तंत्र सम्प्रेषण की विषयवस्तु व प्रवाह दोनों को नियंत्रित करते हैं और संगठनात्मक संरचना, संस्थागत संस्कृति, विश्वासों और मूल्य प्रणाली का समर्थन करते हैं, जो उस संस्था को प्रभावी तरह से कार्य करने में मदद करें । जैसे-जैसे समूह का कार्य अग्रसर होता है, अंतवैयक्तिक सम्प्रेषण के विभिन्न प्रतिरूप (patterns.) लघु समूह में उत्पन्न होते हैं । ये निम्नलिखित प्रकार के होते हैं

1. चक्रीय या सितारा तव (A Wheel or Star Network)

यह वह प्रतिरूप है जिसमें सूचना का प्रवाह प्रत्येक आरा (spoke) के अंत के व्यक्ति तथा मध्य' व्यक्ति के बीच होता है । आदाओं के अंत के व्यक्तियों में परस्पर प्रत्यक्ष नहीं होता है । इसे चित्र द्वारा निम्नलिखित तरह से व्यक्त कर सकते हैं-

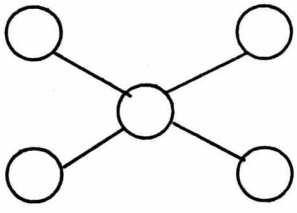

व्हील तन्त्र

(A Wheel Network)

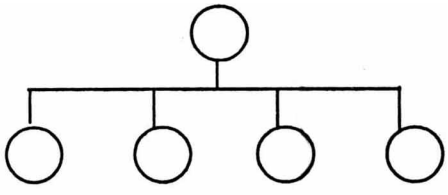

स्टार तन्त्र

(A Star Network)

एक व्हील नेटवर्क एकतंत्रात्मक स्थिति के कार्य-समूह की विशेषता है, जिसमें समूह का प्रबन्धक अर्थात संस्था प्रधान का अन्य समूह सदस्यों से सम्प्रेषण होता है ।

2. शृंखला तन्त्र (A Chain Network) - इस नेटवर्क में प्रत्येक सदस्य। प्रत्येक सिरे के व्यक्ति के अलावा, स्वयं से ऊपर व नीचे के व्यक्ति से सम्प्रेषण करता है । अंतिम व्यक्ति एक ही सदस्य से सम्प्रेषण कर पाते हैं ।

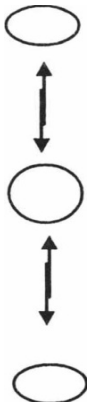

श्रृंखला तंत्र (A Chain Network)

चेन नेटवर्क ऊर्ध्वाधार पदानुक्रम (Hierarchy) का विशिष्ट सम्प्रेषण प्रतिरूप है जिसमें अधिकतर सम्प्रेषण आदेश शृंखला के ऊपर नीचे विचरता है । किसी संगठन में अधिकांश अनौपचारिक सम्प्रेषण इसी प्रतिरूप से होता है ।

3. वृत तन्त्र (A Circle Network) - इस नेटवर्क में प्रत्येक व्यक्ति अपने आसपास के दोनों तरफ के व्यक्तियों से सम्प्रेषण करता है परन्तु किसी अन्य से नहीं ।

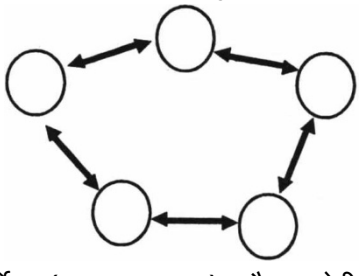

ऐसा अक्सर टास्क-फोर्सेस (Task forces) और कमेटी (Committees) में होता है । इस नेटवर्क में सदस्यों का मनोबल उच्च रहता है और जटिल समस्याओं के लिए यह नेटवर्क प्रभावी व शीघ्रता से सम्पन्न होता है ।

4. 'वाय' तन्त्र (A 'Y' Network) - इस नेटवर्क में व्हील व चेन नेटवर्क दोनों की ही विशेषताएँ हैं।

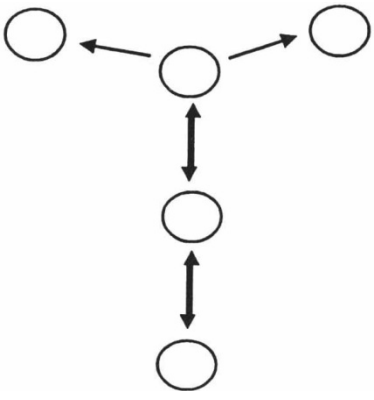

वाय नेटवर्क (A 'Y' Network)

इस नेटवर्क के ऊपरी भाग की प्रकृति कील नेटवर्क और निचले की प्रकृति चेन नेटवर्क जैसी है ।

5. स्वतंत्र अथवा विकेन्द्रीकृत (Tree or Decentralised Network). इस नेटवर्क में जिसे सर्व- माध्यम-तन्त्र (All Channel Network) भी कहते हैं, में सभी सदस्य अन्य सदस्यों से सम्प्रेषण करते हैं ।

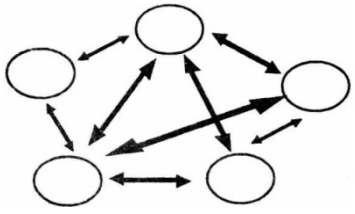

यह नेटवर्क अनौपचारिक समूहों में पाया जाता है जिनमें कोई औपचारिक संरचना, नेता अथवा कार्य सम्पन्न करने को नहीं होता है ।

किसी भी संस्था का सम्प्रेषण प्रतिरूप स्थायी नहीं होता है और वह कार्य, अंतः क्रियाओं, भूमिका, सदस्यता आदि के साथ परिवर्तित होता रहता है । ये नेटवर्क स्वत: ही बनते है जैसे-जैसे संस्था में शिक्षकों के मध्य अंतःक्रिया होती है । सम्प्रेषण प्रवाह पर नियंत्रण उस नेटवर्क में केन्द्रीय व्यक्ति द्वारा होता है ।

लघु-समूह सम्प्रेषण नेटवर्क के प्रकारों और विशेषताओं का निर्धारण निम्नलिखित कारकों द्वारा होता है -

(1) **कार्य (Tasks)** - इसके अंतर्गत निर्णय-लेना, समान कार्य को बाँटना, किसी कार्य करने के लिए एक ही समिति में होना आदि सम्मिलित हैं ।

(2) **वातावरण (Environment)** - इसमें कक्ष का प्रकार, कुर्सियों टेबलों की स्टाफ-रूम में व्यवस्था, व्यक्तियों के बीच में भौगोलिक दूरी आदि आते हैं ।

(3) **वातावरण विशेषताएं (Environment)** - इसमें पर पकड़ और विशेषज्ञता, खुलापन, वक्तव्य में प्रवाहशीलता और स्पष्टता, समूह के साथ कितनी आदि सम्मिलित है ।

(4) **सन् प्रदर्शन तत्व (Group Performance Factors)** - इसमें की धर्म, जाति, भाषा, समूह का आकार, मानदण्ड और सामंजस्य की दृष्टि से बनावट सम्मिलित है ।

14.7 शिक्षा प्रबंधन में सम्प्रेषण की श्रृंखलाएं (Communication Channels in Education Management)

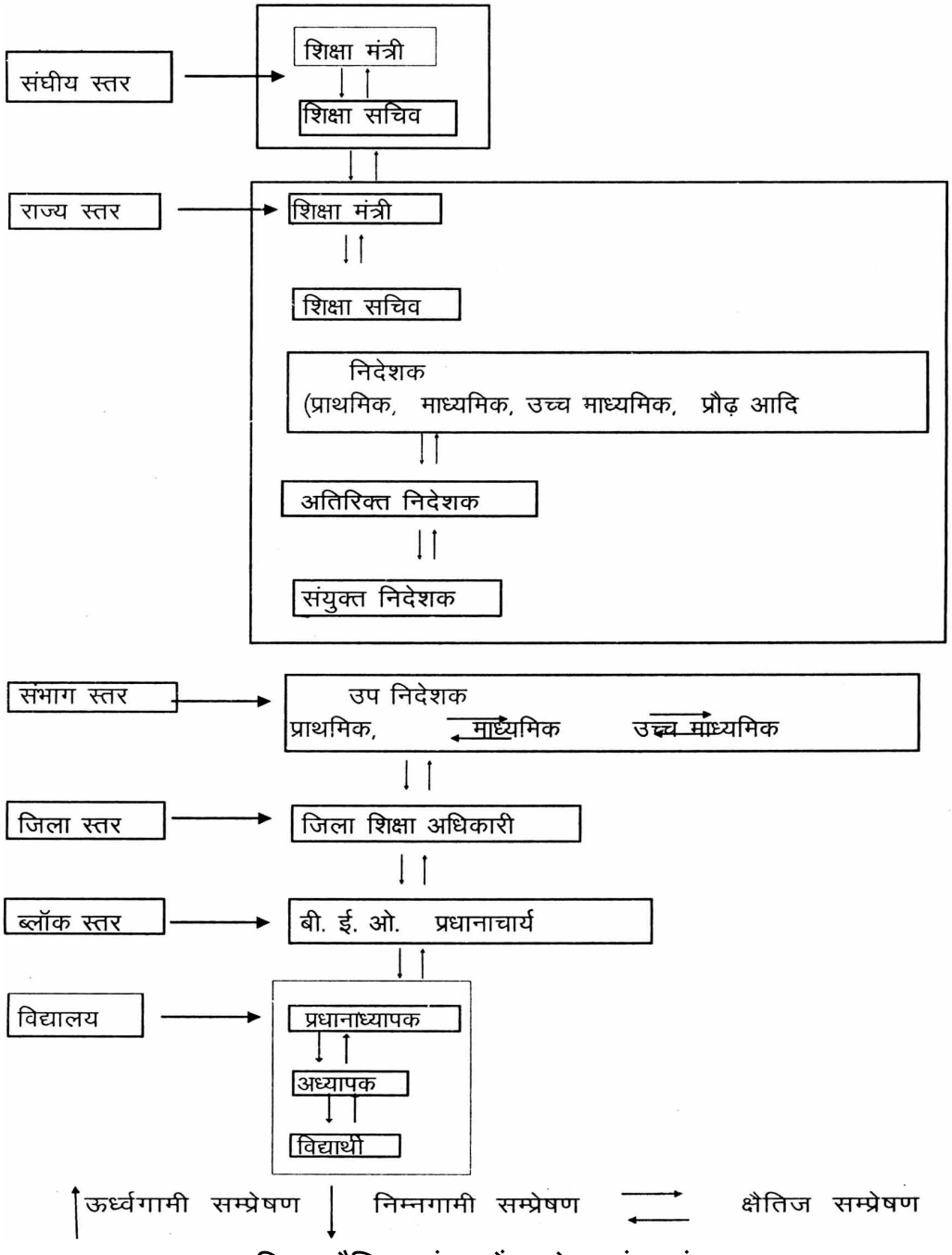

चित्र - शैक्षिक प्रबंधन में सम्प्रेषण श्रृंखलाएं

विद्यालय स्तर के शैक्षिक प्रबंधन में सम्प्रेषण शृंखलाओं को चित्र में दर्शाया गया है । इस सम्प्रेषण शृंखला में संदेश उच्चतम केन्द्रीय स्तर से न्यूनतम विद्यालय स्तर तक निम्नगामी सम्प्रेषण द्वारा तथा विद्यालय स्तर से संघीय स्तर तक ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण द्वारा विभिन्न स्तरों होता हुआ प्रवाहित होता है । साथ ही एक ही स्तर पर विभिन्न अधिकारियों के मध्य क्षैतिज सम्प्रेषण होता है ।

इन सम्प्रेषण शृंखलाओं में संदेश के रूप में विद्यालय प्रबंधन से सम्बन्धित कार्य जैसे- शिक्षा नीतियों वित्त सम्बन्धी निर्णय, शैक्षिक मानदण्ड, मूल्यांकन प्रणाली, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक, शिक्षकों के वेतन स्थानान्तरण, नियुक्तियाँ, शिक्षक संघ की माँगें, सुझाव, शैक्षिक विकास, शैक्षिक समस्याएँ आदि एक स्तर से दूसरे स्तर तक प्रवाहित हो सकते हैं । ये संदेश लिखित अथवा मौखिक । माध्यमों द्वारा प्रवाहित होते हैं ।

निम्नगामी सम्प्रेषण में सूचना उच्चतम केन्द्रीय स्तर से शिक्षा सचिव के माध्यम से कई स्तरों - राज्य जिला ब्लॉक संभाग स्तर के अधिकारियों से होती हुई विद्यालय स्तर तक पहुँचती है । ये सूचना शिक्षा से संबंधित लिखित आदेश, नियम, मानदण्ड, निर्देश, नीति आदि के रूप में तेती है । यह सूचना मौखिक माध्यमों जैसे - इंटरव्यू फोन, पब्लिक एड्रेस प्रणाली, रेडियो, टीवी. आदि अथवा लिखित माध्यमों जैसे - पत्र, मेमो, रिपोर्ट, फोल्डर, बुलेटिन, हेंडबुक्), पोस्टर, अखबार अथवा इलेक्ट्रोनिक, मीडिया जैसे- इंटरनेट, एड्यूसेट आदि द्वारा प्रेषित की जा सकती है।

शैक्षिक प्रबंधन में ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण सामान्यत: शैक्षिक सुझावों, समस्याओं, (grievances), प्रतिक्रियाओं, स्पष्टीकरण, व्याख्या (explanations), मेमोस (memos) का जवाब उच्चाधिकारियों को कोई प्रस्ताव भेजने, आदि के लिए होता है । इस सम्प्रेषण की प्रकृति सुझावात्मक होती है, जिते उच्च स्तर के अधिकारी कम पसंद करते हैं परन्तु शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति व कर्मचारियों के अभिप्रेरण के लिए यह आवश्यक है । इसके द्वारा अधिकारियों को प्रतिपुष्टि प्राप्त होती है जिससे वे शैक्षिक प्रबंधन में सुधार कर सकते है । यह सम्प्रेषण लिखित रूप में व्यक्तिगत पत्रों द्वारा, मौखिक रूप में मीटिंग, ग्रेपवाइन, राय सर्वेक्षण, प्रत्यक्ष वार्तालाप, फोन आदि माध्यम द्वारा हो सकता है ।

इसके अतिरिक्त एक ही स्तर के अधिकारियों जैसे - राज्य स्तर के विभिन्न निदेशकों अथवा संभाग स्तर के उपनिदेशकों द्वारा अपने-अपने विभाग से संबंधित कार्यों के लिए का प्रवाह क्षैतिज रूप से होता है । यह सम्प्रेषण मीटिंग, सेमिनार, कान्फ्रेंस आदि में लिखित और माध्यमों द्वारा होता है ।

14.8 सम्प्रेषण में बाधाएं (Barriers to Communication)

सम्प्रेषण का मुख्य उद्देश्य किसी व्यक्ति या समूह को किसी संदेश का अर्थबोध कराके प्रभावित करना है परन्तु कभी-कभी कई कारक ऐसे होते हैं जो स्पष्ट, सरल व सुचारू सम्प्रेषण को रोकते हैं या संदेश को विकृत (distort) करते हैं । इन बाधाओं के कारण प्राप्तकर्ता के पास संदेश, गलत या अपूर्ण ग्रहण किया जाता है, जिससे सम्प्रेषण के इच्छित उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो पाती है । ये बाधाएँ मुख्यत: निम्नलिखित हो सकती हैं-

1. संगठनात्मक बाधाएँ (Organisational barrier)

जब दायित्वों और अधिकारों के स्तरों का निर्धारण नहीं होता है, तब थे बाधाएँ उत्पन्न होती हैं । ये दूरस्थ सम्प्रेषण, सम्प्रेषण की अधिक परतें, निर्देशों के अभाव तथा अत्यधिक सम्प्रेषण भार के कारण उत्पन्न होती हैं । वरेन जी बेनिस के अनुसार, '' जब संवाद विभिन्न

स्तरों से" गुजरता है तो वह संवाद प्राप्तकर्ता को ठीक उसी रूप में प्राप्त नहीं होता क्योंकि प्रत्येक मध्यम संवाद में कुछ न कुछ कमी करता है । " इनके अतिरिक्त संगठनात्मक बाधाओं के अन्य कारण हैं -

(1) संस्था की नीति का सम्प्रेषण के प्रवाह (क्षैतिज अथवा ऊर्ध्वाधर) में सहायक नहीं होना ।

(2) संस्था के नियमों का कठोर व औपचारिक होना ।

(3) संस्था में उच्चतम प्रबंध व कार्यकर्ताओं के बीच दूरी होना, पर्यवेक्षण के कई स्तर होना ।

(4) सम्प्रेषण अंतराल होना ।

(5) संदेश भेजने से संबंधित सुविधाओं जैसे - टंकन, दृश्य-श्रव्य माध्यमों, यंत्रों, संदेशवाहकों आदि का अभाव होना ।

(6) उच्चाधिकारियों की स्थिति और पदस्थिति व उनका अधीनस्थों से सम्बन्ध के कारण विशेषकर ऊपर की ओर सम्प्रेषण में, उनके द्वारा सुनवाई नहीं करना, उत्तर नहीं देना और सूचना रोके रखना आदि ।

2. बोधक बाधाएँ (Semantic Barriers)

बोधक बाधाएँ भाषा से संबंधित बाधाएँ होती हैं । सम्प्रेषण में संकेतों का अर्थापन व निरुपण होता है । यानि कुछ शब्दों का अलग-अलग व्यक्तियों के लिए एवं क्षेत्रों में अलग-अलग अर्थ होता है । भाषायी बाधाएँ दोनों मौखिक व लिखित सम्प्रेषण में विद्यमान होती हैं । कुछ सामान्य तरह की बोधक बाधाएँ निम्नलिखित हो सकती हैं-

(1) **गलत तरह से अभिव्यक्त किया गया संदेश (Badly Expressed Message)** - जिसमें स्पष्टता व पैनापन का अभाव हो गलत संदेश पहुँचाता है । संदेश में स्पष्टता व पैनापन के मुख्य कारण हैं - अपरिचित व जटिल शब्दों का उपयोग, व्यर्थ व अप्रासंगिक शब्दावली का प्रयोग, अनावश्यक व गलत व्याकरण का उपयोग, सरलता का अभाव, लम्बे वाक्यों का प्रयोग, खराब वाक्य संरचना व भाषा, विचारों का खराब संगठन, खोखले शब्दों व मुहावरों का उपयोग, अपर्याप्त शब्द भंडार और प्रभावों को स्पष्ट करने में नाकाम रहता है ।

(2) **गलत अनुवाद (Faulty Translation)** - सम्प्रेषण में संकेतन (encoding) प्रक्रिया द्वारा विचारों, राय, भाषाओं को शब्दों, संकेतों, क्रियाओं, चित्रों और दृश्य-श्रव्य माध्यमों में अनुवाद किया जाता है । प्रत्येक सम्प्रेषणकर्ता को अपने साथियों, अधिकारियों आदि से कई संदेश प्राप्त होते हैं जिन्हें उसे प्राप्तकर्ता के अनुसार पुन: अनुवाद करन की आवश्यकता होती है । यदि वह गलत अनुवाद करता है तो प्राप्तकर्ता उसे समझ नहीं पाता है ।

(3) **अस्पष्ट अवधारणाएँ (Unclarified Assumption)** - कुछ चीजें जो मान ली जाती हैं, वे संदेश स्पष्ट होने पर भी प्राप्तकर्ता को अस्पष्ट ही रहती हैं जिससे निर्णय लेने व क्रियान्वयन में देरी संभव है ।

(4) **तकनीकी शब्दावली (Jargon) -** वह भाषा जो विज्ञान, कानून, तकनीकी के लिए विशिष्ट होती है, सीमित सम्प्रेषण करती है ।

3. व्यक्तिगत बाधाएँ (Personal Barriers)

संगठनात्मक ढाँचा कई तरह के पदों व स्तरों की रचना करता है, जो द्वी-मार्गी सम्प्रेषण में बाधा उत्पन्न करते हैं । वरिष्ठ और अधिनस्थ व्यक्तियों के किसी संगठनात्मक ढाँचे में सम्बन्ध, सूचना के प्रवाह को प्रभावित करता है । कई अफसर और उच्चस्थ अधिकारी अधीनस्थों से दूरी और अपना स्तर (Status) बनाए रखते हैं और कई अन्य तरह से वे सम्प्रेषण को बाधित करते हैं, जैसे :-

(1) अभिवृत्ति (Attitude) - उच्चाधिकारियों की नहीं सुनने वाली अभिवृत्ति, सूचना रोके रखना, अधीनस्थों को नीचा मानना आदि ।

(2) अधिकार बनाए रखना (To Maintain Authority) - प्रबन्धक अक्सर अपनी अहम् संतुष्टि के प्रयास में अधीनस्थों की समझ व बुद्धिमता को कम आँकते हैं और सूचना को पूर्ण रूप में नीचे प्रवाहित नहीं होने देते ।

(3) आत्म संतुष्टि (Self Satisfaction) - संस्था में उच्चस्थ लोग उन संदेशों को जो उनके विचारों और विश्वास के प्रतिकूल हो नापसंद करते हैं और उन्हें बाधित (block) कर देते हैं, जिससे कि अधीनस्थ उस सूचना की प्राप्ति के लिए उनके इर्द-गिर्द घुमें ।

(4) उचित शृंखला का सिद्धांत (Principle of Proper Channel) - कार्यलायिक (Official) सम्प्रेषण शृंखला ही औपचारिक सम्प्रेषण का एकमात्र मार्ग है, जिसका अर्थ है सभी सम्प्रेषण उच्चस्थ लोगों के माध्यम से क्रम से प्रवाहित होने चाहिए । इससे सम्प्रेषण में विलम्ब हो जाता है ।

(5) घमंड (Prejudice) - उच्चस्थ लोगों में घमंड सम्प्रेषण को बाधित करता है ।

(6) अविश्वास (Distrust) - उच्चस्थ लोग अक्सर सूचना को फिल्टर या स्क्रीन कर लेते हैं । किसी भी कारण से उन पर अविश्वास सम्प्रेषण को रोकता है ।

(7) जी हजूरी करने वाले ('Yes' Superiors) - जो व्यक्ति हमेशा उदासीन रहते हैं और मालिक (बोस/प्राचार्य आदि) को खुश करने के लिए काम करते हैं ।

(8) व्यक्तिगत जटिलता (Personal Complexity) - अधीनस्थों पर विश्वास की कमी, क्योंकि अधिकारी स्वयं को अधिक सक्षम मानते हैं और अपनी गलतियाँ उन पर उजागर नहीं करते हैं, जिससे सम्प्रेषण बाधित होता है ।

(9) समय की कमी (Lack of Time) - उच्चस्थ लोग स्वयं पर अधिक कार्यभार महसूस करते हैं, जिससे वे अधीनस्थों को समय नहीं देते हैं ।

(10) सूचना का भार (Message Overload) - संदेशों की अधिकता संदेश खत्म करना, गलत देना, देरी करना, छान कर देना, अंदाज से देना आदि समस्याएँ उत्पन्न होती हैं ।

(11) अधीनस्थों में बाधाएँ (Barriers in Subordinates) - अधीनस्थ भी ऊपरी सम्प्रेषण में बाधा डालते हैं जैसे - अपनी गलतियाँ बताना नापसंद करना, नए विचारों का करना, व्यक्तिगत कारणों से ऊपर की ओर संदेश सम्प्रेषित करने में हिचकना प्रोत्साहन व लाभ का अभाव आदि ।

4. मनौवैज्ञानिक बाधाएँ (Psychological Barriers)

मनौवैज्ञानिक बाधाएँ और भावनाएँ संगठनात्मक सम्प्रेषण प्रक्रिया में प्रमुख बाधाएँ हैं । इनमें से प्रमुख हैं ?

(1) **सम्प्रेषण का अविश्वास (Distrust of Communication) -** उच्च अधिकारियों द्वारा संदेश की स्क्रीनींग और इनफलीरेशन (Screening and infilteration) करना, तर्कहीन निर्णय लेना, सही न्याय न करना आदि के कारण अधीनस्थ सही तरह से कार्य नहीं कर पाते ।

(2) **ध्यान नहीं देना (Inattention)** - संस्था में शिक्षक प्राचार्य द्वारा जारी नोटिस, सर्कुलर, मिनट्स, रिपोर्ट या मौखिक सम्प्रेषण पर ध्यान नहीं देते हैं, जिसके पीछे कई मनोवैज्ञानिक कारण होते हैं ।

(3) **पूर्व मूल्यांकन (Premature Evaluation) -** कई बार कार्य पूर्ण होने से पूर्व ही मूल्यांकन करने से सूचना का हस्तानान्तरण रूक जाता है ।

(4) **सम्प्रेषण की अनुत्तीर्णता (Failure of Communication)** - कई बार आलसपन, यह मान लेना, कि "सब जानते हैं", जान बूझकर दूसरे को शर्मिंदा करना आदि कारणों से सम्प्रेषण आगे नहीं पहुँच पाता है ।

(5) **संवहन हानि और कम धारण शक्ति (Transmission Loss and Poor Retention) -** जब संदेश कई स्तरों से निकलता है तो उसके अर्थ व शुद्धता में कमी आ जाती है । मौखिक सम्प्रेषण में 30 प्रतिशत सम्प्रेषण बाधित होता है । अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि कर्मचारी 50 प्रतिशत और सुपरवाईजर 60 प्रतिशत संदेश ही धारण करते हैं ।

(6) अन्य बाधाएँ (other barriers)निम्नलिखित हैं -

(1) बदलाव का विरोध

(2) व्यक्तियों द्वारा वातावरण के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रत्यक्षीकरण

(3) बंद दिमाग - यह सोचना कि हम सब कुछ जानते हैं और नए विचार नहीं लेना ।

(4) डर - अधीनस्थों द्वारा पूर्ण सूचना ऊपर की ओर प्रवाह में डर ।

(5) सम्प्रेषण क्षमता का अभाव

(6) दूरी और समय - देर से भेजे संदेश बेकार हो जाते हैं ।

स्व मूल्यांकन (Self Evaluation Questions)

1 सम्प्रेषण तंत्रों के प्रकारों के नाम बताइए ?

2 शैक्षिक प्रबंधन में विभिन्न स्तरों पर सम्प्रेषण श्रृंखलाओं का वर्णन कीजिए ।

3 शैक्षिक सम्प्रेषण में एक प्रबंधक को कौनसी प्रमुख बाधाओं का सामना करना पड़ता है? लिखिए ।

14.9 शैक्षिक प्रबन्धन में सम्प्रेषण से संबंधित शोध (Researches related to Communication in Educational Management)

सम्प्रेषण की प्रकृति, प्रक्रिया, तत्त्व, प्रभाविता से सम्बन्धित कई शोध हुए हैं, जिनके निष्कर्ष सम्प्रेषण को समझने में सहायक हैं । यहाँ प्रेषक, संदेश, तथा ग्राही से सम्बन्धित हुए शोध के निष्कर्ष दिए जा रहे हैं :-

1. प्रेषक से सम्बन्धित शोध-निष्कर्ष -

(अ) यदि ग्राही को उच्च रूप से विश्वास योग्य तथा विशेषज्ञ के रूप में माना जाता है तो सम्प्रेषण में सुविधा रहती है ।

(ब) जब प्रेषक को ग्राही स्वयं जैसा माने तो सम्प्रेषण आसान हो जाता है ।

(स) जब प्रेषक ग्राही के प्रति समझ (empathy) दर्शाता है तो सम्प्रेषण सफल हो जाता है ।

(द) असमान होने के बावजूद यदि प्रेषक और ग्राही सम्प्रेषण कर सकते हैं तो उनकी अभिवृत्ति व विश्वास समान हो जाते हैं ।

(य) यदि प्रेषक क्रोध या असंतोष जागृत कर देता है, तब ग्राही का दृष्टिकोण प्रेषक के साथ-साथ समूह लक्ष्य अथवा संस्था जिससे उसकी पहचान है, के प्रति सही नहीं रहता हे ।

(र) ग्राही और प्रेषक के मध्य जितना अधिक अंतर होगा सम्प्रेषण में उतनी ही बाधा होगी ।

2. संदेश (Message) से संबंधित शोध-निकर्ष -

(अ) जो संदेश नकारात्मक भावना वाली प्रतिक्रिया जागृत कर सकते हैं, उनके प्रति लोगों को तैयार करना पड़ता है ।

(ब) जो संदेश गहन दुश्चिंता महसूस कराते हैं उसकी आगे की विषयवस्तु पर लोग ध्यान नहीं देते हैं ।

(स) यदि ग्राही किसी संदेश में कम रुचि दिखा सकता है तो मुख्य चर्चा को पहले प्रस्तुत करना चाहिए ।

(द) आग्रहपूर्वक तार्किक विवाद उच्च बौद्धिकता वालों को अधिक प्रभावित करते हैं ।

(य) आग्रहपूर्वक संदेश (Persuasive Message) जो बिना सहारे के, गलत और अतार्किक विवाद पर निर्भर रहते हैं, कम बौद्धिकता वालों को अधिक प्रभावित करते हैं।

(र) जो संदेश अधिक इन्द्रियों को अच्छे लगते हैं वे एक ही इन्द्रिय को अच्छे लगने वाले संदेश से अधिक प्रभावी होते हैं ।

3. ग्राही (Receiver) से संबंधित शोध-नष्कर्ष -

(अ) यदि ग्राही को समूह की सदस्यता बनाए रखने दिया जाता है तो वह संदेश की पालना / पुष्टि अपनी राय तथा व्यवहार दोनों से करेगा ।

(ब) यदि ग्राही समूह की सदस्यता को अत्यधिक महत्त्व देता है तो समूह के अन्य सदस्यों के संदेशों को वह अत्यधिक मूल्य देगा ।

(स) अत्यधिक साख व लोकप्रियता वाले ग्राही समूह के नियमों को स्वीकार्य करने वाला दृष्टिकोण रखते हैं और इन नियमों के विरुद्ध जो बाह्य प्रभाव हैं, उनका विरोध करते हैं ।

(द) जो ग्राही उच्च स्व-सम्मान वाले हैं, वे कम स्व-सम्मान वालों की तुलना में कठिनता से प्रभावित होते हैं ।

(य) अलग-थलग व्यक्ति आग्रहपूर्वक संदेशों से कम प्रभावित होते हैं ।

(र) निर्णय लेने की प्रक्रिया में ग्राही को सम्मिलित करने से उसके द्वारा उसे लागू करने के अवसर बढ़ जाते हैं ।

(ल) जो संदेश ग्राही के वर्तमान ज्ञान, दृष्टिकोण और विश्वास से मेल खाते हैं उन्हें वह शीघ्रता से ग्रहण करता है ।

(व) ग्राही अपने वर्तमान ज्ञान, दृष्टिकोण और विश्वास के संदर्भ में संदेश का चयन प्रत्यक्षीकरण और निरुपण करते हैं और उसे संजोए रखते हैं ।

प्रेषक, संदेश और ग्राही की प्रकृति, शोधों से प्राप्त निष्कर्षों से स्पष्ट होती है । यदि शैक्षिक संस्थाओं के प्रबंधक इन निष्कर्षों को ध्यान में रखकर संदेश प्रेषित करें तो सम्प्रेषण सुगम व प्रभावी होगा और व्यक्तियों की कार्यक्षमता बढ़ेगी, काम आसानी से होगा और संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति सरलता से होगी ।

साथ ही ये शोध-निष्कर्ष सम्प्रेषण से संबंधित कई अन्य शोध क्षेत्रों जैसे - शैक्षिक संस्थाओं में सम्प्रेषण को प्रभावित करने वाले तत्त्व, सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं, संदेश का संकेतन व विसंकेतन, सम्प्रेषण माध्यमों की प्रभाविता, सम्प्रेषण के विभिन्न प्रकारों आदि की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं ।

सम्प्रेषण माध्यमों से संबंधित संगठनात्मक शोध जो अब तक हुए हैं, में अब तक मौखिक और लिखित संदेशों के लाभ व दोषों तक ही सीमित है । शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण से संबंधित अन्य क्षेत्रों जैसे - सम्प्रेषक की विशेषताएँ, प्राप्तकर्ता की विशेषताएँ, सम्प्रेषण में भावात्मक कारक व अन्य कारक जैसे - ज्ञानात्मक दूरी (cognitive distance), ज्ञानात्मक समझ (cognitive empathy), सम्प्रेषण शुद्धता (communication accuracy), सम्प्रेषण व मानव सम्बन्ध (human relations) आदि पर भी शोध कार्य लिए जा सकते हैं ।

14.10 वैश्विक दृश्य में सम्प्रेषण के बदलते परिदृश्य (Changing Trends of Communication in Global Scenario)

वैश्विक परिदृश्य में सम्प्रेषण की महत्ता दिनों दिन बढ़ती जा रही है । आज के युग में सम्प्रेषण की लोकप्रियता के कई कारण हैं । उनमें से कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :-

1. **ज्ञान का विस्फोट (Knowledge Explosion) -** संस्थाओं में सभी संकाय सदस्यों को हर पल जुड़ते नवीन ज्ञान से अवगत रखने के लिए सूचनाओं का प्रवाह हर स्तर पर होते रहना आवश्यक है ।

2. **सिमटती दूरियाँ (Decreasing Distance) -** वैश्वीकरण के युग में आज दूरियाँ सिमट गई हैं । इस वैश्विक गाँव में सम्प्रेषण के अभाव में व्यक्ति अलग व अकेला हो जाएगा । इससे वह बदलती विचारधाराओं, सूचनाओं, बदलावों आदि का उपयोग अपनी संस्था की प्रगति व उन्नति में नहीं कर पाएगा ।

3. **तकनीकी बदलाव (Technological Changes) -** तकनीकी युग ने सम्प्रेषण के माध्यमों में यंत्रों के रूप में कई साधन दिए हैं । संचार साधनों ने दूरस्थ सम्प्रेषण की बाधाओं को खत्म कर दिया है । आधुनिक सम्प्रेषण प्रणाली की क्षमता, तकनीकों के कारण असीमित व तीव्रगामी हो गई है, जबकि व्यक्तियों की ग्रहण क्षमता और परिपाक करने की दर तो सीमित ही है । आधुनिक संचार साधनों जैसे मोबाइल, इंटरनेट, टेलीकान्फ्रेसिंग, एंड्यूसेट (EDUSAT) ने प्रबन्धकों व अधीनस्थों के मध्य सम्प्रेषण को सुलभ बना दिया है और इनके उपयोग से लक्ष्यों की प्राप्ति की राह आसान हो गई है ।

4. **जनसंचार का प्रभाव (Media's Influence) -** जनसंचार साधनों की बढ़ती लोकप्रियता, बाजारीकरण, बढ़ती प्रतिस्पर्धा, कुकुरमुत्तों की तरह बढ़ती संस्थाएँ आदि के कारण आज संस्थाओं को अपनी जगह बनाने के लिए स्वयं को प्रभावी तरह से सम्प्रेषित करना पड़ता है । सम्प्रेषण आज इन्हीं कारणों से एक व्यापार बन गया है ।

5. **बढ़ते नेटवर्क (Increasing Networks) -** आज किसी संस्था के लिए केवल कुछ ही उच्च स्तर के व्यक्ति महत्त्वपूर्ण नहीं हो सकते । सूचना का दायरा वैश्विक युग में बढ़ गया है । सम्प्रेषण केवल संस्था तक सीमित न होकर भौगोलिक रूप से वितरित हो गया है ।

6. **जनसम्पर्क .(Public Relations). -** आज संस्थाओं की जवाबदेही समाज, अभिभावकों आदि के प्रति बढ़ गई है । बढ़ती सामाजिक जिम्मेदारी से शैक्षिक संस्थाओं में प्रबंधकों द्वारा गुणवत्ता युक्त शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रभावी सम्प्रेषण आवश्यक है ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1 सम्प्रेषण का सम्प्रत्यय स्पष्ट कीजिए तथा सम्प्रेषण प्रक्रिया के चरणों का वर्णन कीजिए ।

2 सम्प्रेषण के प्रकारों का वर्णन सम्प्रेषण माध्यमों के आधार पर कीजिए । साथ ही शैक्षिक प्रबंधन से उपयुक्त उदाहरणों द्वारा उन्हें स्पष्ट कीजिए ।

3 किन्हीं कार्यरत समूहों में महत्त्वपूर्ण सम्प्रेषण तंत्र (Communication Networks) का वर्णन कीजिए । अपनी संस्था में प्रचलित सम्प्रेषण प्रणाली की प्रभाविता का आकलन आप कैसे करेंगे ।

4 किसी संस्था में सम्प्रेषण संबंधी आम बाधाएँ कौन-कौन सी हैं? इन्हें दूर करने के उपाय लिखिए ।

14.11 सारांश (Summary)

सम्प्रेषण सूचना व समझ को एक व्यक्ति से दूसरे तक पहुँचाने की प्रक्रिया है । सम्प्रेषण व्यक्ति को संस्था में कार्य करने का कौशल व इच्छा दोनों प्रदान करता है ।

सम्प्रेषण प्रक्रिया के प्रमुख पद हैं - स्रोत, संकेतन, संदेश प्रेषण, ग्राही, विसंकेतन व पृष्ठपोषण । संकेतन वह प्रक्रिया है जिससे प्रेषक सूचना को उचित संकेतों, हावभावों में परिवर्तित कर देता है विसंकेतन के द्वारा प्राप्तकर्ता उस संदेश से अर्थ ग्रहण करता है । यदि विसंकेतन प्रेषक के संकेतन से सही मेल खाता है तो सम्प्रेषण प्रभावी हुआ है ।

यह औपचारिक व अनौपचारिक दोनों हो सकता है । औपचारिक सम्प्रेषण क्षैतिज व ऊर्ध्वाकार हो सकता है । ऊर्ध्वाकार सम्प्रेषण में सूचना ऊपर व नीचे आदेशों की शृंखला(chain of commands) पर प्रवाहित होती है । क्षैतिज सम्प्रेषण विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करता है । औपचारिक सम्प्रेषण माध्यम मौखिक, लिखित व अशाब्दिक हो सकता है । इनके अलावा किसी कार्यरत समूह में सम्प्रेषण के कई तंत्र - व्हील शृंखला, 'वाय' ('Y'), मुक्त वृत आदि प्रचलित हो सकते हैं । प्रयोगों से स्पष्ट हुआ है कि व्हील और शृंखला नेटवर्क सरल कार्यों के लिए वृत नेटवर्क से अधिक तीव्र व सही हैं । जबकि जटिल कार्यों के लिए वृत नेटवर्क सही रहते हैं । विकेन्द्रित नेटवर्क में समूह के सदस्यों की संतुष्टि अधिक होती है ।

सम्प्रेषण में बाधाएँ संदेश को विकृत कर देती हैं । इन बाधाओं के कई कारण हैं, जैसे- संदेश की अभिव्यक्ति त्रुटियुक्त, खराब संस्था, प्रेषक का अविश्वास, सम्प्रेषण को रोकना, खराब धारण क्षमता (retention), विभिन्न पृष्ठभूमि युक्त ग्राही, भाषायी बाधा, ध्यान नहीं देना आदि । कई बाधाएँ सरल भाषा व प्रतिपुष्टि (feedback) द्वारा कम की जा सकती है ।

अभ्यास प्रश्न (Exercises)

1 सम्प्रेषण के सम्प्रत्यय, प्रक्रिया, सिद्धान्त तथा महत्त्व को स्पष्ट करते हुए इसके प्रकारों की उदाहरण सहित व्याख्या करिए ।

2 शिक्षा प्रबन्धन में सम्प्रेषण श्रृंखलाओं, बाधाओं तथा शोध पर एक निबन्ध लिखिए ।

14.12 संदर्भ (References)

1. B. Mukhopadhyay (1994) Motivation in Educational Management, New Delhi : Sterling Publications Private Limited.
2. Choudhary Namita Roy (2002) Management in Education, New Delhi : APH Publishing Corporation.

3. Rayudu, C.S. (1993) Media and Communication Management, Bombay : Himalaya Publishing House.
4. Narayan Dr.B (1999) Communication Management : New Delhi,A.P.H. Publishing House.
5. Mohan Krishna, Banerjee Meera (2007) Developing Communication Skills, New Delhi : Macmillan India Ltd.
6. Mukherjee S.S. (1979) Theory and Practice of Management, Delhi : Surjeet Publication.
7. Pandya S.R. (2001) Administration and Management of Education, Mumbai, Himalaya Publishing House.
8. Kumar K.L. (1997) Educational Technology, New Delhi : New Age International (P) Ltd.

इकाई 15

समय प्रबन्धन

(Time Management)

इकाई की संरचना

15.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

15.2 समय प्रबन्धन का अर्थ एवं उसकी अवधारणा (The Concept and Meaning of Time Management)

15.3 समय प्रबन्धन की आवश्यकता (Need for Time Management)

15.4 समय प्रबन्धन के सिद्धान्त (The Principles of Time Management)

15.5 समय प्रबन्धन और गतिविधियाँ (The Activities and Time Management)

15.6 समय प्रबन्धन के सूत्र (The Tips of Time Management)

15.7 समय प्रबन्धन की पद्धति (Methods of Time Management)

15.8 सारांश (Summary)

15.9 संदर्भ (References)

15.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई को पढ़कर आप निम्नांकित समझ सकेंगे -

1. समय प्रबन्धन का अर्थ एवं अवधारणा ।
2. सिद्धान्त
3. गतिविधियाँ
4. समय प्रबन्धन के सूत्र
5. पद्धति

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

"प्रबन्धन इस पृथ्वी पर सबसे महान् कार्य है, क्योंकि इससे उत्पादन सम्भव होता है तथा उत्पादन से मानव सन्तुष्टि और कल्याण का कार्य प्रशस्त होता है ।"

केनेथ फेल्ड (Kenneth Feld)

प्रबन्धन मनुष्य की सभी क्रियाओं में अर्न्तव्याप्त होता है, चाहे वे क्रियाएँ किसी भी संगठन से सम्बन्धित क्यों न हों । व्यक्ति अपने लक्ष्यों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न संस्थाओं या संगठनों पर निर्भर करता है किन्तु यह प्रबन्धन ही है जो संस्थाओं व संगठनों को उत्पादक, उद्देश्यपूर्ण व कार्यशील बनाता है ।

समय प्रबन्धन (Time Management) का इस दृष्टि से और भी महत्व बढ़ जाता है क्योंकि किसी समय सीमा में किसी कार्य का उपयुक्त नियोजन, उत्पादन, सन्तुष्टि एवं कल्याण उचित समय सारणी से ही यथा समय किया जा सकता है । समय प्रबन्धन को इसलिए समय नियोजन भी कहा जाता है किन्तु यह एक कठिन कार्य है । अधिकांश लोग करोड़पति बनना चाहते हैं, किन्तु उनमें से अधिकतर नहीं बन पाते, क्योंकि उनके लिए यह आवश्यक भी नहीं होता । यदि कोई चीज किसी के लिए अत्यन्त आवश्यक है तो उसे उसकी प्राप्ति के लिए कुशलता दिखाना आवश्यक है । यदि व्यक्ति अपने जीवन में सफल होना आवश्यक मानता है, तो उसकी यह एक ज्वलन्त आकांक्षा है । सफलता जीवन में अकस्मात् नहीं आती, उसके लिए पूर्ण समय देना पड़ता है और प्रयत्न करना पडता है । प्रयत्न व समय का सामंजस्य ही समय प्रबंधन है ।

समय प्रबन्धन पर गहन विचारधारा रखने वाले **'डेविड एलन'** का मानना है कि- **'समय का प्रबन्ध किया ही नहीं जा सकता । समय का प्रबन्धन नहीं किया जाता अपितु किसी कार्य का उस समय में प्रबन्धन किया जाता है । जैसे- एक घण्टे को अवधि में किसी पढ़ाई जाने वाली विषय-वस्तु या गतिविधि का प्रबन्धन (Manage) या नियोजन किया जाता है, उस गतिविधि के परिणाम का प्रबन्ध किया जाता है और उसके लिए भौतिक संसाधनों का प्रबन्ध व क्रियान्वयन किया जाता है ।"** अत: एलन के अनुसार प्रबन्धन समय का नहीं अपितु उस समय में किए जानेवाले कार्यो का किया जाता है । समय प्रबन्धन क्या है इसे समझने के लिए पहले इसके अर्थ को समझेंगे ।

15.2 समय प्रबन्धन का अर्थ एवं अवधारणा (The Concept of Time Management)

जैसा कि डेविड एलन ने समय प्रबन्ध में कार्य प्रबन्ध को प्रमुखता दी है, तथापि समय प्रबन्धन की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए हमें कुछ परिभाषाओं का अध्ययन करना चाहिए तथा यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि अन्तत: समय प्रबन्धन है क्या? इसके स्पष्टीकरण हेतु कुछ निम्नांकित परिभाषाएँ दी जा रही हैं:-

परिभाषाएँ (Definitions)

1- "अपने समय का सदुपयोग करने के लिए व्यक्ति जो भी क्रिया-कलाप करता है वह समय प्रबन्धन कहलाता है ।"

2- "व्यक्ति किसी भी दिए गए समय में जो क्रियाएँ करता है, उन क्रियाओं को करने के लिए निर्णय लेता है और उसके लिए जो समय व्यतीत होता है, वही समय प्रबन्धन कहलाता है ।"

3- जब किसी समय (अवधि) में की जाने वाली क्रियाओं के लिए सचेतन रूप से लिए गए निर्णयों में जिन सिद्धान्तों और प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है, तब उसे समय प्रबन्धन कहा जाता है।

समय प्रबन्धन एक संसाधन है, जो धन, उत्पादन क्षमता, गुणात्मकता और नवाचार के समकक्ष होता है । इसका उपयोग करके अनेकानेक कम्पनियों व संस्थानों ने अपना उत्पादन बढ़ाया है तथा शीघ्रातिशीघ्र अपने लक्ष्य को प्राप्त किया है । समय प्रबन्धन चूंकि एक मस्तिष्कीय क्रिया है जो विचारों को क्रियाओं व कार्यो में परिणत करती है । यह क्रिया नई शताब्दी एवं नए सन्दर्भों में खोजी गई नई नीति नहीं है, अपितु प्राचीन काल से ही इसे विविध रूप में परिभाषित करने का उपक्रम किया गया है साथ ही कई प्रयोगों के पश्चात् उन्हें सिद्धान्तों का रूप प्रदान किया गया है । कई बार वे सिद्धान्त कई सन्दर्भों एवं कई परिस्थितियों से तादात्म्य स्थापित करते हुए तदनुसार अर्थ व्यक्त करते हैं । समय प्रबन्धन तथा उससे संबंधित विचारधाराओं के कतिपय दृष्टान्त निम्नानुसार प्रचलित हैं:-

जैसे -

1. एक पंथ दो काज

अर्थात एक मार्ग में दो कार्य । यह एक सामान्य अर्थ है, किन्तु इसमें एक साथ एक अवधि में दो कार्यो का प्रबन्धन करने की प्रेरणा छिपी हुई है ।

यही विचारधारा वर्तमान समय में बहु कार्य (multy tasking) के नाम से जानी जाती है । कई महापुरुष, अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं व्यस्त लोग प्राय: बहु कार्य प्रणाली (multy tasking system) से ही एक साथ अधिकाधिक कार्य सम्पन्न कर लेते हैं । बिजनेस मीटिंग, वर्किंग लंच आदि कार्य एक पंथ दो काज के ही उदाहरण हैं । शिक्षा संस्थानों में प्राय: 'एक पंथ दो काज' एवं बहुकार्य प्रणाली से शिक्षण प्रक्रिया की जाती है किन्तु शिक्षक गण को तथा विद्यार्थियों को भी प्रत्यक्ष रूप से इसका पता नहीं चलता । शैक्षिक-भ्रमण, पाठ्यसहगामी क्रियाएँ तथा कक्षान्तर्गत गतिविधि शिक्षण में दो या दो से अधिक शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति हो जाती है । प्रबन्धक एवं पर्यवेक्षक कई बैठकों व कई पर्यवेक्षणों में एकाधिक योजनाओं व कार्यक्रमों का क्रमश: निर्माण व निरीक्षण कर लेते हैं ।

2. समय : एवं करोति बलाबलम् ।

संस्कृत की यह सूक्ति समय प्रबन्धन का एक उत्कृष्ट उदाहरण कही जा सकती है । इसका अर्थ है - "समय ही व्यक्ति को सामर्थ्यवान या दुर्बल बनाता है । " निश्चित समय में किसी कार्य को करने का उपयुक्त निर्णय एवं तत्सम्बन्धी संसाधनों की व्यवस्था व्यक्ति को कुशलता प्रदान करती है तथा उसकी कार्य निष्पादन क्षमता को बढ़ाती है, किन्तु जो ऐसा नहीं कर पाते, वे अधिक समय लेने पर भी दुर्बल बने रहते हैं । यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति के लिए चौबीस घण्टे एक समान नहीं होते तथापि प्रत्येक को अपने आवश्यक कार्य सम्पन्न करने के लिए निश्चित समय निर्धारित करना चाहिए । इसे व्यक्ति का निश्चित समय (Prime Time) भी कहा जाता है । जिसमें वे कुछ निर्धारित कार्य सरलता व सहजता से कर लेते हैं और अनायास ही सशक्त होते जाते हैं ।

3. एक अन्य सूक्ति है**- नौ दिन चले अढाई कोस ।**

अर्थात्- "नौ दिनों की अवधि में केवल अढाई कोस ही चला गया ।" अर्थात् समय अधिक लगाया और कार्य बहुत कम किया गया । किसी संगठन या संस्था में प्रत्येक कार्य के

लिए कोई अवधि निश्चित की जाती है । यदि उस समय सीमा में वह कार्य पूर्ण नहीं किया जाता तो उसका प्रभाव अन्य कार्यो पर भी पड़ता है ।

अत: कार्य के अनुरूप समय सीमा निर्धारित करना तथा उसमें उस कार्य को सम्पन्न करना ही समय प्रबन्धन है । अन्यथा उस कार्य के परिणाम प्रभावकारी नहीं होते । जैसा कि निम्नांकित श्लोक में कहा गया है कि-

"आदेयस्य प्रदेयस्य कर्त्तव्यस्य च कर्मण:,

क्षिप्रमक्रियमाणस्य काल : पिबति दसमू । "

अर्थात्- "लेने योग्य, देने योग्य, करने योग्य तथा अन्य सभी कार्यो को समय पर तथा शीघ्र न करने पर समय ही उसका रसपान करता है । व्यक्ति को उस कार्य का लाभ प्राप्त नहीं होता" ।

तात्पर्य यह है कि- यथा समय पर कार्य न करने तथा निर्धारित अवधि में उस कार्य की सम्बन्धित सामग्री का प्रबन्धन न करने पर कार्य का परिणाम अप्रभावी होता है और समय बलवान बन जाता है । अत: यह स्पष्ट है कि समय प्रबन्धन एक ऐसी क्रिया है जिसमें किसी कार्य को निर्धारित समय में करने के लिए व्यवस्था करना अपेक्षित होता है । समय प्रबंधन अवधारणा एवं अर्थ को समझने के बाद हम जानेंगे कि इसकी शिक्षा के क्षेत्र में आवश्यकता क्यों होती है?

15.3 समय प्रबन्धन की आवश्यकता (Need for Time Management)

Buzzle.com पर उपलब्ध लेख - **'Why Today's Education System Needs Time Management'** के अनुसार शिक्षा जगत से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति के लिए समय प्रबन्धन की अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत होने लगी है । छात्रों, शिक्षकों एवं प्रबन्धकों को स्वयं को अद्यतन **(update)** रखने के लिए अपरिहार्य कार्यो के साथ नए कार्यो को भी करना अनिवार्य सा हो गया है, अन्यथा वे परिवर्तित प्रवाह में स्वयं को समायोजित करने में कठिनाई अनुभव करते हैं । उपर्युक्त लेख में व्यक्तिगत रूप से सशक्तीकरण हेतु छात्रों, शिक्षकों एवं प्रबन्धकों के लिए समय प्रबन्धन की आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में उल्लेख किया गया है, जो निम्नानुसार है-

छात्रों के लिए-

उच्च शिक्षा प्राप्ति में छात्रों को अधिकाधिक पाठ्य सामग्री पढ़ने हेतु,, पाठ्य पुस्तक, सन्दर्भ साहित्य आदि का अन्वेषण करने हेतु पर्याप्त समय की अवश्यकता होती है । इसके साथ ही पारिवारिक, मित्र, सामाजिक, मनोरंजन, सामान्य जानकारी, खेल, कोचिंग, कम्प्यूटर आदि से सम्बन्धित कार्यो के लिए भी समय निकालना ही होता है । इन सबके लिए पर्याप्त एवं समय हेतु समय प्रबंध की आवश्यकता होती है और एक योग्य विद्यार्थी समय नियोजन से ही उत्तरदायित्व का निर्वाह समय पर कर पाता है ।

शिक्षकों के लिए

एक कुशल अध्यापक कक्षा में जाने से पूर्व शैक्षिक परिदृश्य में स्वयं की स्थिति ध्यान में रखता है । प्रतिदिन अध्ययनीय विषय-वस्तु परिवर्तित एवं परिवर्द्धित एवं विविध होती जा रही है; अत: प्रतिदिन एक अध्यापक को दूसरे दिन ली जाने वाली कक्षा में जाने से पूर्व नवीन विषय-वस्तु से स्वयं को अद्यतन (update) करना अनिवार्य हो गया है, जबकि उसके दैनन्दिन कार्य में कोई कटौती नहीं जा सकती । ऐसे में समय प्रबन्धन से ही 24 घण्टे की नियत अवधि में समस्त कार्य पूर्ण किए जा सकते हैं ।

प्रबन्धकों के लिए-

प्रबन्धन के नवीन प्रवर्तनों से प्रबन्धन कौशल ने प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है; परिणाम स्वरूप प्रबन्धकों को अपनी संस्था में उनके प्रयोग और प्रभाविता को समझने व परखने हेतु अतिरिक्त समय की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है । अपने संगठन की योजना, क्रियान्वयन, नियन्त्रण, पर्यवेक्षण, नेतृत्व परामर्श आदि कार्यो का उत्कृष्टता के साथ निष्पादन और उनके सामाजिक जीवन में समन्वय व सामंजस्य हेतु समय प्रबन्धन उनकी प्रबन्धन शैली को व्यवस्थित और वैज्ञानिक बनाने में सहयोग प्रदान करता है । शिक्षा संस्थानों में इसीलिए विभिन्न पाठ्यक्रमों के सुचारू रूप से संचालन हेतु विभिन्न सूत्रों, योजनाओं, महीनों, सप्ताहों, दिवसों एवं कालांशों में उसके लिए समय विभाजित करके समय-चक्र का निर्माण किया जाता है और उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है । यदि प्रबन्धक समस्त कार्यों के समय का विभाजन व समय सारणी का निर्माण नहीं करे तो वह क्रियान्वयन कैसे करवा सकता है । यही नहीं प्रत्येक व्यक्ति की अपनी दिनचर्या होती है और वह अपने समस्त कार्यों के क्रियान्वयन की अवधि व समय तय करता है । इस प्रकार समय-प्रबन्धन मानव जीवन की महती आवश्यकता कही जा सकती है । समय प्रबन्धन की आवश्यकता वस्तुत: सबके लिए होती है किन्तु किसी संगठन से जुड़े होने पर प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य होती है जिसे इसके सिद्धान्तों को भी ध्यान में रखना चाहिए ।

15.4 समय प्रबन्धन के सिद्धान्त (The Principles of Time Management)

समय प्रबन्धन की अवधारणा और आवश्यकता को समझने के बाद यह आवश्यक है कि इसके आधारभूत सिद्धान्त क्या हैं? प्रो. नमिता रॉय चौधरी ने समय प्रबन्धन के तीन सिद्धान्तों को निम्नांकित रूप से निर्धारित किया है- ।

1. निर्णय का सिद्धान्त-.,

1. कार्य करने का निर्णय कर लें और उससे विचलित न होऐ ।
2. अपने विकल्पों का पुनरीक्षण करें ।
3. त्वरित कार्यवाही का अभ्यास करे ।

त्वरित कार्यवाही के सन्दर्भ में उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया है कि- भूकम्प आने पर पिता की मृत्यु हो रही है और निर्णय लेना है तो व्यक्ति तुरन्त निर्णय ले लेगा और यह आसान भी होगा ।

इस प्रकार कम समय में निर्णय लेने के सन्दर्भ में कुछ निर्णयात्मक सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए कहा है कि यह निम्नांकित तीन आर (Three R) पर निर्भर करता है, जिसमें समयावधि में कार्य सम्पन्न कर लेने के पीछे त्वरित निर्णय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है ।

1. Read (the situation) परिस्थिति को पढ़ो (समझो) ।
2. Reflect (on the choices) विकल्पों पर तुरन्त निर्णयात्मक प्रतिक्रिया दो ।
3. Respond (with decisive action) गलत निर्णय की जिम्मेदारी लो एवं परिणाम के लिए तैयार रहो ।

प्रथम आर (R) के अन्तर्गत कार्य करने हेतु निर्णय लेने से पूर्व व्यक्ति को समग्र स्थिति को तुरन्त समझने का प्रयास करना चाहिए । उसमें विलम्ब नहीं करना चाहिए । द्वितीय आर **(R)** में उस परिस्थिति के लिए जो भी कार्य किए जा सकते हैं, उन्हें सोचकर उपयुक्त कार्य करने का तुरन्त निर्णय लेना चाहिए । तृतीय आर (R) वह स्थिति है कि आपने जो निर्णय लिया है, उससे विचलित न होते हुए उसके परिणाम के लिए तैयार रहना चाहिए ।

स्थिति को संशोधित करने के परिप्रेक्ष्य में चौथे आर **(R)** का उल्लेख भी किया गया है।

चौथे आर **(R= Remorse- other choice made)** के सन्दर्भ में उनका मानना है कि गलत निर्णय के लिए पश्चाताप तो करें किन्तु अन्य विकल्प भी तैयार करें । कई बार गलत निर्णय विशिष्ट कार्य की ओर उल्लेख करता है । इस संबंध में कवि रॉबर्ट फ्रोस्ट **(Robert Frost)** ने स्वयं के अनुभव का उल्लेख किया है कि-

"I took the road less travelled and that has made all the difference."

अर्थात- जहाँ सब जा रहे थे, उसे छोड़ दूसरा रास्ता चुनने के कारण ही मैं कुछ अलग कर सका ।" यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि कभी-कभी असामान्य निर्णय या गतिविधि भी किसी विशिष्ट परिणाम तक पहुँचा देती है ।

2. क्रियान्वयन का सिद्धान्त

वर्तमान विचारधारा एवं प्रबन्ध विशेषज्ञों के अनुसार समय प्रबन्धन के अन्तर्गत कार्य करने हेतु चार 'D' का प्रयोग भी किया जाता है जिसके अर्थ एवं प्रयोजन निम्नानुसार हैं:-

4D:	**Do**	करें
	Delegate	किसी को सौंप दें ।
	Delay	देर से करें
	Drop	करने का विचार छोड़ दें ।

अर्थात् एक कुशल प्रबन्धक किसी कार्य की अत्यावश्यता महत्व एवं समयावधि तथा परस्थितियों को ध्यान में रखते हुए क्रियान्वयन हेतु उपर्युक्त '4D' में से किसी एक का निर्णय करता है ।

Do - अर्थात् व्यक्ति कार्य को स्वयं करलें वह पहला सिद्धान्त है । स्वयं द्वारा कार्य करने में यह ध्यान रखना होगा कि आपके पास उस कार्य को करने का समय है अथवा नहीं ।

समय कम है अथवा पर्याप्त है । यदि समय नहीं है, तो उस कार्य को करने का दूसरा विकल्प है और वह है-

Delegate - अर्थात् कार्य किसी अन्य व्यक्ति को करने हेतु कहना । किसी को कार्य सौंपना भी एक कौशल है । इसमें दो बातों का विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है । प्रथम यह ज्ञात करना कि कौन से कार्य दूसरों को सौंपे जा सकते हैं तथा द्वितीय यह कि वे कार्य किन्हें सौंपे जा सकते हैं । अत: समय पर आवश्यक एवं महत्वपूर्ण कार्य करने के लिए उपयुक्त सहयोगी का चुनाव करके वह कार्य करवाया जा सकता है । यदि ऐसा करना भी सम्भव नहीं है तो उस कार्य के सन्दर्भ में तृतीय विकल्प भी है, और वह है-

Delay - अर्थात् कार्य को बाद में करें या देर से करें । कई बार व्यक्ति चाहते हुए भी आवश्यक एवं महत्वपूर्ण कार्यो को निर्धारित समय में नहीं कर पाते हैं । इस स्थिति में उस कार्य को बाद में करने का निर्णय ले लेना चाहिए । यदि कार्यकर्ता यह सोचता है कि बाद में भी उस कार्य को करना या करवाना सम्मव नहीं हो सकता है तो उसके लिए अन्तिम व चतुर्थ विकल्प होता है और वह है-

Drop - अर्थात् कार्य को करने का विचार त्यागना । समयावधि में किसी कार्य को नहीं कर पाने पर उपर्युक्त तीनों विकल्पों में से यदि एक भी विकल्प उपर्युक्त व अनुकूल प्रतीत नहीं होने की स्थिति में ही चतुर्थ विकल्प के अनुसार कार्य को करने का विचार त्यागना चाहिए ।

3. पूर्णतावाद का सिद्धान्त (पैरेटो सिद्धान्त)

कार्य को जितनी सावधानी एवं बुद्धिमता के साथ किया जाता है उतना ही वह कार्य पूर्णता को प्राप्त होता है तथा अन्य कार्यो का प्रतिफल भी इसमें समाविष्ट हो जाता है । समय प्रबन्धन -विशेषज्ञ .''पैरेटो.' का मानना है कि 20 प्रतिशत प्राथमिकताएँ व्यक्ति को 80 प्रतिशत परिणाम देती हैं । यदि हम अपनी शीर्षस्थ 20 प्रतिशत प्राथमिकताओं पर अपना समय, ऊर्जा, धन एवं कर्मचारी लगाऐ । अर्थात् हमें 80 प्रतिशत परिणाम 20 प्रतिशत समय से मिलते हैं । इसी बात को दूसरी तरह समझा जा सकता है कि हम अपने 60 प्रतिशत कार्य 20 प्रतिशत समय में ही पूरा कर लेते हैं और बचे हुए 20 प्रतिशत कार्य में 80 प्रतिशत समय बर्बाद करते हैं । इस सिद्धान्त की अन्य बात और भी है, कि वस्तुत: यह महत्वपूर्ण नहीं होता कि हम कितनी मेहनत करते हैं, अपितु महत्वपूर्ण यह होता है कि हम कितनी बुद्धिमानी और श्रेष्ठ विधि से मेहनत करते हैं । इस प्रकार कम समय में अधिक कार्यो का लाभांश तब मिल सकता है जब कार्य में प्रयुक्त सभी चीजें सार्थक हों इससे कम समय में अन्य सभी कार्यो की उपलब्धि की पूर्णता प्राप्त की जा सकती है ।

4. श्रेष्ठतम उपयोग का सिद्धान्त

समय के श्रेष्ठतम उपयोग के लिए पार्किन्सन (Parkinson) का सिद्धान्त महत्वपूर्ण व आवश्यक माना जाता है । उनका मानना है कि ''कार्य पूर्ण करने के लिए जितना समय उपलब्ध होता है, काम उतना ही फैलता है । ''

अर्थात् - किसी कार्य को करने के लिए हमारे पास जितना समय होता है, हमारा कार्य उसके अनुरूप फैलता या सिकुड़ता है ।

अर्थात् यदि हम. कम समय में ज्यादा काम करने की योजना बनाते हैं तो समय फैल जाता है और वे सारे कार्य उस अवधि में पूर्ण हो जाते हैं, परन्तु यदि हम उतने ही समय में कम कार्य करने की योजना बनाते हैं तो समय सिकुड़ जाता है तथा हम कम काम कर पाते हैं । वस्तुत: यह सब समय के सर्वाधिक व सर्वश्रेष्ठ उपयोग पर आधारित हो पाता है । इस सिद्धान्त को हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं ।

जैसे- जब कोई व्यक्ति दीर्घ अवकाश पर भ्रमण पर जाता है तो उससे पूर्व कार्यालय के तथा घर के समस्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण कार्य शीघ्रता से पूर्ण करने में पूर्णत: सक्रिय हो जाता है । वह कम समय में अधिक काम कर लेता है, क्योंकि उसे निश्चित समय सीमा में सब कार्य सम्पन्न करके अवकाश पर जाना है ।

अत: समय प्रबन्धन का यही सिद्धान्त उपयुक्त समय में उपयुक्त कार्य का निर्णय लेना, उसे तुरन्त प्रभाव से सम्पादित करना तथा उसके परिणाम की जिम्मेदारी लेने से जुड़ा हुआ है । आगे हम देखेंगे कि -समय प्रबन्धन में किस प्रकार की गतिविधियों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. समय-प्रबन्धन की अवधारणा क्या है ?
2. समय-प्रबन्धन का क्या महत्व है ?
3. समय-प्रबन्धन के प्रमुख स सिद्धान्त कौनसे है ?

15.5 समय प्रबन्धन और गतिविधियाँ (The Activities and Time Management)

व्यावसायिक प्रबन्धन में बड़ी-बड़ी कम्पनियों में लम्बे समय से, समय प्रबन्धन की जो तकनीक चली आ रही है, जिसमें कम्पनी कीर विविध गतिविधियों को प्राथमिकता के आधार पर तय किया जाता है । गतिविधियों को तीन श्रेणियों में विभाजित करके उन्हें ABC श्रेणी दी जाती है । श्रेणी व गतिविधियों का विभाजन निम्नानुसार किया जाता है-

Grade	Activities
A	Task that are perceived as being urgent and important
B	Task that important but not urgent
C	Task that are neither urgent or important

प्रो. नमिता रॉय चौधरी ने 'भी अपनी पुस्तक Management in Education में इसी प्रकार समय और क्रियाओं का विभाजन करते हुए लिखा है कि "समय प्रबन्धन हमारे जीवन में अत्यन्त आवश्यक क्रिया है । समय ही जीवन है । हमारे जीवन की समस्त क्रियाओं के आधार पर समय प्रबन्धन को विभक्त किया जा सकता है । उनके द्वारा जीवन के समान ही शिक्षा में भी चार प्रकार की गतिविधियाँ व्यक्त की गई हैं, जो निम्नानुसार हैं-

1. अत्यावश्यक एवं महत्वपूर्ण गतिविधियाँ । ये गतिविधियाँ तुरन्त ध्यान देने योग्य होती हैं ।

2. महत्वपूर्ण किन्तु अत्यावश्यक नहीं । ऐसी गतिविधियों को तुरन्त करने की आवश्यकता नहीं होती ।
3. अत्यावश्यक किन्तु महत्वपूर्ण नहीं । इस प्रकार की गतिविधियों का समग्र मूल्यों या लक्ष्यों पर बहुत असर नहीं पड़ता है ।
4. न अत्यावश्यक और न ही महत्वपूर्ण । इस प्रकार के कार्य या गतिविधियों को करने पर
5. जीवन में अन्य सभी चीजों पर असर नहीं पड़ता है ।

उपर्युक्त क्रियाओं या गतिविधियों को करने के लिए प्रत्येक शैक्षिक प्रबन्धक (Educational Manager) को समय के उपयोग का एक सन्तुष्टि मापदण्ड (satisfaction scale) बनाना चाहिए। यदि हम उपर्युक्त गतिविधियों के समय सम्बन्धी अपनी निर्णय क्षमता पर सचेतन नहीं होते हैं तो हम वे अत्यावश्यक कार्य कर लेते हैं जो भले ही महत्त्वपूर्ण नहीं है और कई बार वे महत्वपूर्ण कार्य कर लेते हैं जो अत्यावश्यक नहीं हैं । इसलिए शिक्षा संस्थानों में प्रत्येक प्रबन्धक के कार्य हेतु समय के उपयोग की सन्तुष्टि का मापदण्ड तैयार करना लाभप्रद रहता है । इस प्रकार का मापदण्ड व्यक्ति की निम्नांकित क्षेत्रों में क्षमता संवर्द्धन करता है ।

समय प्रबन्ध का मापदण्ड और क्षमता संवर्धन

1. वित्तीय सुरक्षा में वृद्धि
2. मूल्य प्रणाली में विस्तार
3. जीवन वृत्ति के सोपानों में प्रगति एवं उन्नति
4. शारीरिक क्षमता का विकास

समय प्रबन्धन द्वारा लक्ष्य प्राप्त करने तथा समय के उपयोग की सन्तुष्टि के लिए प्रत्येक प्रबन्धक कतिपय सूत्रों पर ध्यान देना चाहिए । अत: समय प्रबन्धन के कुछ सूत्र आगे दिए जा रहे हैं ।

15.6 समय प्रबन्धन के सूत्र (The Tips of Time Management)

यूँ तो प्रत्येक मनुष्य अपने कार्यों का समय-नियोजन परिस्थितियों और विभिन्न संदर्भों को ध्यान में रखकर ही करता है तथापि बदलते सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं वैश्विक पीश्दृश्य में बहुआयामी व्यक्तित्व के सफलतम क्रियान्वयन हेतु उसे निम्नांकित सूत्रों को ध्यान में रखना चाहिए ।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए-

1. व्यक्ति उन गतिविधियों या कार्यो की समय सारणी बनाएँ जो महत्वपूर्ण हैं किन्तु आवश्यक नहीं हैं तथा जो कार्य आवश्यक है उनके लिए समय सारणी में कुछ समय ही निर्धारित करें।
2. वह अधिकतर वे कार्य निर्धारित करें जिनसे अच्छे परिणाम प्राप्त होने वाले हों क्योंकि समय का प्रबन्धन करना हमारी स्वयं की जिम्मेदारी है ।
3. वह स्वयं से बार-बार प्रश्न करें कि- जो कार्य मैं कर रहा हूं क्या वह अभी करने योग्य व आवश्यक कार्य है? इससे अनावश्यक कार्य कम होते हैं ।

4. अपने समय का प्रबन्धन स्वयं करें । दूसरों को न करने दें ।
5. परिस्थितियों का अध्ययन करें, विकल्पों पर अनुचिन्तन करें तथा. क्रिया से उसका प्रत्युत्तर दें।

प्रबन्धक के लिए-

कोई भी प्रबन्धक चाहे वह शैक्षिक संगठन का हो अथवा अन्य किसी भी संगठन का संगठन के समस्त कार्यों के सम्पादन की जिम्मेदारी उसी की होती है । एक कुशल, समय प्रबन्धन की जानकारी होने पर ही समय का सदुपयोग ठीक से कर सकता है । अनुभवी प्रबन्धकों के लिए भी निम्नांकित सूत्रों को अपनाने का सुझाव देते हैं-

1. प्रबन्धक स्टाफ के सदस्यों का समय बर्बाद न करें व इसके लिए स्टाफ सदस्यो को तुरन्त बताएँ कि उन्हें क्या कार्य करना आवश्यक है । उस आवश्यक कार्य से उपकरण या संसाधन से परिचित कराएँ तथा उन्हें कार्य करने के लिए छोड़ दें ।
2. कार्य करने हेतु पर्याप्त या अपेक्षित समय दें । क्योंकि यदि कार्यकर्त्ता के ऊपर शीघ्रता का अनावश्यक दबाव होगा तो वह ठीक से कार्य नहीं कर पाएगा ।।
3. एक बार में एक ही कार्य करने हेतु उत्साहित करें तथा उसे श्रेष्ठता के साथ करने दें ।
4. महत्वपूर्ण कार्यो को अत्यावश्यक कार्यो से पृथक करने को कहें । जो केन्द्रीय लक्ष्य को आगे बढ़ाते हैं वे वास्तविक एवं महत्त्वपूर्ण कार्य होते हैं, अत: उन्हें अधिक समय दें ।
5. बैठक (meeting) के समय को कम करें । बैठक में सबको अनावश्यक बिठाकर समय बर्बाद न करें । सम्बन्धित सूचना फोन पर या व्यक्तिगत रूप से भी समझाई जा सकती है । इस प्रकार व्यक्तिगत एवं प्रबन्ध के रूप में कार्यो को समय प्रबन्धन में अनुबन्धित करके समय का पूर्ण लाभ लें ।

उपर्युक्त सूत्रों को ध्यान में रखकर समय प्रबंधन की प्रक्रिया कैसे की जाती है इसका वर्णन आगे किया जा रहा है ।

15.7 समय प्रबन्धन की पद्धति (Methods of Time Management)

स्टीफन आर कॉवि (Stephen R. Covey) तथा उनके साथियों ने समय प्रबन्धन की सैकड़ों विधियों की समीक्षा करके उन्हें मुख्यत: चार श्रेणियों में विभाजित किया है, जो आगे प्रस्तुत की जा रही है ।

1. **प्रथम पद्धति-याद दिलाना (Reminders)** - इस पद्धति का कार्य है कि व्यक्ति को कार्य कब समाप्त करना है इसे याद दिलाया जाय । किसी निश्चित समय में कार्य आरम्भ किया जाता है तथा उसे कब समाप्त करना है, इसका संकेत घड़ी की टंकार से किया जाता है, जिसे अब कम्प्यूटर से भी संकेत करके सावधान किया जा सकता है । विद्यालयों व महाविद्यालयों में कालांश हेतु तथा परीक्षा के समय प्राय: इस प्रक्रिया को अपनाया जाता है । व्यक्तिगत कार्य सम्पादन हेतु भी इसका प्रयोग किया जा सकता है ।

2. द्वितीय पद्धति - योजना की तैयारी (Planning Preparation) - इस प्रक्रिया में किए जाने वाले कार्यो की योजना बनाना, तथा लक्ष्य प्राप्ति के परिप्रेक्ष्य में कौन-सा कार्य कब करना है, यह निश्चित करते हुए डायरी में लिखना अथवा कैलेण्डर बनाना स्वीकार किया गया है । संस्थाओं में प्राय: संस्थागत कैलेण्डर सत्रारम्भ में ही तैयार कर लिए जाते हैं जिससे वर्ष पर्यन्त होने वाले कार्य यथा समय सम्पन्न किए जा सकें और उद्देश्य की प्राप्ति सुगमता से हो सके ।

2. **तृतीय पद्धति-व्यक्तिगत योजना, प्राथमिकता व नियन्त्रण (Personal Planning,Prioritizing and Controlling) -** इस पद्धति में व्यक्तिगत रूप से कौन से कार्य करने हैं, प्राथमिकता के आधार पर कौनसे कार्य पहले करने हैं तथा उन पर नियन्त्रण भी कैसे रखना है, आदि बातों के लिए कम्प्यूटर में नोटिस द्वारा पेपर पर अथवा व्यक्तिगत सचिव को याद दिलाने का प्रबन्ध किया जाता है । बड़ी कम्पनियों व बड़े संस्थानों में जहाँ अधिकाधिक विभाग कार्यरत होते हैं वहाँ प्रबन्धक प्राय: इसी प्रक्रिया को अपनाते हैं । महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों एवं राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के शैक्षिक संस्थानों में महत्वपूर्ण गतिविधियों के समय पर क्रियान्वयन हेतु यह पद्धति सर्वाधिक प्रचलित है ।

3. **चतुर्थ पद्धति - कार्य कुशलता एवं अतिरिक्त सक्रियता (Efficiency and Proactiveness)** - इस प्रक्रिया में उपर्युक्त तीन पद्धतियों में से कोई भी एक पद्धति को लेकर कार्यकर्त्ता लक्ष्य तथा अपनी भूमिका को सामने रखकर महत्त्वपूर्ण कार्य स्वयं ही करता है । इस पद्धति का उद्देश्य व्यक्ति को कार्यकुशल तथा सक्रिय बनना होता है । इस प्रक्रिया को अपनाने के लिए समय प्रबन्धन का निपुण होना आवश्यक है ।

उपर्युक्त समय प्रबन्धन की पद्धतियों के साथ ही समय प्रबन्धन विशेषज्ञ 'स्टीफन' ने समय प्रबन्धन की कुछ अन्य विधियों से सम्बन्धित निर्देशों का उल्लेख किया है, जो निम्नानुसार हैं:-

1. कार्य योजना को पेपर पर संगठनात्मक रूप से लिखें ।
2. अपने समय को बचाएँ ।
3. लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करें तथा अभिप्रेरणात्मक बल दें ।
4. कार्यो को लक्ष्य बनाकर उन्हें प्राथमिकता के आधार पर निर्धारित करें ।
5. अदभूत उपकरण बनाएँ तथा उसके द्वारा समय-सीमा मे अधिकाधिक कार्य सम्पन्न करें
6. समय-प्रबन्धन के कौशलों के अधिपति बनें ।
7. स्वाभाविक लय एवं प्रवाह के साथ कार्य करते रहें ।
8. समय के साथ जुड़ी हुई बुरी आदतों से स्वयं को अलग करें । जैसे विलम्बन जैसी
9. मनोवैज्ञानिक समस्याओं से दूर रहें ।

एक दृष्टि से समय संसाधन भी है और इसी समय रूपी संसाधन का ही लोग सबसे अधिक उपयोग भी करते हैं तथा इसी संसाधन को सबसे अधिक बर्बाद भी करते हैं । समय का प्रबन्धन व उपयोग केवल अपनी क्षमता के लिए ही नहीं करना चाहिए अपितु मनन, चिन्तन तथा आराम के लिए भी किया जाना चाहिए ।

समय का सदुपयोग ही समय प्रबन्धन है, जो एक डायरी या लॉग बुक बनाकर किया जा सकता है । एक अच्छा समय प्रबन्धक अपने साथ-साथ दूसरों का समय भी नष्ट नहीं करता अपितु दूसरों को प्रेरित ही करता है ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. समय प्रबन्धन के मानदण्ड क्या हैं ?
2. समय प्रबन्धन के सूत्रों की सूची बनाइए ।
3. समय प्रबन्धन की प्रक्रिया बताइए

15.8 सारांश (Summary)

प्रबन्धन मानव की समस्त क्रियाओं में अर्न्तव्याप्त होता है तथा समय प्रबन्धन उन क्रियाओं को निर्धारित अवधि में दक्षता के साथ व्यवस्थित रूप से सम्पन्न करने में सहयोग प्रदान करता है । वस्तुत: समय का प्रबन्धन नहीं किया जाता अपितु उस अवधि में कार्यो को करने का प्रबन्ध किया जाता है । यह प्रबन्ध जिस प्रणाली या विधि से किया जाता है, उसे ही समय प्रबन्धन कहा जाता है । इस दृष्टि से समय प्रबन्धन एक प्रणाली भी कही जा सकती है।

समय प्रबन्धन कई सिद्धान्तों पर आधारित होता है तथा इसकी विभिन्न गतिविधियाँ कार्य हैं, जिन्हें अत्यावश्यक एवं महत्वपूर्ण कार्य स्थिति व समय को ध्यान में रखकर प्राथमिकता के आधार पर सम्पादित किए जाते हैं । समय प्रबन्धन सम्बन्धी सूत्रों को ध्यान में रखते हुए समय प्रबंधन करने से कार्य क्षमता एवं कार्य उत्कृष्टता को बढ़ाया जा सकता है तथा अपेक्षित लक्ष्य की प्राप्ति निर्धारित समय में सुगमता से प्राप्त की जा सकती है । शैक्षिक संस्थानों में चूंकि समस्त कार्य निश्चित होते हैं एवं अवधि भी निर्धारित होती है; अत: वहाँ समय प्रबन्धन एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया होती है । समय प्रबन्धन दृष्टि से समस्त शैक्षिक संस्थानों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष माना जाना चाहिए तथा शिक्षकों और विद्यार्थियों को समय प्रबन्धन में कुशलता प्राप्त करनी चाहिए ।

अभ्यास प्रश्न (Exercises)

1 समय प्रबन्धन के अर्थ, अवधारणा, आवश्यकता और सिद्धान्तों को स्पष्ट करते हुए एक समालोचनात्मक निबन्ध लिखिए ।

2 समय प्रबन्धन के सूत्र तथा पद्धतियों को उदाहरण सहित स्पष्ट करिए ।

15.9 संदर्भ (References)

1. Ahluwalia, Lt Gen. J.S. (2001). Total Quality Management : Creating a Quality Environment for the Next Millennium. New Delhi : Vanity Books International.
2. Balsara, Maitrya (2002). Administration and Reorganisation of Teacher Education New Delhi : Kanishka Publishers.

3. Chandras Karan, P. (1994) Educational Planning and Management. New Delhi: Sterling Publishers Private Limited.
4. Chester, Barnard (1954). The Functions of Executive. Cambridge : Harvard University Press.
5. Choudhary, Namita Roy (2001). Management in Education. New Delhi : S.B.Nangia, A.P.H. Publishing Corporation.
6. जी.एस सुधा (2003). प्रबन्ध अवधारणा, चिन्तन एवं व्यवहार जयपुर: रमेश बुक डिपो.
7. Goens, George A. and Clover, Sharon I.R. (1984) Mastering School Reform. Singapore : Allyn and bacon.
8. kumar, K.L. (2001) Educational Technology. New Delhi: New AGE International (P) Limited, Publishers.
9. Mukhopadhyay, M. (2001). Total Quality Management in Education. New Delhi :National Institute of Education Planning and Administration.
10. Organization and Management Intermediate course Study material.Paper-64, Board of Studies, The Institute of Chartered Accountants of India.
11. Pandya, S.R. (2001). Administration and Management of Education. Mumbai: Himalaya Publicating House.
12. शर्मा, आर.एस. (1995). विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन । मेरठ : सूर्या पब्लिकेशन.
13. शर्मा, डॉ. आर.ए. (2004). शिक्षा तकनीकी के तत्व एवं प्रबन्धन । मेरठ : सूर्या पब्लिकेशन राजकी इन्टर कॉलेज के समीप ।
14. Tripathi, P.C. and Reddy, P.N. (1997). Principles of Management. Second Edition, New Delhi : Tata Mc Graw - Hill Publishing Company Limited.
15. वर्मा, जे.पी. (2002) शैक्षिक प्रबन्धन (Educational Management) जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी.

Websites-

1. Buzzle.com intelligent life of the web. Why Today's Education System Needs Time Management Tips for classroom. htm
2. www.smart teaching.org.
3. Wikipedia.the Free Encyclopedia

4. www.globalization.wikipedia
5. www.wharton.upenn.edu/faclty/innovation/-21k
6. www.boloji.com/analysis/068.htm.
7. wikipedia: To-dolist
8. http://skill-assessment.suite/01.com
9. http://www.ism.ws/ks/product_ID=7733

इकाई 16

परिवर्तन प्रबन्धन और नवाचार

इकाई की सरंचना

16.0 इकाई के उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

16.2 परिवर्तन प्रबन्ध: अर्थ एवं परिभाषा (Change Management : Meaning and Definitons)

16.3 शैक्षिक प्रबन्धन में परिवर्तित परिदृश्य (Changed Scenario in Educational Management)

16.4 शैक्षिक प्रबन्धन में नवाचार एवं परिवर्तन के कारण (Innovations and Change in Educational Management)

16.5 नवाचार प्रक्रिया (The Process of Innovations)

16.6 परिवर्तित प्रबन्धन में नवाचार (Innovations in Changed Management)

16.7 सारांश (Summary)

16.8 संदर्भ (References)

16.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई को पढ़कर आप यह जान सकेंगे कि -

1. परिवर्तन प्रबन्धन का अर्थ एवं अवधारणा है ।
2. शिक्षा में नवाचार एवं प्रबन्ध परिवर्तन के कारण क्या हैं ।
3. नवाचार प्रक्रिया क्या है?
4. परिवर्तित प्रबन्धन में किन नवाचारों का प्रयोग किया गया है?

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

हम प्राय: पढते एवं सुनते हैं कि.

"Change is the law of nature"

"परिवर्तन प्रकृति का नियम है ।"

''वातावरण गतिशील एवं जटिल है तथा यह भविष्य में गतिशील जटिल बना रहेगा तथा भावी सदमों या आघात **(Future Shock)** के रूप में हमें डराता रहेगा ।''

आल्विन टॉफलर

उचित प्रबन्ध न किए जाने पर प्रबन्धक के लिए परिवर्तन एक भावी आघात बन सकता है। टॉफलर भी मानते हैं कि- "भावी आघात सम-सामयिक तथ्य **(Time phenomenon)** है, समाज में तीव्र गति से हो रहे परिवर्तनों का परिणाम है और यह पुरानी संस्कृति पर नई संस्कृति के अध्यारोपण से उत्पन्न हो रहा है । यह अपने स्वयं के समाज में

एक सांस्कृतिक आघात है ।" टॉफलर के इन विचारों को यदि हम स्वीकार करते हैं तो इस प्रकार तीव्र गति से घटित हो रहे आक्रामक परिवर्तनों नवकरणो विकासात्मक प्रवृत्तियों विक्षोभ, अशांति, प्रतिस्पर्धा तथा अस्त-व्यस्तता आदि में उचित प्रबन्धन होना आवश्यक । कोई भी प्रबन्धक परिवर्तन की चुनौतियों से नहीं बच सकता, चाहे वह किसी भी संगठन का क्यों न ।

दीर्घकाल तक अपने क्षेत्र में स्थिरता बनाए रखने के लिए प्रत्येक संगठन में परिवर्तन आवश्यक भी होता है । विभिन्न क्षेत्रों तथा सामाजिक प्रणाली में होने वाले परिवर्तन का सीधा प्रभाव शैक्षिक संस्थाओं पर पड़ता है और उनमें स्वाभाविक रूप से परिवर्तनीय गतिशीलता आरम्भ हो जाती है । परिवर्तन और प्रबन्धन मे परस्पर समन्वय स्थापित करने के लिए ही व्यवस्था में कुछ नवाचार करने आवश्यक हो जाते है । नवाचार क्या और कैसे हो सकते हैं इस अवधारणा को जानने से पूर्व हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि

प्रबन्धन परिवर्तन का अर्थ एवं अवधारणा क्या है तथा विभिन्न प्रबन्धकों ने इसके अर्थ के स्पष्टीकरण में क्या कहा है ।

16.2 परिवर्तन-प्रबन्धन: अर्थ एवं परिभाषा (Change Management: Meaning and definitions)

किसी संस्था के आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण में हो रहे परिवर्तनों के कारण संस्था की स्थापित एवं प्रचलित कार्य-प्रणाली में नवीन परिवर्तन करने पर विचार करना तथा उन्हें क्रियान्वित करना ही परिवर्तन-प्रबन्ध कहलाता है । प्रचलित कार्य प्रणाली, कार्य विधियाँ, नीतियाँ, कार्य परम्परा आदि में सुधारात्मक बदलाव करना ही परिवर्तन-प्रबन्ध है ।

प्रबन्ध विशेषज्ञ जॉन थॉमस एवं बेनिस **(John Thomas and Bennis)** के अनुसार "किसी संरचनात्मक नवीनीकरण, नई नीति, लक्ष्य या संचालन-दर्शन, वातावरण तथा कार्यशैली में परिवर्तन की विचारपूर्वक रूपरेखा बनाना तथा उसे क्रियान्वित करना ही परिवर्तन प्रबन्ध है।"

जब संस्थान में कोई सुधारात्मक परिवर्तन किए जाते हैं, तब भी प्रबन्धन के नए नियम बनाए जाते हैं । इस परिप्रेक्ष्य में विचारक इवेन्सविच (Ivancevich) द्वारा प्रतिपादित परिभाषा दृष्टव्य है:-

"परिवर्तन प्रबन्ध संगठन की संरचना. व्यवहार तथा प्रौद्योगिकी में परिवर्तन करके व्यक्तियों, समुहों तथा संस्था के समग्र निष्पादन में सुधार करने का एक नियोजित प्रयास है। "

परिवर्तन-प्रबन्ध का अन्य कारण उस संस्थान के अस्तित्व कायम रखने के सन्दर्भ में भी किया जाता है इस दिशा में किए गए प्रबन्धकीय परिवर्तन पर अपने विचार व्यक्त करते हुए मेसकन तथा अलबर्ट **(Mescon and Alber)** ने लिखा है कि-

"Change is something management must respond to effectively by the organization to survive and succeed."

अर्थात् - "संगठन के अस्तित्व एवं सफलता के लिए प्रबन्ध द्वारा परिवर्तनों का प्रभावपूर्ण प्रत्युत्तर ही परिवर्तन का प्रबन्ध है ।"

परिभाषा :

"परिवर्तन-प्रबन्ध वह प्रक्रिया, उपकरण और तकनीक है, जो व्यक्तियों से संबंधित परिवर्तन प्रक्रिया को संगठन के व्यापक उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक होती है ।" परिवर्तन प्रबन्ध की सार्वभौमिक परिभाषा देना तो कठिन है, लेकिन यदि संगठन के विकास के मानसिक मानचित्रण को समझा जाए और इसे अधिगम संगठनात्मक के सम्प्रत्यय से संबंधित किया जाए तो परिवर्तन प्रबन्ध के विभिन्न आयाम ठीक से समझे जा सकते हैं ।"

परिवर्तन वस्तुत: संगठन की अधिगम प्रक्रिया का परिणाम होते हैं जो निम्नांकित प्रश्नों के इर्द-गिर्द घूमते हैं । जैसे-

1. संगठन में संगठन के विकास व संगठन में व्यक्तिगत विकास में वे कौनसी प्रक्रियाएँ हैं जिनसे हम परिवर्तन कर सकते हैं ।
2. परिवर्तन की आवश्यकता किन क्षेत्रों में है?
3. हम उस परिवर्तन का प्रबन्ध कैसे कर सकते हैं जो संगठन और के मूल्यों से मेल खाती हो।
4. परिवर्तन प्रबन्ध को कई बार ज्ञान प्रबन्ध के रूप में भी देखा जाता । ज्ञान समाज में ज्ञान प्रबन्ध एक आवश्यक आयाम है । ज्ञान प्रबन्ध से संगठन प्रबन्धन होता है संगठन प्रबन्ध ज्ञान परिवर्तन का अभिकरण है ।
5. परिवर्तन तीन स्तरों पर दृष्टिगोचर होता है -
   (1) स्वयं व्यक्ति के स्तर पर
   (2) छोटे संगठन के स्तर पर।
   (3) व्यापक व्यवस्था स्तर पर

- **परिवर्तन प्रबन्ध के आधारभूत कौशल**

परिवर्तन प्रबन्धन के तीन आधारभूत कौशल माने जाते हैं -

1. परिवर्तन प्रबन्धन कार्य (एक प्रतिक्रियात्मक और सहक्रियात्मक स्थिति)
2. व्यावसायिक व्यवहार का एक क्षेत्र (कर्मचारियों की दक्षता व ज्ञान के स्तर में विचलन)
3. ज्ञान का विषय (प्रतिमान विधियों, तकनीकों और अन्य उपकरणों से निर्मित)

इन आधारभूत कौशलों के अतिरिक्त व्यावहारिक दृष्टि से किसी को दक्षता प्रदान करने वाले कौशलों में राजनैतिक कौशल, विश्लेषणात्मक कौशल, व्यक्ति कौशल, कौशल तथा कार्य कौशल भी प्रमुख माने जाते हैं जो निम्नानुसार हैं -

- **परिवर्तन प्रक्रिया**

परिवर्तन प्रबन्धन प्रक्रिया में निम्नांकित कौशलों की' भूमिका 'अहम् हो जाती है :-

(1) राजनैतिक कौशल

संगठन मूलत: सामान्य व्यवस्थाएँ होती हैं । व्यक्तियों के बिना संगठन की कल्पना' नहीं की -जा सकती है । इस तथ्य को ध्यान में रखे बगैर भावी परिवर्तन संभव नहीं है । संगठन व्यापक व गहरे रूप से राजनैतिक होते हैं । जितने लाभ-हानि और समानता व असमानता के प्रश्न होंगे उतनी ही गहरी राजनीति होगी । प्रबन्ध परिवर्तन के अभिकरणों को इन चीजों का हिस्सा तो न,हीं बनना है किन्तु उसे इन चीजों को समझना होगा । परिवर्तन

चाहने वाले अभिकरणों को इन चीजों को समझकर स्वयं को निर्णय लेना होता है क्योंकि यह निर्णय कोई और नहीं लेता है । अत: राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में उपयुक्त निर्णय वाले कौशल को राजनैतिक कौशल कहा जाता है ।

(2) विश्लेषणात्मक कौशल

परिवर्तन अभिकरणों में संगठन और संसाधनों को अच्छी तरह से विश्लेषित कर समझने का कौशल होना आवश्यक है । अनुमान से काम नहीं चलाया जा सकता अर्थात् दृष्टि भी उपयोगी होती है, किन्तु सर्वाधिक जरूरी है कि परिवर्तन के अभिकरण स्पष्ट, तार्किक और विशेष कर अपने कार्य की रूपरेखा तैयार करें । इस प्रकार व्यवस्था विश्लेषण और वित्तीय विश्लेषण उद्देश्यों को स्पष्टता प्रदान करते हैं । विश्लेषण कौशल दरअसल पुरानी, वर्तमान और भविष्य की समस्या समाधान में प्रबन्धक के लिए मददगार होता है ।

(3) व्यक्ति कौशल -

जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि संगठन में व्यक्ति महत्त्वपूर्ण होते हैं । संगठन में काम करने वाले व्यक्ति विभिन्न जाति, रंग, बुद्धि, योग्यता, स्तर, लिंग, राष्ट्रीयता, भाषा, धर्म, विश्वास और दृष्टिकोण व्यक्तित्व और प्राथमिकताओं से बनकर कार्य करते हैं, प्रबन्धकों को ऐसे कार्यदल के साथ कार्य करना व कार्य करवाना एक जटिल कार्य है । सम्प्रेषण और व्यक्तिगत कौशल के द्वारा ही संगठन के कार्यकर्ताओं को संगठन में प्रभावी बनाया जा सकता है । संगठन कर्मियों की विभिन्नताओं के विभिन्न आयामों को समझने का कौशल ही व्यक्ति कौशल कहलाता है ।

(4) व्यवस्था कौशल

उद्देश्यनिष्ठ कार्य करने के लिए भौतिक और मानवीय संसाधन आवश्यक होते हैं । भौतिक संसाधनों के प्रभावी उपयोग के लिए कुशल मानवीय संसाधन जरूरी हैं । मानवीय और भौतिक संसाधनों की अन्तःक्रिया संगठन की व्यवस्था कहलाती है और संगठन की व्यवस्था संगठन के चरित्र का आईना होती है । अत: व्यवस्था में दो प्रकार के कौशल होना जरूरी हैं जो निम्नांकित हैं -

1. व्यवस्था विश्लेषण
2. व्यवस्था अभियांत्रिकी

जहाँ व्यवस्था विश्लेषण ज्ञान आधारित है वहीं व्यवस्था अभियांत्रिकी' कौशल धारित है । दोनों ही कौशलों को समझकर परिवर्तन का प्रबन्धन किया जाना चाहिए ।

(5) कार्य कौशल

संगठन को समझने का अर्थ है संगठन के कार्य को समझना । बिना वित्त के कोई संगठन कार्य नहीं कर सकता । वित्त के बुद्धिमतापूर्ण उपयोग से संगठन को न केवल संचालित मजबूत किया जा सकता है अपितु इसमें भविष्य के लिए परिवर्तन का प्रबन्ध करना भी आसान होता है ।

अर्थात्- संगठन के अस्तित्व एवं सफलता के लिए प्रबन्ध द्वारा परिवर्तनों का प्रभावपूर्ण प्रत्युत्तर ही परिवर्तन का प्रबन्ध है ।

16.3 शैक्षिक प्रबन्धन में परिवर्तित परिदृश्य (Changed Scenario in Educational Management)

वैश्विक परिदृश्य में प्रत्येक क्षेत्र में निरन्तर तेजी सें हो रहे परिवर्तन ने शैक्षिक संगठनों को भी परिवर्तन हेतु प्रेरित व बाध्य किया है । नए विचारों, नई तकनीकों, नई विचारधाराओं, नए चिन्तन व नए सन्दर्भों ने शैक्षिक प्रबन्धन की कार्य प्रणालियों में तीव्रगामी परिवर्तन किए हैं तथा गुणात्मकता और प्रगति की अनेक सम्भावनाएँ भी प्रस्तुत की हैं । अन्य व्यवसायों तथा औद्योगिक प्रबन्धन में परिवर्तन नई बात नहीं है किन्तु शिक्षा में होने वाले नवीन प्रबन्धकीय परिवर्तन वस्तुत: नवाचार होते हैं किन्तु इनके परिणाम देर से प्राप्त होने वाले तथा दूरगामी होते हैं ।

वर्तमान सदी में शैक्षिक प्रबन्धन के क्षेत्र में अनेक नई प्रवृत्तियाँ जन्म ले रही है, नई चुनौतियाँ उठ रही है तथा नए सामाजिक एवं नीतिगत मूल्यों का उदय हो रहा है । शिक्षा के सर्वाधिक नवीन एवं चुनौतीपूर्ण कार्यो के आधारभूत कारण निम्नांकित तीन विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण माने जा रहे हैं और समस्त प्रबन्धकों का ध्यान इन्हीं पर केन्द्रित है । ये तीन पक्ष हैं:-

1. उदारीकरण **(Liberlization)**

2. निजीकरण **(Privatization)**

3. वैश्वीकरण **(Globalization)**

उदारीकरण **(Liberalization)** निजीकरण **(Privatization)** और वैश्वीकरण **(Globalization)** की विचारधारा मुख्य रूप से विश्व में विभिन्न देशों द्वारा अपने आर्थिक तंत्र को सुदृढ और विस्तृत करने के उद्देश्य से आरम्भ की गई, किन्तु विभिन्न व्यवसायों में इसके मानदण्डों की प्रभाविता को देखते हुए शिक्षा में भी इस विचारधारा ने प्रवेश किया ।

शैक्षिक परिदृश्य में LPG का सामान्य अर्थ निम्नानुसार है-

1. उदारीकरण (Liberalization) = L

उदारीकरण **(L)** से तात्पर्य - वैश्विक परिप्रेक्ष्य में परिवर्तित विभिन्न नीतियों के सन्दर्भ मैं-- विश्व स्तर पर विचारों, मानव संसाधनों एवं वित्तीय प्रबन्धनों की उदारवादी विचारधारा की अनुमति से है । इसके अन्तर्गत निम्नांकित कार्यो की अनुमति स्वीकार्य है-

1. नए संस्थानों को आरम्भ करना ।
2. विदेशी विश्वविद्यालयों की स्थापना करना ।
3. शिक्षकों के लिए विभिन्न रोजगार के अवसर प्रदान करना ।
4. विशेषज्ञों का परस्पर आदान-प्रदान करना ।
5. पाठ्यचर्या में विश्व की विविध विषय-वस्तु का समावेश एवं समंजन ।

2. निजीकरण (Privatization)

निजीकरण से तात्पर्य - राज्य सरकार या केन्द्र सरकार के सहयोग के बिना किसी संगठन द्वारा स्वयं के सामर्थ्य पर शिक्षकों, छात्रों, शिक्षक प्रशिक्षकों एवं प्रबन्धकों के उन्नयन

तथा वित्तीय अर्जन हेतु आरम्भ किए जाने वाले पाठ्यक्रम, शैक्षिक कार्यक्रम, शिक्षा संस्थान तथा प्रशिक्षण संस्थानों से लिया जाता है ।

3. वैश्वीकरण (Globalization) = G

वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ अन्तर्राष्ट्रीय भावात्मकता से है किन्तु इसकी अवधारणा मूल रूप से विश्व के विभिन्न देशों के व्यावसायिक संगठनों द्वारा अपने आर्थिक मूल रूप से विश्व के विभिन्न देशों के व्यावसायिक संगठनों द्वारा अपने आर्थिक प्रणाली को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से निर्धारित की गई । इसके साथ ही सूचना प्रौद्योगिकी **(Information Technology)** ने ही वैश्वीकरण की अवधारणा और स्वरूप को आकार प्रदान किया है । 21 वीं सदी का शुभारम्भ सूचना प्रौद्योगिकी के युग के रूप में हुआ है । सूचना प्रौद्योगिकी ने आर्थिक स्वतंत्रता, ज्ञान-सम्पदा और निर्माण को अत्यधिक प्रभावित किया है । इसी के फलस्वरूप घटित होने वाले परिवर्तनों के कारण दुनिया को 'वैश्विक ग्राम' **(Global Village)** की संज्ञा दी गई है । वस्तुत: वैश्वीकरण अथवा भूमण्डलीकरण व्यापार के क्षेत्र में चल रही एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा पूरे विश्व को एक भविष्यवादी संस्कृति में ढालने का एवं सम्पूर्ण विश्व को एक भविष्यवादी गाँव बना देने का एक अभियान कहा जा सकता है ।

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में यह भविष्य दृष्टि संसार के लगभग सभी देशों की शैक्षिक संरचना व स्वरूप को भी अलग-अलग ढंग से प्रभावित कर रही है । व्यावसायिक प्रतिष्ठान ही मानव सेवा के क्षेत्र नहीं है अपितु शिक्षा भी चूंकि सामाजिक सेवाओं के अन्तर्गत मानी जाती है, अत: विश्व स्तर पर इसके आदान-प्रदान पर भी **WTO (World Trade Organization)** तथा GATs **(The General Agreement on Trade in Services,)** के उद्देश्य एवं नीति के अनुसार शिक्षा के वैश्वीकरण (Globalization of Education) का अर्थ भी शैक्षिक कार्यक्रमों का विभिन्न राष्ट्रों द्वारा उन्मुक्तता, प्रगतिवादिता तथा उदारता के साथ आदान-प्रदान करने से लिया गया है, जिसमें सम्प्रत्ययात्मक दक्षता, पाठयक्रम, प्रबन्धन, मूल्यांकन प्रशासन, शिक्षण-अधिगम सामग्री के चयन, उपयोग एवं निर्माण सम्बन्धी अन्य कई कार्यक्रम सम्मिलित हैं । इस प्रकार निश्चय ही परिवर्तित शैक्षिक परिदृश्य में प्रबन्धन शैली एवं प्रबन्धकीय क्षेत्रों में परिवर्तन और परिवर्द्धन आवश्यक हो जाता है ।

16.4 शैक्षिक प्रबन्धन में नवाचार (Innovations and change in Education Management)

शिक्षा में प्रबन्ध परिवर्तन में कई नवाचार किए जा रहे हैं । प्रबन्ध का स्वरूप उत्कृष्टता के परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन करने हेतु प्रबन्धकों के समक्ष कई आधारभूत कारण हैं, जिनमें से कुछ निम्नानुसार है-

प्रबन्धन में परिवर्तन के आधारभूत कारण :-

1. सूचना प्रौद्योगिकी का बढ़ना
2. उच्च तकनीकी प्रयोग
3. वैश्विक शिक्षा की अवधारणा

4. अल्पकालिक शिक्षा से दीर्घकालिक प्रभाव
5. प्रबन्धन में विकेन्द्रीकरण
6. संस्थागत स्व-सहायता
7. भागीदारी प्रजातन्त्र
8. पदानुक्रम से तन्त्र प्रणाली की ओर गतिशीलता
9. अन्तर्राष्ट्रीयकरण एवं सार्वभौमिकता
10. बहु विकल्पीय पाठ्यक्रम

उपर्युक्त विविध कारणों के फलस्वरूप शैक्षिक प्रबन्धन में अनवरत परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की जा रही है तथा संस्थाएँ नवाचारों के प्रयोग से स्वयं को सशक्त बनाने के प्रयास कर रही है । नवाचार क्या है तथा इसकी प्रक्रिया क्या है इत्यादि बिंदुओं पर आगे उल्लेख किया जा रहा है ।

16.5 नवाचार प्रक्रिया (Process of Innovations)

नवाचार (Innovation) शब्द लैटिन भाषा के Innovare से निर्मित किया गया है । Innovare का अर्थ है- to make something new. यू.के. के इण्डस्ट्री विभाग द्वारा इसे सरलता से परिभाषित करते हुए लिखा गया है कि- 'The Successful Exploration of New Ideas'. अर्थात् किसी नए विचार का सफलतापूर्वक अन्वेषण एवं प्रयोग करना ही नवाचार है ।

प्रत्येक संस्था या संगठन की सफलता हेतु विचारधारा में परिवर्तन की प्रक्रिया में अग्रलिखित चार चरणों में प्रबन्धन किया जाता है-

1. सम्बंधित क्षेत्र के सम्पूर्ण परिदृश्य की खोजबीन करने में ।
2. मुख्य कार्य योजनाओं का चयन करने में ।
3. उन व्यूह रचनाओं में से सबसे उपयुक्त सम्भवकारी एवं लाभकारी योजना का चयन करने में ।
4. नवाचार की सफलता के प्रति विश्वास करते हुए नवीन विचार का क्रियान्वयन आरम्भ करने में ।

नवाचार की उपर्युक्त प्रक्रिया को समझने के बाद हम परिवर्तित प्रबन्धन में होने वाले नवाचारों को समझेंगे ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. परिवर्तन-प्रबन्धन की अवधारणा क्या है ?
2. परिवर्तन प्रबन्धन में LPG (उ.नि.वै.) क्या है ?
3. नवाचार प्रक्रिय स्पष्ट करिए ।

16.6 परिवर्तित प्रबन्धन में नवाचार (Innovations in Changed Management)

प्रबन्धन में निरन्तर होने वाले नवाचारों के साथ-साथ नवीन चुनौतियाँ निरन्तर सामने आ रही हैं और इससे नवाचारों की प्रभाविता और उपयोगिता में भी एक प्रकार की प्रतिस्पर्धा

कायम होने लगी है । कई नवाचारों ने प्रबन्धन को प्रभावी बनाते हुए श्रेष्ठ परिणाम प्रदान किए हैं । श्रेष्ठता करने वाले कुछ नवाचारों का आगे वर्णन किया जा रहा है ।

1. **सहभागी प्रबन्धन (Participative Management)** - जिस प्रकार उद्योगों में प्रबन्ध का स्वरूप सहभागी एवं जनतांत्रिक हो गया है उसी प्रकार शिक्षा जगत् में भी सहभागी प्रबन्ध को स्वीकार किया जाने लगा है । शिक्षा प्रबन्धन भी किसी इण्डस्ट्री या कम्पनी के समान एक संयुक्त उपक्रम होता है जो विभिन्न प्रबन्धकों, अधिकारियों, नीति निर्धारकों, कर्मचारियों, अध्यापकों, विद्यार्थियों, अभिभावकों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं आदि के संयुक्त प्रयासों से संचालित होता है । सहभागी प्रबन्धन की विचारधारा 'हम' (We) दृष्टिकोण पर आधारित होती है, जिसमें सभी लोग सभी उपक्रम का सम्पादन एक वृहत् परिप्रेक्ष्य में करते हैं । सामूहिकवाद आधुनिक प्रबन्ध प्रणाली का सरल तत्त्व बना हुआ है जिसके कारण ही संगठन या संस्थान अपनी शक्ति का पूर्ण प्रयोग कर सकता है । यह सिद्धान्त एक नीतिकार की सूक्ति 'संघे शक्ति: कलयुगों'' (अर्थात् इस मशीनीयुग में संगठन में ही शक्ति है) को चरितार्थ करता है ।

सहभागी प्रबन्धन की निम्नांकित विशेषताएँ होती हैं-

1. व्यक्तिवाद के स्थान पर जनतांत्रिक दृष्टिकोण ।
2. सहभागिता, सहयोग एवं सामूहिकवाद (Collectivism) से प्रबन्ध प्रणाली ।
3. कर्मचारियों का प्रबन्धकीय कार्यो में मानसिक एवं भावनात्मक रूप से जुड़ाव ।
4. प्रत्येक कर्मचारी, प्रत्येक कार्य का साझेदार एवं सदस्य ।
5. कार्यकर्ताओं की सभी कार्यो के संचालन, लाभ-हानि, प्रबन्ध व्यवस्था आदि में समान रूप से सहभागिता एवं उत्तरदायित्व ।

2. प्रबन्ध का अन्तर्राष्ट्रीयकरण (Internationalisation of Management)

प्रौद्योगिकीय संचार तथा वातावरण सम्बन्धी परिवर्तनों से व्यावसायिक क्रियाओं का तेजी से विस्तार हुआ है । शिक्षा भी इससे विशेष रूप से प्रभावित हुई है । इसके कारण आज कई राष्ट्रों में शैक्षिक आदान-प्रदान के कई कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं । शिक्षा के विविधीकरण, व्यावसायिक संयोजन तथा वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता के कारण कार्यक्रम की संरचनाएँ विस्तृत होती जा रही है । इस प्रकार के शैक्षिक पाठ्यक्रमों के संचालकों एवं प्रबन्धकों के मुख्यालय किसी एक देश में होते है तथा उन पाठ्यक्रमों के क्रियान्वयन कई देशों में सम्पन्न किए जाते हैं । प्रबन्ध व्यवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक प्रबन्धकों की संख्या बढ़ती जा रही है तथा इस प्रकार के कार्य से जुड़ने के लिए प्रबन्धकों को विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं, प्रबन्धकीय प्रणालियों आदि कार्य को समझने एवं सीखने की औपचारिक व्यवस्था भी की जा रही है ।

3. सूचना प्रौद्योगिकी (Information Technology) -

सूचना प्रौद्योगिकी आधुनिक प्रबन्धन का सबसे महत्वपूर्ण संसाधन व उपकरण है । ज्ञान ही जटिल से जटिल प्रबन्धन का मुख्य आधार है जिसे सूचना प्रौद्योगिकी ने सुगम बना दिया है । इस दिशा में हार्वर्ड के प्रोफेसर हैरिस कैथेरिन (Harris) ने अपने लेख 'सूचना शक्ति' में उल्लेख किया है कि- प्रौद्योगिकी का विस्तार हमारे व्यवसाय एवं प्रबन्ध करने के ढंग को

परिवर्तित कर रहा है । यह ग्राहकों एवं पूर्ति कर्त्ताओं के साथ सम्बन्धों को बदल रहा है । वास्तव में यह कोई तकनीकी घटना नहीं वरन् एक सामाजिक बदलाव है । शिक्षा में न केवल प्रबन्धन की दृष्टि से अपितु सभी दृष्टिकोण से वर्तमान में स्वचालित उपकरणों तथा कम्प्यूटर्स के बढ़ते उपयोग ने कार्य की सभी में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिए हैं परिणामस्वरूप शिक्षा व शैक्षिक प्रबन्धन के लिए सूचना प्रौद्योगिकी सशक्त माध्यम बनता जा रह है ।

4. प्रबन्ध का पेशाकरण (Professionalization of Management) -

वर्तमान में प्रबन्ध एक विशिष्ट एवं बौद्धिक पेशा बन चुका है । इसका ज्ञान व्यवस्थित सिद्धान्तों एवं तकनीकों से युक्त होता है । प्रत्येक देश में प्रबन्ध की प्रतिनिधि संस्थाओं तथा औपचारिक प्रशिक्षण देने वाले संस्थानों की संख्या तीव्रता से बढ़ रही है । शैक्षिक प्रबंधन की तकनीकों, प्रणालियों एवं प्रक्रियाओं के सम्बंध में वृहत स्तर पर शोध कार्य एवं प्रयोग किए जा रहे हैं । विश्व के प्रगतिशील देशों-अमेरिका, फ्रांस, जापान, ब्रिटेन आदि ने प्रबन्ध को एक स्वतंत्र पेशे के रूप में स्वीकार किया है । भारत में भी इस दिशा में प्रयास आरम्भ हो चुके हैं । प्रबन्ध को पेशे के रूप में स्वीकार किए जाने की गति एवं प्रवृत्ति के पीछे अनेक कारण हैं । उनमें से कुछ कारण निम्नांकित माने जाते हैं-

1. प्रबन्ध का स्वामित्व से पृथक् होना ।
2. सभी राष्ट्रों में औद्योगीकरण की गति तीव्र होना ।
3. प्रबन्धकीय ज्ञान एवं कौशल के शिक्षण-प्रशिक्षण को सुविधाओं का विस्तार होना ।
4. प्रबन्ध के सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति बोध का बढ़ना ।
5. प्रबन्धकों की मान्यताओं एवं दृष्टिकोण का प्रगतिगामी होना ।
6. प्रबन्ध का व्यावहारिक अनुभव प्रदान करने हेतु व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का प्रावधान होना ।
7. प्रबन्ध में सामाजिक संवेदनशीलता एवं मानवीय दृष्टिकोण का विकास होना ।
8. वैज्ञानिक एवं प्रणालीगत प्रबन्ध को महत्व देना ।
9. प्रबन्धकीय ज्ञान व विनिमय के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों व गोष्ठियों का आयोजन होना ।
10. प्रबन्धन प्रशिक्षकों की पर्याप्त उपलब्धि होना ।

प्रबन्धन में उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप शैक्षिक प्रबन्धन भी सेवाकार्य से मुक्त होकर एक पेशे में परिवर्तित हो गया है ।

5. प्रबन्धन में नीतिशास्त्र (Ethics in Management) -

प्रबन्ध का मूल केन्द्र मानव एवं उसके साथ किए जाने वाले व्यवहार हैं । अत: आधुनिक प्रबन्धन में नीतिगत मूल्यों, मानवीय आदर्शों, पारस्परिक सम्बन्धों, नीतिगत प्रयासों आदि पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है । यह व्यक्तियों के अभिशोषण (Manipulation) पर नहीं अपितु अभिप्रेरणा (Motivation) पर आधारित हैं । इसमें प्रबन्धकों के नैतिक कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व महत्वपूर्ण माने जाते हैं और ये ही उनके निर्देशक तत्व भी माने गए हैं । प्रबन्ध ज्ञाता टोन होसमर (Tone Hosmer) ने अपनी पुस्तक "Ethics in Management" में

लिखा है कि **"नीतिगत आचरण के प्रश्न 'सही' एवं गलत के मध्य चयन करने मात्र से ही नहीं जुड़े हुए हैं वरन् वे आर्थिक प्रतिफल तथा सामाजिक क्षति के मध्य एक उचित सन्तुलन बनाए रखने से भी सम्बन्धित हैं ।"** अत: यह कहा जा सकता है कि नीतिशास्त्र पर आधारित प्रबन्धन लाभ एवं नीतिगत व्यवहार के मध्य एक उपयुक्त समन्वय बनाए रखता है ।

6. युद्धनीतिक प्रबन्ध (Strategic Management) -

आधुनिक युग में तीव्रता से बदलते हुए घटनाक्रम तथा लाभ की अनिश्चितता ने प्रबन्ध के स्वरूप को युद्धनीतिक बना दिया है क्योंकि युद्ध जीतने के लिए जिस प्रकार व्यूह रचना की जाती है तथा योजना से परिणाम तक विहंगम दृष्टि रखी जाती है इसी प्रकार आज प्रबन्धकों के अधिकांश निर्णय दीर्घकालीन दृष्टि पर आधारित होते हैं । प्रबन्धक वातावरणीय पूर्वानुमान पर अधिक जोर देने लगे हैं । वे अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं की खोज खबर रखते हैं तथा योजना, कार्यक्रम निर्धारण बजट निर्माण नीतियाँ आदि के सम्बंध में एक दीर्घकालीन दृष्टि (vision) रखने लगे हैं। इसके साथ ही उत्कृष्टता का लक्ष्य (Mission) भी रखते हैं ।

7. प्रणाली विचारधारा (Systems Approach) -

प्रबन्धन अब एकतंत्रीय एवं श्रृंखलाबद्ध व पदानुक्रम पर आधारित न होकर प्रणालीगत तंत्रमय वृत्तीय (Circular) हो गया है । क्योंकि प्रबन्धन में निम्नांकित तत्व निहित हैं-

1. प्रबन्धन उप प्रणालियों में बंटी हुई बहु आयामी बहु-स्तरीय तथा बहु तत्वों से युक्त एक व्यवस्था है ।
2. इसका एकीकृत पद्धति के रूप में अध्ययन किया जाता है ।
3. इसमें प्रत्येक संस्था एक लक्ष्य प्रधान प्रणाली होती है ।
4. प्रबन्ध के लिए बहु विषयक (Multi disciplinary) दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है।
5. यह अपने वातावरण की एक उप-प्रणाली होता है ।

आधुनिक प्रबन्ध संख्या के समस्त विभागों व कार्यो पर समग्र रूप से ध्यान देता है । जिस प्रकार पर्यावरण सन्तुलन में एक प्रणाली होती है उसी प्रकार प्रबन्धन भी प्रणाली युक्त होता है, जिसे पूर्णता में ही समझना चाहिए ।

8. सम्भाव्यता विचारधारा (Contingency Concept)

प्रबन्धन में सम्भाव्यता विचारधारा से तात्पर्य परिस्थितियों और समय के अनुसार प्रबन्धन में अनुकूल परिवर्तन करना । वर्तमान समय में प्रबन्धन इस आकस्मिक अवधारणा पर भी आधारित है । प्रबन्धक नियमों सिद्धान्तों तथा किसी वाद (Ism) में बँधकर कार्य नहीं करता वरन् वही व्यवहार करता है जो समसामयिक होता है । एक प्रबन्धक अपने निर्णयों एवं व्यवहार को तभी प्रभावी बना सकता है, जब वह वास्तविक परिस्थितियों, तत्कालीन प्रसंगों तथा सांयोगिक घटनाओं को ध्यान में रखता है । नए प्रबन्धक कार्य की किसी एक श्रेष्ठ या सर्वोत्तम विधि (One Best Method) में विश्वास नहीं करते अपितु प्रत्येक सिद्धान्त को अपनाते समय परिस्थितियों को भी ध्यान में रखते हैं । वे अपने प्रबन्धकीय ज्ञान, कौशल, चातुर्य एवं अनुभव का प्रयोग बाह्य एवं आन्तरिक तथा भावी दशाओं के सन्दर्भ में करते हुए एक कुशल प्रबन्धक के रूप में जाने जा रहे हैं ।

शैक्षिक प्रबन्धन में इस परिस्थितिजन्य एवं सांयोगिक प्रबंधनक की विचारधारा प्राय: अपनाई जा रही है, क्योंकि वास्तविक परिस्थितियों में शैक्षिक प्रबन्धक को अधिकांश रूप से परिस्थितियों एवं प्रसंगों के सन्दर्भों में ही निर्णय लेने पड़ते हैं तथा मानवीय क्षेत्र होने से उन्हें सचेतन होकर संवेदनशीलता का भी ध्यान रखना पड़ता है ।

9. प्रबन्ध की 'क्यू' विचारधारा ('Q' Theory of Management)

प्रबन्धन में नीतिगत एवं आन्तरिक वातावरण के साथ बाह्य तथा अन्य सभी प्रभावी वातावरण से सामंजस्य व समन्वय करना ही 'क्यू (Q) विचारधारा का प्रबन्ध माना जाता है ।

प्रबन्धन के नीतिगत वातावरण की भाँति ही उसका सांस्कृतिक वातावरण भी प्रबन्धकीय नीतियों व निर्णयों को गहन रूप से प्रभावित करता है । इस दृष्टि से एक प्रधानाचार्य को विद्यार्थियों व अध्यापकों की रूचियों, आदतों, दृष्टिकोण, चिन्तन, सामाजिक चेतना, परम्पराओं, जीवन मूल्यों, रहन-सहन, रीति-रिवाजों आदि सांस्कृतिक पक्षों को ध्यान में रखकर प्रबन्ध प्रणाली का निर्धारण करना होता है । हेनरी फग्र्यूसन (Henry Ferguson) ने अपनी पुस्तक Tomorrow's Global Executive' में उल्लेख किया है कि, आधुनिक प्रबन्धक को सार्वभौमिक वातावरण में प्रबन्ध करने के लिए निम्नांकित बातों पर ध्यान देना चाहिए-

1 संस्था के सांस्कृतिक वातावरण को समझना ।

2 बदलते हुए विभिन्न सांस्कृतिक वातावरण में संस्था की संस्कृति का समायोजन करना अर्थात निगमीय संस्कृति में परिवर्तन करके उसको सांस्कृतिक वातावरण के अनुरूप ढालना ।

फग्र्यूसन ने इसे क्यू (Q) विचारधारा नाम दिया है । वर्तमान में प्रबन्धन की सीमाएँ अन्तर्राष्ट्रीय हो जाने से प्रबन्धक को विभिन्न देशों की संस्कृतियों, मूल्यों एवं कार्यशैलियों के अनुरूप ही निर्णय लेकर व्यवहार करना होता है ऐसे में क्यू विचारधारा से प्रबंधन करके प्रबंधन को प्रभावी बनाया जा सकता है ।

10. प्रबन्ध की जेड विचारधारा ('Z' Theory of Management)

प्रबन्ध की जेड विचारधारा जापानी प्रबंध दर्शन एवं जापान में प्रयुक्त प्रबन्ध तकनीकों का ही दूसरा नाम है । यह विचारधारा मानवीय सम्बन्ध के सिद्धान्तों तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध की तकनीकों का योग है जिसे विभिन्न देशों द्वारा प्रबन्धन की इस विचारधारा को मान्यता दी जा रही है । जापानी प्रबन्धकीय दर्शन एवं दृष्टिकोण पर आधारित इस प्रबंधन में वहाँ के प्रचलित सामन्तवाद के सामाजिक ढाँचे को बदलने के लिए औद्योगिक संस्थानों में पैतृकवादी विचारधारा पर बल दिया गया । कारखानों में अच्छे कार्य की स्थितियों, आवास व भोजन सुविधा तथा अन्य कई कल्याणकारी सुविधाओं पर ध्यान दिया गया । इससे कर्मचारियों में कठिन परिश्रम, कार्य-निष्ठा व पारस्परिक विश्वास की भावना का विकास हुआ, साथ ही उत्तरदायी प्रबन्धन का स्वरूप विकसित हुआ ।

प्रो. विलियम आऊची (William Ouchi) ने जापानी उद्योगों की उपर्युक्त प्रबन्ध विशिष्टताओं एवं कार्यशैली के आधार पर ही जेड (Z) विचारधारा का प्रतिपादन किया । वे लिखते हैं कि- "एक राष्ट्र के रूप में हमने तकनीकी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण की भावना उत्पन्न

की है, किन्तु इस बीच हमने लोगों को वे जैसे हैं, वैसे ही स्वीकार कर लिया है । हमारी सरकार विद्युत, इंजीनियरी, भौतिकशास्त्र, खगोल विज्ञान तथा नवीन तकनीकी शोध पर कई डॉलर व्यय करती है किन्तु यह जानने के लिए कि कार्य पर व्यक्तियों का प्रबन्ध एवं संगठन कैसे किया जाय, प्राय: कुछ भी व्यय नहीं करती और यही बात हम जापान से सीख सकते हैं"।

जेड विचारधारा से युक्त प्रबन्धन की निम्नांकित विशेषताएँ-

1. इसमें कर्मचारी एक परिवार व समुदाय में बदल जाते हैं तथा इस पारिवारिक वातावरण से संगठन की नीतियों एवं योजनाओं में परिवर्तन आ जाता है ।
2. उत्पादकता वृद्धि के साथ मानवीय सम्बन्धों व पारस्परिक विश्वास की प्रणाली से कर्मचारियों में व्यवहार कुशलता, आत्मीयता, विश्वास एवं कार्य कुशलता आती है ।
3. संगठन में आते ही कर्मचारी संस्था के सभी अधिकारों व दायित्वों से जुड़ जाता है, इससे उसमें सदस्यता की भावना उत्पन्न होती है । फलस्वरूप अभाव के समय में कर्मचारियों की छँटनी नहीं की जाती, वरन् अच्छा समय आने तक उनकी वेतन-वृद्धि रोक ली जाती है । इस प्रकार यह प्रबन्धन कार्यकर्ताओं में सुदृढ़ अनुरक्ति (Powerful Attachment)] सहयोगी अनुभव (Shared Experience) एवं सामूहिक कार्यनीति (Collective Work Ethics) को प्रोत्साहित करती है । यह प्रबन्धन जीवन पर्यन्त रोजगार (Life Time Employment) उपलब्ध करवाता है ।
4. इसकी मूल्यांकन एवं पदोन्नति यद्यपि धीमी गति से अग्रसर होती है किन्तु इससे कार्यकर्ताओं को कार्य की जटिलता व तकनीकी पहलुओं को समझने तथा कार्य-परिस्थितियों के साथ समायोजन के पर्याप्त अवसर प्राप्त होते हैं ।
5. इस प्रबन्धन में नियन्त्रण प्रणाली संगठन संरचना में ही अन्तर्निहित रहती है । बाह्य नियन्त्रण सदैव बाधक होते हैं साथ ही वे कर्मचारियों पर थोपे जाते हैं । जेड विचारधारा के सम्बन्ध में बाह्य नीतियों, नियमों एवं उद्देश्यों आदि का सहारा नहीं लेती है, वरन् उपक्रमों की संस्कृति ही आधारभूत नियमों का सम्प्रेषण करती है । इस प्रबन्धन में नियंत्रण प्रणाली, व कार्य व्यवस्था का ही एक अभिन्न अंग होती है जो पूर्वाभासी (Anticipatory) अपनाती है तथा नियंत्रण को, कार्य संस्कृति एवं कार्यशैली से जोड़ देती है ।
6. जेड विचारधारा 'कार्य' को केवल आजीविका अर्जन ही नहीं मानती अपितु, जिन्दगी का एक महत्त्वपूर्ण भाग मानती है और कार्यकर्त्ता के व्यक्तित्व को सम्पूर्ण दृष्टि से देखती है । इसमें कार्यकर्त्ता के व्यक्तित्व का पूर्ण सम्मान किया जाता है । यह विचारधारा कार्यकर्त्ता को कार्य घण्टों के अनुसार मशीन एवं व्यक्ति के बीच विभाजित नहीं करती, वरन् उसे एक मानव के रूप। में देखती है ।
7. यद्यपि इस प्रबन्धन में सामूहिक दायित्वों के विचार को प्रबल मान्यता दी जाती है । किन्तु संगठन में होने वाले किसी भी प्रकार के दायित्वों तथा लाभ-हानि के लिए समस्त कार्यकर्ता ही जिम्मेदार होते हैं । इससे कार्यकर्त्ता पारस्परिक कर्त्तव्यों से बँध जाते हैं और

यह सामूहिक। दायित्व, व्यक्ति में संगठन के प्रति निष्ठा, समर्पण, अपनत्व एवं त्याग की भावना विकसित करता, जो संगठन की प्रगति में सहायक होता है ।

8. जेड विचारधारा वाले प्रबन्धन में सर्वसम्मत निर्णय पर बल दिया जाता है ।
9. इस प्रबन्धन में कर्मचारियों के मूल्यांकन के अन्तर्गत कमियों के स्थान पर क्षमताओं का आंकलन किया जाता है, क्योंकि कमियों के आधार पर प्रबन्धक के पास किसी कर्मचारी । या कार्यकर्त्ता को सेवामुक्त करने का प्रावधान नहीं होने से उसके मूल्याकन में क्षमताओं का आकलन कर उनके उचित उपयोग की योजना तैयार की जाती है ।

10. प्रबन्धन में सामाजिक साझेदारी (Social Partnership in Management)

आधुनिक प्रबन्धन में सरकार एवं समाज के साथ संगठन के विकास के लिए सक्रिय साझेदारी को महत्वपूर्ण माना जाने लगा है । इसमें सामाजिक समस्याओं जैसे- बेरोजगारी, गरीबी,. सामाजिक अपराध, राष्ट्रीय बर्बादी आदि के निराकरण के लिए प्रबन्धकों द्वारा सरकार एवं सामाजिक संस्थाओं के साथ मिलकर योजना बनाई जाती है । समाज के हितों में वृद्धि का दायित्व अकेले सरकार अथवा अकेले समाज पर ही नहीं डाला जा सकता है अत: व्यावसायिक संगठनों एवं अन्य प्रबन्धकों को भी इसमें सहयोग करना पड़ता है । शिक्षा एक सामाजिक कार्य है जो समाज के साथ सरकार का कार्य भी माना जाता है । भारत जैसे देश में शिक्षा का सार्वजनीकरण, प्रबन्धन की साझेदारी पूर्ण नीति से ही सफल करने का प्रयास किया जा रहा है, जिसमें सरकारी तंत्र के साथ सामाजिक तंत्र भी पूर्णत: सक्रिय हैं ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. परिवर्तन प्रबन्धन में नवाचारों की सूची बनाइए ।
2. सहभागी प्रबन्धन की विशेषताएँ बताइए ।
3. प्रबन्धन के पेशाकरण से क्या तात्पर्य है ?
4. 'क्यू' विचारधारा एवं 'जेड' विचारधारा में अन्तर कीजिए ।

16.7 सारांश (Summary)

व्यावसायिक प्रबन्धन में होने वाले परिवर्तन एवं नवीन प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप शैक्षिक प्रबन्धन में भी नई प्रवृत्तियों के अनेक प्रयोग किए जा रहे हैं । नए विचारों, नई तकनीकियों एवं नई परिस्थितियों के परिणामस्वरूप शैक्षिक प्रबन्धन में प्रबन्धन की नीति, शैली, प्रणाली तथा मूल्यांकन आदि में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहे हैं जो प्रबन्धन को प्रभावी बनाते हुए भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए उसे सशक्त भी बना रहे हैं । प्रबन्धन के कई नए प्रवर्तन हैं किन्तु उनमें सहभागी प्रबन्धन, प्रबन्ध का अन्तर्राष्ट्रीयकरण, पेशाकरण प्रबन्धन में नीतिशास्त्र, 'जेड' विचारधारा, 'क्यू विचारधारा, प्रणाली विचारधारा तथा साझेदारी विचारधारा प्रमुख हैं । प्रबन्धन की इन नई प्रवृत्तियों ने प्रबन्धन को सक्षम बनाया है ।

अभ्यास प्रश्न (Exercise)

1. परिवर्तन प्रबन्धन के अर्थ तथा सम्प्रत्यय को स्पष्ट करते हुए शैक्षिक प्रबन्धन में परिवर्तित परिदृश्य की व्याख्या करिए ।
2. शैक्षिक प्रबन्धन में नवाचार तथा नवाचार प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए परिवर्तित प्रबंधन में नवाचार पर एक समालोचनात्मक निबन्ध लिखिए ।

16.8 संदर्भ (References)

1. Ahluwalia, Lt Gen. J.S. (2001). Total Quality Management : Creating a Quality Environment for the Next Millennium. New Delhi : Vanity Books international.
2. Balsara, Maitrya (2002). Administration and Reorganisation of Teacher Education. New Delhi : Kanishka Publishers.
3. Chandras Karan, P. (1994) Educational Planning and Management. New Delhi : Sterling Publishers Private Limited.
4. Chester, Barnard (1954). The functions of Executive. Cambridge : Harvard University press
5. Choudhary, Namita Roy (2001).Management in Education. New Delhi : S.B.Nangia, A.P.H. Publishing Corporation.
6. जी.एस सुधा (2003). प्रबन्ध अवधारणा, चिन्तन एवं व्यवहार जयपुर: रमेश बुक डिपो.
7. Goens, George A. and Clover, Sharon I.R. (1984) Mastering School Reform.Singapore:Allyn and Bacon.
8. Kumar, K.L. (2001) Educational Technology. New Delhi: New AGE International (P) Limited,Publishers.
9. Mukhopadhhya, M. (2001). Total Quality Management in Education. New Delhi : National Institute of Education Planning and Administration.
10. Organization and Management Intermediate Course Study Material. Paper-64, Board of Studies, The Institute of Chartered Accountants of India.
11. Pandya, S.R. (2001). Administration and Management of Education. Mumbai: Himalaya Publicating House.
12. 12. शर्मा, आर.एस. (1995). विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन । मेरठ सूर्या पब्लिकेशन.

13. 13. शर्मा. डी. आर.ए. (2004). शिक्षा तकनीकी के मूल तत्व एवं प्रबन्धन । मेरठ. सूर्या पब्लिकेशन राजकी इन्टर कॉलेज के समीप ।
14. Tripathi, P.C. and Reddy, P.N. (1997). Principles of Management. Second Edition. New Delhi: Tata Mc Graw - Hill Publishing Company Limited.
15. वर्मा, जे.पी. (2002) शैक्षिक प्रबन्धन (Educational Management) जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी.

Website-

1. Buzzle.com intelligent life of the web. Why Today's Education System Need Time Management Tips for Classroom. htm.
2. www._wikipedia.org/wiki/change_management.
3. http://bctf.ca/social/globalization.
4. http://enwikipedia.org/wiki/SWOT_analysis.
5. Globalization and Education.ed.uiue.edu
6. www.smart teaching.org.
7. Wikipedia.the Free Encyclopedia
8. www.globalization.wikipedia
9. www.wharton.upenn.edu/faclty/innovation/-21k
10. www.businessballs.com/swotanalysisfreetemplete.
11. www.boloji.com/analysis/068.htm.
12. wikipedia: To-dolist

इकाई 17

शैक्षिक प्रबन्धन के संवैधानिक प्रावधान
(Constitutional Provision for Educational Management)

इकाई की संरचना

17.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

17.1 विषय-प्रवेश (Introduction)

17.2 संविधान में शिक्षा सम्बन्धी प्रावधान (Educational Provisions in the Constitution)

17.3 अनुच्छेद 29-30 सांस्कृतिक व शैक्षणिक अधिकार अनुच्छेद(Article 29-30 : Article of Cultural and Academic Rights)

17.4 शिक्षा संस्थानों की स्थापना और प्रशासन का अधिकार (Establishment of Educational Institutions and Rights of Administration)

17.5 अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा के लिए प्रावधान (Provisions for Free and Compulsory Education)

17.6 अनुसूचित जाति/जनजातियों, दुर्बल वर्गों व धार्मिक शिक्षा सम्बन्धी प्रावधान (Provisions for ST,SC,PH and Provision for Religion Education)

17.7 प्रबंधन, प्रशासन तथा संवैधानिक व्यवस्था (Management, Administration and Constitutional Provisions)

17.8 सारांश (Summary)

17.9 संदर्भ (References)

17.0 उद्देश्य इस (Objectives)

इस ईकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

(1) भारतीय संविधान के शिक्षा संबंधी प्रावधानों को जान सकेंगे ।

(1) अनुच्छेद 29-30 में दिए गए सांस्कृतिक व शैक्षणिक अधिकारों को समझ सकेंगे ।

(2) अनुच्छेद 29-30 में दिए गए सांस्कृतिक व शैक्षणिक अधिकारों की व्याख्या कर सकेंगे।

(3) शिक्षा संस्थानों की स्थापना और प्रशासन के अधिकारों को समझ सकेंगे ।

(4) शिक्षा संस्थानों की स्थापना और प्रशासन के अधिकारों की व्याख्या कर सकेंगे ।

(5) अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा के प्रावधानों को समझ सकेंगे ।

(6) अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा के प्रावधानों की व्याख्या कर सकेंगे ।

(7) अनुसूचित जातियों, जनजातियों, दुर्बल वर्गों व धार्मिक शिक्षा सम्बन्धी प्रावधानों को समझ सकेंगे ।

(8) अनुसूचित जातियों, जनजातियों, दुर्बल वर्गों व धार्मिक शिक्षा सम्बन्धी प्रावधानों की व्याख्या कर सकेंगे ।

(9) शिक्षा प्रबंधन व प्रशासन के लिए की गई संवैधानिक व्यवस्था को समझ सकेंगे।

(10) शिक्षा प्रबंधन व प्रशासन की संवैधानिक व्यवस्था की व्याख्या कर सकेंगे ।

17.1 विषय प्रवेश (Introduction)

15 अगस्त, 1947 को भारत को राजनैतिक आजादी मिली । आजादी के पश्चात् हमारा वह संविधान लागू हुआ जो हमारे देश की समृद्ध सांस्कृतिक परम्पराओं तथा भविष्य की उन्नत इच्छाओं को लिए हुए था । भारतीय संविधान की प्रस्तावना में यह बात एकदम स्पष्ट ढंग से देखी जा सकती है । भारतीय संविधान की प्रस्तावना (उद्देशिका) में कहा गया है-

"हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता, बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, सम्वत् दो हजार छः विक्रमी) को एतदद्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं ।

" इस प्रस्तावना (उद्देशिका) के साथ 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान लागू हुआ । गणतंत्र दिवस पर्व के रूप में हमें सदैव यह स्मरण दिलाता है कि हम सभी भारतीय संविधान में आस्था रखें ।

आधुनिक शिक्षा का विकास जनतांत्रिक राज्य की अवधारणा से जुडा हुआ है । शिक्षा एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा समाज में आदर्श विचार न केवल प्रेषित बल्कि प्रचलित भी किए जा सकते हैं । यह तभी संभव है जब यह स्पष्ट हो जाए कि भविष्य के समाज को हम किस रूप में देखना चाहते हैं । आजादी के बाद भारतीय संविधान निर्माताओं ने कल्पना की थी कि भावी भारतीय समाज को एक स्वस्थ जनतांत्रिक समाज बनाया जाए । हालांकि स्वस्थ जनतंत्र के मूल तत्त्व भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही घुले-मिले हुए थे लेकिन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक दबावों के चलते वे धुँधले पड़ गए थे । आजादी के बाद पुनः इन सभी तत्त्वों को जिन्दा करने की आवश्यकता थी । संविधान निर्माताओं ने भारतीय समाज की जटिलता तथा बहुलतावादी संस्कृति को मद्देनजर रखते हुए संविधान के माध्यम से भावी भारतीय समाज की संकल्पना प्रस्तुत की । भारतीय संविधान में वर्णित मूल्यों, आदर्शों और प्रावधानों को प्राप्त करने के लिए शिक्षा को उनके अनुकूल बनाया गया । शिक्षा को संविधान के उद्देश्य प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ाया गया ।

17.2 भारतीय सविधान में शिक्षा सम्बन्धी प्रावधान : (Educational Provisions in the Constitution)

यदि हम किसी समाज की व्याख्या उसके विवरणात्मक रूप में करते हैं तो यह बेमतलब है । उदाहरण के लिए जब हम यह कहते हैं कि हम भारतीय समाज के सदस्य। हैं तो इसका मतलब यह हुआ कि वे लोग जो भारत के क्षेत्र में रहते हैं । दूसरे अर्थों में यह भी कहा जाया चाहिए कि समाज कई वर्गो, जातियों और बोलियों, भाषाओं में बँटा हुआ है । इस प्रकार विखण्डित समाज भारतीय कैसे कहा जा सकता है ? इसे हम समाज तभी कहेंगे जब इसमें कुछ ऐसे मानक व मूल्य हैं जो' समाज की विभिन्नता को बाँधे हुए हैं । कुछ ऐसे आधार हैं जिनके ऊपर यह एकता निर्मित हुई है । ऐलेन तोरेन एक फ्रांसीसी दार्शनिक हैं । उन्होंने कहा है कि समाज का विचार तभी महत्वपूर्ण है जब हम उसकी पहचान मूल्यों और मानकों के रूप में करते हैं । इस दृष्टि से जब हम भारतीय समाज की चर्चा करत हैं तो हमें उन मानकों, मूल्यों और आधारों पर विमर्श करना होगा जो इसकी अपनी विशिष्टताएँ हैं और उसे समाज का स्वरूप प्रदान किए हुए हैं । भारतीय समाज की इन्हीं विशिष्टताओं ने भारतीय संविधान को भी आधार प्रदान किया है । ये विशिष्टताएँ हमारे संविधान में भी संरक्षित की गई हैं । हमारा संविधान मानता है कि 'विविधता' हमारे समाज की मजबूती है । हमारे संविधान में 'विविधता' की मजबूती को बरकरार रखते हुए शिक्षा से संबंधित निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं -

17.3 अनुच्छेद 29-30 : सास्कृतिक व शैक्षणिक अधिकार अनुच्छेद (Article of Cultural and Academic Rights)

पुराने जमाने में विश्व के कई देशों में अल्पसंख्यक जनता को बहुसंख्यक शासकों की भाषा और लिपि अपनाने के लिए विवश होना पड़ा । हम यह भली-भाँति जानते हैं कि भाषा व लिपि शिक्षा के आधार हैं । इसी तरह से पुराने समय में शासकों के दबाव से अल्पसंख्यकों में धर्म परिवर्तन भी करना पड़ा । इस प्रकार के ऐतिहासिक अनुभव की पृष्ठभूमि को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 व 30 में रखा गया ।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 में संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी मूल अधिकार दिए गए हैं । इन अनुच्छेदों में निम्नलिखित अधिकार दिए गए हैं:-

(1) अनुच्छेद 29(1) अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति बनाए रखने का अधिकार

(2) अनुच्छेद 30(1) अपनी रुचि की शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार।

(3) अनुच्छेद 30(1) (क) शिक्षा-संस्थाओं की सम्पत्ति में अनिवार्य अर्जन के लिए प्रतिकर।

(4) अनुच्छेद 30(2) शिक्षा-संस्थाओं को सहायता देने में विभेद के विरुद्ध अधिकार ।

(5) अनुच्छेद 29(2) शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश में विभेद के विरुद्ध अधिकार ।

इन सभी अधिकारों के विविध पक्षों को हम निम्नलिखित प्रकार से देख सकते हैं :-

(1) अनुच्छेद 29 (1) भाषा, लिपि और संस्कृति बनाए रखने का अधिकार **(Right to conserve language,script ओर culture):** अनुच्छेद 29 का शीर्षक "अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण है" है किन्तु अनुच्छेद के पाठ में इसका उल्लेख नहीं है । यह अनुच्छेद भारत में कहीं भी निवास करने वाले 'नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है', उसे बनाए रखने के अधिकार की गारन्टी देता है । अनुच्छेद 29 के शीर्षक में 'अल्पसंख्यकों' पद था लेकिन पाठ में 'नागरिकों के प्रत्येक वर्ग' पद काम में लिया गया । इसका आशय डॉ. अम्बेडकर के स्पष्टीकरण सं स्पष्ट हो जाता है -

"संस्कृति, भाषा और लिपि के मामले में इरा अनुच्छेद का आशय केवल तकनीकी अर्थ में अल्पसंख्यकों को संरक्षण देना नहीं है अपितु व्यापक अर्थ में अल्पसंख्यकों को भी । यही कारण है कि हम लोगों ने "अल्पसंख्यक" शब्द नहीं रखा, क्योंकि हमने महसूस किया कि इरा शब्द का संकुचित अर्थ लगाया जा सकता है जबकि सदन, जिसने अनुच्छेद 18 (वर्तमान अनुच्छेद 29) पास किया, का आशय 'अल्पसंख्यक' शब्द को बहुत व्यापक अर्थ में प्रयोग करना था जिससे सांस्कृतिक संरक्षण उन लोगों को- दिया जा सके जो तकनीकी अर्थ में 'अल्पसंख्यक' नहीं है फिर भी अल्पसंख्यक हैं । यह महसूस किया गया था कि यह संरक्षण इस कारण से आवश्यक है कि जो लोग एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जाते हैं और बस जाते हैं परन्तु स्थायी रूप से नहीं बस जाते । वे उस प्रान्त से अपनी जड़ें समाप्त नहीं करते, जहाँ से जाते हैं । उससे सम्बन्ध बनाए रखते हैं । वे अपने प्रान्त में विवाह के लिए जाते हैं । वे अपने प्रान्त में दूसरे बहुत से प्रयोजनों के लिए जाते हैं और यदि वह संरक्षण नहीं दिया जाता जब वे स्थानीय विधान-मंडल के अधीन हैं और स्थानीय विधान-मंडल उनको अपनी संस्कृति को बचाने का अवसर नहीं देता तो उन सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों के लिए अपने प्रान्त में वापस जाकर उस जनता से, जिसका वे भाग हैं, घुल-मिल जाना कठिन होगा ।"

(सी. ए . डिबेट्स, खण्ड 7 पृष्ठ 922-23)

उपर्युक्त संदर्भ में उच्चतम न्यायालय ने सेन्ट-जेवियर्स कॉलेज बनाम गुजरात राज्य (ए आई आर 1974 एस सी 1389) में यह निर्णय दिया था कि "नागरिकों के प्रत्येक वर्ग" पद में अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक दोनों आ जाते हैं ।

(2) अनुच्छेद 30(1) - शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार **(Right to establish and administrator educational institutions)**

अनुच्छेद 30 के खण्ड (1) में कहा गया है कि धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा। शिक्षा संस्थाओं के अन्तर्गत विश्वविद्यालय भी आ जाते हैं । खण्ड (1) में "स्थापना और "शब्द प्रयोग में लिए गए हैं । इसलिए किसी अल्पसंख्यक वर्ग को उसी संस्था का प्रशासन करने का होगा, जिसको उसने स्थापित किया हो ।

अनुच्छेद 30 पूर्णतया अल्पसंख्यकों के अधिकार से सम्बन्ध है अर्थात् आशय अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करना है । यह बहुत ही व्यापक है क्योंकि अनुच्छेद 29

भाँति यह भाषा, लिपि और संस्कृति के संरक्षण तक ही सीमित नहीं है । इसके अलावा, इस अनुच्छेद के अधीन 'अपनी रुचि की' शिक्षा संस्थाओं की स्थापना तथा प्रबंधन के अल्पसंख्यकों के अधिकार में शिक्षा का, पाठ्यचर्या, पढ़ाए जाने वाले विषय आदि चुनने का अधिकार भी सम्मिलित है ।

किन्तु प्रबन्धन के अधिकार का अर्थ कुप्रबंधन का अधिकार नहीं है । यह अधिकार राज्य की नियामक शक्ति के अधीन है । समाज कल्याण, औद्योगिक संबंधों, शैक्षिक स्तरों, कार्यकुशलता अनुशासन, स्वास्थ्य, लोक व्यवस्था, सदाचार आदि के हितों में बनाई गई विधि अनुच्छेद 30 का उल्लंघन नहीं करती, जब तक कि वह अल्पसंख्यकों को संस्था का प्रबंध करने के उनके अधिकार से वंचित नहीं करती । अध्यापकों के सेवा संबंधी हितों की रक्षा करने और पदच्युत किए जाने, पद से हटाए जाने और पंक्ति में अनवरत किए जाने के विषय में उनकी सेवा की शर्तों को विनियमित करने के लिए बनाई गई विधि अनुच्छेद 30 का उल्लंघन नहीं करती । केरल शिक्षा विधेयक के संबंध में, ए आई आर 1958 एस सी 956, अहमदाबाद सेंट जेवियर कॉलेज सोसायटी बनाम गुजरात राज्य, ए आई आर 1974 एस सी 1389, सेंट स्टीफेंस बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय (1992) 1 एस सी सी 558, तमिलनाडु राज्य बनाम जोसेफ (1991),3 एस सी सी 87, वीरेन्द्र बनाम दिल्ली 1999,2 एस सी सी 307, फ्रैंक एंथनी पब्लिक स्कूल एम्पलाइज एसोसिएशन बनाम भारत संघ, (1986) 4 एस सी सी 707, आइसेंटस हाई स्कूल बनाम आंध्रप्रदेश सरकार, ए आई आर 1980 एस सी 1042)

31 अक्टूबर, 2002 तथा 14 अगस्त, 2003 के उच्चतम न्यायालय के दो । निर्णयों (टी. एम. ए. पाई बनाम कर्नाटक राज्य तथा इस्लामिक एकेडमी बनाम कर्नाटक राज्य) के मुताबिक -

(1) गैर-सरकारी शिक्षा संस्थाओं को अपने लिए फीस का ढाँचा तय करवे का अधिकार है, किन्तु शिक्षा को व्यक्तिगत लाभ उठाने अथवा किसी अन्य व्यवसाय या व्यापार में सहायता देने का माध्यम नहीं बनाया जा सकता । प्रत्येक राज्य एक समिति बनाएगा । यह समिति प्रत्येक सरकारी शैक्षणिक संस्था के लिए समुचित फीस का ढाँचा तय करेगी । दान के नाम से अथवा. फीस के रूप में अतिरिक्त राशि का लिया जाना अमान्य होगा ।

(2) यह कहना ठीक नहीं होगा कि अनुच्छेद 30 के अन्तर्गत अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं को कोई ऐसे विशेष अधिकार प्राप्त नहीं हैं जो बहुसंख्यक समुदाय की शैक्षणिक संस्थाओं को उपलब्ध न हों । अनुच्छेद 30 का संरक्षण बहुसंख्यक समुदाय के लिए नहीं है ।

(3) राष्ट्रहित अल्पसंख्यकों के अधिकारों से भी ऊपर है और इसलिए व्यावसायिक (मेडिकल, इंजीनियरिंग) कॉलेजों में चाहे वह अल्पसंख्यकों के हों या गैर- अल्पसंख्यक-दाखिलों का आधार योग्यता होना चाहिए । गैर-अल्पसंख्यक व्यावसायिक कॉलेजों में संचालकों के लिए आरक्षित स्थानों के अतिरिक्त सभी दाखिले सरकारी एजेंसियों के द्वारा संचालित साझा परीक्षाओं से निर्णीत योग्यता के आधार पर ही होने चाहिए । अल्पसंख्यक समुदायों के द्वारा स्थापित और संचालित व्यावसायिक कॉलेजों में भी दाखिले योग्यता के आधार पर होने चाहिए । किन्तु यह योग्यता अल्पसंख्यक आवेदकों के बीच में ही देखी जानी चाहिए । कितने स्थान अल्पसंख्यकों

के लिए आरक्षित हों, यह प्रत्येक राज्य की अपनी स्थिति और अल्पसंख्यक समुदाय विशेष की आवश्यकताओं पर निर्भर होगा । ऐसे कॉलेज गैर सरकारी साझा परीक्षाओं के आधार पर भी योग्य उम्मीदवारों का चयन कर सकते हैं ।

(4) प्रत्येक राज्य एक स्थायी समिति बनाए जो यह देखे कि चयन प्रक्रिया और परीक्षाएँ पारदर्शी एवं न्यायपूर्ण हों ।

इसके अलावा इलाहाबाद. हाईकोर्ट ने जनवरी, 2005 को अपने एक फैसले में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को अल्पसंख्यक दर्जा देने वाले केन्द्रीय कानून को रह कर दिया और मेडिकल स्नातकोत्तर डिग्री कोर्स में सीटों के आरक्षण को गैर-कानूनी करार दिया ।

अनुच्छेद 30 का संरक्षण व्यक्ति विशेष द्वारा संचालित शिक्षा संस्था को नहीं (आल केरल अनएडेट रिकग्नाइज्ड स्कूल्स पैरेन्ट्स एसोसिएशन बनाम केरल राज्य, ए. आई. आर. 2000 केरल 339)

(3) अनुच्छेद 30 (1) (क) शिक्षा-संस्थाओं की सम्पत्ति के अनिवार्य अर्जन के लिए प्रतिकार (Right to compensation in case of acquisition of property of Educational Instituiton) :

अनुच्छेद 30 के खण्ड (1) के बाद खण्ड (1 क) 44वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़ दिया गया है जिसके अनुसार अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा स्थापित और प्रशासित शिक्षा संस्था की सम्पत्ति के अनिवार्य अर्जन के लिए विधि बनाते समय राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि अर्जन के लिए जो धनराशि निर्धारित की जाए वह. ऐसी हो जो अनुच्छेद 30 के खण्ड (1) में दिए गए अधिकार को निर्बन्धित न करे । 44वें संविधान संशोधन से पहले यह उपबन्ध अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के परन्तु में था जो उस संशोधन द्वारा मूल अधिकारों के अध्याय से हटा दिया गया था ।

(4) अनुच्छेद 30 (2) - शिक्षा संस्थाओं की सहायता में विभेद के विरुद्ध अधिकार.

अनुच्छेद 30 के खण्ड (2) में यह उपबन्ध है कि शिक्षा-संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी विद्यालय के विरुद्ध इस आधार पर विभेद नहीं कर सकता कि वह धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबंध में है ।

यहाँ हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि मैनेजिंग बोर्ड ऑफ मिली तालीमी मिशन, बिहार, रांची तथा अन्य बनाम बिहार सरकार (ए. आई. आर. 1984 एस. सी., 1757) व आल सेन्ट्स हाई स्कूल, हैदराबाद बनाम आंध्रप्रदेश सरकार (ए. आई. आर. 1980 एससी. 1042) व इसी तरह के कुछ अन्य मामलों में दिए गए अपने निर्णयों को निर्दिष्ट करते हुए पुन: यह अभिनिर्धारित किया कि निःसंदेह मान्यता, सहायता या संबंधन का अधिकार मूल अधिकार नहीं है और राज्य या विश्वविद्यालय शैक्षिक स्तर बनाए रखने के लिए युक्तियुक्त शर्तें लगा सकते हैं परन्तु ऐसी शर्तें या निर्बन्धनों पर संबंधन देना जिससे संस्था की स्वायत्तता और व्यष्टिकता नष्ट होती हो या अल्पसंख्यकों का प्रबन्धन करने का अधिकार छीनती हो तो ऐसी शर्तें मनमानी और अयुक्तियुक्त होने के कारण अनुच्छेद 30(1) के उपबन्धों के विरुद्ध होंगी, क्योंकि राज्य जो प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर सकता उसे अप्रत्यक्ष रूप से भी नहीं कर सकता ।

(5) अनुच्छेद 29 (2) नागरिकों का शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश का अधिकार **(Right of citizens to admission in educational institutions)**

अनुच्छेद 29(2) राज्य द्वारा पोषित या राज्य से सहायता प्राप्त करने वाली शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश का समान अधिकार सभी नागरिकों को प्रदान करता है, ये नागरिक अल्पसंख्यक हों या बहुसंख्यक । शिक्षा-संस्था भी अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा स्थापित-प्रशासित हो चाहे बहुसंख्यक द्वारा।

अनुच्छेद 29 के खण्ड (2) के अनुसार राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य विधि से सहायता प्राप्त करने वाली किसी शिक्षा-संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवश, जाति, भाषा अथवा इनमें से किसी के आधार पर वंचित नहीं रखा जा सकता । इस प्रकार किसी विशेष राज्य-क्षेत्र में निवास के आधार पर प्रवेश के आरक्षण से 29(2) का अतिक्रमण नहीं होता (चित्र घोष बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 35)

अनुच्छेद 29 (1) और 30 (1) में अन्तर

(1) अनुच्छेद 30(1) द्वारा प्रदत्त अधिकार केवल धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यक को प्राप्त हैं, परन्तु अनुच्छेद 29(1) में 'नागरिकों के किसी विभाग' पद के कारण उसका क्षेत्र व्यापक हो जाता है ।

(2) अनुच्छेद 29(1) भाषा, लिपि और संस्कृति से संबंधित है जबकि अनुच्छेद 3(1) राष्ट्र के धार्मिक व भाषाई अल्पसंख्यक वर्ग से संबंधित है ।

(3) अनुच्छेद 29(1) का उद्देश्य नागरिकों को भाषा, लिपि और संस्कृति बनाए, रखने के लिए सुरक्षा प्रदान करता है लेकिन अनुच्छेद 30 (1) का उद्देश्य धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों को शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार देना है ।

(4) अनुच्छेद 29(1) के अन्तर्गत भाषा, लिपि और संस्कृति के परिरक्षण के शिक्षा संस्थानों की स्थापना आवश्यक नहीं है और अनुच्छेद 30(1) में यह आवश्यक नहीं कि शिक्षा संस्थाओं का उद्देश्य भाषा, लिपि और संस्कृति का परिरक्षण ही हो ।

विशेष : भारत सरकार ने 31 अक्टूबर 2008 को केबिनेट की मीटिंग में 'मुक्त एवं अनिवार्य शिक्षा विधेयक को स्वीकार किया है ।

स्व-मूल्यांकन (Self Evaluation Question)

(1) भारतीय संविधान में अनुच्छेद 29 का शीर्षक क्या रखा गया है ?

(2) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 30(1) में क्या प्रावधान किए गए हैं ?

(3) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29(2) में क्या प्रावधान किए गए हैं ?

(4) शिक्षा संस्थाओं की सम्पत्ति के अर्जन के लिए प्रतिकार का अधिकार किस अनुच्छेद के प्रदान किया गया है ।

(5) भाषा, लिपि और संस्कृति बनाए रखने का अधिकार संविधान के 'किस अनुच्छेद में किया है?

(6) अनुच्छेद 30(2) के तहत कौनसा अधिकार प्रदान किया गया है ।

17.4 शिक्षा संस्थानों को स्थापना और प्रशासन का अधिकार (Establishment of Educational Institutional Institutions and Right of Administration)

अनुच्छेद 19(1) (छ) और 26 के अधीन सभी नागरिकों को शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का मूल अधिकार प्राप्त है और अल्पसंख्यकों को विशेषत: अनुच्छेद 30(1) में दिया गया है । सभी नागरिकों का अधिकार अनुच्छेद 19(6) और 26 क के निर्बन्धों के अधीन है (टी. एम. ए. पाई बनाम कर्नाटक राज्य, ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 35)

अनुच्छेद 30 और 26:

अनुच्छेद 30 और 26 दोनों के अधीन शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की जा सकती है लेकिन दोनों में निम्नलिखित अन्तर है :-

(1) अनुच्छेद 26 अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक दोनों को संस्थाओं की स्थापना करने और संचालित करने का अधिकार प्रदान करता है, जिसमें शिक्षण संस्थाएँ भी शामिल हैं परन्तु अनुच्छेद 30 केवल यह अधिकार केवल अल्पसंख्यकों को प्रदान करता है ।

(2) अनुच्छेद 26 धार्मिक सम्प्रदायों से संबंधित है जबकि अनुच्छेद 30 धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित है ।

अनुच्छेद 29 (2) व 15 में अन्तर :

अनुच्छेद 15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थल के आधार पर विभेद का प्रतिषेध करता है

अनुच्छेद 29 (2) व 15 में निम्नलिखित अन्तर है :-

(1) अनुच्छेद 29 (2) केवल शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश से संबंधित है जबकि अनुच्छेद 15 धर्म, जाति, वंश, लिंग या जन्मस्थल के आधार पर विभेद के विरुद्ध एक सामान्य अधिकार है ।

(2) अनुच्छेद 29 (2) राज्य से सहायता प्राप्त शिक्षा-संस्थाओं पर लागू होता है लेकिन अनुच्छेद 15 राज्य को विभेद करने से मना करता है ।

(3) अनुच्छेद 29 (2) में भाषा के आधार पर विभेद मना है जो अनुच्छेद 15 में नहीं है । दूसरी ओर अनुच्छेद 15 में लिंग और जन्मस्थल के आधार पर विभेद मना है जो अनुच्छेद 29 (2) में नहीं है ।

(4) अनुच्छेद 15 में स्त्रियों और बच्चों के लिए विशेष उपबन्ध है । अनुच्छेद 29 (2) में ऐसा प्रावधान नहीं है ।

स्व-मूल्यांकन (Self Evaluation Questions)

(1) भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार दिया गया है ?

(2) अल्पसंख्यकों को भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद के तहत शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का विशेष अधिकार दिया गया है ?

(3) भारतीय संविधान का अनुच्छेद 26 किससे सम्बन्धित है?

17.5 अनिवार्य व नि:शुल्क शिक्षा के लिए प्रावधान (Provision for Free and Compulsory Education)

भारतीय संविधान की धारा 45 में यह प्रावधान किया गया है कि राज्य इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की अवधि के अन्दर सभी बच्चों को चौदह वर्ष की आयु होने तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा ।

संविधान (88 वां संशोधन अधिनियम, 2002 के द्वारा एक नया अनुच्छेद 21 क संविधान में जोड़कर 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है । इस अधिनियम के तहत 6 से 14 वर्ष के बालकों की शिक्षा को मूल अधिकार का स्वरूप दे दिया गया है । अब अनुच्छेद 45 में 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए निम्नलिखित उपबन्ध है -

"राज्य सभी बालकों की प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखभाल और शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा जब तक वे छ: वर्ष की आयु पूरी नहीं कर लेते ।"

संविधान के (86 वें संशोधन) अधिनियम, 2002 के द्वारा अनुच्छेद 21 क के तहत 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों की शिक्षा को अनिवार्य व निःशुल्क बनाया गया है । आजादी के 55 वर्ष बाद शिक्षा को 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों की शिक्षा को मूल अधिकार का दर्जा मिला । इस मूल अधिकार का एक अर्थ यह हुआ कि 6 वर्ष से पहले की शिक्षा व देखभाल की राज्य कोई जिम्मेदारी नहीं लेता । एक अन्य अर्थ यह भी हुआ कि यह अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा राज्य जैसी भी उपलब्ध करवा दें क्योंकि उसमें गुणवता का जिक्र नहीं है । जब इस संशोधन पर बहस चल रही थी, उस समय उसमें एक्वीटेबिल एण्ड क्वालिटी एजुकेशन (समान और गुणवत्ता युक्त शिक्षा) पद-बंध जोड़ने के सुझाव उभर आए थे लेकिन राजनैतिक इच्छा शक्ति के अभाव में ऐसा नहीं हो पाया । इस संदर्भ में अमृत्य सेन की यह बात बिल्कुल सही साबित हो रही है कि, "शिक्षा की अनिवार्यता अपने आप में प्राथमिक शिक्षा का संवर्धन करने का पर्याप्त सार्वजनिक कार्यक्रम नहीं बन सकती ।"

वस्तुत: यह तो किसी ऐसे कार्यक्रम का अंग ही होना चाहिए । इसके साथ-साथ स्कूल व्यवस्था में बहुत महत्त्वपूर्ण एवं दूरगामी सुधार आवश्यक होंगे । बच्चों को उन स्कूलों में जाना कानूनी रूप से अनिवार्य बना देना, जहाँ न उनके लिए बैठ सकने की जगह हो और न ही उन्हें पढ़ाने वाले शिक्षक, तो उनके साथ एक भद्दा मजाक ही होगा ।" (भारत विकास की दिशाएँ : अमृत्य सेन, ज्यांद्रीज (2001) अनु. भवानी शंकर बागला, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली)

स्व-मूल्यांकन (Self Evaluation Questions)

(1) भारतीय संविधान के कौनसे संशोधन के बाद 6 से 14 वर्ष के बालकों की शिक्षा को मूल अधिकार बनाया है ?

(2) संविधान की किस धारा के तहत 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों की शिक्षा को अनिवार्य व नि:शुल्क बनाया गया है ?

(3) भारतीय संविधान की धारा 45 में क्या प्रावधान किया गया है ?

17.6 अनुसूचित जाति, जनजातियों तथा अन्य दुर्बल वर्गो व धार्मिक शिक्षा सम्बन्धी प्रावधान (Provisions for ST, SC, PH and Provision for Religious Education)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 46 में यह प्रावधान है कि राज्य जनता के दुर्बल वर्गो, विशेषतया अनुसूचित जातियों और जनजातियों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा तथा सब प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा । सन् 1951 में इस धारा में संशोधन करके यह प्रावधान किया गया कि पिछड़े तथा निर्बल वर्गों के लिए आवश्यक प्रयत्न किए जाएँ ।

धार्मिक शिक्षा :

अनुच्छेद 28 (1) पूर्णतया राज्य निधि से पोषित शैक्षिक संस्थाओं में कोई धार्मिक शिक्षा देने का पूर्णतया प्रतिषेध करता है । राज्य से मान्यता तथा सहायता प्राप्त अन्य संस्थाओं के मामले में, प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक शिक्षा या उपासना में उपस्थित न होने की स्वतंत्रता होगी ।

अनुच्छेद 28 के खण्ड (2) में इसका अपवाद है । खण्ड 2 के अनुसार यह निर्बन्धन उन शैक्षिक संस्थाओं पर लागू नहीं किया जाएगा, जिनकी स्थापना किसी विन्यास या न्यास के अन्तर्गत हुई हो जिसमे धार्मिक शिक्षण की व्यवस्था थी, चाहे ऐसी संस्था का प्रशासन राज्य ही करता है ।

स्व-मूल्यांकन (Self Evaluation Questions)

(1) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 46 में क्या प्रावधान दिए गए हैं ?

(2) धार्मिक शिक्षा से संबंधित कौनसा अनुच्छेद भारतीय संविधान में दिया गया है?

17.7 प्रबंधन, प्रशासन तथा संवैधानिक व्यवस्था (Management, Administration and Constitutional Provisions)

हमारे संविधान निर्माताओं ने जहाँ केन्द्र को नेतृत्व का अधिकार दिया है, वहीं राज्यों को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार पूर्ण स्वायत्तता भी दी । भारतीय संविधान में तीन सूचियाँ

बनाई गई हैं जिनके अनुसार उनको कानून बनाने का अधिकार है । ये हैं - संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची ।

संघ सूची - संघ सूची में 96 विषयों पर संसद कानून बना सकती है जिसमें शिक्षा से संबंधित 63, 64, 65, 66 प्रविष्टियों में शिक्षा से संबंधित विषय हैं ।

प्रविष्टि 63 - इसके अन्तर्गत बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय नामों से ज्ञात संस्थाएँ तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्त्व की घोषित अन्य संस्थाएँ हैं ।

प्रविष्टि 64 - इसमें भारत सरकार से पूर्णत: या अंशत: वित्त पोषित तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्त्व की घोषित वैज्ञानिक तथा तकनीकी संस्थाएँ हैं ।

प्रविष्टि 65 - इसमें संघ अभिकरण और संस्थाएँ जो -

1. वृतिक, व्यावसायिक या शिल्पिक तकनीकी प्रशिक्षण, जिनके अन्तर्गत आर सी पदाधिकारियों का प्रशिक्षण भी है के लिए हैं ।
2. विशेष अध्ययनों या गवेषणा की उन्नति के लिए हैं ।
3. अपराध के अनुसंधान या खोज के लिए वैज्ञानिक या तकनीकी सहायता के लिए हैं ।

प्रविष्टि 66 - उच्च शिक्षा शोध और वैज्ञानिक व तकनीकी विद्यालयों के स्तर का समन्वय ।

राज्य सूची :- इस सूची में 66 विषयों पर राज्य सरकारों को कानून बनाने का अधिकार है । छठी अनुसूची की 11वीं प्रविष्टि के आधार पर शिक्षा राज्य का विषय है, परन्तु यह प्रावधान संघ सूची (1) की 63,64,65 एवं 66वीं प्रविष्टियों एवं समवर्ती सूची की 25वीं प्रविष्टि के अतिरिक्त हैं ।

समवर्ती सूची :- समवर्ती सूची के अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्य दोनों के सम्मिलित अधिकार हैं : इसमें 47 विषय सम्मिलित हैं ।

प्रविष्टि नं. 25 के अन्तर्गत श्रम, कानून, चिकित्सा एवं अन्य व्यवसायों से संबंधित व्यावसायिक एवं प्राविधिक प्रशिक्षण (इसके अन्तर्गत शिक्षण व्यवसाय, श्रमिकों का व्यावसायिक एवं शिल्पिक प्रशिक्षण सम्मिलित किए गए हैं) समवर्ती सूची के अन्तर्गत हैं । भारतीय संविधान के प्रविष्टि 20 के आधार पर यह निर्देश दिया गया है कि भारत सरकार और राज्य शिक्षा के पुनर्निर्माण के लिए मिलकर राष्ट्रीय योजनाओं को बनायेंगे और लागू करेंगे ।

स्व-मूल्यांकन (Self Evaluation Questions)

(1) संघ सूची में शिक्षा से संबंधित कौन-कौनसी प्रविष्टियाँ हैं ?

(2) राज्य सूची के अन्तर्गत राज्य सरकार को कौनसी प्रविष्टि के आधार पर कानून बनाने अधिकार है ?

(3) समवर्ती सूची में प्रविष्टि 20 के आधार पर भारत सरकार और राज्यों को क्या निर्देश दिए गए हैं ?

(4) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 का शीर्षक ''अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण है'' जबकि इसके मूल पाठ में इसका उल्लेख नहीं है ? संविधान निर्माताओं ने ऐसा क्यों किया ?

(5) भारतीय संविधान में अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा के प्रावधानों का वर्णन कीजिए ।

(6) अनुसूचित जाति / जनजाति व अन्य दुर्बल वर्गों की शिक्षा के लिए भारतीय संविधान में क्या प्रावधान किए गए हैं ?

(7) भारतीय संविधान में 'धार्मिक शिक्षा' के संबंध में क्या कहा गया है ? स्पष्ट कीजिए ।

(8) भारतीय संविधान में शिक्षा की प्रबन्धन व प्रशासन व्यवस्था को किन-किन सूचियों में बाँटा गया है ?

(9) संघ सूची में प्रदत्त शिक्षा सम्बन्धी प्रविष्टियों को समझाइए ।

17.8 सारांश (Summary)

हमारे संविधान की उद्देशिका हमारे देश के अतीत की समृद्ध परम्पराओं के आधार पर टीकी हुई हमारे देश के भविष्य की उम्मीदों को स्पष्ट करती है । हमारे संविधान में शिक्षा से संबंधित प्रमुखत: निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं :

(1) अनुच्छेद 29-30. सांस्कृतिक व शैक्षणिक अधिकार अनुच्छेद :

इन अनुच्छेदों में निम्नलिखित अधिकार प्रदान किए गए हैं :-

1. अनुच्छेद 29(1) अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति बनाए रखने का अधिकार ।
2. अनुच्छेद 30(1) अपनी रुचि की शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार।
3. अनुच्छेद 30 (1)(क) शिक्षा-संस्थाओं की सम्पत्ति के अनिवार्य अर्जन के लिए प्रतिकर।
4. अनुच्छेद 30(2) शिक्षा-संस्थाओं को सहायता देने में विभेद के विरुद्ध अधिकार ।
5. अनुच्छेद 29(2) शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश के विभेद के विरुद्ध अधिकार ।

(2) शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार: इस सम्बन्ध में भारतीय संविधान में निम्नलिखित अनुच्छेदों का प्रावधान है :-

1. अनुच्छेद 19(1) (छ)
2. अनुच्छेद 26
3. अनुच्छेद 30
4. अनुच्छेद 15

(3) अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा के लिए प्रावधान: इस सम्बन्ध में भारतीय संविधान में निम्नलिखित प्रावधान हैं -

1. संविधान की धारा 45
2. भारतीय संविधान का 86वा संशोधन (धारा 21क)

(4) अनुसूचित जातियों, जनजातियों, दुर्बल वर्गों व धार्मिक शिक्षा सम्बन्धी प्रावधान : इस सम्बन्ध में भारतीय संविधान में अनुच्छेद 45 तथा अनुच्छेद 28(1) तथा 28(2) का प्रावधान किया गया है ।

(5) प्रबंधन, प्रशासन तथा संवैधानिक व्यवस्था :

भारतीय संविधान में प्रबंधन, प्रशासन की व्यवस्था को तीन अनुसूचियों में विभाजित किया गया है :-

1. संघ सूची 2. राज्य सूची 3. समवर्ती सूची

अभ्यास प्रश्न (Exercise)

1. भारतीय संविधान में शिक्षा सम्बन्धी प्रावधानों की उदाहरण सहित व्याख्या करिए ।
2. प्रबंधन, प्रशासन तथा संवैधानिक व्यवस्था पर एक समालोचनात्मक निबन्ध लिखिए ।

17.9 संदर्भ (References)

(1) वर्मा, जे. पी. (2007, तृतीय संस्करण) शैक्षिक प्रबन्धन जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

(2) कश्यप, सुभाष (2005, तृतीय संस्करण), हमारा संविधान, दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया

(3) भादू राजाराम (2003), शिक्षा के सामाजिक सरोकार, पंचकूला : आधार प्रकाशन

इकाई 18

विद्यालय प्रबन्ध

(School Management)

इकाई की संरचना

18.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

18.2 विद्यालय प्रबन्ध के उद्देश्य (Objectives of School Management)

18.3 विद्यालय प्रबंधन के कार्य (Function of School Management)

18.4 विद्यालय प्रबन्ध के क्षेत्र (Scope of School Management)

18.5 सारांश (Summary)

16.6 संदर्भ सूची (References)

18.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई को पढ़कर आप -

1. विद्यालय प्रबन्ध के उद्देश्य जान सकेंगे ।
2. विद्यालय प्रबन्ध के कार्य जान सकेंगे ।
3. विद्यालय प्रबन्ध के क्षेत्र जान सकेंगे ।

18.1 प्रस्तावना (Introduction)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । वह समाज में रहता है । उसे जीवन से मृत्यु पर्यन्त एक निश्चित सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत रहना पड़ता है । इस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए तथा समाज की प्रत्येक इकाई के साथ समायोजन स्थापित करने के लिए एक निश्चित प्रबंध का होना आवश्यक है एवं इस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए ही मनुष्य को श्रम विभाजन, दायित्व निर्धारण, संसाधन नियंत्रण, संसाधनों का उचित वितरण करना पड़ता है । इस प्रकार विभाजन, नियंत्रण, निर्धारण एवं वितरण की प्रक्रिया ने ही 'प्रबन्ध व्यवस्था'' को विकसित किया है ।

आदिकाल से सभी देशों में शिक्षा प्रदान करने की परम्परा चली आ रही है । भारत में प्राचीन काल में गुरुकुलों एवं आश्रमों में शिक्षा प्रदान की जाती थी । ज्ञान के विस्तार के साथ-साथ धीरे-धीरे विद्यालयों का आविर्भाव हुआ । प्रारम्भिक स्तर पर विद्यालयों में भाषा पढने, लिखने, बोलने तथा गणित को आंकिक स्तर पर समझने के लिए एक केन्द्र के रूप में समझा जाता था ।

विद्यालय प्रबन्ध प्राचीन काल से ही शिक्षा व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण और प्रमुख कार्य रहा है । विद्यालय प्रबंध ही शिक्षा की उन्नति एवं अवनति दोनों के लिए उत्तरदायी होता है । वर्तमान सन्दर्भों में विद्यालय प्रबंधन एक चुनौती के रूप में है तथा इससे ही देश के

भविष्य का निर्धारण होता है । एक अच्छा विद्यालय प्रबन्ध एक अच्छी शिक्षा व्यवस्था का विकास करता है। विद्यालय प्रबंध सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था का केन्द्र एवं आधार है । विद्यालय प्रबन्धन अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपने शिक्षकों, अन्य कर्मचारियों, उपकरणों, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, विद्यालय भवन आदि का इस प्रकार प्रबंधन करता है, जिससे उनका अधिकाधिक सदुपयोग किया जा सके तथा योग्यता एवं क्षमतानुसार प्रत्येक कर्मचारी उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक एवं सफल हो सके ।

विद्यालय में अनेक शैक्षिक एवं सह शैक्षिक गतिविधियाँ संचालित की जाती हैं । इन गतिविधियों के विधिवत संचालन हेतु प्रबन्धन को अनेक संसाधनो (भौतिक, मानवीय, वित्तीय, सामयिक) को जुटाना पड़ता है । इन सभी संसाधनों को जुटाते हुए प्रबंधन मण्डल विद्यालय प्रबन्ध से संबंधित समस्त कार्यों को पूर्ण करते हुए अपने-अपने उद्देश्यों की प्राप्ति करता है ।

विद्यालय के भौतिक संसाधनों एवं भवनों के अन्तर्गत भी बहुत सारे संसाधन जुटाने पड़ते हैं । इन संसाधनों को जुटाकर उनका निर्धारित उद्देश्यानुसार अधिकतम सदुपयोग करते हुए विद्यालय प्रबन्ध किया जाता है । विद्यालय भवनों के अन्तर्गत पुस्तकालय, वाचनालय, छात्रावास इत्यादि की व्यवस्था करते हुए इनको व्यवस्थित तरीके से संचालित करना भी विद्यालय प्रबन्ध का एक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण भाग है ।

विद्यालय एक संगठन (Organization) है । इस संगठन को कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए स्थापित किया जाता है । प्रबंध इसके लिए उन क्रियाकलापों को व्यवस्थित रूप में चलाता है जिससे निर्धारित उद्देश्य प्राप्त किए जा सकें । विद्यालय प्रबंध पर ही विद्यालय के समस्त क्रियाकलाप एवं गतिविधियाँ निर्भर करती हैं ।

केवल भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में विद्यालय प्रबन्ध ने जितना महत्त्व वर्तमान में प्राप्त किया है उतना आज से भी पूर्व कभी नहीं प्राप्त किया है । अत: अनुभव किया जा रहा है कि प्रभावकारी विद्यालय प्रबंध शिक्षा में उच्चतर गुणवत्ता प्राप्त करने में उल्लेखनीय योगदान दे सकता है । विद्यालयों की गुणवत्ता में सुधार करने के कार्य को सम्पूर्ण विश्व में सभी सरकारों की कार्यसूची में उच्च प्राथमिकता दी गई है । शिक्षा की गुणवत्ता संसाधनों की बहुलता की अपेक्षा विद्यालयों की प्रबन्ध प्रक्रिया पर अधिक निर्भर करती है । अत: शिक्षा के गुणात्मक विकास हेतु विद्यालय प्रबंध में गुणात्मकता लाने का प्रयास किया जाना अपेक्षित है ।

18.2 विद्यालय प्रबन्ध के उद्देश्य (Objectives of School Management)

मानव मात्र का प्रत्येक कार्य सोद्देश्य होता है । इसी क्रम में विद्यालय प्रबन्ध जैसा महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक कार्य सोद्देश्य होना स्वाभाविक है । किसी भी कार्य की सफलतापूर्वक प्राप्ति के लिए उचित प्रबन्ध की आवश्यकता होती है । विद्यालय एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्था है । अत: इसकी एक सुसंगठित प्रबंधात्मक व्यवस्था होना अपेक्षित होता है । प्रभावशाली एवं व्यवस्थित प्रबंधन के बिना विद्यालय जीवन में दुर्व्यवस्था एवं संभ्रांति फैलने की पूरी संभावना बनी रहती है । प्रभावशाली प्रबन्धन विद्यालय में उचित व्यवस्था करता है । यह

उचित व्यक्तियों को उचित स्थान पर, उचित समय में उचित ढंग से रखते हुए उचित प्रकार से कार्य सम्पादित करता है । विद्यालय प्रबन्धन के मुख्य उद्देश्य निम्नानुसार हैं -

(1) **विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करना** - विद्यालय में आयोजित की जाने वाली सभी गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु विद्यार्थी होता है । विद्यालय में अनेक शैक्षिक एवं सह शैक्षिक गतिविधियों का आयोजन किया जाता है । इन सभी गतिविधियों का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिक, चारित्रिक विकास करना होता है । अत: विद्यालय प्रबन्ध को विद्यालय में अधिकाधिक शैक्षिक एवं सह शैक्षिक गतिविधियों का आयोजन करना चाहिए । इन गतिविधियों में विद्यार्थियों को अधिकाधिक सहभागी बनने के अवसर उपलब्ध करवाना चाहिए एवं साथ ही उन्हें इस हेतु अभिप्रेरित करना चाहिए जिससे विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास हो सके ।

(2) **विद्यार्थियों को सीखने के अवसर उपलब्ध करवाना** - सीखना जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है । विद्यार्थी अपने विद्यार्थी समूह के साथ सर्वाधिक मात्रा में सीखता है । विद्यालय प्रबन्धन का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को अधिकतम सीखाना एवं सीखने हेतु वातावरण उपलब्ध करवाना है । अत: विद्यालय प्रबन्धन द्वारा विद्यार्थियों के लिए इस प्रकार का वातावरण उपलब्ध करवाना कि विद्यार्थी ज्यादा से ज्यादा सीख सके ।

विद्यालय में पढने वाले बालक भिन्न-भिन्न सामाजिक आर्थिक स्तर के होते हैं एवं भिन्न-भिन्न बुद्धिलब्धि वाले होते हैं जैसे प्रतिभाशाली, सामान्य एवं मन्द बुद्धि वाले । अत: विद्यालय प्रबन्ध का यह उद्देश्य एवं प्रयास होता है कि वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर सभी स्तर के बालकों हेतु सीखने के लिए समान अवसर उपलब्ध हों ।

(3) **भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग करना** - विद्यालय में उपलब्ध सभी भौतिक एवं मानवीय संसाधन विद्यार्थियों के लिए ही होते हैं । इन सभी संसाधनों के अधिकतम उपयोग से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से विद्यार्थियों को लाभ होता है । इन सभी संसाधनों का विद्यालय में अधिकाधिक उपयोग किया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थी अधिक से अधिक लाभान्वित हो सकें । अत: विद्यालय प्रबन्ध को इस प्रकार प्रबन्ध करना चाहिए कि विद्यालय में उपलब्ध भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का अधिकाधिक उपयोग हो सके ।

(4) **विद्यालय का बजट तैयार करना** - विद्यालय की समस्त व्यवस्थाएँ एवं कार्य वित्त के आधार पर ही संचालित किए जाते हैं । अत: संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता हेतु विद्यालय प्रबन्ध द्वारा बजट तैयार किया जाता है । अत: विद्यालय प्रबन्ध का एक उद्देश्य यह भी होता है कि विद्यालय में पर्याप्त मात्रा में संसाधन उपलब्ध करवाने हेतु बजट तैयार करे ।

(5) **मानवीय संसाधनों में कार्य विभाजन -** विद्यालय में दो प्रकार के सदस्य होते हैं- शिक्षक वर्ग एवं मंत्रालयिक वर्ग । इन दोनों वर्गों के प्रत्येक सदस्य की योग्यता, क्षमता, क्षेत्र एवं रुचि पृथक-पृथक होती है । अत: प्रबन्धन का उद्देश्य यह होता है कि इन सभी सदस्यों द्वारा गुणात्मक कार्य करवाया जाये । अत: कार्य विभाजन के समय प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता, क्षमता, क्षेत्र एवं रुचि के अनुसार कार्य विभाजन करना चाहिए जिससे उनकी योग्यता का अधिकतम लाभ उठाया जा सके ।

कार्य विभाजन के पश्चात् इनके कार्यों का अवलोकन प्रबन्धन मण्डल को समय-समय पर करना चाहिए । कार्य की गुणात्मकता में कमी दिखाई देने पर प्रबन्धन मण्डल द्वारा स्टाफ को मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए ।

(6) **समय का प्रबन्ध करना -** विद्यालय में सम्पूर्ण सत्र में अनेक गतिविधियाँ संचालित करनी होती है । शिक्षा शास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित उद्देश्यों एवं मन्तव्यों को व्यावहारिक रूप में प्राप्त करने हेतु यह आवश्यक है कि वित्तीय योजनाओं तथा प्रक्रियाओं का संचालन इस प्रकार किया जाए कि गतिविधियाँ निर्धारित समयानुसार सम्पादित हो जाए और विद्यार्थियों में सम्बन्धित गतिविधि से संबंधित उद्देश्यों का व्यवहारगत परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे ।

(7) **सहजीवन अधिगम की कला सीखाना** - विद्यालय प्रबन्धन का उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी एक साथ रहने की कला सीख सके । विद्यालय का अपना सामुदायिक जीवन होता है जिसे एक उत्तम नागरिकता के प्रशिक्षण के क्षेत्र के रूप में प्रयोग में लाया जा सकता है ।

(8) **विद्यार्थियों में सहयोग की भावना का विकास करना** - विद्यालय प्रबन्ध का एक उद्देश्य यह है कि विद्यार्थियों में सहयोग की भावना का विकास किया जाए । अत: विद्यालय अपने प्रबन्ध में यह व्यवस्था करे कि विद्यार्थियों में आपस में सहयोग की भावना विकसित हो सके । विद्यालय प्रबन्ध में सहयोग की भावना का अपना ही स्थान है । मानवीय स्तर पर शिक्षा प्रबन्ध का सम्बन्ध बालकों, अभिभावकों, शिक्षकों, नियुक्तिकर्ता एवं समाज से होता है । साधनों के स्तर पर इसका सम्बन्ध सामग्री एवं उसके उपयोग से होता है । साथ ही सिद्धान्तों, परम्पराओं, नियमों, कानून आदि से इसका नाता जुड़ा हुआ होता है । विद्यालय सम्बन्धी अन्य प्रकार की समस्याओं का समाधान करना होता है । विद्यालय प्रबन्ध अपने सकारात्मक रूप से कार्यक्रम को एक विशेष दिशा देकर जटिल कार्य को सुलभ बनाकर भव्य परिणाम सम्मुख प्रकट करता है ।

(9) **शैक्षिक प्रयोग तथा अनुसंधान के लिए समुचित व्यवस्था करना** - समाज की प्रगतिशीलता दिन-प्रतिदिन विकसित हो रही है । अत: प्रबंधकों का कर्त्तव्य है कि शिक्षा-शास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित नवीन विचारों, धारणाओं एवं प्रयोगों को ध्यान में रखे । विद्यालय की विशेष परिस्थिति के अनुसार उनकी उपयोगिता को परखे तथा समयानुसार परिवर्तन करके लाभ उठायें । शिक्षा सम्बन्धी प्रक्रियाओं के समय-समय पर संशोधन होने के साथ-साथ उनकी समीक्षा अपेक्षित हो और सफल प्रयोगों एवं नवाचारों को विद्यालय प्रबन्ध को अपने विद्यालय में लागू करने चाहिए ।

(10) **सह शैक्षणिक गतिविधियों का आयोजन करना** - विद्यालय प्रबंध के प्रमुख कार्यों में से एक है छात्रों को जीवन कला का प्रशिक्षण देना । इसके अन्तर्गत आदतों एवं सामाजिक व्यवहारों के प्रशिक्षण से लेकर धैर्य, श्रेष्ठ मन: स्थिति, ईमानदारी, बंधुत्व भावना, सहयोगिता एवं अनुशासन जैसे गुणों के विकास कार्य भी सन्निहित हैं । इन सभी मानवोचित उत्तम गुणों का बच्चों के विकार। विद्यालय में समाविष्ट विभिन्न सह शैक्षणिक गतिविधियों के संचालन द्वारा ही संभव है । अत: विद्यालयों में सह शैक्षणिक गतिविधियों को निश्चित एवं वास्तविक

स्थान देना अत्यावश्यक है । इनमें सामूहिक खेल, व्यायाम, स्काउटिंग, एन. सीसी, एसीसी, सांस्कृतिक कार्यक्रम, समाज सेवा इत्यादि प्रमुख हैं ।

(11) **समानता का प्रशिक्षण प्रदान करना** - भारतीय संविधान में प्रत्येक नागरिक को समानता का अधिकार प्राप्त है । यह समानता अस्तित्व और अवसर दोनों की है । विद्यालय प्रबंध का यह उद्देश्य है कि रंग, जाति, धर्म आदि का भेदभाव किए बिना प्रत्येक नागरिक को समानता का अवसर प्राप्त हो । शिक्षा एवं विद्यालय के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक नागरिक छात्र को शिक्षा प्राप्ति एवं प्रत्येक विषय-वस्तु सीखने का अधिकार प्रदान करना विद्यालय प्रबंध का एक मुख्य उद्देश्य है ।

(12) **छात्रों को स्वानुशासन की शिक्षा प्रदान करना -** विद्यालय में बालक को भावी जीवन की शिक्षा प्रदान की जाती है । यह शिक्षा समाज की आवश्यकतानुसार बालक को प्रदान की जाती है। समाज के व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने का प्रथम एवं मुख्य अभिकरण विद्यालय होता है । हमारे देश में गणतांत्रिक व्यवस्था प्रचलित है । अत: हमारे समाज एवं विद्यालय को गणतांत्रिक पद्धति पर संगठित होना है । यह तभी संभव है जब समाज का प्रत्येक नागरिक गणतांत्रिक पद्धतियों में न केवल विश्वास रखता हो अपितु व्यावहारिक रूप में अपने जीवन में उतार चुका हो। गणतंत्र शासन की सम्पूर्ण सफलता व्यवहार कुशल एवं उपयोगी नागरिकता पर निर्भर करती है । अत: आज विद्यालय प्रबंध का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि छात्रों को व्यावहारिक रूप से स्वानुशासन की शिक्षा प्रदान की जाए । विद्यालयों में छात्र-संसद, छात्र-मंडिमण्डल तथा सहयोग भंडार आदि कार्य इसी उद्देश्य की प्राप्ति की दृष्टि से किए जाते हैं ।

(13) **भौतिक एवं मानवीय संसाधनों में समन्वय** - विद्यालय में अनेक भौतिक एवं मानवीय संसाधन होते हैं । इन संसाधनों का समुचित उपयोग होने पर ही विद्यालय अपने उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकता है । अत: विद्यालय प्रबन्ध का एक उद्देश्य यह भी रहता है कि विद्यालय में उपलब्ध भौतिक एवं मानवीय संसाधनों में समन्वय किया जाए । जैसे यदि विद्यालय में खेल का मैदान है तो विद्यार्थी खेल के मैदान में खेलते हुए दृष्टिगोचर होने चाहिए । यदि विद्यालय में प्रयोगशाला उपलब्ध है तो प्रयोगशाला में बालक प्रयोग करते हुए दिखाई देने चाहिए । इस प्रकार विद्यालय प्रबन्ध दवा उद्देश्य विद्यालय में उपलब्ध भौतिक एवं मानवीय संसाधनों में समन्वय की प्राप्ति हो सकती है ।

(14) **शिक्षकों में प्रेम एवं सद्भावना का विकास करना** - विद्यालय में एक से अधिक शिक्षक होते हैं । इन शिक्षकों में आपस में प्रेम एवं सद्भावनापूर्ण व्यवहार होना चाहिए । शिक्षकों में आपस में प्रेम' एवं सद्भावनापूर्ण व्यवहार के द्वारा ही शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति संभव है । अत: विद्यालय प्रबन्ध का एक उद्देश्य शिक्षकों में प्रेम एवं सद्भावना का विकास करना है । अत: इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु विद्यालय प्रबंध को अपने विद्यालय में इस प्रकार का वातावरण सृजित करना चाहिए जिससे विद्यालय में शिक्षकों में आपस में प्रेम एवं सद्भावना का विकास हो सके ।

(15) **शिक्षकों को व्यवसायिक विकास हेतु अवसर उपलब्ध करवाना -** शिक्षण व्यवसाय में नवीन अनुसंधान एवं नवाचार होते रहते हैं । इन अनुसंधानों एवं नवाचारों का अन्तिम उद्देश्य विद्यार्थियों को लाभान्वित करना होता है । विद्यार्थी अपने शिक्षक से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े रहते

हैं। शिक्षक इन नवाचारों एवं अनुसंधानों के बीच कडी का कार्य करते हैं । अत: शिक्षक को इन नवाचारों एवं अनुसंधानों से पूर्ण रूप से अवगत होना चाहिए । अत: विद्यालय प्रबन्ध का एक उद्देश्य यह भी होता है कि अपने विद्यालय में कार्यरत शिक्षकों को व्यावसायिक विकास हेतु अधिकतम अवसर उपलब्ध करवाना है ।

(16) **छात्र एवं समाज केन्द्रित कार्यक्रम बनाना -** विद्यालय का मुख्य उद्देश्य छात्र में अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन लाना है । अत: इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु विद्यालय प्रबंधन का एक उद्देश्य यह है कि विद्यालय प्रबन्धन अपने प्रबन्ध में जो भी कार्यक्रम रखे वे सभी कार्यक्रम छात्र केन्द्रित होने चाहिए । छात्र समाज की कड़ी होता है अत: विद्यालय प्रबन्ध के सभी कार्य छात्र एवं समाज केन्द्रित होने चाहिए । इस प्रकार विद्यालय प्रबन्ध का एक उद्देश्य छात्र एवं समाज केन्द्रित कार्यक्रम बनाना है ।

(17) **मूल्यांकन करना -** विद्यालय प्रबन्धन के कुछ निर्धारित उद्देश्य होते हैं । इन उद्देश्यों की प्राप्ति वांछनीय होती है । विद्यालय प्रबंधन को अपने कार्यों का समय-समय पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए । मूल्यांकन के माध्यम से उपलब्दियों एवं सीमाओं दोनों का पता चलता है । इसके आधार पर इससे आगे के कार्यक्रम एवं भावी योजनाएँ बनाने में सहायता प्राप्त होती है । अत: विद्यालय प्रबंधन को समय-समय पर मूल्यांकन करते रहना चाहिए एवं जिस क्षेत्र में वांछनीय उपलब्धि नहीं हो पाई है उस क्षेत्र में पुन: योजना बनाकर प्रयास किया जाता है । इस प्रकार विद्यालय प्रबन्ध का एक उद्देश्य मूल्यांकन करना भी होता है ।

(18) **सरकारी एवं वित्तीय साधनों से सम्पर्क बनाए रखना -** विद्यालय प्रबंध का एक उद्देश्य सरकारी एवं वित्तीय साधनों से सम्पर्क बनाए रखना है । विद्यालय का संचालन सरकारी नीति-नियमों से करना श्रेयस्कर माना गया है । अत: विद्यालय प्रबन्ध को सरकारी संसाधनों से सम्पर्क बनाए रखना चाहिए । इसके अतिरिक्त विद्यालय प्रबंध को वित्तीय साधनों से भी सम्पर्क बनाए रखना चाहिए जिससे विद्यालय को समय-समय पर आय होती रहे और विद्यालय प्रबंध को आर्थिक संकटों से नहीं गुजरना पड़े ।

(19) **विद्यालय समन्वयन हेतु योजना तैयार करना -** विद्यालय में आयोजित होने वाली प्रत्येक गतिविधि गुणात्मक होनी चाहिए । अत: विद्यालय प्रबंधन का एक उद्देश्य यह है कि समय-समय पर विद्यालय प्रबन्धन अपने विद्यालय के अन्दर ऐसा कार्यक्रम तैयार करे कि विद्यालय का गुणात्मक विकास हो सके ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. विद्यालय में भौतिक एवं मानवीय संसाधनों के मध्य समन्वय किस प्रकार किया जा सकता है
2. विद्यालय प्रबन्धन के कोई दो उद्देश्य बताइए ।

18.3 विद्यालय प्रबंधन के कार्य (Function of School Management)

यद्यपि विद्यालयों के लिए विस्तृत नीति का निर्धारण केन्द्र अथवा राज्य सरकार द्वारा किया जाता है । परन्तु प्रत्येक विद्यालय के सुनिश्चित ढंग से उद्देश्य निर्धारित होते हैं । इन उद्देश्द्यो को प्राप्त करने के लिए विद्यालय अपने स्तर पर भी कुछ नीतियाँ निर्धारित करता है । साथ ही विद्यालय को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए अपने स्तर पर योजनाएँ बनाना एवं नीति निर्धारण करना आवश्यक होता है । विद्यालय प्रबंध का कार्य न केवल योजना बनाना है अपितु उसका क्रियान्वयन करना एवं मूल्यांकन करना भी है । विद्यालय प्रबन्ध के कार्यों के अन्तर्गत विद्यालय कार्यकर्ताओं को कार्य वितरण करना, शैक्षिक एवं सहशैक्षिक गतिविधियों हेतु समय तालिका (Time Table) बनाना, भवन निर्माण करना, कार्यकर्ताओं की नियुक्ति करना, उपकरण एवं फर्नीचर को क्रय करना, विद्यालय हेतु बजट तैयार करना, संस्थागत योजना (Institutional Planning) बनाना, सामुदायिक कार्य करना इत्यादि कार्य सम्मिलित हैं ।व्यवस्थित रूप से विद्यालय प्रबंध के इन कार्यों को निम्नानुसार समझ सकते हैं-

(1) **नियोजन करना (Planning)-** विद्यालय प्रबंधन के अन्तर्गत यह एक आवश्यक कार्य है । विद्यालय प्रबंध की पूर्व निर्धारित योजना के आधार पर व्यापक रूप से एक रूपरेखा तैयार करना आवश्यक होता है । इसको तैयार करने से पूर्व विचार पूर्वक यह तय करना आवश्यक होता है कि विद्यालय के अन्तर्गत क्या, कहाँ, कब, कैसे तथा किन व्यक्तियों से कार्य करवाना है ? इस प्रकार के सभी विषयों पर विद्यालय प्रबंधक प्रधानाध्यापक को विचार-पूर्वक सोच-समझकर निर्णय लेना पड़ता है । साथ ही विद्यालय योजना में संगठन के सभी पक्षों का सहयोग किया जाना चाहिए । क्योंकि स्टाफ के सदस्य न केवल योजना को गहराई से समझते हैं वरन् इससे वैयक्तिक विकास भी होता है । इसके साथ-साथ स्टाफ के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण समस्या समाधान के लिए आते हैं जिससे समस्या के भिन्न- भिन्न पहलुओं को समझने का अवसर मिलता है ।

विद्यालय योजना निर्माण के समय एक व्यक्ति के बजाय अनेक आदमी सोचें । इससे अनेक लोगों के अनुभवों का लाभ विद्यालय के विकास में सहायक होता है ।

विद्यालय योजना तात्कालिक समस्याओं के समाधान के साथ-साथ दूरगामी समस्याओं के समाधान के लिए बनानी चाहिए । विद्यालयों में मासिक, वार्षिक एवं पंचवर्षीय योजना निर्माण की जा सकती है । विद्यालय प्रवृत्तियों, पाठ्यवस्तु, शिक्षण आदि के लिए जहाँ तात्कालिक योजनाएं बन सकती हैं । वहीं विद्यालय के भौतिक विस्तार जैसे भवन, प्रयोगशाला, पुस्तकालय आदि दूरगामी योजनाएँ भी हो सकती हैं ।

(2) **संगठन करना (Organizing)-** यह प्रबंधन का महत्त्वपूर्ण दायित्व है कि वह संगठन के उद्देश्यों के अनुरूप संगठन में कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों की शक्ति को इस प्रकार संयोजित करें कि प्रबंधन के उद्देश्यों को प्रभावपूर्ण तरीके से प्राप्त किया जा सके ।

ग्रेग के अनुसार - "संगठन का अभिप्राय है समान लक्ष्य की पूर्ति हेतु संलग्न व्यक्तियों के समूह की समन्वित क्रियाएँ ।" जान वाल्टन मानते हैं कि "संगठन कार्यरत व्यक्तियों का एक समूह है, जो समान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए साथ-साथ मिल कर कार्य करते हैं ।"

प्रशासनिक प्रक्रिया में संगठन का महत्त्वपूर्ण स्थान है । विद्यालय वातावरण के दोनों तत्त्वों (मानवीय एवं भौतिक) का सफल संगठन ही प्रशासन की कुंजी है । इससे मानव शक्ति एवं संसाधनों का समुचित उपयोग तो होता ही है साथ ही शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति सुलभ होती है । इसके द्वारा विद्यालय कार्यक्रम को रोचक एवं प्रभावशाली बनाया जा सकता है ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि एक अच्छा संगठन वह है जिसमें संगठन के लक्ष्य प्रभावी ढंग से पूरे हों, स्टाफ में परस्पर समझ और सहयोग हो, सभी अपने दायित्वों को समझें तथा उनमें संगठन के प्रति समर्पण हो । उन्हें यह भी आभास हो कि हमारी आवश्यकताएँ समुचित रूप से पूरी हो रही हैं ।

(3) **समन्वय करना (Co-ordinating)-** प्रत्येक संगठन के अपने निर्धारित उद्देश्य होते हैं । इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संगठन में अनेक व्यक्ति संलग्न होते हैं । इसी प्रकार प्रत्येक विद्यालय में प्रधानाध्यापक, अनेक अध्यापक, मंत्रालयिक कार्यकर्ता इत्यादि अनेक व्यक्ति संलग्न / कार्यरत होते हैं । ये सभी विद्यालय के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु प्रयासरत होते हैं । प्रत्येक व्यक्ति इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक-दूसरे का सहयोग करता है । इन सभी व्यक्तियों को संगठन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक व्यक्ति उन्हें विविध कार्यकर्ताओं में एक साथ मिलाकर लगाता है, कर्त्तव्य करता है और निर्देशन देता है ताकि वे संगठन को अधिकाधिक सहयोग प्रदान करे । इस प्रकार वह संगठन के मानवीय और भौतिक साधनों को संगठन के लक्ष्य की प्राप्ति में लगाता है । यही व्यक्ति एक समन्वयकर्ता (Co-ordinator) या प्रशासक कहलाता है । विद्यालय में यह कार्य प्रधानाध्यापक करता है । प्रशासनिक प्रक्रिया में समन्वयकारी भूमिका का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

विद्यालय के सभी अंगों में परस्पर सम्पर्क स्थापित करना अत्यावश्यक है । प्रधानाध्यापक तथा अन्य संगठनकर्ता को इस कार्य में बड़ी सतर्कता रखनी चाहिए ताकि विद्यालय सम्बन्धी सभी कार्यों को परस्पर सहयोग द्वारा सुगमतापूर्वक सम्पन्न किया जा सके । सभी संलग्न व्यक्ति अपने विद्यालय का अंग मानें और एक दूसरे के सहयोग द्वारा विद्यालय के सभी समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करें ।

(4) **नियुक्ति करना (Staffing)** - यह प्रशासनिक कार्य है जिसके अन्तर्गत आवश्यक अधिकारियों की नियुक्ति, अपेक्षित प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा सेवानियम आदि की व्यवस्था शामिल है । किसी संस्थान के अधिकारी तथा कर्मचारी जितने अनुभवी, प्रशिक्षित तथा योग्य होंगे उतना ही कुशलता से वे अपना कार्य करेंगे । प्रत्येक संगठन की सफलता मानवीय संसाधनों के उचित चयन पर निर्भर करती है । इस हेतु योग्य, कर्मठ एवं उचित योग्यता वाले व्यक्तियों का चयन किया जाना चाहिए । कर्मचारियों के साथ प्रबंधकों का भेदभावपूर्ण व्यवहार उद्देश्यों की पूर्ति में सदैव बाधक रहता है । अत: प्रबन्धकों को कार्यकर्ताओं के साथ समान भाव का व्यवहार किया जाना चाहिए ।

विद्यालय प्रबंध के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि विद्यालय प्रबन्धकों को अपने विद्यालय में योग्य, कुशल एवं प्रशिक्षित अध्यापकों का चयन करना चाहिए । विद्यालय में नियुक्ति का आधार योग्यता एवं कुशलता होनी चाहिए । अध्यापकों की नियुक्ति के समय प्रबंधन मण्डल निष्पक्ष रहना चाहिए । प्रबन्धन मण्डल द्वारा योग्य, कुशल एवं प्रशिक्षित अध्यापकों को ही नियुक्त करना चाहिए । नियुक्ति के अन्तर्गत अध्यापकों की भर्ती, प्रशिक्षण, वेतन, मूल्यांकन, पदोन्नति एवं सेवामुक्ति को सम्मिलित किया जाता है । अत: प्रबंधक मण्डल के द्वारा सभी अध्यापकों को सभी लाभ समय पर प्रदान करने चाहिए । जिससे उनको कार्य संतुष्टि (Job Satisfaction) मिलता है जिसके परिणामस्वरूप विद्यालय प्रबन्ध के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु अधिक तत्पर होकर कार्य करने हेतु प्रोत्साहित होंगे ।

(5) **निर्देशन (Direction). -** किसी भी संस्थान अथवा उपक्रम में कार्य करने वाले व्यक्तियों को यदि सही निर्देशन दिया जाए तो वे अपना कार्य भली-भाँति तथा कुशलतापूर्वक कर सकेंगे । निर्देशन लिखित रूप में दिया जाए तो यह अधिक प्रभावशाली सिद्ध होता है क्योंकि इसकी अवहेलना करने पर इन्हें नियंत्रित किया जा सकता है और सही पालन करने पर इनकी प्रशंसा की जा सके । प्रबंधन को प्रभावी बनाने हेतु प्रबंधक को निर्देशन के लिए अनुभवी व्यक्तियों को एकत्रित कर एक सलाहकार सुमित का गठन करना चाहिए जिससे समय-समय पर सही दिशा प्राप्त हो सके ।

विद्यालय प्रबन्धक को अध्यापक, छात्र तथा समाज के मध्य परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए ताकि प्रभावी प्रबंध हेतु एक-दूसरे को अभिप्रेरणा मिलती रहे । निर्देशन का विद्यालय प्रबंध की भूमिका में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है । निर्देशन सदैव विद्यालय की प्रगति तथा उन्नति में सहायक होता है । इसका प्रयोजन विभिन्न कार्यों में नियुक्त कार्यकर्ताओं को यह बताना है कि उन्हें क्या करना है ? और कैसे करना है ? तथा यह देखना कि वे व्यक्ति अपना कार्य उसी के अनुसार कर रहे हैं अथवा नहीं । इसे आदेश का रूप न देकर विकास एवं सुझाव के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए, जिससे विद्यालय कर्मचारी उसका पालन करना एक कर्त्तव्य समझें । अत: प्रधानाचार्य, प्रबन्ध कार्यकारिणी तथा निरीक्षण कर्ता द्वारा दिए गए निर्देशन स्वस्थ एवं रचनात्मक होने चाहिए जो विद्यालय के स्तर को ऊँचा करने में सहायक हो सकें ।

(6) **नियत्रंण (Control) -** यह जाँच करने की प्रक्रिया है । इसके माध्यम से यह देखा जाता है कि निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में प्रगति हो रही है अथवा नहीं । यदि निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में कोई बाधा आ रही है तो उसे दूर करने के लिए सुधारात्मक कदम उठाये जाते हैं । अत: नियंत्रण जाँच करने का प्रयास है कि समस्त कार्य योजना के अनुसार चल रहे हैं अथवा नहीं ।

विद्यालय प्रबंध में भी नियंत्रण का स्थान महत्त्वपूर्ण है । विद्यालय में छात्रों, अध्यापकों एवं अन्य सभी कर्मचारियों पर प्रबंधन का नियंत्रण होना आवश्यक है जिससे विद्यालय के शिक्षण स्तर का उचित निर्धारण किया जा सके । अत: नियंत्रण के अन्तर्गत नियम, आदेश एवं शर्तें उचित एवं प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों पर आधारित होने चाहिए । अधिकारियों

द्वारा लिए गए निर्णय वस्तुनिष्ठ, सन्तुलित, ठोस तथा व्यावहारिक होने चाहिए । नियंत्रण के अभाव में संगठन के वांछित लक्ष्यों को प्राप्त किया जाना संभव नहीं रहता है । नियंत्रण के अन्तर्गत नियमित के साथ ही दण्ड एवं पुरस्कार को भी अपनाया जाता है ।

(7) **बजट बनाना (Budgeting)** - संगठन के कार्यों को आगे बढ़ाने के लिए संसाधन जुटाना आवश्यक है । इस हेतु योजना निर्मित करते समय वित्त व्यवस्था के स्रोतों पर ध्यान दिया जाना चाहिए । योजना में व्यय होने वाली कुल धनराशि, धनार्जन के स्रोत एवं माध्यम आदि की विवेचना से ही योजना सफल हो सकती है ।

प्रत्येक विद्यालय को अपने आय-व्यय का लेखा तैयार करना पड़ता है, जिसके आधार पर विद्यालय बजट तैयार किया जाता है तथा इसी आधार पर सरकार विद्यालय को अनुदान प्रदान करती है । यह कार्य प्रधानाचार्य के माध्यम से उसके विद्यालय द्वारा सम्पन्न किया जाता है । आय तथा व्यय सम्बन्धी समस्त धन का अलग-अलग विवरण रखा जाता है । इसी आधार पर विद्यालय को सरकार द्वारा अनुदान प्राप्त होता है । अत: विद्यालय की प्रगति में बजट का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है ।

(8) **प्रतिवेदन तैयार करना (Reporting)** - संगठन की कार्य प्रगति एवं कार्य योजनाओं की जानकारी उच्च पदस्थ्र अधिकारियों एवं अन्य संबंधित कार्यालयों को भेजी जानी अपेक्षित होती है । संगठन के संबंध में दूरस्थ व्यक्ति स्थिति का आकलन इसी के आधार पर ही करते हैं । अत: प्रबंधकों को प्रतिवेदन तैयार करने में भी सक्षम होना चाहिए ।

विद्यालय समाज का एक लघुरूप है । समाज की प्रगति में विद्यालय की मुख्य भूमिका होती है । विद्यालय के विकास एवं उपलब्धियों की जानकारी समाज के सभी वर्गों के लिए दी जानी आवश्यक है जिससे समाज के सभी व्यक्ति लाभान्वित हो सकें । इसके लिये प्रत्येक विद्यालय द्वारा वर्ष भर की जानकारी देने के लिए विद्यालय की संपत्रिका प्रकाशित की जानी चाहिए । इस संपत्रिका के अन्तर्गत विद्यालय सम्बन्धी समस्त कार्यों एवं उनकी उपलब्धियों के संबंध में विस्तृत विवरण प्रदान किया जाता है जिसके द्वारा सामान्य जनता को, शिक्षा जगत के महान शिक्षाविदों एवं शिक्षा विभाग के उच्च पदस्थ अधिकारियों को अवगत करवाया जा सकता है ।

(9) **अभिप्रेरणा (Motivation) -** मनोविज्ञान के व्यवहार के सिद्धान्तों पर हुए शोध कार्यों के निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि कार्य के परिणामस्वरूप पुरस्कार एवं दण्ड के फलस्वरूप भविष्य के कार्य के परिणाम में सकारात्मक परिवर्तन प्राप्त होता है । प्रबंध के अन्तर्गत भी अभिप्रेरणा एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है । इसके माध्यम से कार्यकर्ताओं में कार्य करने के प्रति रुचि उत्पन्न की जाती है । इसके द्वारा ऐसा वातावरण तैयार किया जाता है जो कार्यकर्ताओं में कार्य करने की भावना पैदा करे । इसरो उनमें कार्य के प्रति निष्ठा बढ़ती है और उत्पादन को बढ़ावा मिलता है ।

विद्यालय प्रबन्धन मण्डल का कार्य है कि वह अपने विद्यालय में कार्य करने वाले अध्यापकों को अभिप्रेरित करे । शिक्षकों के अच्छे कार्यों हेतु उन्हें प्रोत्साहित किया जाना चाहिए उन्हें उचित पारिश्रमिक, पदोन्नति, विकास के अवसर, रोजगार की सुरक्षा, उचित व्यवहार, कार्य की प्रशंसा, कार्यकर्ताओं को उचित सुविधाएँ उपलब्ध करवाकर अध्यापकों को अभिप्रेरित करना

चाहिए । विद्यालय प्रबंध द्वारा शिक्षकों के साथ इस प्रकार के व्यवहार से उनमें आत्मविश्वास, आत्मसम्मान, आत्मगौरव की भावना जागृत होगी । जिसके परिणामस्वरूप शिक्षक अधिक कार्य करने हेतु प्रेरित होंगे जिससे विद्यालय को ही लाभ होगा ।

(10) **सम्प्रेषण (Communication) -** विद्यालय प्रबन्धन का यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य होता है । इसके माध्यम से ही परस्पर समूहों में सूचनाएँ, विचार, स्पष्टीकरण, प्रश्नोत्तर आदि का संचार किया जाता है । यह व्यक्तियों के मध्य पारस्परिक सम्पर्क का साधन है । इसके द्वारा ऊपरी एवं निम्न स्तर के कार्यकर्ता एवं समान स्तर पर कार्य करने वाले कार्यकर्ता परस्पर संपर्क स्थापित कर सकते है । संगठन एक निश्चित उद्देश्यों के लिए जुड़े व्यक्तियों का समूह है परन्तु इनको उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समन्वित रूप से लगाए रखना प्रबंधक का कार्य है । प्रबंधक तब तक उनमें समन्वय स्थापित नहीं कर सकता, जब तक कि वह प्रभावी संप्रेषण द्वारा संपर्क स्थापित नहीं करता । उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कभी उसे सूचनाएँ, कभी निर्देश, कभी आदेश आदि देने पड़ते हैं । ये सभी सम्प्रेषण द्वारा ही संभव है । जब सम्प्रेषण ऊपर से नीचे या समान स्तर पर बिना व्यवधान के होता रहता है तब यह प्राय: अपेक्षा की जाती है कि संगठन के सभी लोग उद्देश्यों के बारे में स्पष्ट एवं एक मत हैं । विद्यालय प्रबंधन मण्डल को समय-समय पर सरकार द्वारा प्राप्त आदेश-निर्देशों को, प्रदत्त दायित्वों को, संस्था के उद्देश्यों को एवं अन्य सामयिक सूचनाओं, आदेशों, निर्देशों को शिक्षकों तक पहुँचाना होता है । यह सभी कार्य सम्प्रेषण (communication) द्वारा ही संभव है ।

(11) **एकीकरण (Integration) -** यद्यपि विद्यालयों में नीति नियम राज्य अथवा केन्द्र सरकार के चलते हैं । फिर भी प्रत्येक विद्यालय की स्थापना के पीछे कुछ उद्देश्य निहित होते हैं । इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विद्यालय के समस्त कार्यकर्ताओं एवं छात्रों को तत्परता से प्रयास करने पड़ते हैं । अत: विद्यालय प्रबन्ध का यह कार्य एवं दायित्व है कि विद्यालय के समस्त कार्यकर्ताओं को विद्यालय की नीतियों, योजनाओं एवं उद्देश्यों से परिचित करवाए, स्वेच्छा से कार्य करने की भावना जागृत करे, कार्य के लिए सहयोगपूर्ण एवं मैत्रीपूर्ण वातावरण का निर्माण करे एवं सभी कार्यकर्ताओं को एकजुट अथवा एक होकर कार्य करने हेतु प्रेरित करें ।

(12) **नवाचार (Innovation) -** विद्यालय का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करना है । इस हेतु विद्यालय की शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक को नवाचार अपनाने आवश्यक हैं क्योंकि पुरानी एवं परम्परागत शिक्षण विधियों से छात्र ऊब जाता है उनमें छात्र को कोई नवीनता नहीं लगती है । अत: विद्यालय प्रबंधन को अपने विद्यालय में नवाचार करने हेतु प्रेरित करना चाहिए। इस हेतु विद्यालय के शिक्षकों को कार्यशालाओं, सेमिनार, शैक्षिक वार्ताओं में जाने हेतु अवसर उपलब्ध करवाने चाहिए एवं उन्हें प्रेरित करना चाहिए ।

(13) **निर्णय लेना (Decision Making) -** विद्यालय प्रबंध का एक कार्य निर्णय लेना है । विद्यालय प्रबंध के समक्ष अनेक समस्याएँ आती रहती हैं । जैसे- छात्र अनुशासन, भवन निर्माण, कार्य विभाजन, शाला कार्यक्रम, सामुदायिक कार्य, सहशैक्षिक गतिविधियों का आयोजन, कार्यकर्ताओं की पदोन्नति इत्यादि । इन सभी मुद्दों पर शाला प्रबंध को उचित निर्णय लेने पड़ते

हैं। विद्यालय की सफलता काफी मात्रा में प्रबंध के निर्णयों पर निर्भर करती है । अत: विद्यालय प्रबंध को बड़ी सावधानी से सोच-विचार कर निर्णय लेना चाहिए ।

(14) **मूल्यांकन (Evaluation) -** विद्यालय की प्रबंध प्रक्रिया में मूल्यांकन एक आवश्यक कार्य है। विद्यालय प्रबंध द्वारा निर्धारित किए गए उद्देश्यों की पूर्ति की मात्रा का आकलन, करने के लिए, कार्य की विधिवतता जाँचने के लिए, कार्य की दिशा एवं गति के निर्धारण के लिए मूल्यांकन आवश्यक है । विद्यालय प्रबंध में मूल्यांकन सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है । मूल्यांकन द्वारा प्रबंधक को अपनी उपलब्धियों का ज्ञान होता है । साथ ही उसके मार्ग में आने. वाली कठिनाइयों एवं बाधाओं के संबंध में जानकारी प्राप्त होती है । इस प्रकार मूल्यांकन द्वारा विद्यालय प्रबंध का वास्तविक ज्ञान होता है । मूल्यांकन विकास एवं प्रगति के साथ-साथ असफलताओं तथा समस्याओं के दोनों रूपों का परिचायक होता है । इसी के आधार पर संगठन को सुदृढ़ एवं सार्थक बनाया जा सकता है ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. विद्यालय प्रबंध में नियोजन की क्या भूमिका होती है ?
2. विद्यालय प्रबंधक को स्टाफ की नियुक्ति करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?
3. विद्यालय प्रबंधक के कोई पांच कार्य लिखिए ।

18.4 विद्यालय प्रबन्ध के क्षेत्र (Scopes of School Management)

वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व में विद्यालय प्रबंध ने बहुत महत्त्व ग्रहण किया है । यह अनुभव किया जा रहा है कि प्रभावकारी विद्यालय प्रबंध शिक्षा में उच्चतर गुणवत्ता प्राप्त करने में उल्लेखनीय योगदान दे सकता है । विद्यालयों की गुणवत्ता में सुधार करने के कार्य को सम्पूर्ण संसार में सभी सरकारों की कार्यसूची में उच्च प्राथमिकता दी गई है । इस क्षेत्र में सम्पादित शोधकार्यों के आधार पर पता चलता है कि शिक्षा की गुणात्मकता उपलब्ध संसाधनों के बाहुल्य की अपेक्षा प्रमुख रूप से इस बात पर निर्भर करती है कि विद्यालयों का प्रबंध किस प्रकार किया जाता हे ।

विद्यालय प्रबंध' बहुत ही व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है । प्रजातंत्र, समाजवाद, वैज्ञानिक उपलब्धियों एवं अन्तर्राष्ट्रीय नव-जागरण के इस युग में विद्यालय-प्रबंध का क्षेत्र भी अत्यधिक विस्तृत हो गया है । विद्यालय प्रबंध के अन्तर्गत समस्त बातें आ जाती हैं जिनका सम्बन्ध विद्यालय की आन्तरिक अथवा बाह्य व्यवस्था से होता है । शिक्षक-समुदाय, समय-तालिका, परीक्षा, पाठ्यक्रम आदि सभी विद्यालय प्रबंध के अन्तर्गत आ जाते हैं । इस प्रकार विद्यालय प्रबंध का तात्पर्य विद्यालय की व्यवस्था के साथ-साथ मानव सम्बन्ध से भी है । सुन्दर प्रबंध एवं दक्ष व्यवस्था पर ही विद्यालय की सफलता एवं सार्थकता निर्भर करती है । चाहे अध्यापन कितना ही उच्च श्रेणी का हो, छात्रों की संख्या कितनी ही अधिक हो, शिक्षक

कितने ही योग्य हों, किन्तु यदि विद्यालय अव्यवस्थित है तो उसका भविष्य निश्चित रूप से अंधकारमय है।

विद्यालय प्रबंधन के अंतर्गत उन सभी आन्तरिक एवं बाह्य व्यवस्थाओं को सम्मिलित किया जा सकता है जिनके सहयोग से विद्यालय को सुचारू और सफल रूप से चलाया जाता है । चाहे विद्यालय भवन हो, चाहे समय सारणी, शिक्षा सामग्री हो अथवा पुस्तकालय, परीक्षा तथा सम्पर्क साधन सभी विद्यालय प्रबंध के आवश्यक अंग हैं । इनमें से किसी एक की कमी अथवा गड़बड़ी से समूची व्यवस्था चरमरा जाती है । इन सभी हिस्सों अथवा पुर्जों के उचित सामंजस्य और सफल संचालन को ही विद्यालय प्रबंध कहा जाता है ।

उपर्युक्त विश्लेषणोपरान्त निष्कर्ष रूप में विद्यालय प्रबंध के अन्तर्गत निम्नलिखित क्षेत्रों को रखा जा सकता है । इनके सफल संचालन के फलस्वरूप विद्यालय प्रबंध सफल हो सकता है -

1. मानवीय संसाधन संबंधी प्रबंध
2. भौतिक संसाधन सम्बन्धी प्रबंध
3. वित्तीय संसाधन सम्बन्धी प्रबन्ध
4. समय प्रबंध
5. विद्यालय एवं पुस्तकालय भवन संबंधी प्रबंध
6. छात्रावास, प्रयोगशाला एवं खेल के मैदान सम्बन्धी प्रबंध
7. अनुशासन सम्बन्धी प्रबंध
8. विद्यालय तथा समुदाय सम्बन्धों सम्बन्धी प्रबंध

उपर्युक्त सभी क्षेत्रों के चयनोपरान्त यह समझना आवश्यक है कि विद्यालय प्रबंध के अन्तर्गत इन सभी क्षेत्रों (areas) पर आधारित प्रबन्ध किस प्रकार किया जा सकता है । अत: इन सभी क्षेत्रों का क्रमश: विवेचन निम्नानुसार है -

(1) **मानवीय संसाधन सम्बन्धी प्रबन्ध -** विद्यालय प्रणाली के मुख्य अंग प्रशासन, शिक्षक, विद्यार्थी तथा सहायक सेवा कर्मचारी होते हैं । ये सभी परस्पर मिल-जुलकर कार्य करते हैं । यदि इनके पारस्परिक कार्य-कलापों में व्यक्तियों का व्यवहार अपेक्षित व्यवहार (expected behaviour) के अनुरूप है तो सामंजस्य बना रहता है । यदि नहीं तो तनाव एवं संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । विद्यालय में क्रिया समूह मुख्य रूप से (1) प्रशासन-शिक्षक (2) प्रशासक-विद्यार्थी तथा (3) शिक्षक-विद्यार्थी होते हैं । यदि अपनी अपनी भूमिका के संबंध में सभी का व्यवहार अपेक्षाओं के अनुरूप है तब विद्यालय में एक सुमधुर पर्यावरण हो जाएगा । यदि मस्तिष्क में अपेक्षित भूमिका का चित्र ठीक नहीं है तो इस त्रुटिपूर्ण चित्र के कारण उसका व्यवहार ठीक नहीं होगा, जो तनाव पैदा करेगा तथा आपस में द्वेष की भावना पैदा करेगा । अत: आवश्यकता है कि विद्यालय प्रबंध के सभी मानवीय संसाधनों में अपनी-अपनी भूमिका निर्वाह करने के लिए अपेक्षित भूमिका का चित्र स्पष्ट एवं सही हो ।

विद्यालय प्रबन्ध को अपने विद्यालय के सफल संचालन हेतु योग्य, कुशल एवं दक्ष शिक्षकों एवं अन्य सेवाकर्मियों की आवश्यकता होती है । अत: शिक्षकों एवं अन्य कार्यकर्ताओं

की नियुक्ति दूरदृष्टि, गम्भीरता एवं पूर्ण सोच-समझकर की जानी चाहिए । भारत के सभी राज्यों में शिक्षक की नियुक्ति के लिए पृथक-पृथक नियम हैं । सामान्यत: विद्यालयों में प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति होनी चाहिए । अत: विद्यालयों में प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति हो तथा योग्य एवं प्रशिक्षित शिक्षकों को इस ओर आकर्षित करना चाहिए । गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों का चुनाव प्रबंध समितियों द्वारा होता है । राजकीय विद्यालयों के शिक्षकों के चुनाव राज्य चुनाव समिति करती है तथा राज्य शिक्षा सेवा के राजपत्रित पदों पर शिक्षकों का चुनाव राज्य-लोक-सेवा आयोग करता है । गैर सरकारी विद्यालयों में शिक्षकों का चयन अनेक स्थानीय तथा व्यक्तिगत बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है जिसके फलस्वरूप चयन निष्पक्ष और उच्च कोटि का नहीं होता । इस स्थान पर प्रधानाध्यापक का कार्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है । ऐसी स्थिति में प्रधानाध्यापक द्वारा चयन समिति को शिक्षक चयन हेतु उचित सुझाव प्रदान करना चाहिए और अपेक्षित सहयोग भी प्रदान करना चाहिए । राजकीय एवं गैर राजकीय सभी प्रकार के विद्यालयों में शिक्षक की एक या दो वर्ष के परीक्षा के रूप में की जानी चाहिए । आदर्श शिक्षक के रूप में चयन समिति द्वारा शिक्षक के गुणों में मुख्य रूप से चारित्रिक दृढ़ता, सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार, अध्ययन एवं अध्यापन में रुचि, उत्साही, पेशे के प्रति उत्तरदायी, मनोवैज्ञानिक धर्मनिरपेक्ष, व्यवसायिक दक्षता, नियंत्रण, धैर्यशीलता सामाजिकता, निष्पक्षता, नेतृत्व, कल्पनाशीलता, विनोदप्रियता, मौलिकता इत्यादि गुणों को ध्यान में रखते हुए शिक्षक का चयन करना चाहिए ।

प्रधानाध्यापक द्वारा एवं विद्यालय प्रबन्ध द्वारा शिक्षकों में कार्य-वितरण उचित ढंग से किया जाना चाहिए । विद्यालय में कई कार्य होते हैं और कई शिक्षक होते हैं । इन शिक्षकों में भिन्न-भिन्न व्यक्ति अपनी पृथक्-पृथक् योग्यता, रुचि तथा क्षमता रखते हैं । अत:सुगमता तथा को ध्यान में रखकर शिक्षकों के बीच कार्यों का वितरण होना आवश्यक है । इस वितरण में कक्षा, तथा शिक्षक तीनों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है । सभी कार्यकर्ताओं में आपस में सहयोग-भावना, सहानुभूति, भरोसा एवं विश्वास होना चाहिए ।

इस प्रकार विद्यालय प्रबन्ध को मानवीय संसाधन सम्बन्धी प्रबन्ध के अन्तर्गत शिक्षकों एवं अन्य सेवाकर्मियो के चयन एवं उनमें कार्य वितरण से है । कार्य वितरण के फलस्वरूप कार्य उपलब्धि से है ।

(2) **भौतिक संसाधन सम्बन्धी प्रबंध -** विद्यालय प्रबंध में मानवीय संसाधनों एवं भौतिक संसाधनों का बहुत महत्तवपूर्ण स्थान है । ये दोनों प्रकार के संसाधन एक-दूसरे पर आश्रित हैं । इन दोनों संसाधनों के उचित सामंजस्य एवं संचालन के फलस्वरूप ही श्रेष्ठ विद्यालय प्रबंध हों सकता है ।

भौतिक संसाधन के अन्तर्गत विद्यालय के वे सभी उपकरण एवं वस्तुएँ आती हैं जिनका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से उपयोग विद्यालय परिसर में शिक्षक एवं विद्यार्थी शैक्षिक, सहशैक्षिक एवं गैर शैक्षिक कार्यों के लिए उपयोग करते हैं । उपयोग के आधार पर भौतिक संसाधनों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1 शैक्षिक भौतिक संसाधन

2 सह शैक्षिक भौतिक संसाधन

3 गैर शैक्षिक एवं सह शैक्षिक भौतिक संसाधन

1. **शैक्षिक भौतिक संसाधन -** विद्यालय में काम में आने वाले वे सभी उपकरण एवं वस्तुएँ जिनको शिक्षक एवं शिक्षार्थी अध्ययन-अध्यापन के कार्यों में उपयोग में लेते हैं । जैसे श्यामपट्ट, चौक, मार्जनी (डस्टर), मानचित्र, ग्लोब, प्रयोगशाला में काम में आने वाले सभी उपकरण, शब्दकोश, विद्यालय के विभिन्न अभिलेख, पुस्तकें, गणितीय उपकरण, विज्ञान के सभी उपकरण, भूगोल के सभी उपकरण इत्यादि ।

2. **सह शैक्षिक भौतिक संसाधन -** विद्यालय में काम में आने वाले वे सभी उपकरण एवं वस्तुएँ जिनको शिक्षक एवं शिक्षार्थी अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त पाठ्य सहगामी गतिविधियों / सह शैक्षिक गतिविधियों के कार्यों के संचालन में उपयोग में लेते हैं । जैसे खेल एवं खेल के मैदान सम्बन्धी सभी उपकरण साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों सम्बन्धी सभी उपकरण, हारमोनियम (वाद्य यंत्र) इत्यादि ।

3. **गैर शैक्षिक एवं सह शैक्षिक भौतिक संसाघन** - इन भौतिक संसाधनों के अन्तर्गत इन सभी संसाधनों को रखा जा सकता है जिनका उपयोग विद्यालय में शैक्षिक एवं सह शैक्षिक क्रिया कलापों में करना आवश्यक नहीं होता है अर्थात् इन संसाधनों का विद्यालय के शैक्षिक एवं सह शैक्षिक क्रिया कलापों में कोई विशेष उपयोग नहीं होता है परन्तु फिर भी इन संसाधनों की आवश्यकता विद्यालय में अवश्य होती है । ये सभी संसाधन घरेलू मानव-जीवन से अधिक सम्बन्धित होते हैं परन्तु विद्यालय में इनकी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता होती है । इनका उपयोग करते हुए ही विद्यालय में शैक्षिक एवं सह शैक्षिक गतिविधियों का आयोजन किया जा सकता है। जैसे पंखे, दरी-पट्टी, पानी की टंकी, गिलास, लोठा गैस-स्टोव, फर्नीचर, बक्से इत्यादि ।

विद्यालय प्रबन्ध को उपर्युक्त तीनों प्रकार के संसाधनों की व्यवस्था विद्यालय में करनी पड़ती है एवं इनका सफल एवं व्यवस्थित उपयोग भी अपेक्षित होता है । अत: विद्यालय प्रबंध को इन उपकरणों को विद्यालय में लाने से पूर्व इनकी गुणात्मकता (quality) की जाँच कर लेनी चाहिए । इन संसाधनों के क्रय करने के लिए वित्त की व्यवस्था भी करनी पड़ती है । वित्त व्यवस्था का वर्णन आगामी बिन्दू (वित्तीय प्रबन्ध) के अन्तर्गत किया जाएगा । इन सभी संसाधनों को सम्बन्धित प्रभारी की जिम्मेदारी में सौंप देना चाहिए एवं सम्बन्धित प्रभारी द्वारा अन्य व्यक्ति जिसको इसकी आवश्यकता है आवंटित (issue) करना चाहिए ।

(3) **वित्तीय प्रबंध** - वित्त सभी प्रवृत्तियों का आधार है । किसी भी विद्यालय की दक्षता, उसकी आय तथा उस आय का विद्यालय विकास में विवेकपूर्ण व्यय पर निर्भर करती है । अत: किसी भी विद्यालय के विकास और दक्षता के लिए वित्तीय नियोजन, शैक्षिक नियोजन का प्रमुख आधार बनना चाहिए । दूसरे शब्दों में शिक्षा या विद्यालय पर किया गया वित्तीय निवेश मानव विकास से संबंधित है जिससे मानव समाज की अधिकांश उपलब्धियाँ सम्बन्धित हैं ।

विद्यालय स्तर पर शैक्षिक प्रबंध का अर्थ उस व्यय पर निवेश से है जो शिक्षण संस्थाएँ शिक्षा व्यवस्था या प्रबंधन के लिए मानवीय साधनों (प्राचार्य, शिक्षक, मंत्रालयिक स्टाफ) तथा भौतिक साधनों (भवन, उपकरणों) पर करती है । इसे विद्यालय बजट भी कहते हैं जो वार्षिक रूप से संस्था प्रबंधन बनाता है । जिसमें आय-व्यय प्रदर्शित किया जाता है । व्यय को आवर्तक व्यय (रिकरिंग एक्सपेंडीचर) तथा अनावर्तक व्यय (नॉन रिकरिंग एक्सपेंडीचर) तथा अन्य कर्ज, ब्याज के रूप में दिखाया जाता है तथा आय के अंतर्गत शुल्क, अनुदान, ब्याज, चन्दा आदि प्रदर्शित किए जाते हैं ।

विद्यालयों के वित्तीय प्रबंध के आधार पर उन्हें चार वर्गों में विभाजित जा सकता है -

1. राजकीय तथा केन्द्रीय विद्यालय
2. अनुदान प्राप्त विद्यालय
3. गैर सरकारी अनुदान रहित विद्यालय
4. निजी व्यक्तियों द्वारा प्रबंधित / संचालित विद्यालय

1. **राजकीय तथा केन्द्रीय विद्यालय -** ये विद्यालय, राज्य सरकार या केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रबंधित होते हैं । स्वीकृति अनुरूप इनके वित्तीय प्रबंध का आधार वित्तीय नियमों के अनुरूप केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा होता है ।

1. **अनुदान प्राप्त विद्यालय -** ये विद्यालय निजी संस्था या व्यक्ति द्वारा स्थापित होते हैं । इनका प्रबंधन प्रबंध समिति द्वारा होता है, जिनमें अध्यापकों का प्रतिनिधित्व भी होता है । विद्यालयों को राज्य सरकार एवं केन्द्रीय सरकार के निरीक्षण की रिपोर्ट के आधार पर अनुदान की सूची पर लिया जाता है तथा इन्हें सरकार द्वारा निर्धारित अनुदान के नियमों की पालना करनी होती है ।

2. **गैर सरकारी अनुदान रहित विद्यालय -** ये विद्यालय किसी बोर्ड या परीक्षा लेने वाले अभिकरण से मान्य होते हैं । इस प्रकार के विद्यालय अपने ही आपके स्रोतों से विद्यालय अवस्था करते हैं । इन विद्यालयों द्वारा राज्य एवं केन्द्र सरकार से अनुदान नहीं लेने के निम्नलिखित दो कारण हो सकते हैं -

(1) राजकीय नियमों में नहीं बंधकर स्वयं द्वारा निर्धारित शुल्क जो प्राय: सरकारी विद्यालयों से अधिक होती हैं विद्यार्थियों से वसूल करते हैं । अत: ये केन्द्र / राज्य सरकार के प्रतिबंध स्वीकार नहीं करना चाहते हैं । अधिकांश पब्लिक स्कूल भी अनुदान नहीं लेते क्योंकि उनका शुल्क इतना अधिक होता है कि उन्हें किसी अनुदान की आवश्यकता नहीं होती है ।

(2) कुछ विद्यालय धार्मिक उद्देश्य से प्रारम्भ किए जाते हैं ये भी अनुदान नहीं लेते और ये सरकारी दखल पसंद नहीं करते हैं । इन विद्यालयों में अल्पसंख्यक समुदाय के विद्यालय भी हैं जिन्हें संविधान में यह अधिकार दिया गया है कि वे अपने सांस्कृतिक संरक्षण के लिए विद्यालय खोल सकते हैं । इन विद्यालयों को सरकारी सहायता भी मिल सकती है परन्तु इन्हें अनुदान नियमों की पालना करनी होती है ।

4. **निजी व्यक्तियों द्वारा प्रबंधित/संचालित विद्यालय -** ये वे विद्यालय जो लाभ कमाने के उद्देश्य से खोले गए हैं । ये विद्यार्थियों से शिक्षण शुल्क की अच्छी राशि लेते हैं । इसी के अन्तर्गत एक अन्य वर्ग स्वायत्तशासी / स्थानीय निकायों द्वारा संचालित विद्यालयों का भी है । इनका वित्तीय प्रबंध सम्बन्धित संस्था करती है । इनके अतिरिक्त निजी उद्योम सेना, सार्वजनिक उद्योग भी अपने विद्यालय चलाते हैं जिनका वित्तीय प्रबंध वे ही करते हैं ।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वित्तीय स्थिति एवं वित्तीय प्रबंधन का सीधा सम्बन्ध विद्यालय दक्षता से है । अत: विद्यालय विकास एवं दक्षता के लिए वित्तीय नियोजन, शैक्षिक नियोजन का आधार बनना चाहिए । वित्तीय प्रबंध को बजट कहा जाता है । प्रतिवर्ष वित्तीय वर्ष के लिए बजट तैयार किया जाता है । इसकी प्रक्रिया वर्ष पर्यन्त चलती है उचित प्रबंधन से तथा आवश्यकतानुसार विकास कार्यों के कारण संशोधन करते हुए विद्यालय का वित्तीय प्रबंध किया जाना चाहिए ।

5. **समय-सारणी सम्बन्धी प्रबंध -** समय सारणी से प्रत्येक कार्य न केवल अच्छी तरह सम्पन्न होता है बल्कि उसका लाभ जीवन की अन्य गतिविधियों पर भी अवश्य होता है । विद्यालय के दैनिक कार्यों के सुसंचालन के लिए प्रत्येक विद्यालय को समय सारणी बनाना आवश्यक है । इसे समय विभाग चक्र या समय चक्र के नाम से भी जाना जाता है । विद्यालय का समय प्रबंधन उसकी व्यवस्था का प्रतिरूप होता है । पाठ्यक्रम को व्यवस्थित रूप से संचालित करना, समय विभाग चक्र के द्वारा ही संभव है । विषय शिक्षण, पाठ्य सहगामी क्रियाएँ, संकाय सभा, प्रार्थना-सभा, शारीरिक शिक्षा तथा इनसे संबंधित शिक्षकों का कार्यभार समय-वितरण प्रारूप द्वारा वितरित किया जाता है ।

विद्यालय के समग्र शैक्षिक एवं सह शैक्षिक कार्यकलापों के संचालन की विधिपूर्वक पूर्व नियोजित प्रक्रिया समय सारणी है । यही वह माध्यम है जिससे संगठन अपने लक्ष्यों को प्राप्त करता है । इसके अनुसार शिक्षक और शिक्षार्थी विविध विषयों का अध्ययन और अध्यापन करते हैं एवं विविध प्रवृत्तियों में भाग लेते हैं । इसी के आधार पर शाला का समय विभाजन, शिक्षकों पर कार्यभार, पाठ्य एवं पाठ्येत्तर प्रवृत्तियों पर दिए जाने वाले समय एवं कार्य पद्धति का अनुमान लगाया जा सकता है । समय सारणी के माध्यम से ही विद्यालय के भौतिक संसाधनों, भवन, उपकरण, खेल के मैदानों का विद्यालय के सभी छात्रों द्वारा अधिकाधिक उपयोग संभव होता है ।

विद्यालय एवं पाठ्यक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए तथा छात्रों को प्रत्येक कार्यक्रम के लिए मानसिक रूप से तैयार रहने के लिए भी समय तालिका महत्त्वपूर्ण है । विद्यालय समय को सुव्यवस्थित चलाने एवं अधिकाधिक उपयोग की दृष्टि से समय का प्रबंधन समय तालिका के द्वारा ही संभव होता है ।

समय सारणी के निर्माण का कार्य निश्चित ही सूझ बूझ वाला, जटिल एवं महत्त्वपूर्ण है । वस्तुत: समय सारणी निर्माण में विद्यालय की परिस्थितियाँ तथा स्थान विशेष की सीमाओं के कारण अनेक कठिनाइयाँ आती हैं । समय चक्र निर्माण कर्ता के लिए विद्यालय के संसाधन, शिक्षकों की कार्य क्षमता एवं स्थानीय परिस्थितियों का ज्ञान परम आवश्यक है । उसे बहुत

दूरदर्शी एवं विचारशील होने की भी आवश्यकता है । सामान्यत: समय-सारणी निर्माण करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए -

(1) **शिक्षा विभाग के नियम -** समय सारणी निर्माणकर्ता को शिक्षा विभाग द्वारा प्रसारित समय-सारणी सम्बन्धी नियमों का भली-भाँति अध्ययन कर लेना चाहिए । इसमें विषयवार कालांश आवंटन, शिक्षकों के स्तर के अनुसार कालांश विभाजन इत्यादि नियमों के अध्ययनोपरान्त एतदनुसार ही समय सारणी का निर्माण करना चाहिए ।

(2) **विद्यालय का प्रकार एवं स्तर -** भारत में विभिन्न प्रकार के विद्यालय संचालित हैं । प्रत्येक विद्यालय की परिस्थितियाँ एवं संसाधन अलग-अलग हैं । पाठ्येत्तर क्रियाएँ भी विभिन्न प्रकार से संचालित की जाती हैं । सरकारी विद्यालय, निजी विद्यालय एवं पब्लिक स्कूल सभी में विद्यालय व्यवस्था का स्वरूप भिन्न-भिन्न है अत: उपलब्ध संसाधनों एवं क्रियाओं के अनुरूप समय विभाग चक्र का निर्माण किया जाना आवश्यक है ।

(3) **उपलब्ध समयावधि -** विद्यालय की समयावधि को ध्यान में रखते हुए कालांशों का सुव्यवस्थित वितरण किया जाना चाहिए जिससे सभी पाठ्येत्तर क्रियाओं का उचित समावेश हो सके ।

(4) **विषय की गुरुता के आधार पर समय विभाजन -** कुछ विषय अति महत्त्वपूर्ण होते हैं और अन्य गौण होते हैं । इस आधार पर महत्वपूर्ण एवं भारी विषयों को औसत 11 (डेढ़) कालांश प्रतिदिन, सामान्य विषयों को 1 कालांश प्रतिदिन एवं गौण विषयों को कालांश प्रतिदिन के हिसाब से देना चाहिए ।

(5) **विषयों के महत्त्व एवं कठिनता के अनुसार कालांश विभाजन** - विद्यालयों में विषयों के अनुरूप कालांश वितरित किया जाना एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है । कठिन विषयों को दूसरे, तीसरे एवं छठे एवं सातवें कालांशों में पढ़ाया जाना चाहिए । सरल एवं गौण विषयों को प्रथम, चतुर्थ, पंचम एवं अन्तिम कालांशों में पढ़ाया जाना चाहिए । क्योंकि प्रथम एवं पंचम कालांश में बालक विद्यालय में एकाग्रचित नहीं हो पाता है एवं चतुर्थ एवं अष्टम कालांश में बालक थक जाता है।

(6) **शिक्षकों की कार्यक्षमता -** समय तालिका निर्माण में शिक्षकों की एवं कार्यक्षमता का ध्यान रखा जाना चाहिए । प्रत्येक शिक्षक को वही कार्य दिया जाए जिसमें उसकी एवं योग्यता हो । शिक्षक की उस कार्य के प्रति मनोवृत्ति का भी ध्यान रखा जाना चाहिए एवं सभी शिक्षकों का कार्यभार समान रखा जाना चाहिए ।

(7) **लचीलापन -** समय तालिका का निर्माण विद्यालय को सुचारू रूप से चलाने के लिए तथा विद्यालय समयावधि के अधिकाधिक सदुपयोग हेतु किया जाता है । अत: विद्यालय एवं छात्रों की आवश्यकताओं के अनुरूप इसमें कुछ परिवर्तन किए जाने की संभावना रहनी चाहिए ।

5. **विद्यालय एवं पुस्तकालय भवन सम्बन्धी प्रबंध -** विद्यालय भवन शैक्षणिक कार्यक्रमों के सफल संचालन तथा विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । विद्यालय भवन की स्थिति, पर्यावरण, अध्ययन कक्ष, क्रीड़ा-स्थल, पुस्तकालय, वाचनालय, छात्रावास, प्रयोगशालाओं आदि का बालकों के शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक विकास और शैक्षिक

उपलब्धि पर काफी प्रभाव पडता है । सुनियोजित विद्यालय भवन एक अनिवार्य आवश्यकता है। इस स्थिति को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि विद्यालय भवन की स्थिति कैसी हो?

विद्यालय भवन की स्थिति (Situation of School Building)

विद्यालय भवन हेतु जगह का चयन करते समय निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण तथ्यों का ध्यान रखना चाहिए -

(1) विद्यालय भवन. आबादी क्षेत्र से अधिक दूर नहीं होना चाहिए ।

(2) विद्यालय के पास पर्याप्त भूमि रखनी चाहिए जिससे वहाँ पर क्रीड़ा-मैदान, भवन निर्माण, बागवानी, आवासीय व्यवस्था आदि किया जा सके ।

(3) विद्यालय सिनेमाघरों, बस स्टेशन, रेलवे स्टेशन, कारखाने इत्यादि के नजदीक नहीं होना चाहिए ।

(4) विद्यालय भवन ऐसी जगह बनाया जाना चाहिए जहाँ पर पर्याप्त मात्रा में पीने का पानी, शुद्ध वायु एवं प्रकाश उपलब्ध हो सके ।

(5) विद्यालय भवन सामान्यत: ऊँचाई वाले स्थान पर होना चाहिए जिससे आसपास बारिश का पानी नहीं भरा रहे ।

(6) विद्यालय भवन का निर्माण करने से पूर्व इसकी डिजायन (Design) बनाना आवश्यक है । सभा भवन, पुस्तकालय, प्रयोगशालाएँ, अध्यापक कक्ष, प्रसाधन, जलपान गृह, साइकिल स्टैण्ड तथा विभिन्न कक्षाएँ होंगी आदि का निर्णय पूर्व में ही कर लिया जाना चाहिए ।

(7) वृक्षारोपण कर तथा बाग लगाकर विद्यालय परिसर में आकर्षित वातावरण बनाने की संभावना होनी चाहिए ।

विद्यालय भवन के प्रकार (Types of School Buildings)

विद्यालय भवनों को विकसित करने हेतु दो प्रकार की योजनाएँ ज्यादा प्रचलित हैं जो निम्नलिखित हैं -

(1) खुली हुई योजनाएँ (Open Planning) - इस योजना के अन्तर्गत E,H,I,T,L,U तथा Y आकार के भवन निर्मित किए जाते हैं ।

(2) बन्द योजनाएँ (Close Planning) - यह योजना तीन प्रकार की होती हैं -

अ- ठोस आयत (Solid Rectangle) - इसमें भवन ठोस आयत के आकार में बनाया जाता है ।

ब- शून्य आयत (Hollow Rectangle) - इस तरह की योजना के बीच में खाली जगह रहती है और चारों तरफ कमरे आदि बने हुए होते हैं ।

स- आयत (Rectangle) की तरह - इस तरह की योजना के अन्तर्गत मध्य में हॉल (Hall) तथा अन्य आवश्यक कमरों का निर्माण किया जाता है और चारों तरफ विद्यार्थियों के कमरे बनाए जाते हैं ।

विद्यालय पुस्तकालय (School Library). - विद्यालय में बौद्धिक तथा साहित्यिक ज्ञान वृद्धि के लिए पुस्तकालय का विशेष महत्त्व है । जॉन डीवी ने इसे "विद्यालय की आत्मा" (Soul of School) कहा है । विद्यालय में पुस्तकालय का होना अत्यावश्यक है और यह

विद्यालय का महत्त्वपूर्ण अंग है । केवल पाठ्य पुस्तक से विद्यार्थी ज्ञानार्जन नहीं कर सकता है और अध्यापक केवल पाठ्य पुस्तकों से आदर्श अध्यापन नहीं करा सकता है । अत: दोनों के लिए पुस्तकालय उपयोगी है ।

पुस्तकालय के अन्दर विषयवार, लेखकवार तथा पुस्तकवार वर्गीकृत केटलॉग रखा जाना चाहिए । पुस्तकों के प्रदर्शन हेतु सुदृढ़ सुरक्षित काँच लगी आलमारी होनी चाहिए । खुली आलमारी की व्यवस्था भी की जा सकती है । विद्यार्थियों को अपने लिए आवश्यक पुस्तक खुली आलमारी से लेकर पुस्तकालय में बैठकर अध्ययन की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए । पुस्तकों को यथास्थान रखने का प्रशिक्षण भी छात्रों को दिया जाना चाहिए ।

पुस्तकालय में वाचनालय भी होना चाहिए । वाचनालय का आकार पर्याप्त होना चाहिए । इसमें बड़ी-बड़ी मेजों के साथ कुर्सियों की व्यवस्था होनी चाहिए । मेज़ों पर नवीनतम पत्रिकाएँ, मैग्जीन आदि रखी जाए । वाचनालय की दीवारों पर पुस्तकालय सम्बन्धी निर्देश पट्टिकाएँ, महापुरुषों के उद्धरण, चित्र, चार्ट, मानचित्र आदि प्रदर्शित किए जा सकते हैं । वाचनालय के अन्दर पुष्पदान एवं बाहर हरे-भरे गमले रखे जा सकते हैं जो अच्छा वातावरण देने में सहायक हो सकें ।

पुरानी पत्र-पत्रिकाओं को एकत्रित करने के लिए एक स्टोर होना चाहिए तथा पुस्तकालयाध्यक्ष के लिए एक कमरा होना चाहिए ।

6. छात्रावास, प्रयोगशाला एवं खेल के मैदान सम्बन्धी प्रबंध

(1) **छात्रावास-** प्राचीन काल में छात्र नगर से दूर शान्त एवं अनुकूल वातावरण में गुरु के साथ आश्रम में रहते थे । फलत: बच्चों का सर्वांगीण विकास गुरु की देखरेख में होता था । आधुनिक युग में शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति छात्रावास द्वारा करने का प्रयत्न किया जाता है । वहाँ उनकी देखभाल के लिए एक अध्यापक जिसे छात्रावास अधीक्षक कहते हैं छात्रावास में ही निवास करता है। विद्यार्थियों में सामूहिक जीवन एवं नागरिक गुणों का विकास छात्रावास द्वारा ही संभव है । परिवार के संकीर्ण एवं संकुचित दायरे से परे हटकर छात्रावासों में विस्तृत एवं विशुद्ध वातावरण प्राप्त होता है ।

छात्रावास में अनुशासन बनाए रखने के लिए छात्रावास अधीक्षक कुछ नियम बना लेता है जो शान्त वातावरण बनाने में सहायक हो सकें । नियमों का उल्लंघन करने वाले छात्रों को दण्ड दिया जाना चाहिए ।

(2) **प्रयोगशाला -** विज्ञान का शिक्षण और अध्ययन केवल पुस्तकों से ही संभव नहीं हो पाता है । विज्ञान शिक्षण में प्रयोगशाला अपना एक विशेष महत्त्व रखती है क्योंकि प्रयोग एवं परीक्षण विज्ञान के अभिन्न अंग हैं । अध्यापकों द्वारा प्रयोग प्रदर्शन तथा शिक्षार्थियों द्वारा निरीक्षण, परीक्षण और प्रयोग किए जाने के लिए उपकरणों की आवश्यकता होती है । इन उपकरणों को व्यवस्थित रूप से रखने के लिए और प्रयोग किए जाने के लिए सुविधाजनक स्थान का नाम ही प्रयोगशाला है । विज्ञान के अतिरिक्त प्रयोगशाला किसी भी प्रायोगिक विषय जैसे कृषि विज्ञान, गृह विज्ञान आदि की भी हो सकती है । प्रयोगशाला के माध्यम से विद्यार्थी स्वयं के अनुभवों के आधार पर विषय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । प्रयोगशाला की निम्नांकित विशेषताएँ हैं-

1. उपकरणों को सुरक्षित रखा जाता है ।
2. उपकरण एवं अन्य सामान उचित विभाजन एवं क्रमानुसार रखा जाता है ।
3. प्रयोगशाला विद्यार्थियों में जिज्ञासा उत्पन्न करके अध्ययन हेतु उपयुक्त वातावरण निर्माण में सहायक होती है ।
4. सामूहिक रूप से कार्य किए जाने के कारण विद्यार्थियों में सामाजिक वातावरण उत्पन्न करती है ।
5. आत्म विश्वास, अनुशासन के साथ-साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करती है ।

प्रयोगशाला में पर्याप्त संख्या में खिड़कियाँ एवं रोशनदान बनाए जाने चाहिए जिससे प्रकाश एवं वायु का आवागमन भली-भाँति हो सके । खिड़कियों में काले पर्दे लगाए जा सकते हैं जिनके द्वारा आवश्यकता पड़ने पर पर्याप्त अँधेरे की व्यवस्था की जा सके । प्रयोगशाला सम्बन्धी अन्य बातें निम्नांकित हैं -

1. खिड़कियाँ फर्श से 4 फुट ऊँची तथा बाहर की ओर खुलने वाली होनी, चाहिए तथा यह काँच की होनी चाहिए ।
2. विद्यार्थियों के बैठने के लिए ऊँचे स्टूल होने चाहिए ।
3. प्रयोगशाला की छत पर पानी की टंकी का प्रबंध होना चाहिए ।
4. प्रयोगशाला से रासायनिक पदार्थों की गन्ध को बाहर निकालने के लिए एक्जास्ट फैन तथा फ्यूजहुड की व्यवस्था की जानी चाहिए ।
5. प्रयोगशाला का फर्श मजबूत तथा उनमें अदृश्य नालियाँ बनाई जानी चाहिए ।

प्रयोगशाला में कीमती तथा साधारण सभी प्रकार की वस्तुएँ होती हैं । उनकी सुरक्षा करना अध्यापक, प्रयोगशाला सहायक तथा छात्र तीनों का ही दायित्व है ।

(3) खेल का मैदान

विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए खेलों का स्थान पाठ्य सहगामी क्रियाओं में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । खेलों के लिए खेल के मैदान का होना बहुत आवश्यक है । बालकों के बौद्धिक विकास के लिए जहाँ पुस्तकीय ज्ञान देना आवश्यक है वहीं उनका व्यावहारिक ज्ञान तथा सामाजिक कार्य कुशलता में निपुणता प्राप्त करने के लिए खेलकूद तथा पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन विद्यालयों में किया जाना आवश्यक है । इसके लिए खेल-मैदानों की आवश्यकता है जहाँ पर कि छात्र शारीरिक, व्यावहारिक गुणों का विकास कर पाते हैं । खेल मैदानों की साज-सज्जा के संदर्भ में निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए-

1. खेल के मैदान की लम्बाई, चौड़ाई अन्तर्राष्ट्रीय मानक (Norms) के अनुसार होनी चाहिए ।
2. जिन मैदानों में घास की आवश्यकता होती है उनकी देखभाल समय पर होती रहनी चाहिए।
3 मैदानों की लाइनिंग चमकीली एवं स्पष्ट होनी चाहिए ।
3. मैदान में कंकड़, पत्थर नहीं होने चाहिए ।
4. मैदानों की घास की कटाई ठीक प्रकार से होनी चाहिए ।
5. लॉन टेनिस का फर्श साफ होना चाहिए ।

6. यदि खेल का मैदान किसी विद्यालय में नहीं हो तो छात्रों को सार्वजनिक मैदानों में खेल के लिए लाया जा सकता है ।

7. **अनुशासन सम्बन्धी प्रबंध** - अनुशासन एवं विद्यार्थी व्यवहार सदैव विद्यालय अथवा शिक्षा से संबंधित शिक्षकों एवं प्रशासकों के चिन्तन का विषय रहा है । यह एक सार्वभौमिक समस्या है । छात्र आक्रोश प्रशान्त ज्वालामुखी के लावा की भाँति फूट पड़ता है जिससे समग्र विद्यालय व्यवस्था, शैक्षिक पर्यावरण, शिक्षक-विद्यार्थी, प्रशासक-विद्यार्थी सम्बन्धों में दरार पड़ जाती है और सन्देह की स्थिति समस्त विद्यालय पर्यावरण में परिलक्षित होने लगती है ।

विद्यालय अनुशासन का अर्थ विद्यालय के नियमों के अनुरूप आचरण से लिया जाता है । यह आचरण किसी भी समाज की उसकी सांस्कृतिक प्रणाली से सम्बद्ध होता है । इस प्रकार विद्यालय में विद्यार्थियों से अपेक्षित व्यवहार उस समाज की अपेक्षित व्यवहार प्रणाली से प्रभावित होते हैं ।

विद्यालय में ऐसे अनेक कारण पैदा हो सकते हैं जिनकी वजह से विद्यालय में अनुशासनहीनता की समस्या उत्पन्न होती है जैसे- विद्यार्थियों में असंतोष की भावना, अध्ययन में रुचि का अभाव, विद्यालयों में बढ़ती छात्र संख्या, दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली, शिक्षकों में नेतृत्व का अभाव, बढ़ती आर्थिक कठिनाइयाँ, आदर्शवादिता का अभाव, अहं को ठेस इत्यादि । इनमें से अनुशासनहीनता का कोई भी कारण रहा हो आवश्यकता इस समस्या के समाधान की होती है । यही समाधान विद्यालय प्रबंध में अनुशासन सम्बन्धी प्रबन्ध है ।

कमिंग्स (1980) जापानी विद्यालयों की कार्यप्रणाली के निरीक्षण के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि प्रत्येक कक्षा के कुछ नियम बना दिए जाएं तथा छात्रों को छोटे-छोटे समूहों में विभक्त कर प्रत्येक शिक्षक के नियंत्रण एवं मार्गदर्शन में रखा जाए तो घोषित नियमों की नियमित अनुपालना के प्रति निष्ठा बढ़ती है । उनमें नियमित आदतों के साथ-साथ अच्छे संस्कार बनते हैं जिससे अनुशासनहीनता को बहुत कुछ समाप्त कर परस्पर शिक्षक-शिक्षार्थी सहयोग को बढ़ाया जा सकता है ।

यदि अध्यापक को प्रभावी शिक्षक के रूप में तैयार किया जाए तो विद्यालय अनुशासन की समस्या का समाधान खोजा जा सकता है ।

विद्यालयों में छात्रों को उचित पुरस्कार एवं दण्ड देकर अनुशासन बनाया जा सकता है । अच्छे कार्य करने वाले छात्रों को पुरस्कृत किया जाता है वहाँ दोषपूर्ण कार्यों के लिए दण्ड भी दिया जाता है । दण्ड के भय से छात्र अनुशासनहीनता का कार्य नहीं करेंगे और पुरस्कार की चाह में अच्छे कार्य करने के लिए अभिप्रेरित होंगे ।

अनुशासन बनाए रखने हेतु शिक्षक द्वारा निष्ठा के साथ पाठ तैयार करना एवं शिक्षण करना चाहिए । यह शिक्षण छात्र केन्द्रित शिक्षण विधियों के माध्यम से करना चाहिए । ये विधियाँ छात्रों को पाठ के विकास में सम्मिलित ही नहीं करती अपितु उनकी भागीदारी भी आमंत्रित करती है । जिससे गुरु और छात्र के बीच निकटता आती है । परिणामस्वरूप यह समस्या स्वत: दूर हो जाती है ।

विद्यालय में प्रधानाध्यापक द्वारा शिक्षक व छात्रों के सहयोग से नीति निर्माण करके, शिक्षकों के साथ सहयोग की भावना से कार्य करके, श्रेष्ठ परम्पराओं की स्थापना करके, पाठ्य

एवं पाठ्य सहगामी गतिविधियों का प्रभावी संचालन करके, विद्यालय के उपलब्ध मानवीय एवं भौतिक संसाधनों को प्रभावी ढंग से नियोजित करके अनुशासन बनाया जा सकता है ।

विद्यालय के प्रत्येक कार्यक्रम में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में शिक्षक ही उत्तरदायी होता है । शिक्षक पाठ्यक्रम की अच्छी तैयारी कर प्रभावी शिक्षण कर विद्यार्थियों की व्यक्तिगत समस्याओं पर उचित ध्यान देकर छात्रों में स्वतंत्र अभिव्यक्ति, सहयोग, सहकार, समूह भावना, व्यक्तिगत सम्मान, मानवीय मूल्य इत्यादि विकसित कर अनुशासन की समस्या हल की जा सकती है ।

8. **विद्यालय तथा समुदाय सम्बन्धों सम्बन्धी प्रबन्ध -** विद्यालय तथा समुदाय के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध होता है । ये दोनों अपनी-अपनी उन्नति के लिए एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं । समुदाय की उन्नति विद्यालय द्वारा ही संभव है और विद्यालय की उन्नति समुदाय द्वारा ही संभव है । प्रत्येक समुदाय अपनी-अपनी राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं एवं आदर्शों की पूर्ति के लिए विद्यालयों का निर्माण करता है और विद्यालय भी अपनी क्रियाओं के द्वारा समुदाय को संचालित करता है ।

जहाँ एक ओर समुदाय के आदर्शों, आवश्यकताओं, मनोवृत्तियों तथा आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का विद्यालय पर गहरा प्रभाव पड़ता है । वहाँ दूसरी ओर विद्यालय भी समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करता है । समस्याओं का समाधान करता है, संस्कृति की रक्षा करता है रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाता है व्यावसायिक तथा औद्योगिक प्रगति में सहयोग प्रदान करता है । समुदाय अपने आदर्शों, आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए विद्यालय का निर्माण करता है और विद्यालय भो अपनी योजनाओं और कार्यक्रमों के द्वारा समुदाय के विकास में पूर्ण सहयोग प्रदान करता है । इसलिए ये दोनों ही अपनी-अपनी उन्नति के लिए एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं । ऐसी दशा में इन दोनों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध बनाए रखने की आवश्यकता है । इस हेतु विद्यालय प्रबन्ध एवं समुदाय को जागरूक एवं सक्रिय रहने की आवश्यकता है ।

विद्यालय को समुदाय के साथ सम्बन्ध बनाए रखने एवं उसमें अभिवृद्धि करने हेतु विद्यालय प्रबंध को सामाजिक स्थानों पर जाना, समुदाय के मेलों तथा उत्सवों में सम्मिलित होना, सामाजिक सेवा की योजनाएँ बनाना, सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था करना, गोष्ठियों का आयोजन करना, समाज सुधारकों के भाषण करवाना, विद्यालय तथा अभिभावकों में सहयोग की भावना स्थापित करना, ऐतिहासिक स्थान एवं भवनों को बालकों एवं अभिभावकों को बताना इत्यादि कार्यों के फलस्वरूप विद्यालय एवं समुदाय के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध बनाए रखने हेतु विद्यालय प्रबन्ध को प्रयासरत रहना चाहिए ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1 विद्यालय प्रबंध के प्रमुख क्षेत्र कौन-कौन से हो सकते हैं ?

2 विद्यालय प्रबंध द्वारा मानवीय एवं भौतिक संसाधनो सम्बन्धी प्रबन्ध किस प्रकार किया जा सकता है ?

3	प्रधानाध्यापक के रूप में आप समय-सारणी सम्बन्धी प्रबंध किस प्रकार करेंगे ? बताइए ।
4	विद्यालय और समुदाय के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध बनाने में विद्यालय प्रबंध की भूमिका बताइए ।

18.5 सारांश (Summary)

मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र एवं कार्यकलाप में प्रबंध की भूमिका दृष्टिगोचर होती है । विद्यालय की प्रत्येक गतिविधि प्रबन्ध की सहायता से ही सफलता के शिखर पर पहुँचती है और उसी के परिणामस्वरूप विद्यालय का उत्पाद (Product) सम्पूर्ण विश्व को संचालित करता है । जिस प्रकार मानव जीवन का प्रत्येक कार्य सोद्देश्य होता है उसी प्रकार विद्यालय एवं प्रबंध के भी उद्देश्य होते हैं जैसे छात्रों का सर्वांगीण विकास करना, छात्रों को सीखने के अवसर उपलब्ध करवाना, संसाधनों का अधिकतम उपयोग करना, बजट बनाना, समय का प्रबंध करना, सहजीवन की कला सीखाना, सहयोग की भावना का विकास करना, शैक्षिक नवाचार लाना, विद्यालय समन्वयन हेतु योजना तैयार करना इत्यादि । विद्यालय प्रबंध के कुछ मुख्य कार्य होते हैं और उन कार्यों को करने के पश्चात् पूर्वोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है । इन कार्यों में मुख्य रूप से नियोजन, संगठन, समन्वयन, नियुक्ति, निर्देशन, नियंत्रण, बजट निर्माण, अभिप्रेरणा, सम्प्रेषण, एकीकरण, नवाचार, निर्णय एवं मूल्यांकन इत्यादि हैं । मुख्य रूप से विद्यालय प्रबन्धन मानवीय एवं भौतिक संसाधनों, वित्तीय संसाधनों, समय-सारणी विद्यालय एवं पुस्तकालय भवन, छात्रावास, प्रयोगशाला, खेल के मैदान, अनुशासन तथा विद्यालय तथा समुदाय सम्बन्धों के क्षेत्र में किया जा सकता है ।

अभ्यास प्रश्न (Exercises)

1. विद्यालय प्रबन्ध के सम्प्रत्यय एवं उद्देश्य स्पष्ट करते हुए इसके कार्यों की सोदाहरण व्याख्या करिए ।
1. विद्यालय प्रबन्ध के क्षेत्र पर एक समालोचनात्मक निबन्ध लिखिए ।

18.6 संदर्भ (References)

1. अग्रवाल, जे. सी. (2006), स्कूल प्रबंध, सूचना तथा सम्प्रेषण तकनीकी विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।
2. Ediger, Majlow & Rao,D,Bnaskara (2003),Improving School Administration, Discovery Publishing House, New Delhi.0
3. Goel, S.L. (2001),Management Techniques : Principal and Practices,Deep & Deep Pubications Pvt. Ltd.,New Delhi.
4. John D.Millet (1954),Management in Public Service, McGraw Hill Company,New York.

5. ओड़, लक्ष्मी लाल (2005), शैक्षिक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
6. राजपूत, जे. एस. एवं देवल, ओंकार सिंह (2001), विद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में अनुभव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली
7. शर्मा, देवदत्त (1991), शैक्षिक प्रबंध के मूल तत्त्व, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
8. सिडाना, अशोक एवं शर्मा, अंजलि (2005), शैक्षिक प्रबंधन एवं विद्यालय संगठन, शिक्षा प्रकाशन, जयपुर
9. सिंह, डी. पी. प्रभा, वाजपेयी एवं अन्य (2001), विद्यालय प्रबन्ध एवं शिक्षा की समस्याएँ,रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर
10. सिंह, एच. पी. एवं रावत, आर. के. एवं अन्य (2007), शैक्षिक तकनीकी को आवश्यकताएँ, प्रबन्ध, क्रियात्मक अनुसंधान एवं स्वास्थ्य विभाग, राधा प्रकाशन मन्दिर, आगरा
11. S.K. Bhatia & Nirmal Singh (2000). Principles and Techniques of Personal Management/Human Resource Management.Deep & Deep Publications, New Delhi.
12. सुखिया, एस. पी. (2005), विद्यालय प्रशासन एवं संगठन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
13. तरुण, हरिवंश (2005), विद्यालय प्रबंध एवं स्वास्थ्य शिक्षा, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
14. त्यागी, ओ एस. एवं सिंह बिजेन्द्र (2006) - शैक्षिक प्रबंध एवं विद्यालय संगठन, अरिहन्त शिक्षा प्रकाशन, जयपुर
15. वर्मा, जे. पी. एवं वर्मा, मंजू (2002), विद्यालय प्रबंधन, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
16. वर्मा, जे. पी. (2002), शैक्षिक प्रबंधन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
17. वर्मा, जी.एस (2005), शैक्षिक प्रबंध, लायल बुक डिपो, मेरठ
18. Venktaish,(2001) Management Education,Anmol Publication Pvt. Ltd.,New Delhi.

इकाई 19

शिक्षा में वित्तीय प्रबन्धन

(Financial Management in Education)

इकाई की संरचना

19.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

19.1 प्रस्तावना (Introduction)

19.2 शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन का अर्थ / अवधारणा (Meaning/concept of Financial Management in Education)

19.3 शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन की आवश्यकता (Need for Educational Financial Management)

19.4 शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन के क्षेत्र (Scope of Education Financial Management)

19.5 शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन के सिद्धान्त (Principles of Financial Management in Education)

19.6 शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन के महत्त्वपूर्ण पहलू (Important aspects of Educational Financial Management)

19.6.1 बजट (Budget)

19.6.2 शिक्षा निवेश (Education Investment)

19.6.3 शिक्षा लागत (Education Cost)

19.7 सारांश (Summary)

19.8 संदर्भ (References)

19.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई में आप शिक्षा ने वित्तीय प्रबन्धन के बारे में पढ़ेंगे । वित्तीय प्रबन्धन शैक्षिक क्रियाओं के संचालन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है ।

इस इकाई के पढ़ने के बाद आप -

1. शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन की अवधारणा एवं अर्थ को समझ सकेंगे ।
2. शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन के क्षेत्रों के बारे में जान लेंगे ।
3. शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन के सिद्धान्तों के बारे में समझ सकेंगे ।
4. शिक्षा बजट की अवधारणा, परिभाषा एवं महत्त्व को जान सकेंगे ।
5. शिक्षा निवेश के बारे में समझ सकेंगे ।
6. शिक्षा लागत के बारे में जान सकेंगे ।

19.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा में सफलता प्राप्त करने के लिए वित्त की समुचित व्यवस्था आवश्यक है । वित्त संगठनों की कार्यकुशलता व सफलता का मापक माना जाता है । साधारण शैक्षिक संगठनों के वित्त व्यवस्था करना सरल होता है क्योंकि इनका स्वरूप व्यक्तिगत होता है और आवश्यकता सीमित होती है । जैसे-जैसे शैक्षिक संगठनों का स्वरूप व्यक्तिगत से अव्यक्तिगत हो जाता है उसी प्रकार वित्तीय प्रबन्धन की प्रक्रिया जटिल हो जाती है ।

प्रशासक का कोई भी कार्य वित्त के अभाव में पूरा होना संभव नहीं है । प्रशासक की नीतियाँ तथा योजना तब तक लागू नहीं की जा सकती हैं जब तक उनका क्रियान्वयन करने के लिए आवश्यक वित्त उपलब्ध न हो । अत: वित्त को चालक शक्ति भी कहा जाता है । जिस प्रकार कार बिना पेट्रोल के नहीं चल सकती उसी प्रकार कोई शैक्षिक क्रिया बिना वित्त के कार्य नहीं कर सकती । शिक्षा प्रशासन में भी वित्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है ।

वित्त शिक्षा का जीवन रक्त है । प्रत्येक संस्था की स्थापना से लेकर संचालन में वित्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । इस कारण प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. मार्शल ने कहा है- पूँजी वह धूरी है जिसके चारों ओर आर्थिक क्रियाएँ चक्कर लगाती हैं । वास्तव में वित्त प्रत्येक शिक्षा संस्थान की जीवन धारा है । किसी संस्था को सफलतापूर्वक तभी चलाया जा सकता है जब उसके लिए पर्याप्त रूप से वित्त व्यवस्था उपलब्ध करवाई गई है, बिना वित्तीय प्रबन्धन के शिक्षा का संचालन, संवर्द्धन एवं विकास की कल्पना करना कठिन है ।

19.2 शिक्षा वित्तीय प्रबन्धन का अर्थ/अवधारणा (Meaning/Concept of Financial Management in Education)

वित्त सभी शैक्षिक प्रवृत्तियों के विकास का आधार है । देश की शिक्षा तथा स्वास्थ्य पर पहले वित्त का उपयोग किया जाता है जिससे देश भविष्य में अधिक स्वस्थ एवं सम्पन्न हो । अत: किसी भी देश के समाज का विकास व आर्थिक सम्पन्नता के लिए शिक्षा पर अधिकाधिक निवेश किया जाना चाहिए । वित्त एक व्यापक शब्द है और इसमें वे सभी कार्य सम्मिलित हैं जिसका शिक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन एकत्रित करने तथा उसका समुचित उपयोग करने से है । वित्त शब्द का विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग अर्थ लगाया है । वस्तुत: समय और परिस्थितियों में आने के साथ-साथ वित्त की अवधारणा बदलती रही ।

वित्तीय प्रबन्धन, प्रबन्धन का महत्वपूर्ण कार्य क्षेत्र है जिसमें शिक्षा के वित्त सम्बन्धी सभी दायित्वों का निर्वाह शिक्षा के अन्य क्षेत्रों के सहयोग से किया जाता है । वित्तीय प्रबन्धन का सामान्य अर्थ वित्तीय आयोजन, वित्त संकलन, सम्पत्ति प्रशासन तथा वित्त से संबंधित विविध पक्षों पर निर्णय करने तथा वित्तीय नीति का निर्धारण करने से संबंधित समस्त क्रियाओं का समुचित व्यवस्थापन करना है ।

शिक्षा के विभिन्न विभाग शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति में सक्रिय देते हैं किन्तु वित्तीय विभाग निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न विभागों को निर्देश देता है तथा उनकी

क्रियाओं पर नियंत्रण करता है । वित्तीय प्रबन्धन वित्त कार्य से जुड़ी हुई प्रबन्धन की एक शाखा है । बिना वित्त के कोई भी शैक्षिक क्रिया संभव नहीं है ।

हावर्ड तथा उपटन के अनुसार "वित्तीय प्रबन्धन, वित्तीय नियोजन तथा नियंत्रण कार्य को वित्तीय कार्य पर लागू करना है ।"

वेस्टन एवं ब्राइम के अनुसार, "वित्तीय प्रबन्धन, वित्तीय निर्णय लेने की वह क्रिया है जो व्यक्तिगत उद्देश्यों और संगठन के लक्ष्यों में समन्वय स्थापित करती है ।"

इजरा सोलोमन के शब्दों में, "वित्तीय प्रबन्ध का तात्पर्य एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक स्रोत अर्थात् पूँजी कोष (Capital fund) के कुशलतम उपयोग से है ।"

जोसेफ एफ ब्रेडल के अनुसार, "वित्तीय प्रबन्धन, प्रबन्धन का वह क्षेत्र है जिसका संबंध वित्त का विवेकपूर्ण उपयोग एवं वित्तीय स्रोत के सतर्कतापूर्ण चयन से है जिसका उद्देश्यों की पूर्ति की दिशा में निर्देशित किया जा सके ।"

जोसेफ एल मैसी के शब्दों में, "वित्तीय प्रबन्धन संगठन की संचालनात्मक प्रक्रिया है जो संगठन के कुशलतापूर्वक संचालन के लिए आवश्यक वित्त की प्राप्ति तथा उसके प्रभावशाली उपयोग के लिए उत्तरदायी होती है ।"

इन सभी वित्तीय प्रबन्धन की परिभाषाओं से निष्कर्ष निकलता है कि शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन एक विशिष्ट क्रिया है जो शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन का एक भाग है, जिसमें शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक मात्रा में वित्त उपलब्ध कराना तथा इसमें वित्तीय आयोजन, वित्तीय नियंत्रण सभी कुछ अन्तर्निहित है ।

19.3 शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन की आवश्यकता (Need for Educational Financial Management)

शिक्षा की सभी गतिविधियाँ वित्तीय प्रबन्धन से प्रभावित होती हैं । इसका कोई भी निर्णय शैक्षिक प्रबन्धन के सभी विभागों को प्रभावित करता है । शैक्षिक वित्त प्रबन्ध संगठन के हितों के साथ-साथ संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होता है ।

1. **शिक्षा का विकास (Development of Education)** - शिक्षा का विकास संख्यात्मक तथा गुणात्मक किया जाता है । जनसंख्या का विस्फोट हो रहा है जिस गति से जनसंख्या बढ़ रही है उस गति से विद्यालय, महाविद्यालय, तकनीकी संस्थाएँ खोलने की आवश्यकता है, संविधान की धारा 45 अनिवार्य, निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा लागू करना, माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण करना, जनसंख्या के आधार पर विश्वविद्यालय खोलना, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का विकास करना, शिक्षा में नए आयाम प्रदान करना, जनता को साक्षर करना, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना, इसके गुणात्मक सुधार के लिए स्टाफ को उचित स्तर का प्रशिक्षण प्रदान करना, शोध करना, ढाँचागत सुविधाएँ प्रदान करना । उक्त सभी कार्यों को पूरा करने के लिए वित्त प्रबन्धन की आवश्यकता होती है ।

2. **देश के आर्थिक विकास के लिए (Economic Development of a Country)-** आर्थिक विकास से तात्पर्य देश की राष्ट्रीय आय, उत्पादन की मात्रा तथा सेवाओं के परिमाण में उत्तरोत्तर वृद्धि करने से है । आर्थिक विकास में प्राकृतिक तथा मानवीय संसाधन अधिक महत्वपूर्ण है । मानवीय साधन, साधन ही नहीं साध्य भी हैं । जितना योग्य मानवीय साधन होगा उतना ही अधिक आर्थिक विकास सम्भव होगा इसके मानवीय संसाधनों की क्षमता, योग्यता, निपुणता को बढ़ाना आवश्यक होगा । मानव की इन शक्तियों को बढ़ाने का कार्य, शिक्षा ही कर सकती है । इसलिये शिक्षा द्वारा आर्थिक विकास सम्भव है । आर्थिक विकास मानवीय कार्य कुशलता पर निर्भर करता है जो शिक्षा द्वारा वृद्धि की जा सकती है । ज्ञान समाज (Knowledge Society) आ रहा है इसलिये ज्ञान इण्टरप्राइजेज (Knowledge Enterprises) पर व्यय करना पड़ता है ।

3. **असमानताओं को दूर करने के लिए (To Remove Inequality)** - सामाजिक न्याय का विकास करने के लिए शिक्षा के अवसरों में समानता की स्थापना की जानी चाहिए । प्राथमिक एवं वयस्क शिक्षा पर अधिक बल, पिछड़े हुए वर्गों को शिक्षा प्राप्त करने में सहायता देने के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करना, जनजातियों के बच्चों के लिए आवास, आश्रम विद्यालयों की स्थापना, ग्रामीण क्षेत्रों में, नगरों की गन्दी बस्तियों के विद्यालय में सुधार, जीवन में समय से पहले प्रवेश करने वाले व्यक्तियों को उन्नति करने में सहायता देने के लिए अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए वित्त प्रबन्धन आवश्यक है ।

4. **देश की विविधता बनाए रखने के लिए (To Maintain Diversity in Country)** - देश में विभिन्न भाषाओं, जातियों, संस्कृतियों, परम्पराएँ, रहन-सहन, धर्मो आदि इन सबका सह विकास करने के लिए तथा इसमें विविधता बनाये रखने के लिए वित्त प्रबन्धन की आवश्यकता है ।

5. प्रशासकों तथा योजनाकारों को गुणात्मकता (Qualities of Administrators and Planners)

- शिक्षा का केन्द्र बिन्दु प्रशासक तथा योजनाकार होता है । प्रशासक उच्च आदर्शों से युक्त सही निर्णयकार, सही योजनाकार होने पर ही शिक्षा का विकास सम्भव है । सबको करने के लिए प्रशासकों, योजनाकारों का प्रशिक्षण तथा विकास करने के लिये सही प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना करना तथा उनका विकास करना आवश्यक है यह सब वित्त प्रबन्धन द्वारा ही संभव है।

6. **असंज्ञानात्मक उपलब्धियां (Non Cognative Outcomes) -** छात्रों तथा अध्यापकों में ईमानदारी, कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व, मूल्यांकन, आत्मविश्वास, समायोजन, नैतिकता, सहयोग, चरित्र, विवेक, संयम, आत्मविश्वास, आत्म नियंत्रण, राष्ट्रीय भावना, राष्ट्र के प्रति समर्पण का विकास तभी संभव है जब शिक्षा में इनके विकास के लिए विशेष कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए तथा इसके लिए वित्त प्रबन्धन की आवश्यकता होगी ।

7. **शिक्षा स्थायित्व के लिए (For Educational Stability) -** शिक्षा व्यवस्था में स्थायित्व होना चाहिए । सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तनों के उतार-चढ़ाव द्वारा वह झझेंरित नहीं

है । शिक्षा में विभिन्न प्रायोजनाओं को लागू करने से पूर्व उनकी जाँच कर लेना आवश्यक है उसके बाद शिक्षण व्यवस्था में लागू किया जाए । इससे शिक्षण में निरन्तरता बनी रहेगी तथा शिक्षा में स्थायित्व मिलेगा इन सबके लिए वित्त की आवश्यकता रहेगी । इसके लिए वित्त प्रबन्धन आवश्यक है ।

8. **लक्ष्य प्राप्ति में सहायक (Helpful in Target Achievements)** - वित्तीय प्रबन्धन शिक्षा के लक्ष्य प्राप्ति में सहायक है । वित्तीय प्रबन्धन, वित्तीय नियोजन तथा वित्तीय निर्णयों के द्वारा ही शिक्षा लक्ष्यों की प्राप्ति संभव है । बिना इसके लक्ष्य प्राप्ति संभव नहीं है ।

9. **शिक्षा की सफलता का आधार (Basis of Success of Education)** - किसी कार्य की सफलता के लिए सुदृढ़ वित्तीय प्रबन्धन आवश्यक होता है । यदि वित्तीय प्रबन्धन की कमी होती है तो यह कहा जा सकता है कि प्रबन्धन ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर रहा है । इसके बिना सम्पूर्ण संगठन की सफलता तथा अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है । संगठन के सभी कार्य योजना, कर्मचारी प्रशासन, शोध आदि वित्त प्रबन्धन पर निर्भर करते हैं । आजकल वित्त प्रबन्धन केवल वित्त का उपयोग करना ही नहीं रह गया । यह सम्पूर्ण संगठन की सफलता का एक अंग बन गया है ।

10. **साधनों का अधिकतम उपयोग (Maximum Utilization of Resources)** - वित्तीय प्रबन्धन किसी भी शैक्षिक संगठन में कोषों के अनुकूलतम आवंटन तथा अनुकूलतम पर बल देता है । वित्तीय प्रबन्धन के अभाव में उपलब्ध कोष गैर प्राथमिक कार्यो में लग जाते हैं जिससे लाभकारी कार्य रूक जाते हैं । वित्तीय प्रबन्धन के द्वारा विभिन्न साधनों का कक्षाकक्षा, खेल के मैदान, अध्यापक कौशल का अधिकतम उपयोग करना सम्भव होता है । वित्त के द्वारा संगठन में प्रशिक्षण, निर्देशन तथा अन्य सुविधाएँ उपलब्ध करके मानवीय क्षमता का अधिक उपयोग किया जा सकता है ।

11. **अस्तित्व की रक्षा एवं विकास (Conservation and Development)** - वित्तीय प्रबन्धन के अभाव में सुदृढ़ संगठन भी समाप्त हो जाते हैं । संगठन समाप्त होने का मूल कारण दोषपूर्ण वित्तीय प्रबन्धन ही है । वित्त प्रबन्धन के द्वारा विकास और विस्तार की योजना बनाकर संगठन को सुरक्षित रखा जा सकता है । वास्तव में वित्तीय प्रबन्धन संगठन के अस्तित्व व विभाजन का बीमा है ।

12. **अनियमिताओं पर नियत्रंण (Control over Irrequalanties)** - वित्तीय प्रबन्धन एक नियंत्रण अंग (Regulatory Organ) है । यह विभिन्न विधियों द्वारा वित्तीय अनियमितताओं को रोकता है । यह वित्तीय अनियमितताओं को रोकने के लिए वित्तीय उपकरण जैसे वित्तीय नियोजन, बजट नियंत्रण, लागत नियंत्रण, लेखा व अंकेक्षण तथा आन्तरिक जाँच जैसे उपायों को काम में लेता है । वित्तीय प्रबन्धन मूल्यांकन व्यवस्था द्वारा वित्तीय दोषों को दूर करता है ।

13. **प्रबन्धन प्रक्रिया का प्रमुख अंग (Basic Component of Management Process)** - पहले वित्तीय निर्णय अन्तःप्रेरणा तथा अनुभव के आधार पर लिए जाते थे लेकिन आज वित्तीय निर्णयों का आधार वित्तीय प्रबन्धन है । इसके बिना संगठन का प्रबन्धन अपंग रहता है । सम्पूर्ण संगठन में वित्तीय प्रबन्धन की सक्रिय भूमिका होती है । आजकल प्रत्येक निर्णय को अन्तिम रूप देने से पहले उसके वित्तीय उसके वित्तीय पक्ष की जाँच परख करना अनिवार्य हो गया है ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन का अर्थ समझाइए ।
2. शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन की अवधारणा स्पष्ट कीजिए ।
3. शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन की आवश्यकता का वर्णन कीजिए ।
4. शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन के महत्त्व को समझाइए ।

19.4 शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन के क्षेत्र (Scope of Educational Financial management)

1. **शिक्षा विकास (Development of Education) -** शिक्षा में संख्यात्मक तथा गुणात्मक विकास करने में वित्त जीवन रक्त की तरह कार्य करता है । जनसंख्या वृद्धि के साथ संख्यात्मक वृद्धि आवश्यक है । संख्यात्मक वृद्धि के साथ गुणात्मकता बनाए रखना आवश्यक है।

2. **प्राथमिक शिक्षा (Primary Education) -** संविधान की धारा 45 - "राज्य इस संविधान के कार्यान्वित किये जाने के समय से दस वर्ष के अन्दर सब बच्चों के लिये, जब तक वे चौदह वर्ष की आयु पूर्ण नहीं कर लेंगे, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की चेष्टा करेगा । इसको पूरा करने के लिए सभी पंचवर्षीय योजनाओं में वित्त की व्यवस्था की जा रही है लेकिन अभी इसे पूरा नहीं कर पाए । वर्तमान में सर्वशिक्षा अभियान से इसे पूरा करने का प्रयास किया जा रहा है।

3. **माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education) -** माध्यमिक शिक्षा विकास अत्यन्त तीव्र गति से हुआ है किन्तु इस विकास का सम्बन्ध केवल संख्यात्मक वृद्धि से है गुणात्मक उन्नति से नहीं । समय-समय पर किए जाने वाले प्रयासों के बावजूद न तो माध्यमिक शिक्षा संरचना में कोई विशेष परिवर्तन हुआ है और न उसकी उपयोगिता में कोई विशेष अभिवृद्धि । यह हमारी शिक्षा व्यवस्था की अब भी सबसे कमजोर कड़ी है वह वास्तविक जीवन से आसम्बद्ध है । इसमें व्याप्त दोषों का समाधान आवश्यक है ।

4. **उच्च शिक्षा (Higher Education)-** हमारी उच्च शिक्षा की पद्धति विश्व में सबसे बड़ी पद्धतियों में से एक है तथापि इस क्षेत्र में विस्तार और विकास एक समान नहीं हुआ । उच्च शिक्षा से लोगों को इस बात का अवसर मिलता है कि वे मानव जाति की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में आई समस्याओं पर विचार करे । विशिष्ट ज्ञान और कुशलताओं के आधार पर उच्च शिक्षा राष्ट्र के विकास में सहायक बने । शैक्षिक

पिरामिड के शीर्ष पर होने के नाते समूची शिक्षा व्यवस्था के लिए शिक्षक तैयार करने में ही इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है ।

5. **शिक्षक शिक्षा (Teacher Education**) - किसी समाज में शिक्षकों के स्तर से उसके सांस्कृतिक तथा सामाजिक दृष्टि का पता लगता है । कोई राष्ट्र अपने अध्यापकों के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकता । सरकार व समाज को ऐसी परिस्थितियाँ बनानी चाहिए जिनसे अध्यापकों के निर्माण और सृजन की ओर बढ़ने की प्रेरणा मिले । अध्यापकों की शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया है और सेवा पूर्व तथा सेवाकालीन अंशों को पृथक् नहीं किया जा सकता । अध्यापकों की शिक्षा के नए कार्यक्रमों तथा नई दिशाओं के अनुसार आगे बढ़ने की आवश्यकता पर बल दिया जाना चाहिए।

6. **प्राविधिक तथा व्यावसायिक शिक्षा (Technical and Vocational Education)-** आधुनिक युग विज्ञान का युग है । विज्ञान के आविष्कारों में संसार के स्वरूप और मानव जीवन की दशाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिए । विज्ञान ने मानव जीवन को सुखमय बना दिया है तथा आर्थिक उन्नति में योग दिया साथ ही समाज के स्वरूप को भी रूपान्तरित कर दिया है । प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् ही व्यक्ति कुशलतापूर्वक कार्य कर सकता है । अत: इन कारणों से प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की मांग में निरन्तर वृद्धि हुई

7. **स्त्री शिक्षा (Women Education**)- एक स्त्री को शिक्षित करने तात्पर्य एक पूरे परिवार को शिक्षित करना । सभी पंचवर्षीय योजनाओं में स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है लेकिन अभी तक स्त्री साक्षरता कम है इसलिए अभी भी स्त्री शिक्षा पर बल देने हेतु वित्त की आवश्यकता है।

8. **शैक्षिक अवसरों की समानता सुनिश्चित करना (To Establish Equal Educational Opportunities)-** शैक्षिक वित्त का लक्ष्य वर्तमान में शैक्षिक अवसरों की समानता को सुनिश्चित करना है । शैक्षिक समानता के लिए प्रत्येक के लिए समान मात्रा में शिक्षा, प्रत्येक को अपनी प्रकृतिदत्त क्षमता तक पहुँचाने के लायक पर्याप्त शिक्षा, प्रत्येक को एक निश्चित स्तर तक लाने हेतु पर्याप्त शिक्षा ।

शैक्षिक अवसरों की समानता में अनुसूचित जाति, जनजाति, अल्पसंख्यक एवं अन्य वंचित वर्ग को शैक्षिक सुविधाओं का समान अवसर प्राप्त हो । विभिन्न वर्गों, जातियों और क्षेत्रों में भारी असमानता को दूर किया जाता है । इस क्रम में शैक्षिक वित्त में निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा में कुछ प्रतिशत निःशुल्कता, शैक्षिक सामग्री मुफ्त देने की व्यवस्था करना, अनेक प्रकार की छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करना, विकलांगों के लिए शिक्षा कस विशेष प्रबन्ध करना, प्रादेशिक विषमताओं को दूर करने के लिए केन्द्र राज्यों की स्थिति के अनुसार उनकी सहायता करना ।

19.5 शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन के सिद्धान्त (Principle of Financial Management in Education)

अच्छी व्यवस्था अच्छे सिद्धान्तों व नियमों के बिना नहीं चल सकती है । यह भी सही नहीं है कि शिक्षा वित्त शैक्षिक उद्देश्यों का अनुसरण करे । लेकिन शैक्षिक उद्देश्यों का निरूपण

वित्त सीमा में ही संभव है । इसलिए शिक्षा वित्त के सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण हैं जिसमें शिक्षा वित्त की व्यवस्था सही हो ।

शिक्षा वित्त के सिद्धान्त न तो सार्वभौमिक हो सकते हैं ओर न ही सभी काल के लिये उपयोगी । देश और समय की परिस्थितियों के अनुसार उनमें निरन्तर परिवर्तन आवश्यक है । इस दृष्टि से निम्न सिद्धान्त वर्तमान आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के अनुरूप लगते हैं ।

1. **लोकतंत्रीय सिद्धान्त (Principle of Democratic) -** लोकतंत्र में सारी जनता राजा है । जनता ही उन व्यक्तियों का चयन करती है जिनको शासन चलाना है । शिक्षित जनता ही विवेकपूर्ण ढंग से मत का उपयोग कर सकती है । इस दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित होना अनिवार्य है । प्रत्येक सरकार का अब अनिवार्य कर्त्तव्य बन गया है कि सरकार प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित करे। इसलिए स्थानीय प्रशासन, राज्य प्रशासन, केन्द्रीय शासन की शिक्षा में अधिक से अधिक भागीदारी बढ़ती जा रही है । इसी कारण से भारत के संविधान के 45वें अनुच्छेद में 6 से 14 वर्ष के आयु वाले बच्चों की अनिवार्य, निःशुल्क, सार्वभौमिक शिक्षा की व्यवस्था की गई । साथ ही समाज शिक्षा, उच्च शिक्षा, प्राविधिक शिक्षा, स्त्री शिक्षा भारत जैसे देश में अत्यन्त महत्वपूर्ण है जहाँ सदियों की गुलामी ने अधिकांश व्यक्तियों को शिक्षा से वंचित रखा ।

इन वर्गों के लिए शिक्षा की व्यवस्था ऐतिहासिक अन्याय को दूर करने के लिए लोकतंत्रीय पद्धति को विकसित करना तथा इनके लिए वित्त की व्यवस्था करना आवश्यक है ।

2. **अवसरों की समानता का सिद्धान्त (Principle of Equalizations of Opportunity)-** अवसरों की समानता का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक बच्चे को उनकी क्षमता के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिले । कोई भी छात्र वित्तीय कठिनाई की वजह से शैक्षणिक अवसरों से वंचित न रहे। यह आवश्यक है कि प्रत्येक छात्र को शिक्षा का अवसर मिले । प्रत्येक बच्चे को न्यूनतम शैक्षणिक अवसर मिलने चाहिए और उसके अधिकतम सीमा पर कोई प्रतिबिम्ब न हो ऐसी शैक्षिक वित्त व्यवस्था की जानी चाहिए ।

3. **विविधता का सिद्धान्त (Principle of Diversity)** - लोकतंत्र विविधता पर चलता है, विकसित होता है और पलता है । भारत में विभिन्न राज्य हैं, अनेक धर्म और असंख्य जातियाँ हैं, अलग-अलग क्षेत्र, विभिन्न संस्कृतियाँ और परम्पराएँ हैं । जैसे एक चिकित्सालय के वार्ड के सभी रोगियों को एक सी दवा नहीं दी जा सकती है । इसी प्रकार एक विशाल देश के भावी नागरिकों के लिए एक सी शिक्षा व्यवस्था लागू नहीं की जा सकती है । विविधता उचित विकास की अनिवार्य आवश्यकता है । वित्तीय व्यवस्था में इसका ध्यान रखना आवश्यक है ।

4. **मितव्ययता का सिद्धान्त (Principle of Economic**) - शिक्षा में व्यय निरन्तर बढ़ रहा है जिससे कर भी बढ़ते चले जा रहे हैं । शिक्षा व्यय बढ़ने का एक कारण यह भी है कि छात्रों की संख्या बढ़ रही है । साथ में शिक्षा का विकास, प्राथमिक शिक्षा विकास, पिछड़ी जाति के लिये शिक्षा का विकास, शिक्षा में व्यापक सुधार आदि ।

वित्त महत्वपूर्ण है किन्तु यह शिक्षा का स्वामी नहीं बन सकता । इसकी अच्छी भूमिका यह होगी कि स्वामीभक्त बने । मितव्ययता का अभिप्राय यह है कि वित्त साधनों का

दुरुपयोग नहीं हो । दीर्घकालीन शिक्षा व्यवस्था का संचालन सुदृढ़ आर्थिक आधार पर किया जाए।

5. **लोच का सिद्धान्त (Principle of Flexibility)** - हमारी शिक्षा प्रणाली में क्रमिक विकास होता है । अत: उद्देश्यों, नीतियों, संरचनाओं, कार्यक्रमों, प्रक्रियाओं में लचीलापन आवश्यक है । नए प्रयोग, परीक्षण, अनुसंधानों के आधार पर निरन्तर आवश्यक परिवर्तन / संशोधन करना पड़ता है। स्थानीय व राष्ट्रीय आवश्यकताओं तथा बदलते संदर्भों में संगठन की सार्थकता बनाए रखने के लिए वित्त प्रबन्धन में लचीलापन अपनाना सार्थक है ।

6. **स्थायित्व का सिद्धान्त (Principle of Stability)** - शिक्षा व्यवस्था सामाजिक परिवर्तनों के अनुकूल बदलती रहनी चाहिए, वह टूटनी नहीं चाहिए । वह आर्थिक दृष्टि से इतनी शक्तिशाली हो कि परिवर्तनों के उतार-चढ़ाव उसको जर्जरित नहीं कर सके । यह भी आवश्यक है कि प्रयोजनाओं को पूरी तरह परीक्षण कर लागू किया जाए जिससे शिक्षण व्यवस्था में नए विचारों का समावेश हो किन्तु पुरानी व्यवस्था में कड़ी की तरह जुड़ जाए । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि शैक्षणिक निरन्तरता बनी रहनी चाहिए तथा ऐसा स्थायित्व होना चाहिए कि वह बिना छिन्न-भिन्न हुए बदल सके ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन के क्षेत्र को समझाइए ।
2. शैक्षिक अवसरों की समानता सुनिश्चित करने के लिये शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन क्यों आवश्यक है?
3. शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन के विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए ।
4. शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन के विविधता के सिद्धान्त का वर्णन कीजिए ।

19.6 शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन के महत्त्वपूर्ण पहलू (Important aspects of Educational Finance)

19.6.1 बजट (Budget) -

बजट शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच भाषा की बूजेट से हुई जिसका अर्थ चमड़े की थैली से लगाया जाता है । बजट का अर्थ थैली से लगाया गया, धीरे-धीरे इस शब्द का प्रयोग थैली के न होकर उसमें रखे आय-व्ययक पत्रों के लिए होने लगा । वर्तमान समय में वार्षिक आय-व्यय के विवरण पत्र को ही बजट कहा जाता है । बजट भूत को सामने रखकर वर्तमान के प्रदत्तों के आधार पर भविष्य के लिए वित्तीय स्थिति का निर्धारण करता है ।

बजट एक लेख पत्र होता है, जिसके द्वारा व्यय की स्वीकृति देने वाले अधिकारी के सामने गत वर्ष की व्यय की स्थिति तथा व्यय का संचालन किया गया । वर्तमान में वित्त स्थिति क्या है ? इसके आधार पर आगामी वर्ष के कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिये वित्त की व्यवस्था कैसे की जाएगी । इस आधार पर बजट एक प्रतिवेदन, अनुमान, प्रस्ताव होता है ।

बजट की परिभाषाएँ (Definitions of Budget)

आर्थरबक के अनुसार, "बजट किसी संस्था के निश्चित अवधि का सावधानी पूर्ण अनुमानित आवश्यकता है, व्यय अथवा सम्भाव्य आमद की आर्थिक योजना है ।"

रीन स्टोर्स के अनुसार, "बजट एक लेख पत्र है जिसमें सरकारी आय और व्यय की प्रारम्भिक अनुमोदित योजना है ।"

जी. गोज के अनुसार, "बजट सम्पूर्ण सरकारी प्राप्तियों तथा खर्चों का एक पुर्वानुमान है और कुछ प्राप्तियों का संग्रह करने तथा कुछ खर्चों को करने का एक आदेश अथवा सत्त/प्राधिकरण है।"

बजट की आवश्यकता (Necessity of Budget)

बजट विद्यालय के आय-व्यय की रूपरेखा है । इसमें एक वर्ष की वित्तीय स्थिति की अनुमानित आय-व्यय की जानकारी सुगमता से प्राप्त की जा सकती है ।

- बजट से आय-व्यय को संतुलित बनाए रखने में बड़ी सहायता मिलती है ।
- बजट द्वारा शैक्षिक कार्यक्रम को ठीक प्रकार से संचालित किया जा सकता है ।
- बजट विद्यालय की प्रगति का भी दिग्दर्शन करता है ।
- बजट के आधार पर वर्ष के अंत में, मध्य में, आय-व्यय के मदों का मूल्यांकन किया जा सकता है ।
- बजट से प्राथमिकता निश्चित करने में सहायता मिलती है ।
- यह दीर्घकालीन योजना बनाने के लिए सहायता देता है ।
- इसके आधार पर अधिकारियों को व्यय की स्वीकृति प्रदान करने में सहायता मिलती है।
- बजट से प्रशासकीय कार्य आर्थिक पहलू के संचालन में सहायता मिलती है ।

बजट के प्रकार (Types of Budget)

विद्यालय में कई प्रकार के बजट बनाए जा सकते हैं । उनकी क्रियाओं की योजना बनाई जा सके तथा उनके कार्य-कलापों को दिशा प्रदान की जा सके तथा उनकी कार्यवाही पर नियंत्रण रखा जा सके ।

1. **चालू बजट (Current Budget) -** एक वित्तीय वर्ष के आय-व्यय तथा शैक्षिक क्रियाकलाप के लिए बनाया जाता है ।

2. **दीर्घकालीन बजट (Longterm Budget) -** यह एक वित्तीय वर्ष से अधिक समय का होता है जैसे- पंचवर्षीय योजनाएँ ।

3. **निष्पादनपरक बजट (Performance Budget) -** यह बजट कार्यकर्ताओं की क्रियाओं, गुणात्मकता बताने पर ध्यान केन्द्रित करता है । इसमें अध्यापकों के प्रशिक्षण, व्यक्तिगत सेवाओं तथा सामग्री पर विशेष ध्यान दिया जाता है ।

4. **भवन बजट (Building Budget) -** विद्यालय भवन निर्माण तथा उसकी वित्तीय आवश्यकता का ब्यौरा होता है ।

5. **विशिष्ट प्रोजेक्ट बजट (Special Project Budget)** - किसी विशिष्ट प्रोजेक्ट का बजट, जो बहुधा बजट में सम्मिलित नहीं किया जाता है क्योंकि यह परम्परागत बजट में नहीं आता है ।

मूल बात यह है कि प्रत्येक बजट एक निश्चित समय के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत करता है ताकि निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति की जा सके । इसमें व्यय का अनुमान तथा वित्तीय सहायता देने वाले स्रोतों का वर्णन सम्मिलित होता है ।

बजट निर्माण की प्रक्रिया (Process of Budget Formation)

बजट का निर्माण करना कोई सरल कार्य नहीं है । बजट में आय स्रोत से प्राप्त धन का ठीक-ठीक अनुमान लगाकर उसको व्यय के मदों पर इस प्रकार विभाजित किया जाता है कि कोई शैक्षिक कार्य उपेक्षित नहीं रह जाए तथा अनावश्यक व्यय भी नहीं हो । पर्याप्त धन उपलब्ध होने पर भी बजट ठीक ढंग से नहीं बनाया जाता है । धन का अपव्यय होता है तथा छात्रों को उचित लाभ नहीं मिल पाता है । यदि धन का अभाव है किन्तु बजट बनाने वाले निपुण हैं तो विद्यालय कार्य को विधिवत चलाने में कोई विशेष कठिनाई नहीं हो पाती है । बजट वित्तीय प्रबन्धन है ।

विद्यालयी बजट उद्योग व वाणिज्य सम्बन्धी बजट से भिन्न होता है । इसका लक्ष्य वित्तीय लाभ प्राप्त करना नहीं है वरन् धन की लागत से अधिकाधिक शैक्षिक लाभांश उठाना है।

1. **आवश्यकता का पता लगाना -** पिछले वर्ष के अनुभव कमियों तथा सुधार करने की आवश्यकता के आधार पर अधिकारी, प्रधानाध्यापक, अध्यापक, अभिभावक, शिक्षाविदों से विचार-विमर्श कर आवश्यकता की सूची तैयार की जाती है । विभिन्न आवश्यकताओं पर विचार-विमर्श किया जाता है । उनके महत्त्व के आधार पर किन नए कार्यक्रमों को रखना, पुराने कार्यक्रमों को निकालना, किन पर कितना व्यय करना आदि बातों पर विचार किया जाता है । फिर आवश्यकताओं को प्राथमिकता दी जाती है । यह कार्य प्राय: प्रधानाध्यापक तथा वरिष्ठ अध्यापक मिलकर करते हैं ।

2. **अनुमानित व्यय का निर्धारण -** व्यय में लचीलापन रखना आवश्यक है । बजट के मदों पर व्यय बिल्कुल निश्चित और दृढ़ नहीं कर देना चाहिए वरन् उसमें ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि यदि कोई आवश्यक व्यय आकस्मिक रूप से आ जाए तो बजट में उसकी व्यवस्था की जा सके । जैसे कोई नये कार्यक्रम का क्रियान्वयन आवश्यक हो तो बजट के समायोजन करने में अधिक कठिनाई न उठानी पड़े । इसके लिए बजट लचीलापन रखना आवश्यक है ।

3. **आय-व्यय में संतुलन -** आय के स्रोतों और व्यय के विभिन्न मदों के आधार पर आय-व्यय का एक स्पष्ट लेखा तैयार किया जाता है । आय-व्यय के मध्य सन्तुलन बनाए रखना है । आय से अधिक व्यय होने पर वित्तीय व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है इसलिए दोनों में संतुलन आवश्यक है ।

4. **बजट का अन्तिम रूप** - बजट का अन्तिम रूप प्रदान करने के लिए आय-व्यय के सभी मद विभिन्न अलग-अलग लिख लेने चाहिए । ऐसा करते समय बायीं ओर आय उसकी

दायीं ओर व्यय लिखना चाहिए । फिर दोनों का योग अन्त में देना चाहिए । यदि दोनों का योग लगभग बराबर है या आय कुछ अधिक है तो बजट सन्तुलित कहलाएगा । बजट में आकस्मिक व्यय का ब्यौरा भी देना आवश्यक है ।

5. **बजट की स्वीकृति** - बजट का अन्तिम स्वरूप देने के बाद उसे विद्यालय की प्रबन्ध समिति के सामने रखा जाता है जहाँ इस पर विचार-विमर्श होता है । इन विचार-विमर्श पर सुधार के सुझावों के आधार पर बजट में संशोधन कर लिया जाता है । प्रबन्ध समिति द्वारा बजट पास होने के बाद सक्षम अधिकारियों के पास अनुमोदनार्थ भेज दिया जाता है । अधिकारी द्वारा यदि कोई संशोधन करना हो तो उसे करने के बाद उसे स्वीकृति के बजट का अन्तिम रूप प्रदान कर दिया जाता है ।

6. **बजट का क्रियान्वयन -** स्वीकृत बजट के अनुसार व्यय करना आरम्भ हो जाता है । शैक्षिक सत्र में प्रतिमाह की आवश्यकताओं के अनुसार व्यय किया जाता है । माह प्रति माह की आवश्यकता बदलती रहती है और उसी के अनुसार अनुकूल धन एकत्र करके व्यय करने से विद्यालय को आर्थिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता ।

7. **बजट का मूल्यांकन** - बजट निर्माण के उद्देश्यों व लक्ष्यों के आधार पर बजट का मूल्यांकन किया जाता है । बजट उद्देश्यों को प्राप्त करने में कहाँ तक सफल तथा असफल हुआ, का मूल्यांकन किया जाता है । इसका उद्देश्य यह जानना है कि बजट से शैक्षिक कार्यक्रम में कहीं तक सहायता मिली, छात्र तथा शिक्षकों की आवश्यकताओं की कहाँ तक पूर्ति हुई है । यदि सम्पूर्ण सत्र बिना किसी आर्थिक संकट के सभी कार्य सुचारू रूप से संचालित हों तो हम उसे बजट की सफलता ही मानेंगे ।

बजट की संरचना

बजट की संरचना में दो प्रमुख कारक होते हैं -

(1) आय

(2) व्यय

प्रत्येक कारक में दो भाग होते हैं -

(1) आवर्तक

(2) अनावर्तक

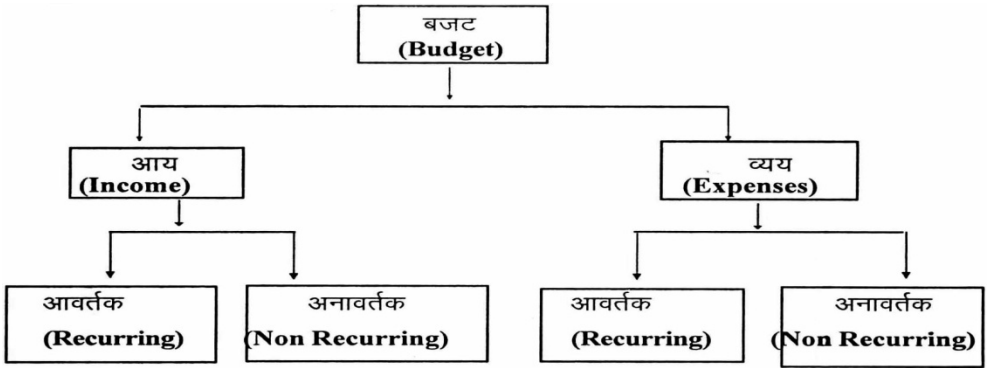

1. **आय (Income) -** एक वित्तीय वर्ष में शिक्षा के लिए धन प्राप्त होता है, उसे आय कहते हैं । जिन स्रोतों से प्राप्त होत है उन्हें आय स्रोत कहते हैं ।

2. **व्यय (Expenses) -** शिक्षा की व्यवस्था करने के लिये जो धन कर्मचारियों के वेतन के रूप में, सामग्री खरीदने में, भवन निर्माण के लिए एवं अन्य कार्यों के लिए लगाया जाता है, वह व्यय कहलाता है ।

3. **आवर्तक व्यय (Recurring) -** ऐसा व्यय जो बार-बार होता है अर्थात् एक निश्चित अवधि के बाद प्रतिवर्ष जिसकी पुनरावृत्ति होती है जैसे शिक्षकों का वेतन, भवनों की मरम्मत आदि ।

4. **अनावर्तक व्यय (Non Recurring) -** ऐसा व्यय जो एक बार होकर फिर किसी नियतकाल में न हो जैसे भवन निर्माण पर व्यय, भूमि, बसर पर व्यय आदि । इसे पूँजीगत व्यय भी कहते हैं ।

19.6.2 शिक्षा निवेश (Educational Investment)

शिक्षा, शिक्षा के लिए है यह मान्यता बहुत दिनों तक शिक्षा की व्याख्या करने के लिए प्रयुक्त होती रही है । इसके आधार पर शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका आदि व अन्त वह स्वत: ही है।

व्यक्तित्व के विकास हेतु शिक्षा की आवश्यकता व महत्त्व हमेशा से ही रहा है । आज भी यह महत्त्वपूर्ण है जितना कि पहले था, किन्तु शिक्षा को जब नवीन आयामों तथा सीमाओं में बाँधा व परखा जाता है तो उसके प्रति नवीन मान्यताएँ उभरती हैं । ऐसे ही शिक्षा की उपादेयता अथवा महत्त्व को जब राष्ट्रीय व व्यक्तिगत जीवन की समग्रता में देखने व समझने का प्रयास किया जाता है तब सामाजिक जीवन में आर्थिक पहलू स्पष्ट होते हैं और उसमें शिक्षा की अर्थपूर्ण भूमिका स्पष्ट होती है । शिक्षा एक ऐसा महत्त्वपूर्ण घटक सिद्ध होती है जो आर्थिक समवृद्धि हेतु आवश्यक है ।

संयुका राज्य अमेरिका और यूरोप के देशों में इस दिशा में हुए अध्ययन तथा शोध से स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा का समाज की आर्थिक समृद्धि से सीधा सम्बन्ध है । अत: शिक्षा पर जितना अधिक खर्च किया जाएगा उतना ही अधिक उसमें लाभ आर्थिक विकास के रूप में होगा ।

रशियन शिक्षाशास्त्री ने यह स्पष्ट किया है कि श्रमिकों की प्राथमिक शिक्षा पर यदि बल दिया जाए तो उनकी कार्य कुशलता में 44 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है । इसी प्रकार यदि माध्यमिक व विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा पर बल दिया जाए तो 108 प्रतिशत और 300 प्रतिशत तक वृद्धि होती है ।

शिक्षा एक लागत है और इस दृष्टिकोण को अब अधिक स्पष्टता से देखा जाने लगा है । यूनेस्को ने शिक्षा को लागत का मद स्वीकार कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है और यह स्पष्ट किया है कि जितना अधिक शिक्षा पर व्यय किया जाएगा वह उतना ही अधिक विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था हेतु न्यायसंगत होगा । शिक्षा वैसे लागत का मद है जिसे खनिज

तेल, कृषि आदि में शिक्षा को वैसी प्राथमिकता प्राप्त होनी चाहिए जैसे कि अन्य उत्पादकीय लागत के मद को दी जाती है ।

शिक्षा पर कितना व्यय किया जाए इसका निर्धारण इस लक्ष्य से किया जाता है कि उसमें समाज को क्या लाभ होगा । शिक्षा से प्राप्त प्रतिफल शिक्षा पर किए जाने वाले व्यय को निर्धारित करता है । वस्तुत: यह लागत है जिसका लाभ आर्थिक विकास के रूप में होता है ।

शिक्षा पर किया गया व्यय महत्त्वपूर्ण होता है । सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय का एक बहुत बड़ा भाग होता है । शिक्षा के मद पर खर्च किया जाता है जिसमें व्यक्ति शिक्षित हो, योग्यता, ज्ञान व कुशलता से युक्त हो ताकि वे विभिन्न व्यवसायों व उद्योगों में अपना स्थान लेते हुए न केवल अपनी ही आय में वृद्धि करें बल्कि सम्पूर्ण देश की उत्पादकता को बढ़ाने में भी योगदान दे । वर्तमान युग तकनीकी विकास के साथ जहाँ एक ओर यह सम्भावनाएँ विकसित हुई हैं कि इनके प्रयोग से देश की आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता है वहीं दूसरी ओर यह भी आवश्यकता उद्भूत हुई है कि आधुनिक ज्ञान व विज्ञान का प्रसार जन-साधारण में हो । अधिक से अधिक शिक्षा के अवसर लोगों को मिले, विशिष्ट योग्यताओं व कार्यकुशलता का विकास हो और प्रशिक्षित व्यक्तियों को योग्यता व स्तर के अनुसार व्यवसाय मिले ।

शिक्षा में निवेश जितना ही सोच-समझ कर पूर्व अनुमान व गणना के आधार पर जितना अधिक होगा उतना ही अधिक शिक्षा से प्राप्त प्रतिफल होगा ।

19.6.3 शिक्षा लागत (Education Cost)

साधारण शब्दों में लागत का अर्थ व्यय से होता है । लागत किसी लाभ या सुविधा को प्राप्त करने के लिए किए गए व्यय को व्यक्त करती है ।

प्रत्येक वस्तु के निर्माण करने में विभिन्न प्रकार के व्यय होते हैं । इसी प्रकार सेवा की पूर्ति के लिए भी कई व्यय किए जाते हैं । ये सभी व्यय उस वस्तु की लागत में शामिल किए जाते हैं । इसी प्रकार विद्यालय में विद्यार्थियों का विकास करने के लिए भी विभिन्न प्रकार का व्यय किया जाता है । अध्यापकों, विद्यालय भवन, सुविधा, पुस्तकें, खेल का सामान आदि ये सभी व्यय विद्यार्थियों की लागत में शामिल किए जाते हैं जो शिक्षा की लागत कहलाते हैं । किसी शिक्षा संस्था के संचालन और संरक्षण में भी जो धन लगता है वह भी लागत है । शिक्षा का सही विकास करने के लिए लागत को जानना अति आवश्यक है ।

लागत के तत्त्व

1. **सामग्री लागत (Material Cost) -** किसी वस्तु के निर्माण में जो सामग्री उपयोग लाई जाती है उसे लागत का प्रथम तत्त्व समझा जाता है । शिक्षा का प्रथम तत्त्व विद्यार्थी है । इस पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से अभिभावक तथा सरकार व्यय करती है ।

2. **श्रम लागत (Labor Cost) -** किसी व्यवसाय के कर्मचारी का पारिश्रमिक देने पर जो खर्चा होता है उसे श्रम लागत कहते हैं । शिक्षा में अध्यापक, प्रधानाध्यापक, सभी कर्मचारियों को वेतन, अन्य सुविधाएँ दी जाती हैं उसे श्रम लागत कहा जा सकता है । यह भी प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार का हो सकता है । ऐसे वेतन, सुविधाओं पर जो व्यय किया जाता है वह

प्रत्यक्ष व्यय कहलाता है । अध्यापकों, प्रधानाध्यापकों, प्रशिक्षण में जो व्यय किया जाता है वह अप्रत्यक्ष व्यय होता है ।

3. **व्यय .(Expenses)** - शिक्षा में विद्यार्थियों तथा अध्यापकों पर किए व्यय के अतिरिक्त अन्य सभी खर्चे भवन, बिजली, पानी, फर्नीचर, खेल के मैदान, खेल का सामान आदि सभी व्यय मिलाकर लागत के तीसरे तत्त्व का निर्माण करते हैं ।

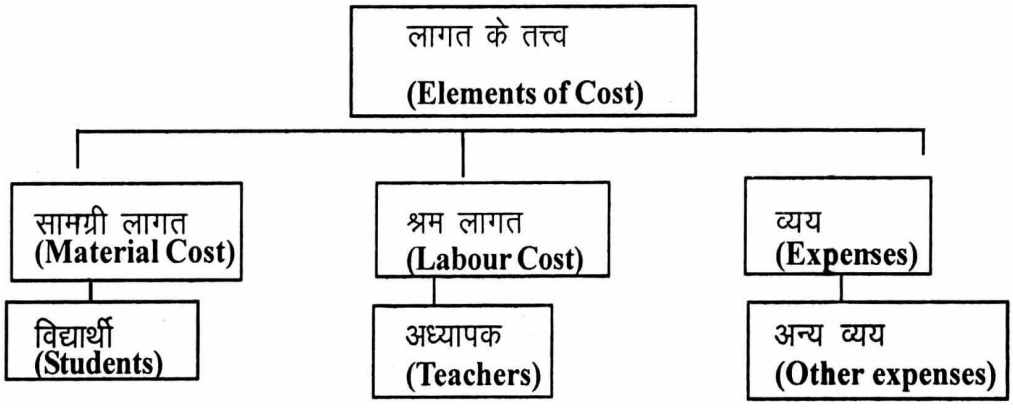

शिक्षा लागत ज्ञात करने की विधि (To detect Method of Education Cost)

किसी वस्तु की लागत ज्ञात करने की विधि वस्तुओं की विशेषताओं एवं निर्मित वस्तु की प्रकृति पर निर्भर करती है । लागत ज्ञात करने के लिए, उपकार्य लागत विधि (Job Plus Method), ठेका लागत विधि (Contract Costing) लागत जोड़ विधि (Cost Plus Method), इकाई लागत विधि (Unit Costing), परिचालन लागत विधि (Operating Costing), समूह लागत विधि (Batch Costing) प्रक्रिया लागत विधि (Process Costing Method) आदि विधियों का उपयोग किया जाता है । शिक्षा की लागत ज्ञात करने के लिए परिचालन लागत विधि का उपयोग किया जाता है । परिचालन लागत विधि का उपयोग उन संस्थानों में किया जाता है जो वस्तुओं का उत्पादन नहीं करती हैं अपितु किसी प्रकार की सेवा प्रदान करती हैं । परिचालन लागत का आशय सेवा प्रदान करने की लागत से है ।

शिक्षा की प्रभावशीलता जानने के लिए लागत का विश्लेषण करना आवश्यक है तथा इसके लिए सही विधि का चयन करना भी महत्वपूर्ण है ।

इकाई लागत (Unit Cost)

मानव शरीर की सबसे छोटी इकाई कोशिका है इसकी बनावट को जानना शरीर को जानने के लिए आवश्यक है । इसी प्रकार विद्यालय की इकाई छात्र, कक्षा एवं विद्यालय है ।

इकाई लागत का तात्पर्य उसके इकाई पर किए जाने वाले खर्च से है । शिक्षा के संदर्भ में जब खर्च या लागत की स्थिति निश्चित करते हैं तो हमारा तात्पर्य प्राय: तीन इकाइयों से होता है-

1. छात्र 2. कक्षा 3. संस्था

प्रत्येक छात्र, कक्षा तथा संस्था पर जो व्यय किया जाता है उसके आधार पर इकाई लागत ज्ञात की जा सकती है । कोई भी कार्य करने के लिए मानव संसाधन और प्राकृतिक संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है प्राप्त संस्थानों से वित्तीय लागत का पता चलता है ।

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. बजट किसे कहते हैं ?
2. बजट की आवश्यकता का वर्णन कीजिये ।
3. शिक्षा निवेश की अवधारणा स्पष्ट कीजिए ।
4. शिक्षा लागत की इकाई कौन-कौन सी हैं, समझाइए ।

19.7 सारांश (Summary)

इस इकाई में शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन, बजट, शिक्षा निवेश तथा शिक्षा लागत के बारे में चर्चा की गई है । आपने इनके बारे में निम्नलिखित विषयवस्तु की जानकारी प्राप्त की है -

1. शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन, वित्तीय नियोजन तथा नियंत्रण कार्य को वित्तीय कार्य पर लागू करना है ।
2. शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन की आवश्यकता के अन्तर्गत शिक्षा का विकास, देश का आर्थिक विकास, असंज्ञानात्मक उपलब्धियाँ, लक्ष्य प्राप्त करने के लिए, सफलता का आधार, साधनों का अधिकतम उपयोग, अस्तित्व की रक्षा एवं विकास, अनियमितताओं पर नियंत्रण इत्यादि ।
3. शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन के क्षेत्र - शिक्षा का विकास, प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, शिक्षक शिक्षा, प्राविधिक तथा व्यावसायिक शिक्षा, समाज तथा प्रौढ़ शिक्षा, स्त्री शिक्षा, शैक्षिक अवसरों की समानता सुनिश्चित करना ।
4. शैक्षिक वित्त प्रबन्धन के सिद्धान्त - लोकतंत्रीय सिद्धान्त, अवसरों की समानता, विविधता का सिद्धान्त, मितव्ययता का सिद्धान्त, लोच का सिद्धान्त, स्थायित्व का सिद्धान्त ।
5. वार्षिक आय व व्यय पत्रक को बजट कहते हैं ।
6. बजट- आय-व्यय को संतुलित करने के लिए प्राथमिकता निश्चित करने के लिये आवश्यक है ।
7. बजट की संरचना में आय व व्यय दो प्रमुख कारक हैं ।
8. बजट निर्माण की प्रक्रिया में विभिन्न पदों का उपयोग कर सही बजट का निर्माण किया जा सकता है ।
9. शिक्षा पर किया जाने वाला व्यय शिक्षा निवेश है ।
10. शिक्षा पर निवेश जितना सोच समझ कर किया जाएगा उतना अधिक शिक्षा से प्राप्त प्रतिफल होगा ।
11. शिक्षा संस्था के संचालन और संरक्षण में जो धन लगता है वह लागत है ।
12. शिक्षा में लागत की तीन इकाइयाँ छात्र, कक्षा, संस्था । इन पर किए जाने वाला व्यय इकाई लागत कहलाती है ।

अभ्यास प्रश्न (Exercises)

1 शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन के अर्थ, अवधारणा तथा आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए इसके विभिन्न क्षेत्रों की उदाहरण सहित व्याख्या करिए ।

2 शैक्षिक वित्तीय प्रबन्धन के सिद्धान्त, महत्त्वपूर्ण पहलुओं को स्पष्ट करते हुए। बजट, शिक्षा निवेश तथा शिक्षा लागत पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए ।

19.8 संदर्भ (References)

1. जिन्दल सुशील (1993) शिक्षा का अर्थशास्त्र, चण्डीगढ़ हरियाणा साहित्य अकादमी
2. मिश्र, आत्मानन्द (1973) भारतीय शिक्षा की वित्तीय व्यवस्था, भोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
3. Mukherjee S.N. Administration of Education, Planning and Finance, Baroda Acharya Book Depot, Baroda.
4. ओड एल. के. शैक्षिक प्रशासन, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी
5. पाण्डेय रामशक्ल (1999) शैक्षिक नियोजन और वित्त प्रबन्धन, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर
6. सिन्हा वी. सी. (2005) मुद्रा एवं वित्तीय पद्धतियां, नई दिल्ली, साहित्य भवन
7. वर्मा जे.पी. (2002) विद्यालय प्रबन्धन मेरठ आर. लाल बुक डिपो

इकाई 20

भारत में शैक्षिक प्रबन्धन की प्रणाली एवं संरचना (System and Structure of Educational Management in India)

इकाई की संरचना

20.0 इकाई के उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना (Introduction)

20.2 भारत में शैक्षिक प्रबन्ध (Educational Management in India)

- स्वरूप
- ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- वर्तमान स्थिति

20.3 भारतीय संविधान में शिक्षा व्यवस्था (Provision for Education in the Constitution)

- संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची
- शिक्षा के समवर्ती सूची में आने का प्रभाव

20.4 शैक्षिक संरचना (Educational Structure)

20.4.1 विभिन्न स्तरों की शिक्षा का प्रबंध

(अ) पूर्व प्राथमिक शिक्षा का प्रबंध

(ब) प्राथमिक स्तर का शैक्षिक प्रबंध

(स) माध्यमिक स्तर का शैक्षिक प्रबंध

(द) उच्च शिक्षा का प्रबंध

20.5 शिक्षा पर किसका अधिकार हो ? (Who Should Control Education ?)

20.6 भारत में शैक्षिक प्रबन्ध के अभिकरण (Agencies of Educational Management in India)

20.6.1 केन्द्र स्तरीय शिक्षा प्रबन्धन

(i) शिक्षा का केन्द्रीय प्रशासनिक तंत्र

(ii) केन्द्रीय सरकार की सलाहकार परिषदें

20.6.2 राज्य स्तरीय शिक्षा प्रबन्धन

(i) शिक्षा का राज्य में प्रशासनिक तंत्र

(ii) राज्य स्तरीय अभिकरण

20.6.3 स्थानीय निकाय प्रबन्धन

(i) स्थानीय निकाय प्रशासनिक तंत्र

(ii) स्थानीय संस्थाएँ एवं उनकी भूमिका

20.6.4 वैयक्तिक अभिकरणों की भूमिका

(i) प्रशासनिक तंत्र

(ii) संस्थाओं के प्रकार एवं उनका शैक्षिक प्रबन्ध

20.7 भारत में शैक्षिक प्रबन्धन की समस्याएँ (Problems in Educational Management in India)

20.8 शैक्षिक प्रबन्धन की समस्याओं के समाधान (Solutions to the Problems of Educational Management)

20.9 सारांश (Summary)

20.10 संदर्भ (References)

20.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपमें निम्नलिखित क्षमताओं का विकास हो सकेगा-

1. आप भारत में शैक्षिक प्रबन्ध की पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे ।
2. आप भारत में वर्तमान शैक्षिक स्वरूप एवं ढाँचे को समझ सकेंगे ।
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अनुसार शैक्षिक प्रशासन की सिफारिशों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
4. भारत में शैक्षिक संरचना के विभिन्न स्तरों पर प्रबन्धन की विशेषताओं को स्पष्ट कर सकेंगे।
5. भारत के शिक्षा प्रबन्ध में प्रमुख भूमिका निभाने वाले स्तरों एवं अभिकरणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
6. भारत में केन्द्र स्तरीय, राज्य स्तरीय एवं स्थानीय निकायों की प्रबन्धन भूमिका को स्पष्ट कर सकेंगे ।
7. तीनों स्तरों पर कार्यरत विभिन्न अभिकरणों, संस्थाओं की भूमिका एवं दायित्वों को समझ सकेंगे ।
8. तीनों स्तरों के प्रशासकीय एवं प्रबन्धकीय ढाँचे को समझ सकेंगे ।
9. प्रबन्धकीय तंत्र से जुड़े महत्त्वपूर्ण विभागों एवं व्यक्तियों के कार्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
10. भारत में शैक्षिक प्रबन्ध की समस्याओं को जान सकेंगे ।
11. भारत में शैक्षिक प्रबन्धन सम्बन्धी नवीन प्रवृतियों एवं शोध कार्यों की स्थिति को समझ सकेंगे ।

20.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत एक विशाल देश है । इस देश में अनेक विविधताएँ देखने को मिलती हैं । साथ ही विभिन्न धर्मो और संस्कृतियों को साथ लेकर चलने वाले इस देश में एकता भी है । इसी प्रकार यहाँ के शैक्षिक प्रबन्ध में जटिलता के साथ-साथ विविधता के भी दर्शन होते हैं ।

सामान्यतया प्रबन्धन के तीन स्तर - केन्द्र स्तर, राज्य स्तर और स्थानीय स्तर ही प्राय: सभी जनतांत्रिक देशों में देखे जाते हैं । संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत, ग्रेट ब्रिटेन आदि सभी देशों में यही शैक्षिक प्रबन्ध के स्तर हैं ।

केन्द्रीय शैक्षिक प्रबन्ध यों सभी देशों में कमोबेश रूप में व्याप्त है परन्तु नियंत्रण में प्राथमिकता की दृष्टि से जहाँ समाजवादी राष्ट्रों में इस प्रबन्ध को मुख्य प्रबन्ध का आधार बनाया गया है वहीं जनतांत्रिक देशों में विकेन्द्रित शासन को, जिसमें राज्यों व स्थानीय इकाइयों और यहाँ तक कि व्यक्तियों का भी प्रबन्धन में योगदान लिया जाता है ।

भारत एक विशाल देश है, अत: उसकी समस्याएँ भी अधिक हैं । केवल केन्द्रीयकृत प्रबन्ध नीतियाँ प्रभावी शैक्षिक प्रबन्धन नहीं कर सकतीं । जनतंत्रीय होने के कारण स्थानीय स्तर व राज्य स्तरों की भी शैक्षिक समस्याएँ होती हैं ।

20.2 भारत में शैक्षिक प्रबन्ध (Educational Management in India)

भारत एक उपमहाद्वीप के रूप में जाना जाता है । एक अरब से ही अधिक आबादी वाले राष्ट्र में शिक्षा का प्रबन्ध करना एक दुष्कर कार्य है । इसके अतिरिक्त हमारे देश में विभिन्न संस्कृति एवं धार्मिक विचारधाराएँ निवास करती हैं । इनके मध्य समन्वय स्थापित करने के लिए एक उचित एवं समन्वित शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्धन की आवश्यकता है ।

भारत पर लगभग 200 वर्षों तक अंग्रेजों ने शासन किया । अत: अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली ने हमारी शैक्षिक व्यवस्था को सर्वाधिक प्रभावित किया है । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत एक गणराज्य के रूप में स्थापित हुआ । अत: इसमें सभी राज्यों को अपनी आवश्यकता एवं शैली के अनुसार शिक्षा व्यवस्था जारी रखने की छूट दी गई परन्तु सब पर केन्द्रीय नियंत्रण रखने की व्यवस्था की गई ।

भारत में भी जनतंत्रीय भावना ने राजनीतिक जागरूकता के साथ शिक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में भी जनता के महत्त्व को प्रोत्साहित किया है । भारत में शिक्षा का व्यापक जाल सा बिछा है । शैक्षिक योजनाओं की व्यवस्था में केवल केन्द्रीय सरकार ही नहीं अपितु राज्य सरकारें, स्थानीय सरकारें तथा अन्य महत्त्वपूर्ण संस्थान इस कार्य में हाथ बँटाते हैं । शैक्षिक प्रशासन का कार्य देश में अनेक शक्तियों के बीच में बँटा हुआ है । वास्तव में भारत जैसे प्रजातंत्रात्मक देश में शिक्षा के क्षेत्र में शक्ति अथवा प्रशासन का विभाजन अथवा विकेन्द्रीकरण सर्वथा उपयुक्त है और वर्तमान युग की आवश्यकता भी ।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background)

भारत में शैक्षिक प्रबन्धन का विकास निम्न बिन्दुओं में स्पष्ट किया जा सकता है-

1. ब्रिटिश सरकार के शासनकाल में कुछ उच्च वर्ग के लोगों को प्रशासन मे सहयोगी बनाया गया जो कर्मचारियों के रूप में कार्य कर सकें ।
2. सन् 1883 में रिपन (Ripon) ने प्राथमिक शिक्षा को स्थानीय निकाय को दे दिया ।
3. शैक्षिक प्रशासन पूरी तरह केन्द्रीयकृत था । नीति निर्धारण, संगठन एवं प्रशासन सभी केन्द्र द्वारा निर्देशित थे ।
4. सन् 1901 में डायरेक्टर जनरल ऑफ एजूकेशन (Director-General of Education) के पद का उद्भव हुआ ।
5. सन् 1910 में वाइसराय की अधिवासी परिषद् (Viceroy's Executive Council) के सदस्य के प्रभार में शिक्षा-विभाग (Department of Education) स्थापित किया गया । इसी वर्ष एक कुल सचिव (Secretary) की नियुक्ति की गई ।
6. सन् 1921 में मोन्टफोर्ड सुधार (Montford Reforms) के साथ ही शिक्षा का हस्तान्तरणप्रदेशों को कर दिया गया । केन्द्र शिक्षा के प्रति तटस्थ हो गया । यह स्थिति द्वितीय विश्वयुद्ध तक रही ।
7. द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद केन्द्र ने पुन: शिक्षा में रुचि लेना आरम्भ किया ।
8. 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय (Ministry of Education and Scientific Research) स्थापित किया गया । केन्द्र की शिक्षा में रुचि बढ़ती रही ।
9. केन्द्र एवं राज्यों के प्रयासों में शिक्षा के पुनर्गठन के सम्बन्ध में काफी आवृत्ति (Overlapping) थी । फलत: भारत के संविधान के लागू होने के बाद भी केन्द्र ने पृथकतावादी नीति को अपनाये रख और शिक्षा के मामले में राज्यों की सहायता नहीं की ।
10. पंचवर्षीय योजनाओं के आरम्भ होने के साथ ही नीति में परिवर्तन हुआ । केन्द्र ने राज्यों को सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा और प्रौढों की समाज शिक्षा के विकास के लिए निधि आवंटित की। इन अनुदानों पर नियंत्रण के साथ ही केन्द्र ने राज्यों में शिक्षा का पर्यवेक्षण करना आरम्भ कर दिया ।
11. केन्द्र की शैक्षिक क्रियाओं के विस्तार के साथ-साथ 'केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय' (Central Ministry of Education) का गठन एवं पुनर्गठन होता रहा । यह मंत्रालय अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह सलाहकार परिषदों के द्वारा करता था ।
12. बाद में यह कार्य 'शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय' (Ministry of Education and Social Welfare) तथा 1985 में गठित नये मंत्रालय 'मानव संसाधन मंत्रालय' (Ministry of Human Resource Development - MHRD) के द्वारा इसके विभागों की सहायता से किया जाता है । इसी का एक विभाग शिक्षा-विभाग है । इसके द्वारा विभिन्न निकायों द्वारा शैक्षिक दायित्वों की पूर्ति में सहायता की जाती है ।

भारत सरकार के केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय की क्रियायें मुख्य रूप से भारतीय संविधान के खण्डों (Clauses) में दी गई नीति के द्वारा निर्देशित है ।

भारत में ब्रिटिश राज्य के साथ प्रारम्भ हुई शिक्षा की आधुनिक व्यवस्था के समय से ही भारत के विभिन्न राज्यों में शिक्षा के पाठ्यक्रम और संगठन, अध्यापकों की सेवा शर्तों, परीक्षा व्यवस्था तथा शिक्षा के स्तरों में विभिन्नता रही है । इसका कारण यह था कि शिक्षा राज्य सूची में थी और राज्य अपने नियम बनाने के लिए स्वतंत्र थे । 1977 में शिक्षा को समवर्ती सूची में रखे की स्वीकृति के साथ केन्द्रीय सरकार को शिक्षा पर विधान बनाने का अधिकार मिल गया है और इसके साथ यह भी प्रावधान किया गया है कि यदि राज्य अधिनियम (State Act) केन्द्र सरकार द्वारा पारित अधिनियमों के साथ विरोध रखता है तो बाद वाला अधिनियम (केन्द्र द्वारा पारित) माना जायेगा ।

इस परिवर्तन के बाद वर्तमान में स्थिति निम्न है -

1. राज्य सरकारें अब भी शिक्षा पर अपने विधान बना सकती हैं ।
2. केन्द्र सरकारों को संघीय विधान परिषदों द्वारा शिक्षा के संबंध में पारित किसी भी अधिनियम को लेने का अधिकार दिया गया है ।
3. यदि राज्य अधिनियम और संघीय सरकार के अधिनियम में कोई विरोध होता है तो संघीय सरकार के अधिनियम को माना जायेगा ।

20.3 भारतीय संविधान में शिक्षा व्यवस्था (Provisions for Education in the Constitution)

केन्द्र एवं राज्यों के मध्य समन्वय बनाने के लिए संविधान में ' को तीन सूचियों में विभाजित किया गया -

(1) संघ सूची
(2) राज्य सूची
(3) समवर्ती सूची

(1) **संघ सूची-** इसके अधिकार केन्द्र को सौंपे गए हैं । इसमें रा राष्ट्रीय महत्त्व की वैज्ञानिक एवं तकनीकी संस्थाएँ, विश्वविद्यालय स्थापित करने, विशेष अध्ययनों के लिए संस्थाएँ बनाने तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा व्यावसायिक शिक्षा की रूपरेखा बनाने हेतु प्रविष्टि 63, 64, 65, 66, की व्यवस्था दी गई है ।

(2) **राज्य सूची -** संविधान की छठी अनुसूची की 11वीं प्रविष्टि में शिक्षा को राज्य सूची में स्थान दिया गया है लेकिन ये समस्त अधिकार संघ सूची की 63, 64, 65 एवं 66वीं सूची के अतिरिक्त हैं । इस सूची के अनुसार विभिन्न राज्य अपनी आवश्यकताओं और नियमों से शिक्षा व्यवस्था कर सकते हैं ।

(3) **समवर्ती सूची -** 1975 से शिक्षा को समवर्ती सूची में स्थान दिया गया । इस सूची के अनुसार शिक्षा पर केन्द्र तथा राज्य दोनों के सम्मिलित अधिकार होंगे । इसमें केन्द्र और राज्य

सरकारों को निर्देश दिए गए हैं कि वे निश्चित सीमा में रहते हुए शिक्षा सम्बन्धी नीति निश्चित करें तथा उनका क्रियान्वयन भी करें ।

शिक्षा के समवर्ती सूची में आने का प्रभाव

सन् 1975 से शिक्षा समवर्ती सूची में है । यद्यपि शिक्षा केन्द्रीय विषय हो या राज्य का विषय, विवाद हो सकता है परन्तु भारत सरकार सभी राज्यों को साथ लेकर चल रही है, कोई भी व्यापक योजना जो सारे देश पर लागू की जानी होती है राज्यों के साथ परामर्श के आधार पर ही लागू की जाती है । 10+2 इसी प्रकार की योजना है । 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा संशोधित 1992 की शिक्षा नीति समग्र देश में व्यापक विचार-विमर्श के बाद ही लागू की गई है । राज्य आज भी अपनी आवश्यकतानुसार कानून बना सकते हैं अत: उनकी स्वायत्तता भी एक सीमा तक बनी हुई है ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अनुसार शैक्षिक प्रशासन की सिफारिशें

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार शैक्षिक प्रशासन व प्रबन्धन को अधिक प्रभावी एवं सुदृढ़ बनाने हेतु अनेक उपायों व सुझावों को प्रस्तुत किया गया, कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव निम्नानुसार हैं :-

1. केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्रालय के विभागों को सुदृढ़ किया जायेगा ।
2. मानव विकास से संबंधित राज्य सरकारों के विभिन्न विभागों के समाकलन के लिए कारगर उपाय किये जायेंगे ।
3. केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की तरह राज्य शिक्षा सलाहकार बोर्ड की स्थापना की जाएगी ।
4. भारतीय शिक्षा सेवा का एक अखिल भारतीय सेवा के रूप में गठन किया जाएगा ।
5. शैक्षिक आयोजकों, प्रशासकों और संस्था प्रधानों के प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया जायेगा ।
6. उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शैक्षिक प्रबन्ध हेतु जिला शिक्षा बोर्ड की स्थापना की जाएगी जिस विभिन्न प्रकार के शैक्षिक कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व दिया जाएगा ।
7. विद्यालय संगमों की स्थापना कर उसे विकसित किया जायेगा ।
8. विद्यालय प्रशासन के स्थानीय स्तर पर सामुदायिक सहयोग को बढावा मिलेगा ।

20.4 शैक्षिक संरचना (Educational Structure)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार देश में समान शिक्षा का ढाँचा 10+2+3 स्वीकृत किया गया है । इसके अधीन कक्षा 1 से 5 तक की शिक्षा- 'प्राथमिक', कक्षा 6 से 8 की शिक्षा- 'उच्च प्राथमिक' तथा कक्षा 9-10 की शिक्षा- 'सैकण्डरी' कहलाती है । कक्षा दस तक की शिक्षा सामान्य शिक्षा है जिसमें वैकल्पिक विषयों का प्रावधान नहीं होता है । 10 वर्षीय सामान्य शिक्षा के बाद की दो वर्षीय शिक्षा की प्रमुखत: दो धाराएँ हैं - अकादमिक शिक्षा एवं

व्यावसायिक शिक्षा । इसके बाद प्रथम डिग्री (स्नातक) की शिक्षा तीनवर्षीय है । यह शैक्षिक ढाँचा सारे देश में लागू है । इसके साथ स्कूली पाठ्यक्रम में कतिपय अनिवार्यताएँ रखी गई हैं ।

इसी प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार शिक्षा के समान प्रशासनिक ढाँचे का संकल्प भी लिया गया है तथा शिक्षा में अधिक से अधिक जन-संभागित्व की दृष्टि से जिले को इस प्रशासनिक ढाँचे का केन्द्र बनाया गया है । शिक्षा पर केन्द्रीय नियंत्रण की प्रवृत्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है ।

20.4.1 विभिन्न स्तरों की शिक्षा का प्रबन्ध

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व शैक्षिक संरचना का कोई व्यवस्थित रूप नहीं उभर पाया था । प्राय: दो प्रकार के विद्यालय थे - सरकारी एवं गैर सरकारी । सन् 1953 के शिक्षा आयोग तथा 1964-66 के शिक्षा आयोग की अनुशंसाओं की क्रियान्विति के फलस्वरूप में एक व्यवस्थित शैक्षिक ढाँचा उभरा परन्तु फिर भी भिन्नताएँ बनी रहीं । सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति की क्रियान्विति के फलस्वरूप देश में 10+2+3 का शैक्षिक ढाँचा उभरा है जिसे आन्तरिक भिन्नताओं के बावजूद सभी राज्यों ने स्वीकार कर क्रियान्वित किया है ।

देश की शिक्षा संरचना को मुख्यत: तीन स्तरों में बाँटा जा सकता है परन्तु प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा । प्रत्येक क्षेत्र की शिक्षा में केन्द्र, राज्य, स्थानीय निकाय एवं प्राइवेट संगठनों का सीधा योगदान किसी न किसी सीमा तक देखा जा सकता है ।

(अ) पूर्व प्राथमिक शिक्षा प्रबन्धन

सरकारी स्तर पर पूर्व प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था नगण्य है परन्तु इस क्षेत्र में प्राइवेट संगठनों ने खास तौर पर शहरी क्षेत्रों में पहल कर काफी उल्लेखनीय कार्य है । शहरी क्षेत्रों में नर्सरी स्कूल, किंडरगार्टन स्कूल व मांटेसरी स्कूल प्राइवेट संगठनों द्वारा जा रहे हैं । पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें, क्रियात्मक प्रवृत्तियाँ अपने स्तर पर प्रबन्ध समिति द्वारा चलाई जाती हैं अधिकांश ऐसे स्कूलों को न तो सरकारी मान्यता प्राप्त है न ही संरक्षण । इन स्कूलों की व्यवस्था फीस व अनुदान या विकास शुल्क से प्राप्त राशि से की जाती है ।

(ब) प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक प्रबन्ध

देश में समान शैक्षिक ढाँचे के अन्तर्गत कक्षा 1 से लेकर पाँच तक प्राथमिक एवं छ: से आठ तक की शिक्षा उच्च प्राथमिक शिक्षा कहलाती है ।

इस स्तर पर प्राथमिक शिक्षा का संचालन एवं प्रबन्ध में केन्द्रीय, राज्य सरकार, स्थानीय निकाय एवं प्राइवेट संगठन भागीदार हैं ।

केन्द्रीय विद्यालयों के साथ सम्बद्ध प्राथमिक कक्षाएँ एवं केन्द्र शासित प्रदेशों के प्राथमिक विद्यालय केन्द्र सरकार द्वारा संचालित व नियंत्रित होते हैं । सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था, केन्द्र की तथा केन्द्र सरकार के अभिकरणों की होती है ।

राज्यों में प्राथमिक विद्यालय राज्य सरकारों द्वारा चलाये जाते हैं जहाँ स्थानीय निकायों का गठन हो चुका है, वहाँ शहरी क्षेत्र के सरकारी स्कूल राज्य सरकारों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय निकायों- जिला परिषद् एवं पंचायत समितियों द्वारा संचालित किए हैं ।

प्राइवेट संगठनों द्वारा संचालित प्राथमिक शिक्षा के विद्यालय अधिकांशत: शहरों में हैं । मान्यता प्राप्त प्राइवेट विद्यालय सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकें अपनाते हैं ।

(स) माध्यमिक शिक्षा स्तर का शैक्षिक प्रबन्ध

देश के अधिकांश राज्यों में 10+2 का शिक्षा ढाँचा प्रचलित है । स्तर पर केन्द्रशासित प्रदेशों एवं केन्द्रीय व नवोदय विद्यालयों में केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड शैक्षिक नियंत्रण होता है तथा वही पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें एवं परीक्षा प्रणाली का निर्धारण करता है । द्वारा संचालित विद्यालयों को छोड़कर शेष विद्यालयों पर संबंधित राज्यों के शिक्षा विभाग का प्रशासनिक नियंत्रण होता है ।

सभी राज्यों में माध्यमिक स्तर की शिक्षा की परीक्षा प्रत्येक राज्य से, गठित स्वयत्तशासी माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा कक्षा 10 व कक्षा 12 के अन्त में ली जाती है । माध्यमिक । शिक्षा बोर्ड ही इस स्तर के लिए पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों एवं परीक्षा प्रणाली का निर्धारण करता है । इस स्तर के स्कूलों की अकादमिक मान्यता भी बोर्ड द्वारा ही दी जाती है । कई राज्यों में इस स्तर पर द्वारा भी शिक्षा सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती है ।

(द) उच्च शिक्षा स्तर का प्रबन्ध

उच्च शिक्षा के महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों / संस्थानों में शैक्षिक नियंत्रण, सम्बन्धित विश्वविद्यालयों का होता है । ये इस मामले में स्वायत्तशासी संस्थाएँ हैं । देश में प्रमुखत: दो प्रकार के विश्वविद्यालय हैं - अकादमिक, व्यावसायिक एवं तकनीकी ।

विश्वविद्यालयों के शैक्षिक एवं भौतिक उन्नयन में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) योगदान देता है तथा वही स्तर का निर्धारण करता है एवं मान्यता प्रदान करता है । इन पर राज्य सरकारों का प्रशासनिक नियंत्रण रहता है । आन्तरिक प्रशासन एवं प्रबन्धन के मामलों में ये पूर्णत: स्वायत होते हैं ।

20.5 शिक्षा पर किसका अधिकार हो (Who Should Control Education ?)

संवैधानिक निर्देशों ने एक यह विवाद भी खड़ा कर दिया है कि शिक्षा पर किसका, कितना नियंत्रण उचित है ? शिक्षा राज्य अथवा केन्द्र का विषय हो या दोनों की समन्वित सहभागिता हो? इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66) का यह मानना है कि संविधान निर्माताओं ने राज्य और केन्द्र के सम्बन्ध देश के भौगोलिक विस्तार को देखते हुए उचित ही रखे हैं परन्तु समवर्ती सूची में लाने के खतरे की ओर भी इंगित किया है । ..... भारत जैसे विशाल देश के लिए जहाँ राज्यों को उनकी आवश्यकतानुसार शिक्षा व्यवस्था व परीक्षण की स्वतंत्रता आवश्यक है वहाँ केन्द्र के नेतृत्व की भी आवश्यकता है ताकि समग्र देश की शिक्षा को एक कड़ी के रूप में पिरोया जा सके व शिक्षा के राष्ट्रीय लक्ष्यों को पूरा किया जा सके परन्तु एक खतरा यह अवश्य है कि समवर्ती सूची में शिक्षा के आने पर अनावश्यक केन्द्र का हस्तक्षेप बढ़ सकता है ।"

स्व मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. भारत में शिक्षा के समवर्ती सूची में आने का क्या प्रभाव हुआ ?
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अनुसार शैक्षिक प्रशासन की सिफारिशों को स्पष्ट कीजिए
3. भारत में शैक्षिक प्रशासन की संरचना को स्पष्ट कीजिए ।
4. ''शिक्षा पर अधिकार एक विवाद का विषय रहा है'' इस पर अपने विचार तर्क सहित दीजिए ।

20.6 भारत में शैक्षिक प्रबन्ध के अभिकरण (Agencies of Educational Management)

भारत में शिक्षा प्रबन्ध को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं-

(1) केन्द्रीय शिक्षा प्रबन्ध
(2) राज्य शैक्षिक प्रबन्ध
(3) स्वायत्त संस्थाओं का प्रबन्ध
(4) निजी संस्थाओं का प्रबन्ध

शिक्षा व्यवस्था अपने आप में एक विज्ञापन है । इसके अन्तर्गत शिक्षा प्रबन्ध करने वाली सभी संस्थाएँ आती हैं वे संस्थायें सरकारी तथा गैर सरकारी श्रेणियों में विभक्त की जाती हैं -

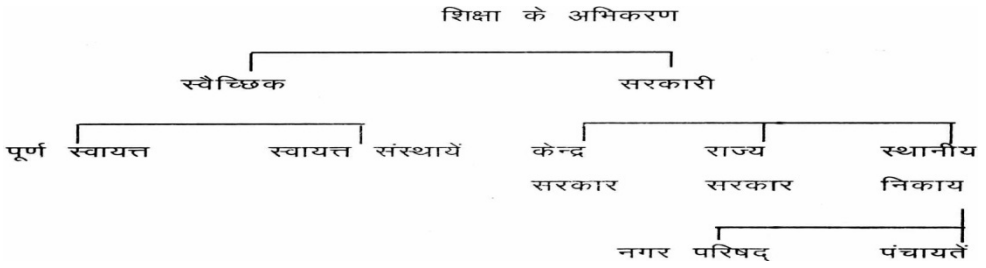

20.6.1 केंद्र स्तरीय शिक्षा प्रबन्धन

सन् 1977 में शिक्षा को समवर्ती सूची में लाया गया । भारतीय संविधान के आधार पर केन्द्रीय सरकार की शिक्षा सम्बन्धी भूमिका को निम्नलिखित कार्यों द्वारा स्पष्ट किया गया-

1. राष्ट्रीय महत्त्व की संस्थाओं का प्रशासन, नियंत्रण एवं वित्तीय पोषण ।
2. केन्द्रीय विश्वविद्यालयों का वित्तीय पोषण तथा निरीक्षण
3. उच्च शिक्षा, अनुसंधान, वैज्ञानिक व तकनीकी शिक्षा का समन्वय तथा उनके स्तर का निर्धारण
4. निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के संकल्प की प्राप्ति हेतु प्रयास ।
5. प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा में समन्वय करना ।
6. उच्च शिक्षा हेतु छात्रवृत्तियों का प्रबन्ध

7. अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों जैसे यूनेस्को (UNESCO) के साथ करना ।
8. अल्पसंख्यकों की संस्कृति का संरक्षण तथा अनुसूचित जातियों जनजातियों की शिक्षा के लिए प्रावधान करने में सहायता देना ।
9. हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का विकास करना ।
10. संघीय भू-भागों में शिक्षा का वित्त प्रबन्ध, निर्देशन और नियंत्रण करना ।

शिक्षा में केन्द्र सरकार की भूमिका नेतृत्व प्रदान करने, शिक्षा के विस्तार और सुधार में राज्यों और गैर सरकारी निकायों की सहायता करने, उच्च शिक्षा, अनुसंधान, वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा के स्तर को बनाये रखने, संघीय भू-भागों में शिक्षा का प्रशासन, विस्तार और सुधार करने तथा राष्ट्रीय संस्कृति की सुरक्षा करने तक सीमित है ।

पहले केन्द्र में शिक्षा मंत्रालय था जिसका उत्तरदायित्व शिक्षामंत्री को दिया जाता था, परन्तु सन् 1985 में 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' (Ministry of Human Resource Development-MHRD) नामक एक नये मंत्रालय का सर्जन किया गया जिसमे निम्नांकित पांच रखे गए हैं -

1. शिक्षा विभाग (Department of Education)
2. संस्कृति विभाग (Department of Culture)
3. कला विभाग (Department of Art)
4. युवा मामले एवं खेल विभाग (Department of youth Affairs and Sports)
5. महिला एवं बाल विभाग (Department of Women-Child Care)

शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र सरकार की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती है । वह राज्यों को शिक्षा के क्षेत्र में आवश्यक परामर्श देती है तथा उनका मार्गदर्शन करती है । शैक्षिक विकास की योजनायें बनाने तथा उनके क्रियान्वयन में केन्द्र महत्त्वपूर्ण योगदान करता है । मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा गठित विभिन्न निकायें भारत सरकार को अपने शैक्षिक दायित्वों की भूमिका करने में सहायता करती हैं । इनमें से कुछ महत्वपूर्ण निम्न हैं -

1. केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् (Central Advisory Board of Education,CAB)
2. अखिल भारतीय प्रारम्भिक शिक्षा परिषद् (All India Council for Elementary Education)
3. अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् (All India council for Secondary Education)
4. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission)
5. अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा परिषद् (All India Council for Technical Education)
6. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (National Council for Educational Research and Training)

7. केन्द्रीय समाज कल्याण मंडल (Central Social Welfare Board)
8. राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन तथा प्रशासन (National University of Education Planning and Administration)
9. राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (National Council for teacher Education)
10. राष्ट्रीय ग्रामीण उच्च शिक्षा परिषद् (National Council for Rural Higher Education)

(i) शिक्षा का केन्द्रीय प्रशासनिक तंत्र (Central Administrative Machinery of Education)

मानव संसाधन विकास मंत्रालय का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विभाग शिक्षा-विभाग है । इस विभाग का प्रशासकीय तंत्र निम्न प्रकार से चलता है-

मानव संसाधन विकास मंत्रालय

(The Ministry of Human Resource Development(MHRD)

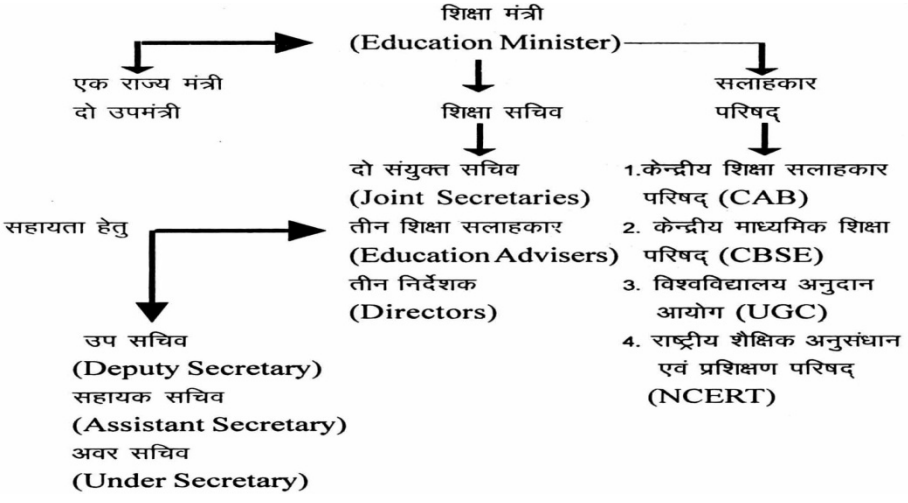

शिक्षा (The Minister of Education)

शिक्षामंत्री संसद के किसी भी सदन में चुना हुआ व्यक्ति होता है । इसका चुनाव प्रधानमंत्री के द्वारा तथा नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है । वह संसद के प्रति उत्तरदायी होता है मंत्रालय का अधिशासी अध्यक्ष होता है । उसकी सहायता के लिए एक राज्य मंत्री और दो उपमंत्री हैं । उनकी एवं शिक्षा सचिव की सहायता से वह नीतियाँ निर्धारित करता है और विभिन्न सलाह का परिषदों द्वारा दिये गए सुझावों के आधार पर निर्णय लेता है । वह बजट के ढाँचे (Framework) के अनुरूप अनुदान वितरण भी करता है ।

शिक्षा सचिव (The Education Secretary)

यह मंत्रालय का प्रशासनिक अध्यक्ष होता है । यह मंत्रालय की विभिन्न क्रियाओं और प्रभागों **(Divisions)** का सामान्य निरीक्षण करता है एवं उन पर नियंत्रण रखता है । इसकी सहायता के लिए दो संयुक्त सचिव **(Joint Secretaries)**, तीन शिक्षा सलाहकार **(Education**

Advisers) तथा तीन निर्देशक **(Directors)** होते हैं । इनकी संख्या में समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है ।

शिक्षा सलाहकार (The Education Advisers)

ये मंत्रालय के विभिन्न प्रभागों का भार **(charge)** संभालते हैं । ये संयुक्त सचिव की श्रेणी के होते हैं । अपने सम्बन्धित प्रभागों के कार्य का समन्वयन करने के अतिरिक्त वे सलाहकार परिषदों के साथ सम्बन्धित होते हैं । इनका कार्य सचिव के माध्यम से मंत्री को शैक्षिक मामलों में सुझाव देना होता है ।

सलाहकारों की सहायता के लिए अनेक उप सचिव **(Deputy Secretary),** सहायक सचिव **(Assistant Secretary)** और अवर सचिव **(Under Secretary)** होते हैं जो अपने से संबंधित विषयों का पदभार संभालते हैं । इस श्रेणी में उप-शिक्षा सलाहकार **(Deputy-Education Advisers)** भी आते हैं ।

सम्बद्ध और अधीनस्थ कार्यालय

शिक्षा मंत्रालय के अधीन अनेक सम्बद्ध और अधीनस्थ कार्यालय होते हैं । इन कार्यालयों के माध्यम से मंत्रालय की नीतियाँ और क्रियाएँ संचालित होती हैं । ये कार्यालय नीतियों, सरकार के निर्णयों और कार्यक्रमों के विस्तृत क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी होते हैं ।

(ii) केन्द्रीय सरकार की कुछ सलाहकार परिषदें

(Some Advisery Bodies of the Central Government)

(1) केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् (The Central Advisery Board of Education-CABE)

राष्ट्रीय शैक्षिक विकास में प्रमुख भूमिका निभाने वाली सबसे पुरानी संस्था 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' है । सन् 1921 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् की स्थापना कर दी गई तथा इसे मुख्य रूप से निम्नलिखित कार्य दिए गए -

1. उन शैक्षिक प्रश्नों पर सुझाव देना जो भारत सरकार या किसी स्थानीय सरकार द्वारा इसके पास विचारार्थ भेजे जाते हैं ।
2. भारत के लिए विशेष हित एवं मूल्य के शैक्षिक विकास से संबंधित सूचनाओं की माँग करना और सुझाव देना, इन सूचनाओं का परीक्षण और मूल्यांकन करना तथा भारत सरकार और स्थानीय सरकार को संस्तुतियाँ देना, किन्तु परिषद की संस्तुतियाँ केवल सुझाव हेतु हैं । सरकार इन्हें मानने के लिए बाध्य नहीं है ।

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् की वर्तमान रचना निम्नानुसार है-

- अध्यक्ष – केन्द्रीय शिक्षा मंत्री
- भारत सरकार के – राज्य के सभी मंत्री और केन्द्र में
- प्रतिनिधि – मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा उपमंत्री
- राज्य सरकारों के प्रतिनिधि – प्रत्येक राज्य के शिक्षामंत्री और प्रत्येक संघीय राज्य क्षेत्रों से एक प्रतिनिधि
- संसद के छः चुने हुए – दो राज्यसभा तथा दो लोकसभा से

सदस्य

- अन्तर्विश्वविद्यालय परिषद् से दो सदस्य
- ऑल इण्डिया तकनीकी शिक्षा परिषद् से दो सदस्य
- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् से एक प्रतिनिधि
- सोलह भूतपूर्व सरकारी सदस्य जैसे – विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष, नियोजन
- आयोग के शिक्षा सदस्य आदि ।
- भारत सरकार द्वारा मनोनीत सोलह शिक्षाशास्त्री
- भारत सरकार का सदस्य सचिव - शैक्षिक सलाहकार

भूतपूर्व सरकारी सदस्यों के अलावा सभी सदस्यों की कार्य अवधि - तीन वर्ष के लिए होती है । भारत सरकार का शिक्षा सचिव, सदस्य सचिव की सहायता से कार्य सूची तैयार करता है ।

(2) केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् (Central Board of Secondary Education- CBSE)

CBSE. की स्थापना उन विद्यार्थियों की शैक्षिक आवश्यकताओं पर ध्यान देने के लिए हुई थी जिन्हें स्थानान्तरण के कारण एक राज्य से दूसरे राज्य में जाना पड़ता है । यह शिक्षा के स्तर को विशेष रूप से माध्यमिक शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने, पाठ्यक्रम, पाठ्य-पुस्तकों, शिक्षण विधि और मूल्यांकन के सुधार में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है ।

यह परिषद केन्द्रीय विद्यालय के उच्च माध्यमिक परीक्षा एवं उच्च माध्यमिक तकनीकी परीक्षा कराता है । इसके अलावा परीक्षा सुधार तथा सम्बद्ध विद्यालयों के अध्यापकों के लिए अभिविन्यास पाठ्यक्रम भी आयोजित कराता है ।

(3) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission - UGC)

सन् 1953 में यू.जी.सी. की स्थापना विश्वविद्यालयों को निधि के आवंटन (allocation). और संवितर (disbursement) के हेतु तथा 1956 में संसद के एक अधिनियम द्वारा गठित संवैधानिक निकाय के समन्वयन और अनुरक्षण के उद्देश्य से हुई थी ।

यू. जी. सी. में भारत सरकार द्वारा नियुक्त नौ सदस्य होते हैं । इनमें से विश्वविद्यालयों के कुलपति (तीन तक), दो भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिकारी, शेष प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री तथा उच्च शैक्षणिक योग्यता के व्यक्ति होते हैं । इसका अध्यक्ष सरकार द्वारा मनोनीत गैर सरकारी व्यक्ति होता है । आयोग का मुख्यालय दिल्ली में स्थित है । आयोग के मुख्य दायित्व निम्न हैं -

1. उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार को परामर्श देना ।
2. विश्वविद्यालयों तथा सम्बन्धित महाविद्यालयों में उच्च शिक्षा के स्तर को बनाये रखना ।
3. विश्वविद्यालयों तथा सम्बन्धित महाविद्यालयों को विकास के लिए अनुदान देना ।
4. विश्वविद्यालयों से विभिन्न सूचनायें संकलित करना ।
5. नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना तथा पुराने विश्वविद्यालयों के विस्तार के संबंध में अपना मत व्यक्त करना ।

आयोग द्वारा गठित समितियाँ तथा कार्यदल समय-समय पर विश्वविद्यालयों महाविद्यालयों एवं अन्य शिक्षा संस्थानों का निरीक्षण करती रहती हैं तथा इनके आन्तरिक विकास के लिए अनुदान प्रदान करने की सिफारिश करती है । आयोग समय-समय पर अध्यापकों के लिए विशेष सेवाकालीन पाठ्यक्रमों की व्यवस्था भी करता रहता है । यह उच्च शिक्षा के विभिन्न पक्षों जैसे- परीक्षा सुधार, पाठ्यक्रम निर्माण, अनुसंधान आदि के सम्बन्ध में गोष्ठियाँ आदि भी आयोजित करता है ।

(4) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (National Council of Educational Research and Training - NCERT)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना एक सितम्बर 1961 को भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा की गई थी । इसकी स्थापना का मूल उद्देश्य स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास करना है । यह एक स्वायत्त तथा पूर्णरूप से केन्द्र सरकार द्वारा घोषित संस्था है । विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार को सहयोग एवं परामर्श देना, इसका मुख्य कार्य है जिससे शिक्षा सम्बन्धी नीतियों एवं कार्यक्रमों निर्धारण एवं क्रियान्वयन समुचित ढंग से हो सके ।

एन.सी.ई.आर.टी. की रचना (Composition of NCERT)

परिषद् का वास्तविक नियंत्रण मुख्य रूप से इसके सामान्य निकाय (General Body) व कार्यकारिणी समिति (Executive Committee) के अधीन रहता है ।

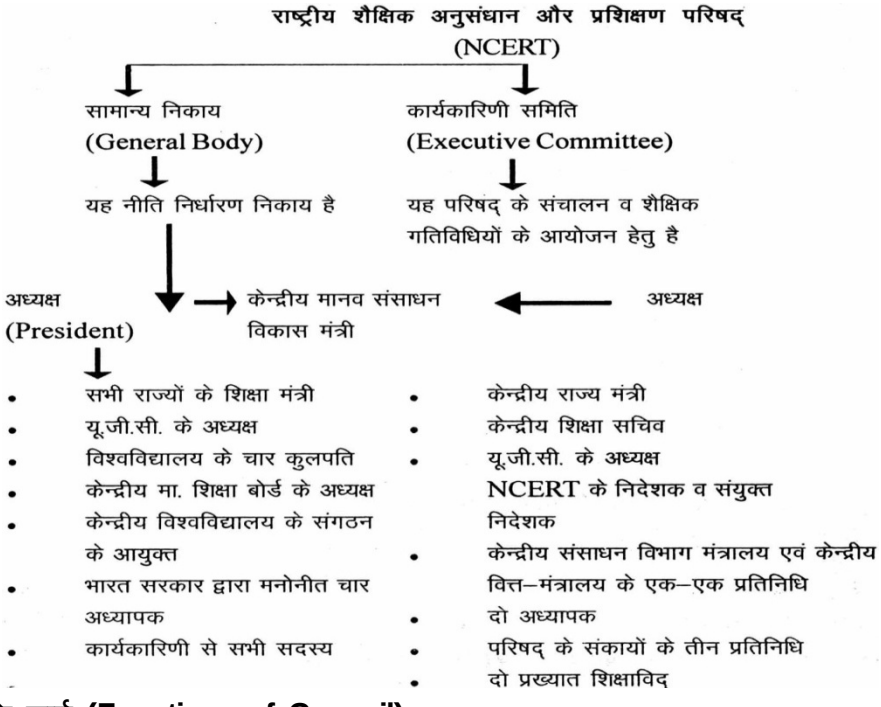

परिषद् के कार्य (Functions of Council)

एन.सी.ई.आर.टी. के मुख्य कार्य निम्न हैं :-

1. शिक्षा की सभी शाखाओं में अनुसंधान कार्य करना, अनुसंधान कार्य में सहायता करना तथा इसमें समन्वय करना ।
2. सेवारत एवं सेवापूर्व अध्यापक प्रशिक्षण के उच्च स्तरीय कार्यक्रम चलाना ।
3. विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में नीतियों और कार्यक्रमों के निर्माण और क्रियान्वयन में मंत्रालय की सहायता करना ।
4. शिक्षण की उन्नत तकनीकों व नवाचारों को बढ़ावा देना ।
5. शैक्षिक सूचनाओं को संकलित व सम्पादित करना तथा पुस्तकों, आवधिक पत्रिकाओं तथा शैक्षणिक साहित्य का प्रकाशन करना ।

(5) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (National Council for Teacher Education - NCTE)

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE) की स्थापना 1999 में की गई थी । इसका उद्देश्य समग्र देश में नियोजित व समन्वित तरीके से अध्यापक शिक्षा के विकास के साथ ही समग्र देश में उचित अध्यापक शिक्षा सम्बन्धी नियमों व मानकों की स्थापना करना भी था । इसके अन्तर्गत अध्यापक शिक्षा सम्बन्धी सभी क्षेत्र व अनुसंधान जो पूर्व प्राथमिक शिक्षा से लेकर माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक शिक्षा तक हैं, आते हैं । इसमें प्रौढ़ शिक्षा एवं पत्राचार शिक्षा के क्षेत्र भी सम्मिलित हैं । राष्ट्रीय स्तर पर, अध्यापक शिक्षा के लिए चार प्रादेशिक समितियाँ भी गठित की गई हैं ।

ये क्षेत्रीय समितियाँ शिक्षण-प्रशिक्षण सम्बन्धी मान्यता देने के लिए हैं । ये प्रशिक्षण संस्थानों, राज्य सरकारों एवं विश्वविद्यालय से निकट सम्बन्ध रखती हैं । इसके अन्य कार्य-सम्बन्धित प्रशिक्षण संस्थानों का निरीक्षण पाठ्यक्रम विकास, व्यावसायिक दक्षता सम्मिलित है। इनके दो विभाग हैं - प्रशासकीय कार्य विभाग तथा अकादमिक कार्य विभाग ।

अध्यापक शिक्षा परिषद् के कार्य इस प्रकार हैं -

1. अध्यापक शिक्षा के संदर्भ में अध्ययन व सर्वेक्षण कराना तथा उनका प्रकाशन कराना ।
2. अध्यापक शिक्षा के संदर्भ में उपयुक्त योजनाएँ तथा कार्यक्रम तैयार व राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों, यू.जी.सी. को उनकी क्रियान्विति के लिए अनुशंसा करना ।
3. अध्यापकों की योग्यता, अध्यापक शिक्षा में प्रवेशार्थ बी.एड, एस.टी.सी., शारीरिक शिक्षा आदि के लिए प्रवेश योग्यता का निर्धारण करना ।
4. अध्यापक शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में नवीन प्रयोगों व अनुसंधानों को कराना ? तथा उन्हें लागू कराना ।
5. संस्थाओं के लिए निर्धारित मानदण्डों का समय-समय पर आंकलन करना व उनकी जवाबदेही तय करना ।
6. केन्द्रीय सरकार द्वारा अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में प्रदत्त कार्यक्रमों को लागू करना ।

(6) राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (National University of Educational Planning and Administration)

यह विश्वविद्यालय देश के संस्थानों तथा देश के पड़ौसी देशों के शैक्षिक योजना और प्रशासन से सम्बन्धित व्यक्तियों, अधिकारियों के लिए विभिन्न प्रशिक्षण, अनुस्थापन कार्यक्रम आयोजित करता है । इनमें राज्यों के निदेशकों, उप-निदेशकों, जिला शिक्षा अधिकारियों के योजना निर्माण तथा प्रशिक्षण के साथ-साथ महाविद्यालय के प्राचार्यों का भी अभिविन्यास किया जाता है । अनुसंधानों को बढ़ावा देने के दृष्टिकोण से संस्थान में विभिन्न विभागों के माध्यम से देश की शैक्षिक समस्याओं पर अनुसंधान किए जाते हैं तथा प्रत्येक राज्य के शैक्षिक प्रशासन के सर्वेक्षण का प्रकाशन भी कराया जाता है । इसके अलावा देश के राज्यों, संघ शासित प्रदेशों के शैक्षिक, प्रशासनिक एवं प्रबन्धकीय समस्याओं पर मार्गदर्शन भी करता है ।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् अपने आठ संघटकों (Constituents) के माध्यम से अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करती है । इन आठ संघटकों के अतिरिक्त देश के विभिन्न राज्यों में NCERT ने क्षेत्रीय सलाहकारों की भी नियुक्ति की है । क्षेत्रीय सलाहकारों को प्राय: राज्य की राजधानी में स्थापित किया गया है । ये क्षेत्रीय सलाहकार अपने सम्बन्धित राज्य के शिक्षा अधिकारियों के सम्पर्क में रहते हैं तथा उन्हें परिषद् के क्रियाकलापों से अवगत कराते हैं । वे राज्य की शैक्षिक आवश्यकताओं की सूचना परिषद को देते हैं जिससे तदनुसार शैक्षिक कार्यक्रमों का विकास किया जा सके ।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के आठ संघटक निम्न हैं :-

1. राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली
   (National Institute of Education - NIE)
2. केन्द्रीय शिक्षा तकनीकी संस्थान, नई दिल्ली
   (Central Institute of Educational Technology -CIET)
3. केन्द्रीय व्यावसायिक शिक्षा संस्थान, भोपाल
   (Central Institute of Vocational Education)
4. क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, अजमेर
   (Regional Institute of Education-RIE)
5. क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल
6. क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भुवनेश्वर
7. क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, मैसूर
8. क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, शिलांग

राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान (NIE) का मुख्य कार्य शोध करना, अध्यापकों, शिक्षक अध्यापकों तथा अन्य प्रशिक्षण कार्यक्रम, सेमिनार, कार्यशाला का आयोजन करना है । साथ ही यह अनुसंधान परिणामों, प्रसार कार्यक्रमों, सरकारी नीतियों तथा शैक्षिक विकास से संबंधित विभिन्न सूचनाओं के संकलन व प्रसार का कार्य भी करता है । NIE अपने विभिन्न विभागों एवं अनुभागों के माध्यम से राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् की सहायता एवं अपने कार्यों का निर्वहन करता है ।

(7) अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा परिषद्

इस परिषद् की स्थापना संविधान के निर्देश 45वीं धारा 1 की आपूर्ति के लिए 1957 को हुई । इस परिषद् का उद्देश्य 14 वर्ष तक के बालकों को अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा के लिए आवश्यक कदम उठाना था । परिषद् के कार्य इस प्रकार हैं :-

1. प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में सभी क्षेत्रों में केन्द्र, राज्यों एवं अन्य स्वायत्त संस्थाओं को सलाह देना ।
2. प्राथमिक शिक्षा की प्रशासनिक, वित्तीय तथा शैक्षिक समस्याओं पर अनुसंधानों का आयोजन तथा सहयोग करना व इसके निष्कर्ष प्रकाशित करना ।
3. प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी सर्वेक्षण करना तथा प्रकाशन करना ।
4. संविधान की 45वीं धारा के निर्देशों को पूरा करने के लिए कार्यक्रम तैयार करना तथा इनका पुनरावलोकन करते रहना ।
5. केन्द्रीय सरकार को प्राथमिक तथा अनिवार्य शिक्षा के विकास, समन्वय आदि के लिए सलाह देना ।
6. प्रत्येक राज्य में प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिए विस्तृत कार्यक्रम तैयार करना तथा इस सम्बन्ध में आवश्यक मार्गदर्शन करना ।

(8) अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद्

इस परिषद् की स्थापना 1956 में माध्यमिक शिक्षा में गुणात्मक व धनात्मक अभिवृद्धि के उद्देश्य हेतु की गई । माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं पर विचार करना तथा उनके समाधान राज्य सरकारों को अवगत कराना भी इस परिषद् का प्रमुख कार्य है ।

इसके कुल सदस्यों की संख्या 22 है तथा इसका अध्यक्ष भारत सरकार का शिक्षा परामर्शदाता होता है।

20.6.2 राज्य स्तरीय शिक्षा प्रबन्धन

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान में राज्यों, को कुछ अपवादों जैसे - केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, शान्ति निकेतन आदि केन्द्रीय सरकार द्वारा वित्त प्रदत्त विज्ञान और तकनीकी शिक्षा संस्थाओं, व्यावसायिक शिक्षा संस्थाओं, वैज्ञानिक अनुसंधानों को छोड़कर सभी स्तरों पर शिक्षा का उत्तरदायित्व सौंपा गया । संविधान के 45वें अनुच्छेद में राज्यों के लिए निर्देश हैं कि वे इस अनुसंधान के लागू होने के बद दस वर्ष की अवधि में सभी बालकों के लिए जब तक कि वे चौदह वर्ष की आयु पूरी न कर लें, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करें।

विगत कुछ वर्षों से केन्द्र और राज्यों के मध्य घनिष्ठ सहयोग की प्रवृत्ति बढ़ी। है । केन्द्र राज्यों को अधिक से अधिक वित्त देने की स्थिति में है, पर आधुनिक रूप में शिक्षा और शैक्षिक सुधार तथा शिक्षा के पुनर्गठन के सम्बन्ध में पहल राज्यों पर ही निर्भर करती है ।

राज्य के विस्तार तथा विद्यालयों की संख्या के आधार पर राज्य प्रशासन और पर्यवेक्षण के कार्यो को निम्नानुसार बाँटा जा सकता है -

	विद्यालय के प्रकार	प्रशासन एवं पर्यवेक्षण
1.	प्राथमिक विद्यालय	ब्लॉक / पंचायत समिति
2.	उच्च प्राथमिक विद्यालय	जिला शिक्षा अधिकारी
3.	माध्यमिक विद्यालय जिला	शिक्षा अधिकारी / उप निदेशक
4.	उच्च माध्यमिक विद्यालय	जिला विद्यालय निरीक्षक

राज्य स्तरीय शिक्षा की प्रशासनिक अधिकृतियों और शिक्षा स्तर, निम्नानुसार प्रदर्शित किया जा सकता है - राज्य स्तरीय शिक्षा प्रशासन

अधिकारी	स्तर	कार्य
1. शिक्षामंत्री	राज्य स्तर	राज्य स्तरीय नीति निर्धारण का कार्य
2. शिक्षा सचिव	राज्य स्तर	राज्य शिक्षा नीतियों की क्रियान्विति
3. शिक्षा निदेशक	राज्य स्तर	कार्यकारी स्तर
4. शिक्षा उपनिदेशक	संभागीय स्तर	
5. जिला शिक्षा अधिकारी	जिला स्तर	
6. प्रधानाध्यापक, प्रधानाचार्य	विद्यालय स्तर	
7. जिला विस्तार अधिकारी (जिला परिषद्)	पंचायत समिति स्तर	

(i) शिक्षा में राज्य का प्रशासनिक तंत्र (State Administrative Machinery of Education)

राज्य में शैक्षिक प्रशासन की मशीनरी में शिक्षा विभाग (Department of Education) होता है जिसका अध्यक्ष मंत्री होता है जो विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होते हैं जिसकी नियुक्ति मुख्यमंत्री द्वारा की जाती है । मंत्री अपने अधिकारों का प्रयोग अपने विभाग तथा अन्य अभिकरणों के अफसरों जैसे- विश्वविद्यालय साविधिक परिषद् आदि के माध्यम से करता है । इसकी सहायता के लिए सचिवालय के स्तर पर शिक्षा सचिव और शिक्षा निदेशक होते हैं । इसे निम्न रेखाचित्र द्वारा समझा जा सकता है-

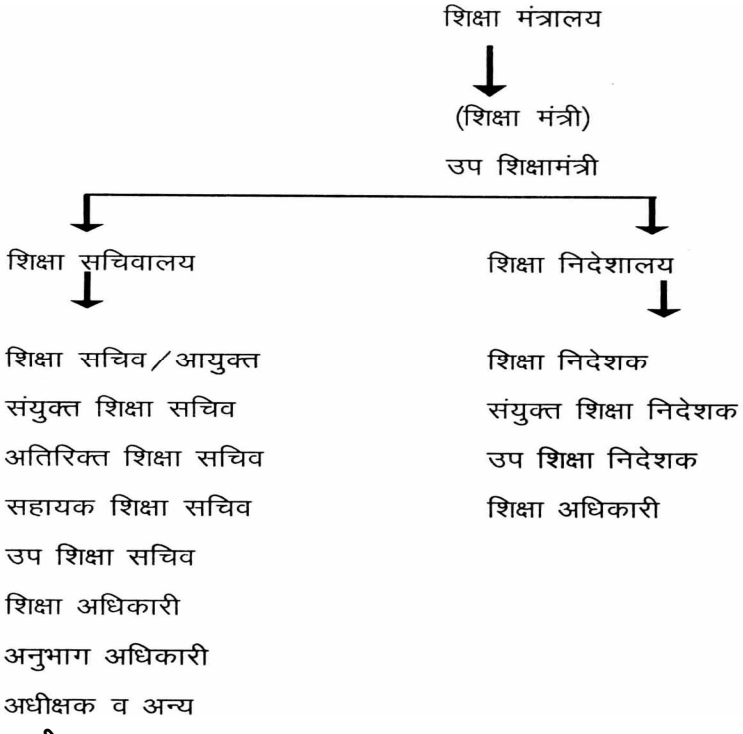

(1) राज्यीय स्तर

शिक्षामंत्री अपने समस्त कार्यो को दो राज्य स्तरीय अभिकरणों के माध्यम से करता है-

1. शिक्षा सचिवालय
2. शिक्षा निदेशालय

शिक्षा सचिवालय का मुख्य कार्य राज्य की शिक्षा नीतियों का निर्माण करना तथा उनके अनुसरण का प्रयास करना है । शिक्षा सचिव इसका सर्वोच्च अधिकारी होता है जो एक अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा (143) का अधिकारी होता है ।

शिक्षा निदेशालय का कार्य शैक्षिक व्यवस्था का क्रियान्वयन करना है । यह सचिवालय और विद्यालयों के बीच मध्यस्थ की भूमिका का निर्वहन करता है । शिक्षा प्रगति, नीतियों, शैक्षिक आवश्यकताओं व शैक्षिक कार्यक्रमों के बारे में प्राप्त जन-विचारों को भी सरकार के पास पहुँचाता है । शिक्षा निदेशक राज्य का सबसे उच्च शिक्षा अधिकारी है । राज्य में शिक्षा की क्रियान्विति के सम्बन्ध में वह मुख्य कार्यपालिका शक्ति है । वह राज्य की प्राथमिक, माध्यमिक शिक्षा के विकास के लिए उत्तरदायी होता है ।

(2) क्षेत्रीय या वृत स्तर

शिक्षा के सुचारू प्रबन्धन के लिए समस्त राज्य को विभिन्न मण्डलों (संभागों) में या वृत्तों में बाँट दिया जाता है । प्रत्येक मण्डल का एक उप-निदेशक होता है । अनेक राज्यों में उप निदेशक के स्थान पर डिविजनल इन्सपेक्टर या सुपरिण्टेण्डेन्ट कार्य करता है । ये अधिकारी अपने मंडल के शिक्षा प्रशासन के लिए उत्तरदायी होते हैं ।

(3) जिला स्तर

जिला स्तर पर शिक्षा का सर्वोच्च अधिकारी जिला शिक्षा अधिकारी होता है । इसे जिला निरीक्षक भी कहते हैं । यह जिले के समस्त विद्यालयों की प्रशासन एवं पर्यवेक्षण व्यवस्था को देखता है । इसके अधीन उप-शिक्षा अधिकारी व जिला प्राथमिक शिक्षा अधिकारी भी होते हैं ।

(4) जिला परिषद्

जिला परिषद् द्वारा नियंत्रित पंचायत समिति के लिए उप-जिला अधिकारी या उप-शिक्षा निरीक्षक तथा उसके अधीन सहायक उप शिक्षा अधिकारी या शिक्षा विस्तार अधिकारी होते हैं ।

(5) ब्लॉक पंचायत स्तर,

ब्लॉक पंचायत स्तर पर प्राथमिक शिक्षा के विस्तार एवं प्रगति का मूल्यांकन सहायक उप-शिक्षा अधिकारी या शिक्षा विस्तार अधिकारी करते हैं ।

शिक्षा विभाग के कार्य

शिक्षा विभाग के कार्य निम्नलिखित हैं -

1. नीतियों, प्रक्रियाओं, नियमों, परिनियमों को बनाना और स्तर को निर्धारित करना ।
2. कार्य की दक्षता के निर्धारण के लिए निरीक्षण और मूल्यांकन करना ।
3. सरकार द्वारा स्थापित विद्यालयों और महाविद्यालयों को चलाना एवं निजी संस्थाओं पर नियंत्रण रखना ।
4. पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों से संबंधित मामलों को देखना ।
5. दक्षता बढ़ाने हेतु राज्यों के शैक्षिक कार्यक्रमों का समन्वय करना
6. नियोजन एवं अनुसंधान के लिए नेतृत्व प्रदान करना ।
7. परामर्श एवं सूचना सम्बन्धी सेवा प्रदान करना । ।

राज्य का शिक्षा मंत्रालय

इस मंत्रालय का प्रमुख कार्यकारी राज्य का शिक्षामंत्री होता है जो की मंत्री परिषद् का केबिनेट स्तर का मंत्री होता है । इसके अतिरिक्त एक उपमंत्री (राज्यमंत्री) भी होता है । ये राज्य की आवश्यकतानुसार शिक्षा के विकास की नीतियाँ एवं कार्यक्रम बनाते हैं तथा उसे मंत्री परिषद से पारित करवाकर लागू कराते हैं । ये मंत्री अपने क्षेत्र के सभी प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक एवं महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के प्रशासन व पर्यवेक्षण का अधिकार रखते हैं।

शिक्षा मंत्री के कार्य (Functions of Education Minister)

शिक्षा मंत्री निम्नलिखित कार्यो को पूरा करता है -

1. राज्य में शिक्षा व्यवस्था में सुधार एवं गुणवत्ता बढ़ाने हेतु नेतृत्व प्रदान करना ।
2. संसद में शिक्षा सम्बन्धी विधेयकों को प्रस्तुत करना एवं सदस्यों द्वारा शिक्षा सम्बन्धी पूछे गए प्रश्नों के जवाब देना ।
3. राज्य में शैक्षिक विकास हेतु कार्यक्रम तैयार करना व शैक्षिक व्यवस्था का मूल्यांकन करना ।
4. शिक्षा समस्याओं के निराकरण हेतु संबंधित अधिकारियों से विचार-विमर्श करना एवं सुझाव प्राप्त करना ।

5. विद्यालयों की आवश्यकता हेतु वित्तीय व्यवस्था कराना ।

शिक्षा सचिव (Education Secretary)

शिक्षा सचिव नीतियों का निर्माण करता है तथा सरकार की ओर से आज्ञा प्राप्ति करता है । यह सामान्यतया भारतीय प्रशासनिक सेवा का व्यक्ति होता है । अत: उसमें प्राय: तकनीकी प्रशिक्षण, आवश्यक अन्तज्ञान, शैक्षिक अनुभव का अभाव पाया जाता है । वह मंत्री एवं निदेशक के बीच की कड़ी के रूप में कार्य करता है ।

शिक्षा निदेशालय (The Directorate of Education)

यह एक कार्यकारी निकाय है जिसका मुख्य कार्य सरकारी नीतियों को क्रियान्वित करना है । इसके मुख्य कार्य निम्न हैं -

1. राज्य में शैक्षिक संस्थाओं का नियंत्रण, पर्यवेक्षण, निरीक्षण करना तथा उन्हें परामर्श देना ।
2. नीति सम्बन्धी प्रस्तावों को सचिव के सम्मुख रखना तथा मंत्री द्वारा अनुमति देने पर उनको
3. कार्यान्वित करना ।
4. शिक्षा की दशाओं एवं प्रगति तथा शिक्षा सम्बन्धी व्यक्तियों की आवश्यकताओं और माँगों से
5. सरकार 'को अवगत कराना ।
6. सरकारी निधि को वितरित करना ।
7. संस्थाओं और सचिवालय दोनों को ही विद्वतापूर्ण सुझाव देना ।

शिक्षा निदेशक (The Director of Education)

शिक्षा निदेशक शिक्षा निदेशालय का सर्वोच्च अधिकारी होता है । वह सम्पूर्ण राज्य में शिक्षा के प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है । अनेक उपनिदेशक और सहायक निदेशक के सहयोग से वह अनेक कार्यो को पूरा करता है । उसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित होते हैं -

1. सरकारी अधिकारियों, निरीक्षकों, सरकारी संस्थाओं के अध्यापकों के कार्यो का पर्यवेक्षण करना और उनके अवकाश, हस्तानान्तरण और अनुशासन के मामलों को देखना ।
2. राज्य के विश्वविद्यालयों, स्थानीय निकायों तथा वैयक्तिक रूप से प्रबन्धित संस्थानों के लिए अनुदान निर्धारित करना और उसका वितरण करना ।
3. निजी संस्थानों का पर्यवेक्षण, निरीक्षण, नियंत्रण एवं निर्देशन करना ।
4. माध्यमिक शिक्षा में राज्य परिषद् के अध्यक्ष के रूप में कार्य करना तथा इस संदर्भ में आकस्मिक शक्तियों का प्रयोग करना ।
5. राज्य के विश्वविद्यालयों की कार्यकारी परिषद् के सदस्य के रूप में कार्य करना ।
6. नीतियों और प्रस्तावों को तैयार करना तथा उन्हें मंत्री की अनुमति के लिए सचिव के सम्मुख रखना ।
7. सम्पूर्ण राज्य में शिक्षा का प्रशासन देखना ।
8. प्राथमिक एवं माध्यमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना ।

निरीक्षक (Inspector)

जिला निरीक्षकों द्वारा निरीक्षक का कार्य किया जाता है वे इसकी निदेशक को करते हैं । सरकारी विद्यालयों में निरीक्षक प्रधानाचार्यों के कार्य का पर्यवेक्षण करता हैं । गैर सरकारी विद्यालयों में प्रशासन का कार्य उनकी अपनी प्रबन्ध समितियों द्वारा किया जाता है तथा निरीक्षक केवल अनुदान निर्धारित करता तथा उसकी संस्तुति करता है । विश्वविद्यालय शिक्षा में निरीक्षक की भूमिका नहीं रहती लेकिन जिला परिषदों और म्यूनिसिपल परिषदों द्वारा प्रशासित प्राथमिक शिक्षा के में वह निरीक्षक स्टाफ, उप निरीक्षक प्रदान करता है जिनके कार्य का निरीक्षण वह स्वयं करता है ।

राज्य शिक्षा परामर्शदाता मंडल

राज्य सरकार की शिक्षा संबंधी समस्याओं के समाधान हेतु राज्य शिक्षा परामर्शदाता मंडल होता है । माध्यमिक शिक्षा आयोग ने इसकी संस्तुति दी है परन्तु केवल बिहार व केरल राज्य में ही यह कार्य करता है ।

राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्

SIERT सभी राज्यों में राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषदें कार्यशील हैं । इन परिषदों का कार्य राज्य स्तर पर शिक्षा के स्वरूप में आवश्यक सुधार कर नवीन प्रयोगों व शोधकार्यों से प्राप्त निष्कर्षों का उपयोग करना होता है । यह संस्थान राज्य के प्राथमिक, माध्यमिक शिक्षा निदेशालय के शैक्षिक सलाहकार का कार्य भी करता है । इसका वित्तीय प्रबन्ध राज्य सरकार द्वारा किया जाता है ।

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड

समस्त राज्यों में शिक्षा के गुणात्मक विकास हेतु एक माध्यमिक शिक्षा बोर्ड होता है जो राज्य में परीक्षा संचालन से लेकर पाठ्यक्रम निर्धारण का कार्य करता है । पुस्तकों का प्रकाशन, कार्यशालाओं व सेमीनारों का आयोजन, विद्यालयों का निरीक्षण तथा मुक्त विद्यालयों का क्रियान्वयन इत्यादि कार्य भी माध्यमिक शिक्षा के होते हैं ।

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड का मुख्य अधिकारी बोर्ड का अध्यक्ष होता है, जिसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है । इसके अतिरिक्त शिक्षा बोर्ड का एक सचिव होता है जो प्रशासनिक गतिविधियों और अन्य क्रियाओं का संचालन करता है ।

जिला शिक्षण और प्रशिक्षण संस्थान (डाइट) (District Institute of Education and Training-DIET)

जिला स्तर पर शैक्षिक विकास एवं प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए सरकार द्वारा शिक्षण और प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना की गई है ।

उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान - (Institutes of Advanced Study in Education-IASE)

शिक्षक शिक्षा की प्रगति एवं विकास की दृष्टि से देश के विभिन्न शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में चयनित महाविद्यालयों को उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान का स्वरूप प्रदान किया गया जिनका मुख्य उद्देश्य विभिन्न प्रकार के शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना तथा संबंधित अनुसंधान कार्य करके शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योग देना है ।

अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय (College of Teacher Education-CTE)

देश में माध्यमिक स्तर के शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में गुणात्मक विकास एवं अनुसंधान हेतु शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों को अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय (CTE) का दर्जा दिया गया ।

माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा प्रस्तुत राज्य शिक्षा प्रशासन का संगठन

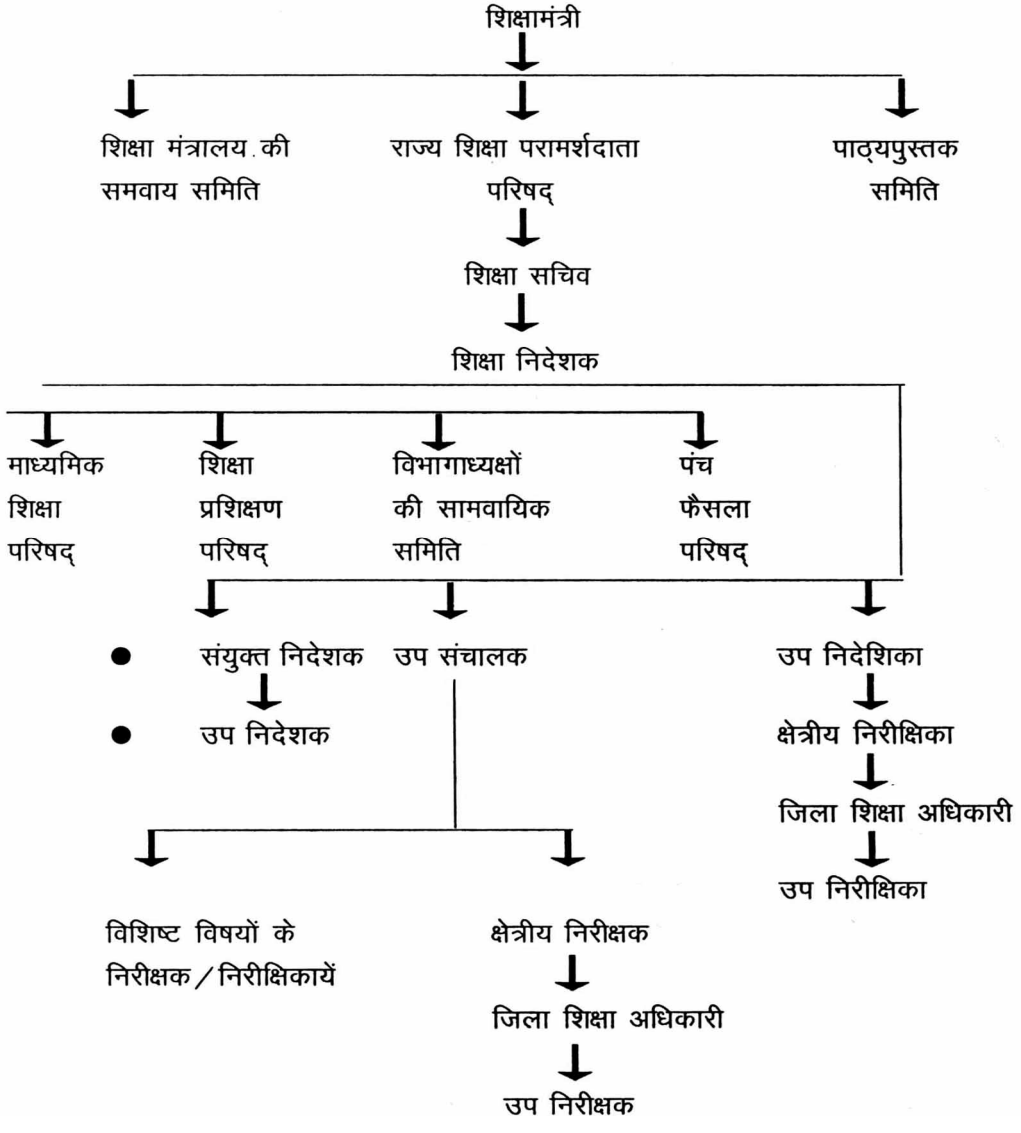

20.6.3 स्थानीय निकाय प्रबन्धन (Management of Local Bodies)

स्थानीय निकाय विशेष रूप से प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात प्राथमिक शिक्षा में स्थानीय निकायों की भूमिका अधिकाधिक क्रियाशील होती चली गई ।

सन् 1956 में राज्यों के पुनर्गठन के बाद भी देश के कुछ भागों में शिक्षा का प्रशासन राज्य सरकारों के द्वारा किया जाता है जबकि अन्य में प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व स्थानीय निकायों को सौंप दिया गया है । आसाम और जम्मु तथा कश्मीर को छोड़कर प्राथमिक शिक्षा का अधिकांश उत्तरदायित्व स्थानीय निकायों पर है ।

अधिकांश राज्यों में नगरपालिकाओं को उनके क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध करने की कानूनी सत्ता प्राप्त है । कुछ राज्यों (उ.प्र.) में नगरपालिकायें माध्यमिक विद्यालय या कॉलेज भी चलाती हैं । जिला परिषदें तथा नगरपालिकाये जैसी स्थानीय संस्थायें अपने शिक्षा विभाग द्वारा। शिक्षा का नियंत्रण करती हैं । विद्यालयों को आर्थिक सहायता देना तथा उनकी प्रबंध सम्बन्धी समस्याओं समाधान करना इनका प्रमुख दायित्व होता है । ग्रामीण क्षेत्रों में जिला परिषद्, ब्लॉक एरिया में पंचायत । समितियाँ प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध करती हैं ।

स्थानीय निकायों के शैक्षिक कार्य निम्नलिखित हैं - ।

1. शिक्षा के लिए पंचवर्षीय योजनाओं को क्रियान्वित करना ।
2. अपने क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा का संगठन और प्रबन्ध करना ।
3. आवश्यकतानुसार नये प्राथमिक विद्यालय खोलना ।
4. शैक्षणिक सर्वेक्षण करना एवं उनका रिकार्ड रखना ।
5. प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए प्रचार करना ।
6. निर्धारित नियमों तथा राज्य सरकार के विशेष निर्देशों के तहत अनिवार्य उपस्थिति को लागू करना ।
7. विद्यालयों में स्टाफ की नियुक्ति करना, उन पर आवश्यक अधिकारों का प्रयोग करना, विद्यालयों को स्थान, खेल मैदान तथा उपकरण प्रदान करना तथा उनका अनुरक्षण करना।

(i) प्रशासनिक तत्र (Administrative System)

नगरपालिकाओं और जिला परिषदों में चयनित सदस्यों की एक विद्यालय परिषद् (School Board) होती है । ये परिषद् अपने क्षेत्रों में शैक्षिक सुविधायें प्रदान करने और उनकी देखभाल करने के लिए उत्तरदायी होती हैं । बड़े क्षेत्रों में कुछ परिषदें प्रशासनिक कार्य देखने के लिए प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति करती हैं । छोटे क्षेत्रों में प्रशासनिक कार्य गैर-सरकारी अधिकारियों को सौंप दिया जाता है ।

बजट का निर्धारण नगरपालिका या जिला परिषद् के द्वारा किया जाता है लेकिन कुछ मामलों में विद्यालय परिषद् स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं । राज्य सरकार स्थानीय निकायों को अनुदान देती है । जिला परिषदों को नगरपालिका की अपेक्षा उदार अनुदान अधिक मिलता है ।

स्टाफ का चयन एक चयन समिति द्वारा किया जाता है जिसमें जिला शिक्षा अधिकारी (निरीक्षक) भी सम्मिलित है ।

राज्य सरकार अध्यापक प्रशिक्षण, पाठ्यक्रम निर्धारण और पाठ्य पुस्तक निर्माण के लिए उत्तरदायी होती है और स्थानीय निकाय उनका अनुसरण करते हैं ।

प्राथमिक विद्यालयों का निरीक्षण राज्य का उत्तरदायित्व है । इसे राज्य शिक्षा विभाग के निरीक्षक स्टाफ के द्वारा किया जाता है ।

(ii) स्थानीय संस्थाएं एवं उनकी भूमिका

पंचायत राज्य प्रारम्भ होने के साथ और जनतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की नीति के प्रारम्भ होने से स्थानीय निकाय प्राथमिक शिक्षा के अनुरक्षण और सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं । उनमें अब संगठन की त्रि-स्तरीय व्यवस्था एवं कुछ राज्यों में द्वि-स्तरीय व्यवस्था है -

1. ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत
2. ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति
3. जिला स्तर पर जिला परिषदें

जिला परिषद् -

जिला परिषदों को भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा तथा कुछ स्थानों पर माध्यमिक शिक्षा का दायित्व सौंपा गया है । राज्यों में शिक्षा प्रशासन में दो तरह की प्रशासनिक प्रणाली कार्य करती है-

1. जिला परिषद - ग्राम पंचायत या ग्राम सभा
2. जिला परिषद - 1. पंचायत समिति या क्षेत्र समिति
   2. ग्राम पंचायत

जिला परिषद् एवं नगर परिषदों के संगठन को इस चित्र द्वारा समझा जा सकता है -

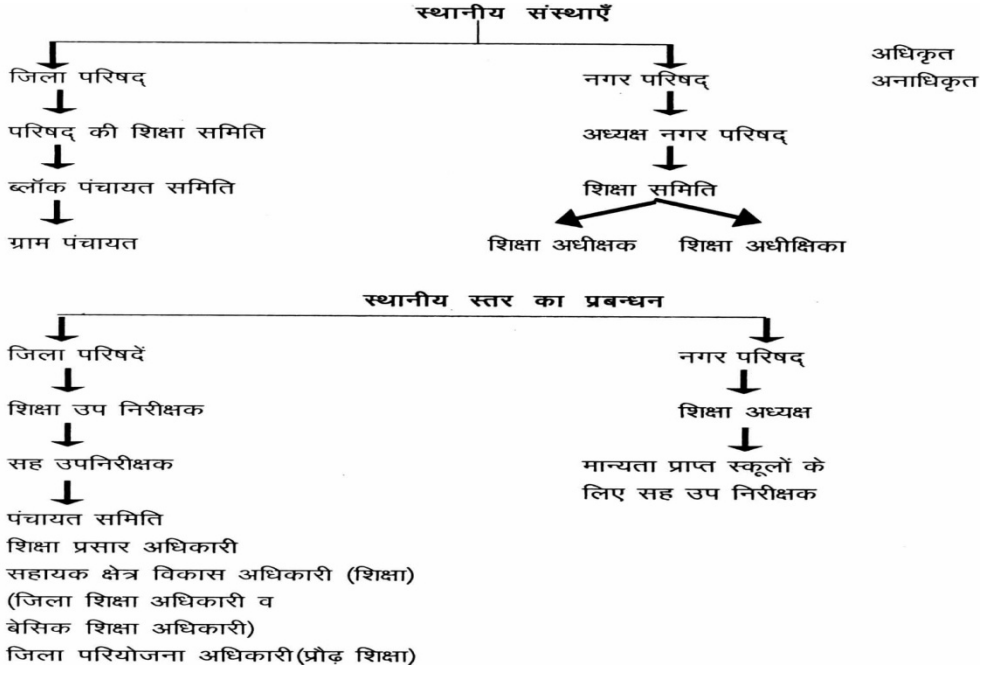

नगर परिषद् -

भारत में प्राथमिक शिक्षा के विकास में एक लाख से अधिक शैक्षिक व्यय का अधिकार रखने वाली नगर परिषदों को अधिकृत तथा एक लाख से कम शैक्षिक व्यय करने वाली; संस्थाओं को अनाधिकृत नगर परिषद् कहते हैं । अधिकृत नगर परिषदों को स्वयं की शिक्षा

समिति गठित करने का अधिकार होता है । अनाधिकृत नगर परिषदों के क्षेत्र में शैक्षिक कार्यों को अधिकृत नगरपालिकाओं द्वारा किया जाता है ।

20.6.4 वैयक्तिक अभिकरणों की भूमिका (Role of Private Agencies)

भारत में शिक्षा के क्षेत्र में वैयक्तिक अभिकरणों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही है । प्राचीन एवं मध्यकालीन समय में शैक्षिक संस्थायें पूर्णरूपेण वैयक्तिक थीं, उन्हें शासकों की ओर से भूमि तथा अनुदान प्राप्त -होते थे । 1882 की भारतीय शिक्षा समिति ने देश में शैक्षिक क्रियाओं का सर्वेक्षण कर यह संस्तुति की, कि वैयक्तिक अभिकरणों को उदार अनुदान दिया जाये जो कि शिक्षा के लिए महान् कार्य कर रहे हैं

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अनुदान नीति अत्यधिक प्रबल हो गई । सरकारी और वैयक्तिक अभिकरण सहयोग के साथ कार्य करते रहे है । माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में वैयक्तिक अभिकरणों ने विशेष रूप से सक्रियता प्रदर्शित की है ।

(i) प्रशासनिक तंत्र (Administrative System)

वैयक्तिक अभिकरण पंजीकृत निकाय होते हैं और उनकी अपने नियुक्त प्रबन्ध समितियाँ होती हैं । उन्हें सरकार की मान्यता प्राप्त करने और अनुदान प्राप्त करने के लिए कुछ अपेक्षाओं को पूरा करना होता है । वे अपने संसाधनों से भवन एवं साधन प्राप्त करते हैं तथा निर्धारित शर्तों के अनुरूप स्टाफ की नियुक्ति एवं उसका नियंत्रण करते हैं । उन्हें निर्धारित दर से शुल्क भी लेने का अधिकार है ।

वैयक्तिक अभिकरण अनेक प्रकार के हैं । विद्यालय तथा महाविद्यालय ईसाई मिशनरी, शिक्षा समिति, ट्रस्ट आदि के द्वारा चलाये जाते हैं । कुछ छोटी पंजीकृत संस्थायें भी हैं । इनके अलावा पब्लिक स्कूल भी हैं जो सरकार से बिना सहायता लिए अच्छी शिक्षा प्रदान करते हैं ।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66) प्रतिवेदन के अनुसार आज भी देश में 33.2 प्रतिशत संस्थाएँ निजी क्षेत्र में ही हैं । निजी प्रबन्ध वाले विद्यालयों में केवल 19 प्रतिशत विधार्थी ही शिक्षा ग्रहण करते हैं । इसका प्रमुख कारण यह है कि प्राथमिक शिक्षा का दायित्व राज्य सरकारों का है ।

<u>निजी अभिकरणों का प्रशासनिक संगठन</u>

(ii) निजी शिक्षण संस्थाओं के प्रकार

(अ) निजी शिक्षण संस्थाओं को उनके प्रबंध, प्रशासन की विशेषताओं के आधार पर अधोलिखित भागों में बाँटा जा सकता है

1. धार्मिक संगठनों द्वारा संचालित निजी विद्यालय
2. मिशनरी ईसाइयों द्वारा संचालित विद्यालय
3. सार्वजनिक ट्रस्ट या कारपोरेशन संगठन द्वारा संचालित विद्यालय
4. व्यक्ति विशेष द्वारा संचालित विद्यालय

(ब) मान्यता एवं अनुदान के आधार पर विद्यालयों की तीन श्रेणियाँ की जा सकती हैं-

1. अनुदानित या मान्यता प्राप्त विद्यालय
2. गैर अनुदानित मान्यता प्राप्त विद्यालय
3. गैर मान्यता प्राप्त विद्यालय

निजी शिक्षण सस्थाओं का शैक्षिक प्रबन्ध

1. धार्मिक संगठनों द्वारा संचालित विद्यालय - देश में लगभग सभी धर्मों के संगठन धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था करते हैं परन्तु सरकार धर्म-निरपेक्ष विद्यालयों को ही अनुदान तथा मान्यता दे सकती है । अत: ऐसे विद्यालयों को सरकारी अनुदान नहीं मिल सकता जो किसी धर्म विशेष की शिक्षा देते हैं । इनमें ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित कॉन्वेन्ट विद्यालय सम्पन्न वर्ग में लोकप्रिय है । इनकी आय का प्रमुख स्रोत छात्रों द्वारा दी जाने वाली भारी शुल्क राशि माना जाता है ।

2. व्यक्ति विशेष द्वारा संचालित विद्यालय - ये विद्यालय किसी एक ही व्यक्ति या उसके विश्वस्त व्यक्तियों की प्रबन्ध समिति द्वारा संचालित होते हैं । इनका मुख्य उद्देश्य व्यावसायिक अधिक और शैक्षिक कम होता है ।

3. ट्रस्ट या कोऑपरेटिंव समितियों दारा संचालित विद्यालय - ये विद्यालय कोई न कोई सामाजिक लक्ष्य लेकर चलते हैं । अधिकांश देश के ऐसे विद्यालय, जिन्होंने देश की शिक्षा के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया है इसी श्रेणी में आते हैं ।

4. मान्यता व अनुदान प्राप्त विद्यालय - ये वे विद्यालय हैं जो सरकार द्वारा दी गई शर्तों को पूरा करते हैं । सरकारी विद्यालयों की तरह ही इनकी कार्य प्रणाली है । केवल कुछ विशिष्ट कार्यों की वजह से ही ये अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखना चाहते हैं । वस्तुत: ये विद्यालय राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के ही भाग हैं । इनकी अधिकांश वित्तीय आवश्यकता सरकारी अनुदान व विद्यार्थियों की फीस से पूरी होती है ।

5. गैर अनुदानित मान्यता प्राप्त विद्यालय - वे विद्यालय हैं जो अपेक्षित शर्तों को पूरा न करने के कारण अनुदान प्राप्त नहीं कर पाते परन्तु शिक्षा बोर्ड की परीक्षा के लिए मान्यता प्राप्त हैं ।

6. गैर मान्यता प्राप्त विद्यालय न तो शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, न आवश्यक साधनों को । इस प्रकार के विद्यालयों को हतोत्साहित किया जाना चाहिए ।

निजी विद्यालय की समस्याएं -

1. इन विद्यालयों की समस्याओं में वित्तीय कठिनाइयाँ प्रमुख हैं । संचालन के लिए आजकल दान कम मिलता है अत: अनुदान राशि व शुल्क राशि से ही काम चलाना होता है, जो अपर्याप्त रहता है ।

2. शिक्षकों का वेतन व अन्य सुविधाये सरकारी विद्यालयों की तुलना में कम हैं ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Questions)

1. भारत में शैक्षिक प्रबन्धन में मुख्य भूमिका निभाने वाले अभिकरणों के नाम लिखिए ।
2. शैक्षिक प्रबन्धन में व्यक्तिक अभिकरण को स्पष्ट कीजिये ।

20.8 भारत में शैक्षिक प्रबन्धन की समस्याएं (Problems of Educational Management)

भारत में शैक्षिक प्रबन्धन के क्षेत्र में अलग-अलग स्तरों पर अनेक समस्यायें दृष्टिगोचर होती हैं जिनमें से कुछ प्रमुख समस्यायें इस प्रकार हैं-

1. शिक्षा पर नियंत्रण की समस्या - शैक्षिक प्रबन्धन में एक महत्त्वपूर्ण समस्या शैक्षिक नियंत्रण की है । प्रशासन एवं प्रबन्धन की गुणवत्ता इस बात पर निर्भर करती है कि सत्ता और नियंत्रण के केन्द्रीय बिन्दु . क्या हैं ? भारत में शैक्षिक योजनाओं की व्यवस्था में केवल केन्द्रीय सरकारें ही नहीं अपितु राज्य सरकारें, स्थानीय सरकार तथा अन्य महत्त्वपूर्ण संस्थान हाथ बँटाते हैं । संगठन की स्वतंत्र एवं दक्ष कार्यप्रणाली के लिए सत्ता का वितरण अर्थात् केन्द्रीयकरण अथवा विकेन्द्रीकरण के महत्त्वपूर्ण प्रश्न को निश्चित करना है ।

2. संसाधनों की कमी - शिक्षा में गुणवत्तापूर्ण प्रबन्धन के लिए आवश्यक भौतिक संसाधनों की उपलब्धता महत्त्वपूर्ण है । प्रारम्भिक व्यय को पूरा करने के साथ-साथ अनुरक्षण के लिए भी धन चाहिए । शैक्षिक प्रबन्धन में अनेक आवश्यक संसाधनों के लिए धन की व्यवस्था, खरीददारी एवं पूर्ति के अनुरक्षण सम्बन्धी समस्यायें हैं साथ ही उपलब्ध संसाधनों के पूर्णतया उपयोग का भी प्रश्न है ।

3. कार्य संचालन में कठिनाई - विभिन्न मंत्रालय अपने अन्तर्गत शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रम चलाते हैं । ऐसे में शिक्षा मंत्रालय के साथ शिक्षा की नीति तथा कार्यों का संचालन करने सें कठिनाई अनुभव होती है ।

4. कार्मिक वर्ग की समस्याएँ - शैक्षिक प्रबन्धन एवं प्रशासन में कार्मिक वर्ग की नियुक्ति, प्रशिक्षण और उसके स्थापन सम्बन्धी अनेक समस्याएँ महत्त्वपूर्ण हैं ।

भारत में स्थापन एवं प्रोन्नति प्राय: अव्यवस्थित है । उच्च शिक्षा में कार्यरत अध्यापकों तथा अन्य पदों के लिए उनके कार्य से सम्बन्धित प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है । सचिव से लेकर शिक्षामंत्री के लिए भी उनसे सम्बन्धित कार्यों हेतु विशिष्ट प्रशिक्षण को आवश्यक नहीं समझा गया है । इस प्रकार की व्यवस्था दक्ष एवं स्वस्थ प्रबन्धन के विरुद्ध होती

हैं और अनेक अच्छी योजनायें तैयार करने वालों की अलमारियों में पड़ी रह जाती है । शैक्षिक प्रबन्धन को सुदृढ़ और वैज्ञानिक आधार प्रदान कर कार्मिक वर्ग की गुणवत्ता एवं मात्रा दोनों पर ध्यान दिया जाना चाहिए ।

5. शैक्षिक सेवाओं का विस्तार (Expansion of Educational Services)

वैज्ञानिक और तकनीकी विकास, उद्योग और विनिमय के विकास, शैक्षिक सिद्धान्त में प्रगति तथा अन्य कारणों से शिक्षा जगत् में तेजी से परिवर्तन आया है । नागरिक के लिये अधिक अच्छी शिक्षा और अधिक अतिरिक्त सेवाओं जैसे - मनोवैज्ञानिक सेवाओं, निर्देशन और परामर्श, कार्यानुभव, व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा, गुणी और विकलांग बालकों की शिक्षा, कक्षा के आकार को छोटा करने, शिक्षा के वैयक्तीकरण और सामाजीकरण आदि की माँग ने शैक्षिक प्रबन्धन के समक्ष प्रबन्धन की दृष्टि से कई चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं । उपरोक्त के लिए वित्तीय व्यवस्था एवं प्रबन्धन हेतु नई दृष्टि की आवश्यकता बढ़ी है ।

6. शैक्षिक वित्तीय - देश के वित्तीय संसाधनों पर देश के शैक्षिक तंत्र का भी पर्याप्त मात्रा में अधिकार रहता है । प्रत्येक राष्ट्र शिक्षा पर अपनी सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय (Gross National Income) का पर्याप्त बड़ा भाग खर्च करता है । विश्व के विभिन्न देशों में शिक्षा पर वार्षिक व्यय सार्वजनिक बजट का 6 से 25 प्रतिशत तक रहता है । शैक्षिक बजट में वृद्धि दर क्या हो, यह नीति निर्धारकों के सामने शैक्षिक वित्तीयकरण की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं जटिल समस्याओं में से एक है । वित्तीयकरण का मुख्य उद्देश्य शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए साधन प्रदान करना है । इन समस्याओं में विद्यालयों और महाविद्यालयों द्वारा अधिक शैक्षिक सुविधाओं की माँग करना, शिक्षा कें सभी स्तरों पर निधि का सुनिश्चित बँटवारा करना, भौतिक सुविधाओं हेतु तथा शिक्षकों व स्टाफ हेतु सेवीवर्गीय सेवायें (Personnel Services) उपलब्ध कराना इत्यादि हैं । वर्तमान शैक्षिक सेवा वित्त की अपर्याप्ततता से पीड़ित है । साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में धन की असमानताएँ समस्या को अधिक जटिल बना देती है ।

भारत में शिक्षा राज्य का विषय रही है । राज्य स्वयं में पूर्ण शैक्षिक व्यय का भार को संभालने में असमर्थ हैं । जब केन्द्र शिक्षा के वित्तीयकरण के लिए राज्यों को अनुदान देता है तो नियंत्रण भी रहता है । राज्य बिना नियंत्रण के अनुदान चाहते हैं । इस कारण केन्द्र और राज्य के मध्य वित्तीय सम्बन्धों में समस्यायें उत्पन्न होती हैं ।

केन्द्र को संसाधन अधिक प्राप्त हैं । विभिन्न राज्यों में शिक्षा के लिए वितरण में असमानताये रही है ।

7. प्रारम्भिक शिक्षा में प्रबन्धन सम्बन्धी समस्याएं - 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को सन् 1960 तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की सुविधाएँ देने की संवैधानिक व्यवस्था होते हुए भी इस लक्ष्य को पूरा नहीं किया जा सका है । प्राथमिक स्कूलों की स्थिति विशेषत: ग्रामीण क्षेत्रों में निराशाजनक है । भवन, उपकरण, खेलकूद और अभिरुचि केन्द्रों एवं पर्याप्त संख्या में प्रशिक्षित शिक्षक की दृष्टि से स्थिति उपयुक्त नहीं है । संसाधनों की कमी के कारण प्रबन्धन भी उपयुक्त नहीं हो पाता है ।

अधिकांश पूर्व प्राथमिक स्कूल व्यक्तिगत प्रबन्ध तंत्र के द्वारा चलाये जाने के कारण मात्र दुकानें बनकर रह गये हैं । राज्य सरकारों को इसका समुचित प्रबन्ध करने की कोई व्यवस्था करनी चाहिए ।

8. माध्यमिक शिक्षा की प्रबन्धन समस्याएं - विभिन्न प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा के स्तरों में पर्याप्त अन्तर है । राजनीति का अत्यधिक दखल, निरीक्षण का अभाव, पर्याप्त भौतिक संसाधनों का अभाव, अधिकारियों की हठधर्मिता तथा शिक्षकों की संख्या में छात्रों के अनुपात में कमी इत्यादि कई कारक प्रभावी प्रबन्धन में बाधक हैं । स्थानीय परिषदों के द्वारा संचालित माध्यमिक विद्यालयों में भी संकुचित राजनीति तथा सीमित संसाधनों के कारण प्रबन्ध व प्रशासन की समस्या उत्पन्न हो जाती है ।

गैर सरकारी विद्यालयों की दशा व्यक्तिगत समितियों के मनमाने रवैये, अविवेकपूर्ण निर्णयों, व्यक्तिगत स्वार्थो तथा संकीर्ण राजनीति के कारण अत्यन्त दयनीय होती है ।

शिक्षा अधिकारियों, प्रबन्धकों, निरीक्षकों, प्राचार्यों तथा अध्यापकों व कर्मचारियों के उपेक्षापूर्ण व्यवहार तथा शैक्षिक विकास में रुचि का न होना भी वर्तमान शिक्षा की दुर्दशा के लिए उत्तरदायी है ।

9. उच्च शिक्षा - भारत में रोजगार के अभाव में उच्च शिक्षा का प्रसार होता रहा है । उच्च शिक्षा के प्रबन्ध में कई समस्यायें सामने आती हैं -

- विश्वविद्यालयों में अनुसंधान कार्यों की कमी भारत के विकास एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को समर्थन देने में बाधक है ।
- विभिन्न कॉलेजों को दी जाने वाली सुविधाओं में काफी अन्तर है तथा गुणात्मक विकास क्षमता की दृष्टि से उनका स्तर सन्तोषप्रद नहीं है ।
- राजनीति हस्तक्षेप, महाविद्यालयों के प्रबन्धन पर हावी रहता है फलत: जातिवाद, छेत्रवाद और गुटबन्दी जैसी समस्यायें प्रबन्धन के समक्ष आती रहती है ।

10. विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता - विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता की स्थिति अत्यन्त निराशाजनक है । विश्वविद्यालय व उनसे सम्बन्धित संस्थायें, केन्द्र व राज्य सरकारों के नियंत्रण में रहकर कार्य करती है । आर्थिक पक्ष, नियुक्तियाँ सभी राज्य सरकार के अधिकार में रहता है । विश्वविद्यालयों में विभिन्न विभागों, अध्यापकों तथा छात्रों को २चायत्तता नहीं है उन्हें उच्च अधिकारियों, कुलपति, रजिस्ट्रार, विभागाध्यक्षों के निर्देशों के अनुरूप कार्य करना पड़ता है । आज आवश्यकता है कि विश्वविद्यालयों को पूर्ण स्वायत्त संस्था घोषित किया जाये तथा विश्वविद्यालयों की आन्तरिक स्वायत्तता को भी सुनिश्चित किया जाये । तब ही विश्वविद्यालय राष्ट्र के विकास में सर्वोत्तम योगदान कर सकेंगे ।

11. शिक्षा के गुणात्मक स्तर में गिरावट -

शिक्षा में आजकल गुणात्मक उन्नति की कमी की काफी चर्चा की जा रही है । गुणात्मक उन्नति के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है- (1) विद्यालयों में समुचित भौतिक साधन उपलब्ध हों । (2) उत्तम शिक्षकों की भर्ती एवं उनके व्यावसायिक विकास एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था हो (8) विद्यालयों में अध्ययन योग्य उचित वातावरण हो । इस हेतु शिक्षा क्षेत्र के

बाहर के व्यक्तियों, व्यवस्थापिका एवं सरकार द्वारा निरर्थक हस्तक्षेप गुणात्मकता में बाधा पहुँचाता है । इसके साथ ही शिक्षकों द्वारा कार्य में रुचि लेने एवं प्रतिबद्धता के साथ काम करने पर ही गुणात्मक उन्नति सम्मव है । अनेक कारणों से आज शिक्षा के गुणात्मक स्तर में निरन्तर गिरावट आ रही है । इसका एक कारण प्रबन्ध तंत्र की सावधानियाँ एवं कमजोरियाँ हैं।

20.8 शैक्षिक प्रबन्धन की समस्याओं के समाधान (Solutions to the Problems of Educational Management)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 1986 के खण्ड दस में शिक्षा के प्रबन्ध सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डाला है -

1. शिक्षा की योजना एवं प्रबन्ध प्रणाली में परिवर्तन को उच्च प्राथमिकता दी जायेगी । दीर्घकालीन योजना बनाने, विकेन्द्रीकरण एवं शिक्षा संस्थाओं की स्वायत्तता की भावना का निर्माण, योजना एवं प्रबन्ध में महिलाओं की सहभागिता, उद्देश्यों व मानकों के संबंध में उत्तरदायित्व इस परिवर्तन में निर्देशक बिन्दु होंगे ।
2. शिक्षा नियोजकों, प्रशासकों एवं संस्थाओं के प्रधानों के प्रशिक्षण को प्राथमिकता दी जायेगी ।
3. गैर सरकारी एवं स्वैच्छिक प्रयासों को प्रोत्साहित किया जायेगा । इसके साथ साथ-शिक्षा का व्यापार करने के लिए खोली जाने वाली संस्थाओं की स्थापना को रोकने के कदम उठाये जायेंगे ।
4. जिला शिक्षा परिषदों का गठन किया जायेगा जिन्हें विभिन्न प्रकार के शैक्षिक कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व दिया जायेगा ।

भारत में शैक्षिक प्रबन्धन की विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए निम्नांकित उपायों को अपनाये जाने की अनुशंसा की जा सकती है-

1. शैक्षिक प्रशासन में विकेन्द्रीयकरण की नीति की अनुपालना करना ।
2. शैक्षिक संस्थाओं में अधिकाधिक स्वायत्तता प्रदान करना ।
3. शैक्षिक प्रयासों में सभी की सहभागिता सुनिश्चित करना ।
4. उत्तरदायित्व व जवाबदेही के सिद्धान्त को लागू करना ।
5. शिक्षा का नियोजन, दूरदर्शिता व कुशलता के आधार पर, दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में करना।
6. शिक्षा के एकांगी प्रसार को रोक कर संतुलित प्रयास की नीति को अपनाना अर्थात् समाज के पिछड़े वर्ग की शिक्षा व्यवस्था पर जोर देना ।
7. शिक्षा के प्रशासनिक तंत्र के सभी अंगों में समन्वय स्थापित करना ।
8. राज्यों में शिक्षा सलाहकार परिषदों का गठन करना ।
9. शैक्षिक प्रशासकों तथा व्यवस्थापकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना ।

कोठारी आयोग ने विद्यालयी शिक्षा के प्रशासन एवं प्रबन्धन के उन्नयन के लिए निम्न दूरगामी सुधारों की अनुशंसा की थी ।

1. समाज विद्यालय प्रणाली (Common School System)
2. विद्यालय उन्नयन का राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम (Nation-wide Programme) आयोजित करना ।
3. जिला शिक्षा अधिकारियों के कार्यालयों को सुदृढ करना तथा पर्यवेक्षण की नवीन प्रविधि अपनाना ।
4. राज्य शिक्षा संस्थानों (State Institutes of Education) को सुदृढ़ करना ।
5. राज्य विद्यालय शिक्षा परिषद् (State School Boards of Education) तथा राज्य मूल्यांकन संगठन (State Evaluation Organisation) स्थापित करना ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. केन्द्रीय सरकार की सलाहकार परिषदों में एन.सी.ई.आर.टी. तथा राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (NUPEA) की भूमिका स्पष्ट कीजिए ।
2. शैक्षिक प्रबन्धन में राज्य सरकार की भूमिका एवं उनके अभिकरणों को स्पष्ट करें ।
3. स्थानीय निकायों के शैक्षिक प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य क्या हैं?
4. भारत में शैक्षिक प्रबन्धन की महत्त्वपूर्ण समस्याएँ क्या हैं?

20.9 सारांश (Summary)

भारत में जनतंत्रीय भावना ने राजनीतिक जागरूकता के साथ शिक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में भी जनता के महत्त्व को प्रोत्साहित किया है । शैक्षिक योजनाओं की व्यवस्था में केवल केन्द्रीय सरकार ही नहीं अपितु राज्य सरकारें, स्थानीय सरकारें तथा अन्य महत्त्वपूर्ण संस्थान इस कार्य में हाथ बँटाते हैं । 1977 से पूर्व शिक्षा राज्य सूची में सम्मिलित थी परन्तु 1977 में शिक्षा को समवर्ती सूची में रखे जाने की स्वीकृति के साथ केन्द्रीय सरकार को शिक्षा पर विधान बनाने का अधिकार मिल गया । परन्तु 1862 के संशोधन के पश्चात् राज्यों को भी स्वायत्तता प्रदान की गई ।

भारत में शैक्षिक प्रबन्ध की दृष्टि से चार प्रकार के अभिकरण कार्य करते हैं - केन्द्रीय राज्यीय, स्वायत्त संस्थाएँ तथा निजी अभिकरण । प्रत्येक अभिकरण की स्पष्ट संस्थाय एवं भूमिकाएँ हैं । केन्द्र सरकार कुछ सलाहकार परिषदों की सहायता से शिक्षा की व्यवस्था करती है । राज्य स्तर पर शिक्षामंत्री शिक्षा विभाग एवं अन्य अधिकारियों के साथ शिक्षा का प्रबन्ध करता है। स्थानीय निकाय के रूप में नगरपालिकाएँ, जिला परिषद् एवं ग्राम पंचायतें शिक्षा व्यवस्था करते हैं। भारत ने शिक्षा क्षेत्र में वैयक्तिक अभिकरणों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है ।

भारत में शैक्षिक प्रबन्ध के विकेन्द्रीकरण के लाभों के साथ अनेकों प्रकार की समस्यायें भी हैं । शिक्षा पर नियंत्रण, संसाधनों, वित्त, शैक्षिक सेवाओं के विस्तार इत्यादि अनेकों समस्याएँ प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च स्तर पर विद्यमान हैं । इनके समाधान हेतु प्रबन्धन के क्षेत्र को अधिक चुनौतियों के लिए तैयार रहने एवं नई दृष्टि की आवश्यकता है ।

अभ्यास प्रश्न (Exercise)

1 भारत में शैक्षिक प्रबन्ध की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए भारतीय संविधान में शिक्षा व्यवस्था को स्पष्ट करिए ।

2 शैक्षिक संरचना, शैक्षिक प्रबन्ध के अभिकरण तथा उनकी भूमिका की व्याख्या करिए ।

3 शैक्षिक प्रबन्धन में आने वाली समस्याओं को दूर करने के संभावित उपायों को करते हुए अपने सुझाव लिखिए ।

20.10 संदर्भ (References)

1. Sidana, Ashok & Sharma Anjali ; Educational Management and School Organization (Hindi), Shiksha Prakashan, Jaipur, 2004
2. Sharma Pratiksha : Educational Management, and School Organization (Hindi), Awishkar Publishers & Distributers, Jaipur,2006
3. Sharma R.A., Educational Management, R.Lal Book Depot, Merratt, Hindi
4. Bhatnagar, R.P : Educational Administration, Loyal Book Depott, Merrut, 2005
5. Verma J.P. : School Management, R.L. Book Depott, Merrut, 2002
6. Oad, L.K. : Indian Administration, Rajasthani Hindi Granth Academy, Jaipur.
7. Gupta, S.P. : History, Development and Problems of Indian Education, Sharda Pustak Sadan, Allahabad, U.P.2007

इकाई 21

शैक्षिक निरीक्षण एवं मोनिटरिंग

(Educational Inspection and Monitoring)

इकाई की सरंचना

21.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

21.1 प्रस्तावना (Introduction)

21.2 शैक्षिक निरीक्षण का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definitions of Educational Inspection)

21.3 निरीक्षण की विचारधारा का विकास (Development of the Concept of Inspection)

21.4 निरीक्षण के उद्देश्य (Aims of Inspection)

21.5 निरीक्षण के प्रकार (Types of Inspection)

21.6 शैक्षिक निरीक्षण की विधियाँ (Methods of Educational Inspection)

21.7 निरीक्षण के कार्यकलाप (Function of Inspection)

21.8 निरीक्षण पद्धति के दोष (Demerits of Inspection)

21.9 निरीक्षण पद्धति में व्याप्त दोषों को दूर करने के उपाय (Measures to be adopted to remove the defects of Inspection)

21.10 भारत में विद्यालय निरीक्षण की वर्तमान स्थिति (Present Status of School Inspection in India)

21.11 प्रचलित निरीक्षण प्रणाली में सुधार के सुझाव (Some Suggestions for improvement in Inspection)

21.12 भारत में निरीक्षण सुधार का प्रयास (Efforts in India for improvement in Inspection)

21.13 शैक्षिक 'मोनिटरिंग' का अर्थ (Meaning of Educational Monitoring)

21.14 शैक्षिक 'मोनिटरिंग' के मुख्य घटक / अवयव (Main Components/elements of Educational Monitoring)

21.15 शैक्षिक प्रतिवेदन की मुख्य विशेषताएँ (Main Characteristics of Educational Reporting)

21.16 शैक्षिक इन्डिकेटर (Education Indicators)

21.17 शैक्षिक प्रतिवेदन के प्रमुख कार्य (Main Characteristics of Educational Reporting)

21.18 'रिजल्ट-बेसड-गर्वनेस' (Result Based Governance)

21.19 तंत्र में गुणात्मक सुधार के मुख्य स्तम्भ (Main Pillars for Quality improvement in a system)
21.20 सारांश (Summary)
21.21 संदर्भ (References)

20.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेंगे-

1. शैक्षिक निरीक्षण का अर्थ एवं परिभाषा जान सकेंगे ।
2. शैक्षिक निरीक्षण की विचारधारा को समझ सकेंगे ।
3. शैक्षिक निरीक्षण के उद्देश्य स्पष्ट कर सकेंगे ।
4. शैक्षिक निरीक्षण के प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे ।
5. शैक्षिक निरीक्षण की विभिन्न विधियों की विवेचना कर सकेंगे ।
6. शैक्षिक निरीक्षण के विभिन्न कार्यकलाप सुझा सकेंगे ।
7. निरीक्षण पद्धति के दोष बता सकेंगे ।
8. निरीक्षण पद्धति में व्याप्त दोषों को दूर करने के उपाय बता सकेंगे ।
9. भारत में वर्तमान विद्यालय निरीक्षण की स्थिति बता सकेंगे ।
10. प्रचलित निरीक्षण प्रणाली में सुधार के सुझाव दे सकेंगे ।
11. अभी तक भारत में निरीक्षक सुधार के प्रयासों की विवेचना कर सकेंगे ।
12. शैक्षिक मोनिटरिंग का अर्थ एवं मुख्य घटकों को स्पष्ट कर सकेंगे ।
13. शैक्षिक प्रतिवेदन की विशेषताओं और प्रमुख कार्यों को बता सकेंगे ।
14. शैक्षिक 'इन्डिकेटर' को परिभाषित कर सकेंगे ।
15. 'रिजल्ड-बेस्ट-गवर्नस' नवीन विचारधारा की विवेचना कर सकेंगे ।
16. शैक्षिक तंत्र में गुणात्मक सुधार के मुख्य स्तम्भों को बता सकेंगे ।

21.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा व्यवस्था के सुसंचालन के लिए निरीक्षण तथा मोनिटरिंग अत्यावश्यक है । इनके द्वारा कार्यकर्ताओं में सतर्कता और चेतना बनी रहती है तथा नियमों का पालन करते हुए कार्य सुचारू रूप से चलता है । यह एक प्रकार का बाह्य प्रेरक है जो शिक्षा से सम्बद्ध व्यक्तियों को अपने कार्य को व्यवस्थित रूप से करने तथा अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक रखने की प्रेरणा देता है । प्रारम्भिक दर्शन के अनुरूप निरीक्षण का मुख्य उद्देश्य विद्यालयों में उपस्थित विद्यार्थी, शिक्षक और प्रशासकों का विकास है । इसी में विद्यालय और समाज का विकास भी सम्मिलित होता है ।

21.2 शैक्षिक निरीक्षण का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definitions of Educational Inspection)

शैक्षिक निरीक्षण का तात्पर्य है परीक्षा लेना और परीक्षा का तात्पर्य है सरलतापूर्वक एवं आलोचनात्मक दृष्टि से जाँच करना । शाब्दिक अर्थ के अनुसार भी निरीक्षण का अर्थ है किसी व्यक्ति की जाँच करना ।

शैक्षिक निरीक्षण की निम्नलिखित परिभाषाएँ हैं -

1. **डी. एस. एन**. मुखर्जी के अनुसार, "वरिष्ठ अध्यापक अथवा प्रधानाध्यापक द्वारा किये गये मूल्यांकन को निरीक्षण कहा जाता है ।"
2. **बार एवं बर्टन** के मतानुसार " निरीक्षण वह प्रक्रिया है जो एक आधार प्रस्तुत करती है जिस पर शिक्षण की उन्नति हेतु सभी कार्यक्रम आधारित किए जाने चाहिए ।"
3. **वेब्स्टरे अग्रेंजी शब्दकोश** के अनुसार - "निरीक्षण का अर्थ किसी व्यक्ति की जाँच करना है । शाब्दिक अर्थ के अनुसार विद्यालय के कार्यो का निरीक्षण विद्यालय-निरीक्षण कहा जा सकता है ।"
4. **यूनेस्को रिपोर्ट** के अनुसार - "निरीक्षणकर्ता जब कार्य करता है तो वह इस दौरान शिक्षाविदों या अन्य अधिकारियों से जो शिक्षा में रुचि लेते हैं, सम्बन्ध स्थापित करता है, साथ ही शैक्षिक सभाओं में भाग लेता है और उस जिले की शैक्षिक समस्याओं के प्रति स्वयं को जागरूक करता है ।"
5. **वुड के घोषणा पत्र** के अनुसार, "एक उपयुक्त निरीक्षण पद्धति भविष्य के लिए हमारी शिक्षा पद्धति का आवश्यक अंग हो जायेगी और हमारी इच्छा है कि पर्याप्त मात्रा में योग्य निरीक्षकों की नियुक्ति की जाये जो कि समय-समय पर सरकार द्वारा संचालित एवं सहायता प्राप्त विद्यालय एवं कॉलेज की प्रचलित स्थिति के विषय में रिपोर्ट देंगे- वे इन संस्थाओं के छात्रों की परीक्षा का संचालन या सहायता प्रदान करेंगे ।

वास्तव में निरीक्षण एवं निरीक्षक की भूमिका देश, समय और परिस्थिति के अनुसार बदलती रही है निरीक्षण के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाओं के द्वारा इसके अर्थ को स्पष्ट किया है उपर्युक्त परिभाषाओं में उत्प्रेरक विकास, शिक्षकों की सहायक प्रक्रिया, शिक्षण सुधार तथा विकास, शिक्षा में सहायता, शिक्षकों की शक्ति को विकसित करना, शिक्षकों की समस्याओं को हल करना, सीखने की स्थितियों का मूल्यांकन आदि के रूप तथा अर्थ में ही शिक्षा निरीक्षण को मान्य किया गया है ।

21.3 निरीक्षण कीं विचारधारा का विकास (Development of the Concept of Inspection)

भारत वर्ष में 1854 के वुड घोषणा पत्र के पश्चात् निरीक्षण की विचारधारा का प्रारम्भ हुआ । चूँकि इस घोषणा-पत्र के साथ ही प्रत्येक राज्य में एक 'डाइरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन' की नियुक्ति हुई थी । इन 'डाइरेक्टरों' के लिये शिक्षा की स्थिति का सही प्रारूप

प्रस्तुत करने हेतु 'इन्सपेक्टरों की आवश्यकता महसूस की गई । यह 'इन्सपेक्टर' सरकार को शिक्षा की वस्तुस्थिति का ज्ञान कराते थे ।

1858 में स्कूलों को 'डाइरेक्टर' की ओर से अनुदान की शर्तें प्रस्तुत की गई, जिसके अनुसार 'इन्सपेक्टर' को स्कूलों का निरीक्षण एवं अनुदान राशि की मात्रा निश्चित करने का भी अधिकार दिया गया इस प्रकार 'इन्सपेक्टर' शिक्षा प्रशासन की एक उच्च अधिकृति के रूप में सामने आया।

1968 में बंगाल के स्कूलों में राष्ट्रीय आन्दोलनों को हतोत्साहित करने के लिए और भी अधिकार दि: गये । 1919 में सेडलर कमीशन ने निरीक्षण की आलोचना करते हुए लिखा है कि 'इन्सपेक्शन' अधिकाशत जल्दबाजी में होता है तथा पाठन-विधियों और व्यवस्था के संबंध में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों से रहित होता है, जो कि स्कूल के निरीक्षण के लिए महत्त्वपूर्ण है ।

1928 में साइमन कमीशन की स्थापना हुई उसने तत्कालीन विद्यालय निरीक्षण की कमियों की ओ ध्यान दिया । 1936 में ऐवर और वुड महोदय ने निरीक्षण को एक आवश्यक प्रक्रिया बताया और कहा कि निरीक्षक का मुख्य कार्य विद्यालय का निरीक्षण करना है । माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने म निरीक्षण की कमियों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनके आधार पर य कहा जा सकता है कि जो समय 'इन्सपेक्टर' 'इन्सपेक्शन' पर बिताते हैं वह कम है, बल्कि अधिक समय वे प्रशासनिक कार्यों को देखने में लगाते हैं ।

21.4 निरीक्षण के उद्देश्य (Aims of Inspection)

विद्यालय निरीक्षण के उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं -

1. निरीक्षण का प्रमुख उद्देश्य है शिक्षकों को अच्छा बनाना । निरीक्षण के माध्यम से शिक्षिका की कमियों को दूर करते हुए गुणों का विकास करके अच्छे शिक्षक तैयार करना ।
2. शिक्षक को मार्गदर्शन देने का कार्य भी निरीक्षक का है । कोई भी मार्गदर्शक तब तक मार्गदर्शन ना दे सकता, जब तक वह अपने अधीन व्यक्ति की क्षमताओं को नहीं पहचानता, इन क्षमताओं व निरीक्षण से समझना ।
3. निरीक्षण द्वारा उनके सीखने की स्थितियों का मूल्यांकन करना होता है । इसमें यह ज्ञात हो जाता हे कि विद्यार्थी किन परिस्थितियों में अधिक सीखते हैं, इस आधार पर पाठन विधियों में सुधार किय जाना ।
4. निरीक्षण का उद्देश्य शिक्षकों व विद्यार्थियों की समस्याओं का निदान करने तथा उनकी योग्यता व मूल्यांकन करने में सहायता देना ।
5. निरीक्षण का प्रमुख उद्देश्य शिक्षकों को पाठ्यक्रम निर्माण करने का ज्ञान प्रदान करना तथा पाठ्यक्रम निर्माण के मुख्य उद्देश्य से अवगत कराना ।

21.5 निरीक्षण के प्रकार (Types of Inspection)

निरीक्षण को हम निम्नलिखित तीन प्रकारों में विभक्त कर सकते हैं -

(1) संशोधनात्मक निरीक्षण (Corrective Inspection)

(2) निरोधात्मक निरीक्षण (Preventive Inspection)

(3) रचनात्मक निरीक्षण (Constructive Inspection)

(1) संशोधनात्मक निरीक्षण (Corrective Inspection) - निरीक्षण की प्रक्रिया के अन्तर्गत निरीक्षक निरीक्षण हेतु विद्यालय में आता है और वह विद्यालय की विभिन्न गतिविधियों का अवलोकन करता है और यदि उसमें कोई दोष है तो वह उनको ढूँढता है और उनका रिकार्ड तैयार करता है । निरीक्षण की इस प्रक्रिया में निरीक्षणकर्ता संस्था की अच्छी गतिविधियों की ओर ध्यान बिल्कुल नही देता है । इस कारण निरीक्षण का यह प्रकार हमेशा आलोचना का पात्र रहा है।

(2) निरोधात्मक निरीक्षण (Preventive Inspection) - निरीक्षण के इस प्रकार में निरीक्षणकर्ता संस्था की विभिन्न समस्याओं का आभास पहले ही कर लेता है और उनकी जानकारी वह अध्यापकों व मुख्य अध्यापकों को दे देता है । इसके लिए यह आवश्यक है कि निरीक्षणकर्ता पर्याप्त अनुभवी हो व वह दूरगामी दृष्टि रखता हो ।

(3) रचनात्मक निरीक्षण (Constructive Inspection) - निरीक्षण के इस प्रकार के अन्तर्गत निरीक्षक अध्यापक के स्तर पर आ जाता है । अध्यापक जो शिक्षण प्रक्रिया में विभिन्न प्रयोगों का इस्तेमाल करता है, निरीक्षक उसकी प्रशंसा करता है जिससे उसमें आत्मविश्वास बढ़े ।

21.6 शैक्षिक निरीक्षण की विधियाँ (Methods of Educational Inspection)

निरीक्षण को एक प्रक्रिया माना गया है जिसके अन्तर्गत निरीक्षक विभिन्न विधियों का प्रयोग करता है जिसमें से कुछ प्रमुख विधियाँ इस प्रकार हैं -

(1) **विद्यालय में जाना (To visit the school) -** इस विधि में निरीक्षक विद्यालय में जाकर वस्तुस्थिति का जायजा लेते हैं । विद्यालय के प्रांगण में जाना पूर्व नियोजित हो सकता है अचानक भी वह वहाँ जा सकता है । उसे इन दोनों ही तरीकों को अपनाना चाहिए । यदि उसके के किसी विद्यालय में समस्या अधिक है तो उसका निरीक्षण उसे जल्दी-जल्दी करना चाहिए व उन समस्याओं के निराकरण का प्रयास करना चाहिए । जिस समय निरीक्षक विद्यालय का निरीक्षण करें उसे इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि वह महत्त्वपूर्ण बातों को अपने पास लिखता जाये अन्यथा वह कुछ बातें याद रख पायेगा व कुछ को भूल जायेगा ।

(2) **अध्यापकों की बैठक बुलाना (To call the meeting of teachers) -** निरीक्षक जब भी विद्यालय जाये तो उसे सभी अध्यापकों से मिलना चाहिए और इसका सबसे अच्छा तरीका है कि वह अपने आने की सूचना दे दे व अध्यापकों की बैठक को आमंत्रित करे । विद्यालय का निरीक्षण करते समय उसने जो भी बातें नोट की हैं उस पर उसे विचार-विमर्श करना चाहिए और साथ ही यदि अध्यापकों की कोई समस्या है तो उसे विचार-विमर्श करके सुनना भी चाहिए और यदि आवश्यकता पड़े तो उनकी समस्याओं को हल करने हेतु उन्हें मार्गदर्शन भी करना

चाहिए । चूँकि आवश्यक नहीं कि जब निरीक्षक निरीक्षण कार्य कर रहा हो तो उसने अध्यापकों की समस्याओं को पूर्ण रूप से समझ ही लिया हो ।

(3) **विद्यालय को नवीन आयामों की सूचना देना (To give the information about the new dimensions) -** शिक्षा जगत में शोध द्वारा सदैव नवीन आविष्कार होते हैं जो शिक्षण-विधियों से संबंध रखते हुए शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने की परिकल्पना करते हैं । विद्यालय में कार्यरत अध्यापक इन अनुसंधानों से परिचित भी हो सकते हैं और अपरिचित भी । शिक्षा निरीक्षकों का यह दायित्व भी है कि वह इन सभी के सम्बन्धों में लिखित सूचना उन विद्यालयों को भेजे जो उसके अधीन है और सभी अध्यापकों से यह अनुरोध भी किया जाए कि वह उनका कक्षा शिक्षण में अनुपालन करें । इस दिशा में यह आवश्यक है कि जब वह लिखित आदेश भेज दें तो उसके कुछ दिन पश्चात् विद्यालय का निरीक्षण करे और यह देखें कि उसके द्वारा बताई गई बातों का अध्यापक अनुपालन कर रहे हैं या नहीं और यदि अध्यापकों को वह समझ नहीं आया है तो निरीक्षक उसे समझाने में भी अपना पूर्ण योगदान दे सकता है ।

(4) **प्रदर्शन पाठों का आयोजन (Organization of demonstration lessons) -** निरीक्षक को उन विषयों पर प्रदर्शन पाठों को भी आयोजित करने का प्रबन्ध करना चाहिए । प्रदर्शन पाठ निरीक्षक स्वयं भी दे सकता है और इस दिशा में वह विद्यालय के अच्छे अध्यापकों का सहयोग भी ले सकता है, साथ ही साथ यदि आवश्यकता पड़े तो वह अन्य विद्यालयों से विशेष योग्यता रखने वाले शिक्षकों को भी आमंत्रित कर सकता है । प्रदर्शन पाठ का आयोजन करते समय एक बात अवश्य ही ध्यान में रखनी चाहिए कि पाठ का प्रदर्शन जब समाप्त हो जाए तो अध्यापकों को उस पर चर्चा करने का अवसर अवश्य मिलना चाहिए और किसी भी अध्यापक के मन में उठने वाली समस्या या शंका समाधान सभी को मिलजुलकर करना चाहिए ।

(5) **विद्यालय का मूल्यांकन (To evaluate the school) -** निरीक्षण का प्रमुख उद्देश्य होता है विद्यालय में संचालित होने वाली गतिविधियों के आधार पर उसका मूल्यांकन करना । परन्तु निरीक्षकों द्वारा किया गया मूल्यांकन आलोचनात्मक न होकर सुधारात्मक होना चाहिए अर्थात् निरीक्षण के दौरान विद्यालय में भौतिक संसाधनों में यदि कुछ कभी है तो उसके लिए आर्थिक अनुदान प्राप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए जिससे वह कभी दूर की जा सके और यदि शिक्षण प्रक्रिया में कोई दोष है तो अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के अवसर मिलने चाहिए ।

21.7 निरीक्षण के कार्यकलाप (Function of Inspections)

सोद्देश्य निरीक्षण में बहुत स्पष्ट होता है कि निरीक्षक आखिर क्या देखना चाहते हैं परन्तु आम तौर पर निम्नलिखित तथ्यों पर निरीक्षण में ध्यान केन्द्रित होता है -

(1) अनुदेशन - निरीक्षण, शिक्षकों की तैयारी तथा छात्रों की अधिगम की स्थिति के लिए कक्षा- शिक्षण या अनुदेशन का निरीक्षण किया जाता है । इससे विद्यालय के शैक्षिक स्तर का पता चलता है ।

(2) अध्यापक डायरी का निरीक्षण ताकि शिक्षक पर कार्यभार तथा दायित्वों का पता चल सके ।

(3) शिक्षकों द्वारा दिए गए तथा जाँचे गए गृह-कार्य का निरीक्षण ।

(4) लेखा कार्यों का निरीक्षण ।

(5) विशेष विद्यालयी योजना, परियोजना, अनुसंधान प्रायोजनाओं का निरीक्षण ।

(6) भवन, छात्रावास, प्रयोगशालाएँ, खेल के मैदान, स्वास्थ्य सेवाओं, निर्देशन सेवाओं आदि के रख-रखाव का निरीक्षण ।

(7) छात्रावास कार्यकलापों, विद्यार्थी, पाठ्यक्रम, सहगामी प्रवृत्तियों का निरीक्षण ।

विद्यालयी निरीक्षण व्यापक निरीक्षण होना चाहिए जिसे वर्ष में कम से कम तीन बार होना चाहिए । सत्र के आरम्भ में निरीक्षण द्वारा आवश्यक निर्देश के लिए सत्र के मध्य में विद्यालय के कार्यकलापों की प्रगति के लिए तथा सम्मान्त में विद्यालय के समग्र कार्यकलापों की निष्पत्ति के मूल्यांकन के लिए निरीक्षण करने की व्यवस्था होनी चाहिए ।

21.8 निरीक्षण पद्धति के दोष (Demerits of Inspection)

वर्तमान में जो निरीक्षण व्यवस्था विद्यमान है, वह ब्रिटिशकाल की देन है जिसके आधार पर हम कह सकते हैं कि आज निरीक्षण का जो प्रारूप विद्यमान है, वह परम्परागत तो है ही, साथ ही साथ आदेशात्मक अधिक है । आज का निरीक्षक अधिनायकवादी दृष्टिकोण रखता है । वह सोच व गतिविधियों में प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण नहीं रखता । उसका दृष्टिकोण सकारात्मक, सुधारात्मक, रचनात्मक न होकर नकारात्मक, आलोचनात्मक व विध्वंसात्मक है । निरीक्षण पद्धति में निम्नलिखित दोष व्याप्त हैं -

(1) **अयोग्य निरीक्षक (Incompetent Inspector) -** आज निरीक्षक पद पर जिन व्यक्तियों का चयन किया जाता है, आवश्यक नहीं कि उन्हें शिक्षण का अनुभव ही हो और इसके अभाव में वह शिक्षा की प्रक्रिया को समझे बिना ही निरीक्षण कार्य करते हैं जो बहुत अधिक विश्वसनीय नहीं होता । साथ ही निरीक्षक के अन्दर जो नेतृत्व की भावना होनी चाहिए वह भी उनमें निहित नहीं होती, वास्तव में यदि देखा जाये तो निरीक्षण एक विशिष्ट प्रकृति का कार्य है और इसके लिए ऐसे ही व्यक्तियों की नियुक्ति की जानी चाहिए जो इसमें विशेष दक्ष हो ।

(2) **निरीक्षण का केन्द्रीकृत रूप (Centralized Form of Inspection) -** निरीक्षण नीतियों का निर्धारण अधिकारी वर्ग द्वारा किया जाता है जो विद्यालय की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ होते हैं । यदि इन नीतियों के निर्धारण में अध्यापकों का सहयोग लिया जाए तो निरीक्षण अधिक सार्थक व सफल हो सकता है परन्तु दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि निरीक्षण प्रक्रिया केन्द्रीकृत योजना है जिसमें उन तत्त्वों की उपेक्षा की जाती है जिन्हें वास्तव में महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए ।

(3) **निरीक्षण का एक दिखावा मात्र होना (Inspection as Pomp and Show) -** निरीक्षण को आज एक दिखावा मात्र ही समझा जाने लगा है । शिक्षक वर्ग यह मानता है कि वह उन दिनों ही पढ़ाई पर ध्यान दें जब विद्यालय का निरीक्षण होना है और निरीक्षक यह मानते हैं कि वह जिन दिनों विद्यालय का निरीक्षण कर रहे हैं, विद्यालय अधिकारियों के

द्वारा उनका पूर्ण सत्कार किया जाना चाहिए । यदि उनके अतिथि सत्कार में कुछ उपेक्षा की गई तो वह अपना आलेख उस विद्यालय के विपरीत, दे देते हैं ।

(4) **निरीक्षण का विद्यालय प्रक्रिया से असम्बन्धित होना (Inspection Is Not Subject Centred)** - निरीक्षण को एक विशिष्ट प्रक्रिया के रूप में समझा जाता है जिसका उद्देश्य, साधन व संगठन विशिष्ट होता है । वास्तव में निरीक्षण को हमें विद्यालय में संगठित होने वाली अन्य क्रियाओं की भाँति ही समझना चाहिए जिसे शैक्षिक व प्रशासनिक दोनों ही गतिविधियों से सम्बद्ध किया जाना चाहिए ।

(5) **निरीक्षण का विषय-केन्द्रित न होना (Inspection Is Not Subject Centred)** - निरीक्षण को यदि हम वास्तव में सौद्देश्य व सार्थक बनाना चाहते हैं तो हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम इसे एक सामान्य प्रक्रिया के रूप में न मानकर विषय-केन्द्रित प्रक्रिया के रूप में मानें और इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर हमें विशेष विषय का निरीक्षण करने के लिए उसे विषय-विशेष से संबंधित अध्यापक को ही आमंत्रित करना चाहिए ।

(6) **निजी प्रबन्धकों का नकारात्मक दृष्टिकोण (Negative Attitude of Private Managers)** - सामान्यतया निजी प्रबन्ध तंत्र वाले विद्यालय अपने मनमाने ढंग से विद्यालय का संचालन करते हैं और वह शिक्षकों का भी शोषण करते हैं, बढ़ती हुई बेरोजगारी के कारण मजबूरी में लोग संस्थाओं में कार्य करते हैं व जैसा प्रबंध तंत्र चाहते हैं, वह उसी रूप में कार्य करते हैं व उन्हें डराते धमकाते रहते हैं । इन लोगों का दृष्टिकोण अधिनायकपूर्ण होता है । वह निरीक्षण को नापसंद करते हैं और यदि कभी इन विद्यालयों में निरीक्षण होता भी है तो वह पूरे विद्यालय को ऐसा चोला पहना देते हैं कि निरीक्षक वास्तविक वस्तुस्थिति को जानते हुए भी उसके संबंध में कोई भी प्रमाण एकत्रित करने में असमर्थ रहता है ।

(7) **वर्तमान निरीक्षण स्वयं में अपूर्ण (Present day Inspection Is Incomplete in Itself) -** स्कूल निरीक्षण का तात्पर्य है स्कूल की शैक्षणिक क्रियाओं, पाठ्यक्रम, सहगामी क्रियाओं, विद्यालय भवन, विद्यालय की अन्य सुविधाओं व विद्यार्थियों के शारीरिक स्वास्थ्य का निरीक्षण करना, परन्तु आज निरीक्षण में इन सब बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता । प्राय: निरीक्षक या तो अध्यापकों के शिक्षण कौशल का निरीक्षण करते हैं या फिर विद्यालय की प्रशासनिक या वित्तीय स्थिति का ।

(8) माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा वर्तमान निरीक्षण पद्धति में निम्नलिखित दोष बतायें-

1. निरीक्षक का अधिनायकवादी दृष्टिकोण
2. निरीक्षण का दिखावटी प्रारूप
3. निरीक्षणों का ध्वंसात्मक दृष्टिकोण
4. निरीक्षकों का विद्यालय के अनुपात में कम होना
5. विषयगत निरीक्षकों का अभाव आदि ।

21.9 निरीक्षण पद्धति में व्याप्त दोषों को दूर करने के उपाय (Measures to be adopted to remove the defects of inspection)

(1) निरीक्षक का दृष्टिकोण आलोचनात्मक न होकर सकारात्मक होना चाहिए । उसे मित्र व मार्गदर्शक के रूप में कार्य करना चाहिए ।

(2) निरीक्षण के स्थान पर 'पर्यवेक्षण' शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए । चूँकि यह शब्द अधिक व्यापक व सार्थक है ।

(3) निरीक्षकों की नियुक्ति व विद्यालयों की संख्या में उचित अनुपात होना चाहिए जिससे किसी भी निरीक्षक पर कार्य-भार अधिक न हो ।

(4) निरीक्षकों को निरीक्षण प्रक्रिया में प्रवीण करने हेतु प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए ।

(5) निरीक्षण प्रक्रिया केन्द्रित नहीं होनी चाहिए । इसमें शक्तियों का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए ।

(6) निरीक्षण को एक सहज व स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में सम्पादित किया जाना चाहिए । उसमें कृत्रिमता नहीं होनी चाहिए ।

(7) निरीक्षण नीतियों का निर्माण करते समय अध्यापकों का पूर्ण सहयोग लिया जाना चाहिए।

(8) निरीक्षण प्रक्रिया में निरीक्षक को विद्यालय के कर्मचारियों का भी पूर्ण सहयोग लेना चाहिए ।

(9) निरीक्षकों की नियुक्ति करते समय उनकी योग्यता व अनुभव को ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

(10) निरीक्षक द्वारा दिये गये सुझावों को सिर्फ कागज तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए वरन् उसे व्यावहारिक रूप में अनुपालित भी किया जाना चाहिए ।

(11) निरीक्षकों की पर्याप्त संख्या होनी चाहिए जो विषयनिष्ठ तथा तकनीकी विशेषज्ञ हों ।

(12) निरीक्षण के बाद दिए गए सुझावों पर अमल के लिए अनुसरण होना आवश्यक है ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. शैक्षिक निरीक्षण का अर्थ स्पष्ट करते हुए परिभाषित लिखिए ।
2. विद्यालय निरीक्षण के प्रमुख उद्देश्य बताइए ।
3. निरीक्षक के मुख्य तीन प्रकार के नाम लिखिए ।
4. शैक्षिक निरीक्षक की विभिन्न विधियों के नाम बताइए । आपकी दृष्टि में सबसे विश्वसनीय निरीक्षक की विधि कौनसी है, उसकी प्रमुख विशेषता लिखे ।
5. भारत में शैक्षिक निरीक्षक पद्धति में व्याप्त कौनसे दोष हैं और उनको दूर करने के उपाए सुझाइए ।

21.10 भारत में विद्यालय निरीक्षण के वर्तमान स्थिति (Present Status of School Inspection in India)

अब निरीक्षण के स्थान पर पर्यवेक्षण सम्प्रत्यय के आने से निरीक्षण की कार्य पद्धति तथा उसकी भावना में भी अन्तर स्पष्ट नजर आता है ।

संविधान के अनुसार प्रत्येक राज्य की शिक्षा व्यवस्था संचालित करने की जिम्मेदारी स्वयं राज्य पर है । इस व्यवस्था की तथा नीति निर्धारण आदि कार्यो को सचिवालय करता है । इन नीतियों और व्यवस्थाओं की सही स्थिति की देखभाल के लिए शिक्षा विभाग ने प्रत्येक राज्य के जिले में एक निरीक्षक नियुक्त किया है जो निरीक्षण के द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों का मूल्यांकन करता है । शिक्षाशास्त्रियों ने निरीक्षण संबंधी नवीन धारणा को अभिव्यक्त करने के लिए एक नवीन शब्द का प्रयोग किया है जो पर्यवेक्षण के नाम से जाना जाता है । यह केवल शब्दों का हेरफेर नहीं है वरन् उनमें उद्देश्य, क्षेत्र, विधि एवं दृष्टिकोण का भी बड़ा अन्तर है ।

पहले प्राय: विद्यालय निरीक्षण एक ऑडीटर के समान कार्य करता है । सरकारी आडीटर वर्ष में दो-तीन दिन के लिए आता और उस समय जितना हिसाब-किताब देख सकता है, उसकी अशुद्धियाँ एवं कमियों को अपनी रिपोर्ट में लिखकर अपने उच्चाधिकारियों के पास भेज देता है । इस रिपोर्ट के फलस्वरूप कुछ महीने के पश्चात विद्यालय को उन भूलों को ठीक करने का आदेश प्राप्त होता है, परन्तु जो त्रुटियां थोडे समय के कारण उनकी दृष्टि में नहीं आई, वे ज्यों की त्यों ही रहती हैं । निरीक्षण अपनी अल्पकालीन जाँच में विद्यालय के समस्त अंगों व तत्त्वों का निरीक्षण नहीं कर सकता और न ही विद्यालय के कार्यकर्ताओं को रचनात्मक सुझाव ही दे सकता है ।

एन.सी.ई.आर.टी. के एक सर्वेक्षण के आधार पर निरीक्षण अवधि निम्न प्रकार से पाई गई -

(1) माध्यमिक या उच्च माध्यमिक विद्यालय में निरीक्षण अवधि में 1 से 2 दिन । (आकस्मिक निरीक्षण मात्र) पाई गई ।

(2) आधे से एक दिन शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य करने वाली संस्थाओं के निरीक्षण हेतु लगाया गया ।

(3) वर्ष भर में एक निरीक्षणकर्ता प्राय: 120 दिन निरीक्षण करता है ।

(4) प्राय: विभिन्न राज्यों में एक निरीक्षणकर्ता एक वर्ष में औसतन 100 स्कूलों को देखता है ।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्यालयों में निरीक्षण कम अवधि के कारण मात्र औपचारिक रह जाते हैं । जिला अधिकारियों के प्रशासनिक कार्यों के कारण कुछ विद्यालय ही एक वर्ष में देखें जा सकते हैं, अत: प्रत्येक विद्यालय का नियमित निरीक्षण सम्भव नहीं हो पाता है । जिला शिक्षा अधिकारी निरीक्षण के अतिरिक्त अनेक प्रशासनिक उत्तरदायित्वों में उलझा रहता है जो उसको अधिक महत्वपूर्ण लगते हैं । इस संबंध में अधोलिखित सुझाव हैं -

(1) प्रत्येक जिला स्तर पर अलग से ही एक शिक्षा अधिकारी हो, जो केवल शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिए कार्य करे । यही सुझाव कोठारी आयोग ने भी दिया ।

(2) प्रशासनिक कार्य के लिए एक अतिरिक्त जिला शिक्षा अधिकारी हो सकता है ।

(3) निरीक्षण के लिए निरीक्षणकर्ताओं की संख्या बढ़ाई जा सकती है ।

(4) निरीक्षण पूर्वसूचित व आकस्मिक दोनों हों और उनकी संख्या बढ़ाई जाए ।

(5) निरीक्षण कार्य की अवधि बढ़ाई जाए, जिससे विद्यालय का व्यापक मूल्यांकन संभव हो सके

21.11 प्रचलित निरीक्षण प्रणाली में सुधार के सुझाव (Some suggestions for improvement in present inspection)

प्रचलित आदेशात्मक निरीक्षण पद्धति के दोषों व कमियों का निवारण सहयोगी व परामर्शदात्री पर्यवेक्षण की नवीन धारणा से हो सकता है । इस विषय में यदि परिवर्तन किया जाए तो वर्तमान निरीक्षण पद्धति के बहुत से दोषों का निवारण ही नहीं होगा बल्कि उसकी उपयोगिता भी बढ़ जाएगी । विद्यालय के सामान्य निरीक्षण (प्रशासनिक) और विशेष शैक्षिक निरीक्षणों की संख्या बढाई जा सकती है जिसमें व्यय की बहुत अधिक वृद्धि नहीं होगी ।

सामान्य प्रशासन से संबंधित निरीक्षण विद्यालय संचालन के कार्यों का निरीक्षण करें तथा विशेषज्ञ परामर्शदाता शैक्षिक कार्यक्रम की उन्नति के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित करें तो शिक्षा का स्तर अवश्य उन्नत होगा । इस प्रकार की व्यवस्था से शिक्षकों को विशिष्ट विधियों जैसे संगीत, कला, हस्तकला, गृहविज्ञान में भी कुशल सेवाएँ प्राप्त हो सकेगी । विद्यालयों में विशेषज्ञों, निरीक्षकों या सलाहकारों तथा शिक्षकों के निकट सम्पर्क के फलस्वरूप स्वयं शिक्षकों में अपने विषय के लिए उत्साह उत्पन्न होगा और वे अपनी शिक्षा योग्यता को सुधारने में अधिक रुचि लेंगे ।

उपर्युक्त सुझाव के अतिरिक्त विद्यालय निरीक्षक का कार्य आन्तरिक स्तर पर भी होना चाहिए । माध्यमिक शिक्षा आयोग ने प्रशासकीय तथा शैक्षिक कार्यों की देखभाल के लिए पृथक-पृथक अधिकारियों की नियुक्ति का सुझाव दिया है ।

21.12 भारत में निरीक्षण सुधार का प्रयास (Efforts in India for Improvement)

निरीक्षण के दोषों को दूर करके उसे अधिक उपयोगी बनाने के लिए भारत में एक विशाल प्रायोजना नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशनल (N.I.E.) के द्वारा लिया गया था । इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण अध्ययन-अध्यापन की परिस्थिति का विश्लेषण करके हर क्षेत्र के लिए सभी विषयों के सम्पूर्ण क्षेत्र को लेते हुए प्रश्नावलियां तैयार की गई हैं । पूरे देश में शिक्षाशास्त्रियों द्वारा इनको प्रामाणिक बनाने के लिए प्रयोग चल रहा है । प्रयोग की दो आवृतियां करने के बाद इसे अन्तिम रूप दिया जाएगा । प्रस्तावित योजनाओं में निरीक्षकों पर्यवेक्षकों का एक समूह होगा, जिसमें सभी विषयों के विशेषज्ञ होंगे । ये लोग विद्यालयों में जाकर, पर्याप्त समय तक रूक कर उनका विस्तृत निरीक्षण करेंगे, समस्याओं का अध्ययन

करेंगे और वैज्ञानिक ढंग से उसके समाधान के लिए शिक्षकों को प्रेरणा देंगे परन्तु हमारी योजनाएँ व्यवहार क्षेत्र में आते-आते धराशाही हो जाती हैं ।

21.13 शैक्षिक 'मोनिटरिंग' का अर्थ (Meaning of Educational Monitoring)

शैक्षिक 'मोनिटरिंग' (Monitoring) महज उन सूचनाओं का संकलन करने से है, जो स्वयं को स्वयं की प्रायोजना के संदर्भ के प्रश्नों के उत्तर देने मे सहायता करता है । यहाँ पर यह आवश्यक है कि जो (सूचनाओं का संकलन करता है, वह सुनियोजित, संगठित और नियमित कार्यक्रम के तहत किए जाए । सभी संगठनों में सूचनाओं का संधारण, नोट्स का संकलन किया जाता है, इसके साथ ही वह जो कार्य कर रहे उस पर विचार-विमर्श भी करते हैं । इस साधारण सी 'Checking' जाँचा को 'मोनिटरिंग' की संज्ञा दी जाती है । इसमें सूचनाएँ, गतिविधियाँ या सेवाओं का लाभ जो अन्य ले रहे है या बाह्य कारकों जो संगठन को प्रभावित कर रहे हैं या प्रायोजना की मोनिटरिंग से संबंधित हो सकते हैं । मोनिटरिंग की सूचनाओं का संकलन विशिष्ट समय (अवधि): प्रतिदिन, प्रति महीने या तिमाही की जानी चाहिए । यह सभी सूचनाओं को एक ऐसे केन्द्र बिन्दु पर एकत्रित करने की आवश्यकता है जिससे निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर प्राप्त किया जा सके -

1) कितना अच्छा हम कार्य कर रहे हैं ?
2) क्या हम सही कार्यों को सम्पन्न कर रहे हैं ?
3) क्या अन्तर हम कर पा रहे हैं ?

इस बिन्दु पर आकर हम 'मूल्यांकन' (Evaluate) करने लगते हैं । मोनिटरिंग नियमित व सतत् Ongoing) होता है जबकि मूल्यांकन गहराई से अध्ययन (In depth Study) करना होता है जो प्रायोजना के समयकाल में विशिष्ट बिन्दुओं पर किया जाता है ।

21.14 शैक्षिक मोनिटरिंग के मुख्य घटक / अवयव (Main Components / elements of Educational Monitoring)

शैक्षिक मोनिटरिंग के मुख्य घटक निम्नानुसार हो सकते हैं -

(1) विद्यार्थियों के निष्पादन के अन्तर्राष्ट्रीय/राष्ट्रीय मूल्यांकन में सहभागिता ।
(2) विद्यार्थियों के निष्पादन के लिए शैक्षिक प्रमापों के संदर्भ में व्यापक राज्य स्तर मूल्यांकन ।
(3) शैक्षिक प्रमापों के संदर्भ में विद्यार्थियों के निष्पादन का राष्ट्रीय स्तर के आधार पर प्रत्येक विद्यालय का तुलनात्मक मूल्यांकन । ।
(4) विशेष संस्था (Stake holders) से जुड़ा हुआ समूह जिसमें शिक्षकों, विद्यार्थियों, अभिभावकों और समुदाय ।
(5) राष्ट्र स्तर और राज्य स्तर पर संयुक्त शैक्षिक प्रतिवेदन ।

शैक्षिक प्रतिवेदन भावी शैक्षिक तंत्र के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट हो । प्रतिवेदन नियमित और सार्वजनिक वेबसाइट पर उपलब्ध हो जिसमें सभी सूचनाएँ शामिल हों । कोई भी शैक्षिक प्रतिवेदन-सेवा का अन्तर्भाग (core) प्रबन्धकीय और विधिवत् सूचना देने वाले (indicators) हो जिन्हें नियमित रूप से संशोधित और 'अपडेट' किया जा सकें ।

नियमित शैक्षिक प्रतिवेदन का उद्देश्य है कि किए जा रहे शैक्षिक तंत्र की मॉनिटरिंग को विश्वसनीय आँकड़ों से सुविधा प्राप्त हो जिससे वर्तमान शैक्षिक तंत्र की स्थिति को मूल्यांकित किया जा सके ताकि भविष्य में शैक्षिक तंत्र में विकास और सुधार हो सके ।

21.15 शैक्षिक प्रतिवेदन की मुख्य विशेषताएँ (Main Characteristics of Educational Reporting)

1. वह शिक्षा की इस समझ पर आधारित हो जिनसे शिक्षा के तीन ध्येय- आयामों (goal-dimensions) को अलग किया जा सके ।

(1) वैयक्तिक-स्वयं निर्धारण/नियामन (Individual Self Regulation)

(2) मानवीय संसाधन (Human Resources)

(3) सामाजिक भागीदारी और समान अवसर (Social participation & equal opportunities)

मूल्यांकन से प्राप्त निष्कर्षों और 'मोनिटरिंग' गतिविधियों से ज्ञान का हस्तानान्तरण विद्यालयों और कक्षाकक्ष में कितना हो रहा है इसके लिए शिक्षा के हर क्षेत्र में गुणात्मक सुधार के लिए पूर्व प्राथमिक आवश्यकता है कि शैक्षिक अनुसंधान हो । अनुसंधान से प्राप्त आंकड़े केवल तंत्र की वास्तविक स्थिति को नहीं बता सकते है, इसमें आवश्यकता है कि सावधानीपूर्वक उन आंकड़ों का अर्थापन (Interpretation) करके तर्कपूर्ण निष्कर्षों को संस्तुति-पत्र (Recommendation) से प्रस्तुत किया जाए ।

इसको निम्नलिखित चित्र से स्पष्ट किया जा सकता है -

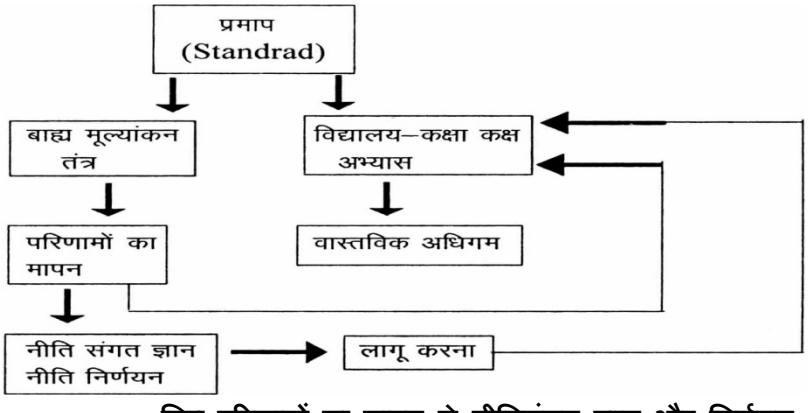

चित्र परिणामों का मापन से नीतिसंगत ज्ञान और निर्णयन

2. दूसरी विशेषता - शैक्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत शिक्षा के क्षेत्र और गुणवत्ता का शैक्षिक तंत्र के हर स्तर का मूल्यांकन करता है । मापन से नीतिसंगत ज्ञान और निर्णयन

3. तीसरी विशेषता - शैक्षिक प्रतिवेदन - पूर्ण शैक्षिक तंत्र के विभिन्न आयामों को समाहित करके सूचना देता (indicators) हो ।

उपरोक्त तीनों विशेषताएँ ही indicators के चयन, विकास और प्रतिवेदन के लिए प्रमुख कसौटियाँ (Key-criteria) होती हैं ।

शैक्षिक प्रतिवेदन का प्राथमिक उद्देश्य होता है शिक्षा नीति देना और प्रकाशकों को आकड़ों की सहायता से नीतिगत निर्णयनों और गतिविधियों से अवगत करना और जनता को वैज्ञानिक व सान्द्रित सूचनाओं के रूप में सूचित करना । शैक्षिक प्रतिवेदन मात्रात्मक सूचनाओं के आधार पर हो । सभी नीतिगत निर्णयनों के लिए संदर्भ (context), अदा (Input) चर, शैक्षिक प्रक्रिया (Educational Process) विश्वसनीय होते हैं । इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक मॉनीटरिंग के उपयोग के लिए विषयों/प्रकरणों का चयन करके उनका विश्लेषण कर विश्वसनीय दत्तों के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है । इसको Context-Input-Process-Product- Evaluation मॉडल से जाना जाता है जैसे :

1. सन्दर्भ स्तर : **(Context Level)**	→ किसी जाति की सामाजिक स्थिति की विवेचना / जनसंख्या का अध्ययन **(Demography)**
2. अदा स्तर : **(Input Level)**	→ शिक्षा पर खर्च **(Expenditure on Education)** मानव संसाधन **(Human Resources)** शैक्षिक प्रावधान **(Educational Provision)** शैक्षिक संस्थान **(Education Institution)** शैक्षिक भागीदारी **(Educational Participation)** शिक्षा में भागीदारी **(Participation in Education)**
3. प्रक्रिया स्तर **(Process level)**	→ शिक्षा में उपयोग **(Transitions)** परिवर्तन / स्थिति का अन्तर
4. प्रदत्त स्तर **(Product Level)**	→ गुणात्मक दृढ़ता / विश्वास / मूल्यांकन **(Quality Assurance/ Evaluation)** विद्यार्थियों की संज्ञानात्मक निष्पत्ति, क्रियाओं, गतिविधियों, रुचियों, मूल्यों के प्रति दृष्टिकोण, विद्यालय जो निष्पत्ति स्तर प्राप्त करने के लिए लगा है ।
5. मूल्यांकन स्तर **(Evaluation level)**	→ प्रमापों की मॉनिटरिंग जवाबदेही को बढ़ाना राष्ट्रीय मूल्यांकन की भूमिका का निर्वाह

21.16 शैक्षिक " (सूचना देने वाले) (Educational Indicator)

शैक्षिक " शब्दावली का अधिकांशत: उपयोग नीतिगत, विश्वसनीय, सांख्यिकी में होता है जिसमें सूचनाएँ शामिल होती हैं वे हैं -

- स्थिति (Status)
- एक शैक्षिक तंत्र की गुणवत्ता या निष्पादन (Quality or Performance of an Educational System)

फिटज-गिब्बन 1996, ओकस 1986, ओगावा और कोलोम्ब 1998 के द्वारा " के लिए परिभाषा दी गई है- "स मापनीय, मात्रात्मक चर होते हैं जिनका उपयोग जटिल (Proxics) के रूप में किया जाता है । इनकी अधिकतर संरचना बहु-आयामी (Multidivisional) होती है । ये किसी भी तंत्र की स्थिति और निष्पादन का सही चित्र प्रस्तुत करने में सक्षम होते हैं।

'इन्डीकेटरस' अधिकांशत: उपयोजन (Application) और क्रियाओं (actions) के लिए अपेक्षित आधार प्रस्तुत करते हैं जिसमें वह व्याप्त महत्त्वपूर्ण समस्याओं के लिए सूझ (insights) प्रस्तुत करते हैं ।

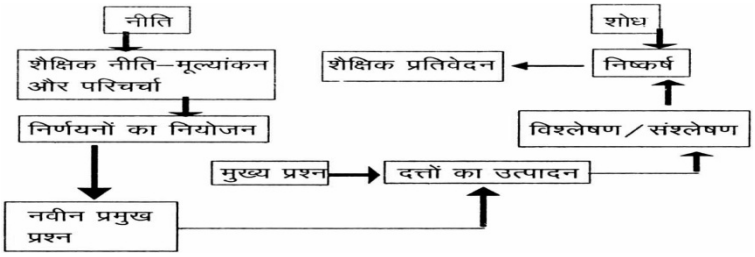

चित्र : 'स्विस मॉडल' जिसमें शैक्षिक प्रतिवेदन में नीतियों और शोधों की जिम्मेदारियां दर्शाई गई हैं ।

21.17 शैक्षिक प्रतिवेदन के प्रमुख कार्य (Main Functions of Educational Reporting)

शैक्षिक प्रतिवेदन (2008 के अनुसार) निम्नलिखित कार्यों का सम्पादन करता है-

1. गुणात्मक 'स' का विकास करना (Developing Quality Indicators)
2. शैक्षिक नीति अनुकूलता या एकमत की प्राप्ति की क्षमता को 'स' से परखना या जाँचना (Testing the indicators for their capacity to achieve Educational Policy Consensus)
3. शैक्षिक नीति निर्धारकों और सार्वजनिक जनता में इस सम्पूर्ण सम्प्रत्यय की मान्यता और प्रायोगिक उपयोगिता को सुनिश्चित करना । (Ensuring the practicability and acceptance of the overall concept among educational policy makers and the general public)

शिक्षा तंत्र के साधारण मॉडल 'अदा-प्रक्रिया-प्रदा' के द्वारा समय-समय पर 'स' का निर्माण होता है जिसमें-

– अदा (Input) – तंत्र में उपस्थित संसाधन जैसे-भवन, पुस्तकें, गुणात्मक शिक्षकों की संख्या, विद्यार्थियों (आर्थिक-सामाजिक पृष्ठभूमि

के साथ)

- प्रक्रिया (Process) – विद्यालयों द्वारा संसाधनों का उपयोग करने का तरीका (सहगामी क्रियाओं और अनुदेशनात्मक गतिविधियाँ में)
- प्रदा (Output) – विद्यालय जो निष्पत्ति प्राप्त करने के लिए लगा छुह है विद्यार्थियों की संज्ञानात्मक निष्पत्ति, भावात्मक विशेषताएँ (जैसे धनात्मक, ऋणात्मक भावनाएँ, दृष्टिकोण संबंधित क्रियाओं के प्रति) रुचियाँ, मूल्य
- मूल्यांकन (Evaluation) – प्रमापों की मोनिटरिंग
  – जवाबदेही को बढ़ाना
  – शिक्षकों के प्रयासों को निर्देशन और विद्यार्थियों की निष्पत्तियों का प्रमापनी द्वारा मापन
  – जनता में जागृति बढ़ाना
  – राष्ट्रीय मूल्यांकन की भूमिका का निर्वाह

शिक्षा तंत्र को निम्नलिखित सरल मॉडल के द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है जिसमें विद्यार्थियों के निष्पादन और प्रभाव, प्रक्रिया, अदा के द्वारा शैक्षिक मॉनिटरिंग की जाती है ।

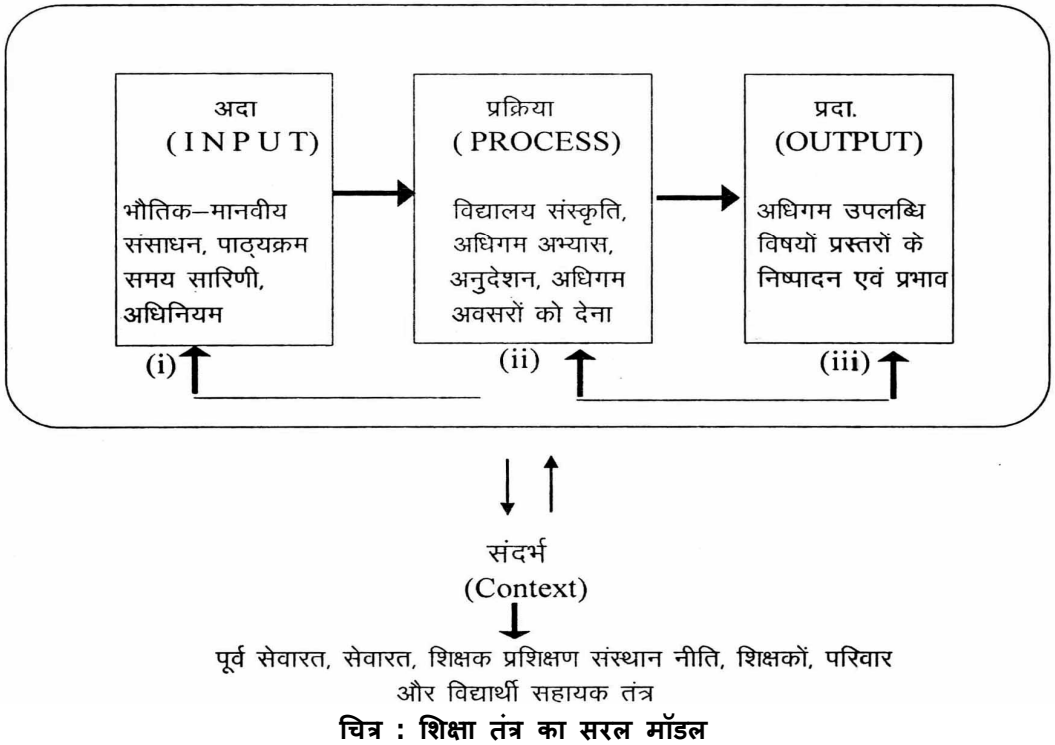

चित्र : शिक्षा तंत्र का सरल मॉडल

21.18 'रिजल्ड-बेस्ड-गर्वनेस' (Result-Based-Governance)

शैक्षिक 'मॉनिटरिंग के स्थान पर नवीन दर्शन का प्रादुर्भाव हो रहा है जिसे "रिजल्ट-बेस्ड-गर्वनेस" (Result-Based-Governance) नवीन शब्दावली से जाना जाता है । जिसमें परख परीक्षाओं और वार्षिक परीक्षाओं का उपयोग, जो मानकों पर आधारित होते हैं, विद्यालयों के आन्तरिक मूल्यांकन कार्यक्रमों और बाह्य निरीक्षणों को आधार देना, पाठ्यक्रम को प्रमाण सहित (विषयवार) सिद्ध करना, सशक्त प्रतिपुष्टि तंत्र की स्थापना जिसका सम्बन्ध- शिक्षण सुधार से हो, तंत्र के अनुरूप विधियों को लागू करना यह कार्य स्थानीय स्तर तक करना, सम्बद्ध नीति की विश्वसनीयता आदि सम्मिलित हैं ।

राष्ट्रीस्तर, राज्य स्तर, 'किनट्न' (Canton) (किसी देश का छोटा भाग) शिक्षा प्रशासन वूहट स्टार पर (Macro level)
प्रादेशिक सहायक और मॉनिटरिंग तंत्र मध्यान्तर स्तर पर (at intermediate level) सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण , गुणात्मक सुधार और मूल्यांकन
पृथक विद्यालय (Meso level) संस्थागत - विद्यालयी कार्य और शिक्षण में सुधार
शिक्षकों, विद्यार्थीयों और अभिभावकों (Micro level) (शिक्षण-अधिगम सूक्ष्म स्तर पर व्यक्तिगत पाठ)

चित्र : शिक्षा तंत्र के विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक प्रमापों को लागू करना

21.19 तंत्र में गुणात्मक सुधार के मुख्य स्तम्भ (Main pillars of quality improvement in a system)

किसी भी तंत्र में दीर्घकालीन और व्यापक गुणात्मक सुधार के लिए यह आवश्यक है कि सभी "स्टेकहोल्डरस" (शिक्षकों, विद्यार्थियों, अभिभावकों, समुदाय) सभी स्तरों पर अपनी भूमिका का निर्वाह करें । गुणात्मक तंत्र में सुधार के मुख्य तीन स्तम्भ निम्नानुसार हैं -

1. अदा आयाम (Input Dimension) - इस आयाम का उद्देश्यों और संसाधनों से प्रबन्ध किया जाता है या आकल्प पाठ्यक्रम और प्रमापों द्वारा (Designing Curicula & Standards) किया जाता है ।
2. प्रक्रिया-आयाम (Process dimension) - जो शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का गुणात्मकता से संबंधित है जिसके द्वारा वहाँ के अधिगम करने वाले स्टाफ की व्यावसायिक उन्नति होती है ।
3. प्रदा आयाम (Output dimension) - जो परिणामों और प्रतिक्रियाओं से संबंधित है जिनके मॉनिटरिंग निष्पादन या जाँच परीक्षाओं के परिणामों से होती है ।

शैक्षिक प्रमापों को हर एक विद्यालय तंत्र में लागू करना जिससे सारा तंत्र गुणात्मक सुधार हेतु विभिन्न नवीन तरीकों को सृजित कर सके । ऐसे में उनको कोई शैक्षिक उपकरण (Educational tool) का उपयोग कर विद्यालयों का और साथ-साथ शिक्षण की गुणवत्ता में सुधार लाने का प्रयास किया जा सकता है ।

स्व - मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. शैक्षिक मॉनिटरिंग से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट करें ।
2. शैक्षिक प्रतिवेदन पर संक्षिप्त लेख लिखें ।
3. संदर्भ स्तर- अदा स्तर - प्रक्रिया स्तर - प्रदा स्तर - मूल्यांकन स्तर -मॉडल से क्या समझते हैं?
4. शैक्षिक 'इन्डीकेटर' शब्द को स्पष्ट कीजिए ।

21.20 सारांश (Summary)

(अ) **शैक्षिक निरीक्षण (Educational Inspection)**

1. शैक्षिक निरीक्षण का अर्थ एवं परिभाषा शैक्षिक निरीक्षण का अर्थ है परीक्षा लेना और परीक्षा का तात्पर्य है सरलतापूर्वक एवं आलोचनात्मक दृष्टि से जाँच करना या किसी व्यक्ति की जाँच करना ।

1. **डॉ. एस. एन. मुखर्जी :** 'वरिष्ठ अध्यापक' अथवा प्रधानाध्यापक द्वारा जिए गए मूल्यांकन को निरीक्षण कहा जाता है ।"

2. **बार एवं बर्टन के अनुसार** : "निरीक्षण वह प्रक्रिया है जो एक आधार प्रस्तुत करती है जिस पर शिक्षण की उन्नति हेतु सभी कार्यक्रम आधारित किए जाने चाहिए ।"

3. **वुड के घोषणापत्र के अनुसार** : "एक उपयुक्त निरीक्षण पद्धति भविष्य के लिए हमारी शिक्षा पद्धति का आवश्यक अंग हो जायेगी और हमारी इच्छा है कि पर्याप्त मात्रा में योग्य निरीक्षकों की नियुक्ति की जाये जो कि समय-समय पर सरकार द्वारा संचालित एवं सहायता प्राप्त विद्यालय कॉलेज की प्रचलित स्थिति के विषय में रिपोर्ट देंगे । वे इन संस्थाओं के छात्रों की परीक्षा का संचालन या सहायता प्रदान करेंगे ।"

(2) निरीक्षण की विचारधारा का विकास (Development of the Concept of Inspection)

1854 में वुड के घोषणा पत्र के पश्चात् निरीक्षण की विचारधारा का आरम्भ हुआ । 1858 में डाइरेक्टर की ओर से अनुदान की शर्तें रखी गई जिसके अनुसार विद्यालय का निरीक्षण होता था। 1908 और 1919 में सेडलर कमीशन ने निरीक्षण की आलोचना की । 1936 में ऐवर और वुड महोदय ने निरीक्षण को एक आवश्यक प्रक्रिया कहा और कहा कि निरीक्षक का मुख्य कार्य है विद्यालय का निरीक्षण करना । माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने भी निरीक्षण की आलोचना की और नई विचारधारा पर्यवेक्षण आरम्भ हुई ।

(3) निरीक्षण के उद्देश्य (Objectives of Inspection)

शिक्षकों की कमियों को दूर करके उनमें गुणों का विकास कर अच्छे शिक्षक तैयार करना, शिक्षकों को मार्गदर्शन देना, सीखने की स्थितियों का मूल्यांकन करना, शिक्षकों व विद्यार्थियौ की समस्याओं का निदान करना, शिक्षकों को पाठ्यक्रम निर्माण के प्रमुख उद्देश्यों से अवगत कराना ।

(4) **शैक्षिक निरीक्षण के प्रकार** प्रमुख तीन प्रकार हैं -

1. संशोधनातमक निरीक्षण (Corrective Inspection)
2. निरोधात्मक निरीक्षण (Preventive Inspection)
3. रचनात्मक निरीक्षण (Constructive Inspection)

(5) शैक्षिक निरीक्षण की विधियों (Methods of Educational Inspection)

1. विद्यालय में जाना
2. अध्यापकों की बैठक बुलाना
3. विद्यालयों को नवीन आयामों की सूचना देना
4. प्रदर्शन पाठों का आयोजन
5. विद्यालय का मूल्यांकन

(6) निरीक्षण के कार्य (Function of Inspection)

1. अनुदेशकों, शिक्षकों की तैयारी व अधिगम स्थिति का निरीक्षण करना । विद्यालय के शैक्षिक स्तर का ज्ञान करना ।
2. अध्यापक डायरी का निरीक्षण
3. शिक्षकों द्वारा जाँचे गए गृहकार्य का निरीक्षण ।
4. लेखा कार्यों का निरीक्षण
5. विशेष विद्यालयी प्रायोजनाओं, योजनाओं, अनुसंधान का निरीक्षण
6. गहन छात्रावास, प्रयोगशालाओं, खेल मैदान, स्वास्थ्य सेवाओं. निर्देशन सेवाओं का निरीक्षण
7. छात्रावास कार्यकलापों विद्यार्थी पाठ्य सहगामी प्रवृत्तियों का निरीक्षण ।

(7) निरीक्षण पद्धति के दोष (Demerits of Inspection)

1. अयोग्य निरीक्षक
2. निरीक्षण का केन्द्रीकृत रूप
3. निरीक्षण का एक दिखावा मात्र होना
4. निरीक्षण का विद्यालय प्रक्रिया से असंबंधित होना
5. निरीक्षण का विषय केन्द्रित न होना ।
6. निजी प्रबन्धकों का नकारात्मक दृष्टिकोण
7. वर्तमान निरीक्षण स्वयं में अपूर्ण
8. माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा निम्नलिखित दोष बताए गए -

1. निरीक्षण का अधिनायकवादी दृष्टिकोण
2. निरीक्षण का दिखावटी प्रारूप
3. निरीक्षकों का ध्वंसात्मक दृष्टिकोण
4. निरीक्षकों का विद्यालय के अनुपात में कम होना
5. विषयगत निरीक्षकों का अभाव आदि ।

(8) निरीक्षण पद्धति में व्याप्त दोषों को दूर करने के उपाय (Measures to be adopted to remove the defects of Inspection)

1. निरीक्षक का दृष्टिकोण सकारात्मक हो ।
2. निरीक्षण के स्थान पर 'पर्यवेक्षण' शब्द का प्रयोग करें ।
3. विद्यालयों की संख्या के उचित अनुपात में निरीक्षकों की नियुक्ति।
4. निरीक्षकों को निरीक्षण प्रक्रिया में प्रशिक्षण देना ।
5. निरीक्षण सहज और स्वाभाविक रूप में किया जाए ।
6. अध्यापकों के सहयोग से निरीक्षण की नीतियों का निर्धारण करें ।
7. निरीक्षक को निरीक्षण में विद्यालय कर्मचारियों का पूर्ण सहयोग लेना चाहिए ।
8. निरीक्षकों की नियुक्ति उनकी योग्यता व अनुभवों को ध्यान में रखकर की जाये ।
9. निरीक्षक के निर्देशनों की व्यावहारिक रूप में अनुपालना की जाए ।
10. निरीक्षक विषयनिष्ठ, तकनीक विशेषज्ञ हो व पर्याप्त संख्या में हो ।
11. निरीक्षण के सुझावों के अमल के लिए अनुसरण हो ।

(9) भारत में विद्यालय निरीक्षण की वर्तमान स्थिति (Present Position of School Inspection in India)

पहले वर्ष में 2-3 दिन के लिए विद्यालय में ऑडीटर आकर हिसाब-किताब, देखकर कमियां बता देता था । एन.सी.आर.टी ने सर्वेक्षण के आधार पर निरीक्षण अवधि के लिए सुझाव दिए । भारत में विद्यालयों में निरीक्षण कम अवधि के कारण मात्र एक औपचारिकता मात्र रह जाता है । जिला शिक्षा अधिकारियों के प्रशासनिक कार्यों के कारण अन्य कार्यों में व्यस्त रहने की वजह से नियमित निरीक्षण सम्भव नहीं हो पाता है । इसलिए निरीक्षण के लिए एक अतिरिक्त जिला शिक्षा अधिकारी को नियुक्त किया जा सकता है । निरीक्षण पूर्व सूचित व आकस्मिक दोनों की संख्या अधिक होनी चाहिए तथा निरीक्षण की अवधि को बढ़ाना चाहिए जिससे विद्यालय का व्यापक मूल्यांकन सम्भव हो सके ।

(10) भारत में निरीक्षण सुधार का प्रयास (Efforts in India for Improvement in Inspection)

नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एज्यूकेशन (NIE) ने भारत में एक विशाल प्रायोजना ली जिसमें निरीक्षण के दोषों को दूर करके उसे अधिक उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया जिसमें सभी विषयों पर प्रश्नावली बनाकर सम्पूर्ण अध्ययन-अध्यापन संस्थिति का ब्यौरा प्राप्त कर विश्लेषण किया जाएगा । प्रस्तावित योजना में निरीक्षकों का एक समूह होगा जो सभी विषयों

के विशेषज्ञ होंगे जो विद्यालय में जाकर वही पर समस्याओं का विस्तृत अध्ययन करके वैज्ञानिक ढंग से समाधान करेंगे ।

(ब) शैक्षिक मॉनिटरिंग (Educational Monitoring)

(1) शैक्षिक मॉनिटरिंग का अर्थ (Meaning of Educational Monitoring)

शैक्षिक मॉनिटरिंग महज उन सूचनाओं का संकलन करने से है, जो स्वयं को, स्वयं की प्रायोजना के संदर्भ के प्रश्नों के उत्तर देने में सहायता करता है । यह सूचनाएँ सुनियोजित, नियमित और संगठित कार्यक्रम से की जाती है जिनका संधारण किया जाता है । मॉनिटरिंग के द्वारा हम कैसा कार्य कर रहे हैं, क्या कार्यों का सही सम्पादन हो रहा है जैसे मूल प्रश्नों का उत्तर प्राप्त हो जाता है ।

(2) **शैक्षिक मॉनिंटरिंग के मुख्य घटक (Main Components of Educational Monitoring)**

1. विद्यार्थियों के निष्पादन के राष्ट्रीय मूल्यांकन में सहभागिता
2. विद्यार्थियों के निष्पादन के लिए शैक्षिक प्रमापों के संदर्भ में व्यापक राज्य स्तर मूल्यांकन
3. शैक्षिक प्रमापों के संदर्भ में विद्यार्थियों के निष्पादन का राष्ट्रीय स्तर के आधार पर प्रत्येक विद्यालय का तुलनात्मक मूल्यांकन
4. शिक्षकों, विद्यार्थियों, अभिभावकों, समुदाय आदि ।
5. राष्ट्र स्तर और राज्य स्तर पर संयुक्त शैक्षिक प्रतिवेदन

(3) शैक्षिक प्रतिवेदन को मुख्य विशेषताएँ (Main Characteristics of Educational Reporting)

1. शैक्षिक प्रतिवेदन शिक्षा की इस समझ पर आधारित हो जिनसे शिक्षा के तीन ध्येय-आयामों (Goaldimensions) को अलग किया जा सके ।
2. वैयक्तिक - स्वयं निर्धारण / नियमन (Individual Self Regulation)
3. सामाजिक भागीदारी और समान अवसर

संदर्भ स्तर-से मूल्यांकन स्तर को मॉडलसे जाना जाता है जिसमें पाँच स्तर निम्नानुसार क्रमांक से होते हैं -

1. संदर्भ स्तर **(Context Level)** – जनसंख्या का अध्ययन
2. अदा स्तर **(Input Level)** – मानव संसाधान, शिक्षा पर खर्चा, शैक्षिक प्रावधान, शैक्षिक संस्थान, शैक्षिक भागीदारी, शिक्षा में भागीदारी
3. प्रक्रिया स्तर **(Process Level)** – शिक्षा के उपयोग, परिवर्तन, गुणात्मक दृढ़ता मूल्यांकन
4. प्रदा स्तर **5. Product/Output level)** – विद्यार्थियों की संज्ञानात्मक निष्पत्ति, मूल्यों, रुचियों, गतिविधियों, क्रियाओं के प्रति दृष्टिकोण, विद्यालय

जो निष्पत्ति स्तर प्राप्त करने के लिए लगा हुआ है ।

6. मूल्यांकन स्तर **(Evaluation level)**
   - प्रमापों की मॉनिटरिंग
   - जवाबदेही को बढ़ाना
   - राष्ट्रीय मूल्यांकन की भूमिका निर्वाहा

(4) **शैक्षिक 'इन्डीकेटर' (Educational Indicator) -** शैक्षिक 'इन्डीकेटर' शब्दावली का उपयोग नीतिगत, विश्वसनीय, सांख्यिकी से होता है जिसमें सूचनाएँ शामिल होती हैं । वे हैं- स्थिति, शैक्षिक तंत्र की गुणवत्ता का निष्पादन । मापनीय, मात्रात्मक चर होते हैं यह किसी भी तंत्र की स्थिति और निष्पादन का सही चित्र प्रस्तुत करने में सक्षम होते हैं ।

(5) शैक्षिक प्रतिवेदन के प्रमुख कार्य (Main function of Educational Reporting)

1. गुणात्मक 'इन्डीकेटर' का विकास करना ।
2. इस सम्प्रत्यय की भावना और प्रायोगिक उपयोगिता को सुनिश्चित करना ।
3. शैक्षिक नीति अनुकूलता की प्राप्ति की क्षमता को 'इन्डीकेटर' से जांचना ।

(6) रिजल्ड-वेसड-गर्वनेस (Result Based Governance)

शैक्षिक मॉनिटरिंग के स्थान पर नवीन दर्शन "रिजल्ड बेसड गर्वनेस" का प्रादुर्भाव हुआ है जिसमें 'टेस्टो' या जाँच परख परीक्षाओं का मानकों के आधार पर उपयोग किया जाता है । इसमें सशक्त प्रतिपुष्टि तंत्र की स्थापना की जाती है, जिसमें शिक्षक-सुधार हो, तंत्र को उसके अनुरूप विधियों को लागू किया जाए आदि सम्मिलित होते हैं ।

(7) गुणात्मक सुधार के मुख्य स्तम्भ (Main Pillars for Quality Improvement)

1. अदा आयाम
2. प्रक्रिया आयाम
3. प्रदा आयाम

अभ्यास प्रश्न (Exercises)

1. शैक्षिक निरीक्षण के अर्थ, परिभाषा, विचारधारा के विकास, उद्देश्य एवं प्रकारों की उदाहरण सहित व्याख्या करिए ।
2. शैक्षिक निरीक्षण की विधियों, कार्यकलापों तथा दोषों की व्याख्या करते हुए दोषों को दूर करने के लिए अपने सुझाव दीजिए ।
3. शैक्षिक मोनिटरिंग के अर्थ, घटक, विशेषताओं तथा कार्यों को स्पष्ट करते हुए तंत्र में गुणात्मक सुधार के मुख्य स्तम्भों की व्याख्या करिए ।

21.21 संदर्भ (References)

1. ओड एल. के. एवं वर्मा, जे.पी. (1991), शैक्षिक प्रशासन : जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी
2. पोरवाल, एल. बी. एवं सक्सेना (1988), प्रबन्ध के सिद्धान्त एवं व्यवहार : जयपुर : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस

3. सिंघल, जे. पी. (1996): प्रबन्ध : जयपुर, अजमेरा बुक कम्पनी
4. वर्मा, जे. पी. एवं वर्मा मंजू (2002), विद्यालय प्रबन्धन, मेरठ, सूर्या पब्लिकेशन
5. वर्मा, जे. पी. (2001) शैक्षिक प्रबन्धन, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
6. गुप्ता, घनश्याम लाल (1980) प्रबन्ध के सिद्धान्त, मीनाक्षी प्रकाशन
7. मलैया एवं मलैया (1971), शिक्षा प्रशासन एवं पर्यवेक्षण, भोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
8. सुखिया, एस. पी. (2000), विद्यालय प्रशासन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगराक
9. Agarwal,J.C.(1967) Supervisory Practices, Educational Administration,New Delhi Agra Book Depot
10. Dubrin J.Andrew (1989), The Practices of Supervision,Achieving Results through people,New Delhi, Business Publications.
11. Verma J.P., and Verma Manju (2007) : School Management : Meerut, Lal,R.Book Depot.
12. Mathur,S.S. (1990) : Organization of School Inspection, The Indian Publication Ambala, Cantt.
13. Rajput J.S. (G. Editor) Encyclopedia of Indian Education, Vol.2 (1 to Z) NCERT 2004.
14. Gropello di Emanuela : Monitoring Educational Performance in the Carribbean. The World Bank, The International Book for Reconstruction and Development - USA 2003.
15. Kellaghan,Thomas and Graney Vincent : Monitoring the Learning Outcomes of Education System.Published by the World Bank,Washington,D.C. 1996
16. Kanten,Aargan,Department Building Kultur (2006)
17. Klieme E.Avenarius, H.Blum W.Dobrich,P.Gruber,H.Prenz,M.Reiss, K. Riquarts, K.Rost, J.Jenorth, H.E. & Vollmer H.J. (2004) - The Development of National Educational Standardsin Germany.

ISBN - 13/978-81-8496-001-3